लाडनू
एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

भंवरलाल जांगिड



साधना प्रकाशन, लाडनू

प्राक्कथन :
डॉ. भंवरसिंह सामौर
पूर्व प्राचार्य
लोहिया महाविद्यालय, चूरू (राज)

प्रवर्तक : श्री राम आनन्द गौशाला, लाडनू (राज.)

प्रथम सस्करण : 2005 ई.

लेजर टाइप एण्ड कलर सेटिंग :
मोहन कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, लाडनू

मूल्य : 300/- रुपये

मुद्रक :
कल्याणी प्रिण्टर्स
अलख सागर रोड, बीकानेर-334001
दूरभाष : 0151-2526890



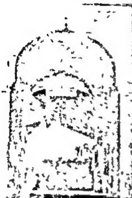
श्यामसुन्दर अग्रवाल
5A/1B, लॉर्ड सिन्हा रोड
कोलकाता-700 071

अनुशंसा अभिप्सा

इतिहास पुनस्स्मरण है अतीत के सार्थक क्षणों का। साथ-साथ वर्तमान की प्रेरणा और भविष्य का दिग्दर्शन भी है। इतिहास और संस्कृति की धाराएं साथ-साथ चलती हैं। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि नकारात्मक भाव आदमी को थका देते हैं। प्रेम, दया, करुणा से आदमी कभी थकता नहीं। इसे सम्मानित संस्कार अमृत तुल्य हैं। ये ही हमारी संस्कृति के प्राण-तत्त्व हैं। जो संस्था अपनी संस्कृति से जुड़ जाती है, उसे इससे पोषण मिलता रहता है। यही कारण है कि राम आनन्द गौशाला, लाडनूं करीब 100 वर्षों से निरन्तर गतिमान है।

जब मुझे जानकारी मिली कि लाडनूं का इतिहास संकलित हो रहा है तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। यह जानकर तो मेरी प्रसन्नता और बढ़ गई कि यह कार्य श्री भंवरलाल जांगिड़ कर रहे हैं। मेरी प्रबल इच्छा रही कि यह पुस्तक अपने श्रेष्ठतम रूप में प्रकाशित हो और इसका प्रवर्तन राम आनन्द गौशाला करे। वह प्रत्येक कृति, जो अपनी संस्कृति में समा जाने की क्षमता रखती है — कभी मरती नहीं। इस पुस्तक के बारे में भी मेरी अभिप्सा है कि कुछ ऐसा ही घटित हो।

प्रवर्तक



श्री राम आनन्द गौशाला

प्रेरणास्रोत



मेरी ममतामयी माँ स्व.

श्रद्धा समर्पण

श्री राम आनन्द गौशाला लाडनूं शहर की एकमात्र संस्था है, जो अपने यशस्वी जीवन के 80 वर्ष पूरे कर चुकी है। इतने लम्बे समय तक न केवल यह अपने अस्तित्व को बचाए रख पाई, बल्कि अपने स्वरूप में उत्तरोत्तर निखार लाने में भी सफल रही। सहस्रों स्त्री-पुरुषों के श्रम[illegible], सेवा और समर्पण का ही प्रतिफल है कि यह संस्था आज हमारे बीच स्वस्थ और सबल रूप में अवस्थित है।

मेरी पूजनीया माँ किसान परिवार में जन्मी होने के कारण अपने द्वारा पालित गौ-धन को उतना ही प्यार देती थी, जितना अपने परिवारजनों को। इस परम भाव से प्रेरित होकर तथा श्री राम आनन्द गौशाला को शहर की आदर्शतम संस्था का प्रतीक मानकर मैं यह पुस्तक अपने असीम श्रद्धा भाव से उन सबको समर्पित करता हूँ, जिन्होंने इस शहर के व्यक्तित्व को एक विस्तृत आयाम दिया और दी एक आशा भरी जीवन्त कहानी।
उनको भी जो वर्तमान में दे रहे हैं,
उन्हें भी जो भविष्य में देंगे..........

लेखक

प्राक्कथन

इतिहास मानव विकास क्रम का क्रमबद्ध अनुसंधान है। इतिहास का कोई आकार नही होता—यह तो सिर्फ व्याप्ति है। इस देश में इतिहास की वाचिक परम्परा रही है। इतिहास गाथाओं के सहारे गतिशील रहा है। घटनाएँ विसर्जित होकर इतिहास-चक्र में समा गई। गाथाएँ मिथ बन गई और ऐतिहासिक पात्र अलौकिक आभा से मण्डित होकर जन-जन की प्रेरणा का स्रोत बने।

घटनाओं और इतिहास का गहरा सम्बन्ध है लेकिन घटनाओं के विश्लेषण में प्रमाण की आवश्यकता होती है। अधिकतर प्रमाण तर्क आधारित होते हैं। तर्क के खण्डन की सम्भावना सदैव बनी रहती है। अतः किसी घटना के तथ्यगत विश्लेषण को सीमा से अधिक महत्त्व देना इतिहास को खण्ड-खण्ड करने जैसा ही है। इस प्रयास में घटना विशेष तो उजागर हो जाती है लेकिन इतिहास का प्रवाह खो जाता है।

प्रस्तुत ऐतिहासिक सर्वेक्षण में घटनाओं का विश्लेषण यद्यपि लेखक ने किया है लेकिन किसी भी घटना विशेष पर वे ठहरे हुए प्रतीत नहीं होते। इससे इतिहास का प्रवाह कहीं भी अवरुद्ध नहीं हुआ है। इस इतिहास पुस्तक की यह एक सराहनीय उपलब्धि है।

लेखक ने इतिहासकार की भूमिका के साथ-साथ एक दृष्टा की भूमिका का भी सफल निर्वहन किया है। यही कारण है कि वे सिर्फ इस शहर की भौगोलिक सीमा तक ही सीमित नहीं रहे बल्कि इस शहर को प्रभावित करने वाले एक बड़े परिवेश को भी रेखांकित करने में कामयाब रहे हैं। वे अतीत की अनचिन्ही गहराइयों तक भी अपनी पहुँच बनाने में सफल रहे हैं। पाँच शिलालेख तो इतिहास पटल पर पहली बार आ रहे हैं।

जिस ऊँचाई पर बैठकर लेखक ने इस शहर का ऐतिहासिक परिदृश्य अंकित किया है उससे इस शहर के बारे में कुछ भी छूट जाने की गुंजाइश शेष नहीं रह जाती है। कुछ जानकारियाँ तो नितान्त नई हैं। अग्रवाल समाज के बारे में जो जानकारी दी गई है वह बड़ी मौलिक और सूझबूझ भरी है। मोहिल राजवंश को इस ग्रंथ के माध्यम से अपना यथोचित गौरव प्राप्त हुआ है। लाडनूँ को चन्देरी और डाहलियों को परमार मानने की ऐतिहासिक भ्रांतियों का बड़े सहज ढंग से लेखक ने समाधान प्रस्तुत किया है। यह ग्रंथ नई शोध सम्भावनाओं से भी भरा पूरा है।

इतिहास को सामान्य जन से जोड़कर लेखक ने उसे एक जीवन्तता प्रदान की है। लोकजीवन के आनन्द की धड़कनों पर इतिहास की धारा जिस मंथर गति से बहती रहती है, वही इतिहास का सही स्वरूप है। राजवंश तो सिर्फ राज्यों की सरहदों का

आधा अधूरा चित्रण प्रस्तुत करते हैं। संस्कृति का इतिहास तो आम आदमी ही बनाता है। श्री जांगिड ने इतिहास को एक नई दिशा दी है। उनके इस लेखन को लोक इतिहास की परम्परा का शुभारम्भ माना जाना चाहिए।

लेखक द्वारा प्रस्तुत यह ग्रंथ मात्र एक सर्वेक्षण है, जो अनगिनत सम्भावनाओं का संकेत देता है और गहराई में उतरने पर तो यह बहुमूल्य जानकारियों का एक अखूट भण्डार है। इस मरु-प्रदेश में बिखरे पड़े अनगिनत चरित्र, उनकी हार जीत की कहानियाँ, लोक कथाएँ, लोकगीत, प्रज्ञासूत्र—हजारों की संख्या में संकलित किए जा सकते हैं। अनेक स्रोतों से यह खजाना निरन्तर भरता भी रहता है। यह सांस्कृतिक संचरण अपने आप में अनूठा है।

प्राचीन भारत के एक प्रमुख व्यापारिक राजमार्ग पर लाडनूँ के अवस्थित होने की जानकारी देकर लेखक ने उपयोगी कार्य किया है। व्यापारिक मार्गों का नियंत्रण ही सही अर्थों में सत्ता केन्द्रों के अस्तित्व का आधार होता था। इसी कारण जोधपुर, नागौर व अजमेर की राजसत्ताओं ने लाडनूँ पर नियंत्रण रखने की नीति को प्राथमिकता दी। दिल्ली-नागौर राजमार्ग पर स्थित होने के कारण ही सुल्तान फीरोज तुगलक भी लाडनूँ पर काबिज होने को आतुर हुआ।

इस इतिहास पुस्तक से एक संकेत यह भी मिलता है कि यह शहर देश के तीन प्रमुख धर्मों का तीर्थ स्थल भी है। दिगम्बर जैन, श्वेताम्बर तेरापंथी जैन और मुस्लिम समुदाय के तीर्थयात्री निरन्तर यहाँ आते रहते हैं। तीर्थस्थल होने का सीधा-सा अर्थ होता है अनगिनत सांस्कृतिक परम्पराओं का संगम स्थल होना। जैन विद्या के अध्ययन की समुचित सुविधा वाला संसार का एक मात्र विश्वविद्यालय इसी शहर में अवस्थित है।

श्री जांगिड ने इस इतिहास ग्रंथ का संकलन व प्रस्तुतिकरण बड़े मनोयोग और परिश्रम से किया है। लाडनूँवासियों के लिए तो यह एक बहुमूल्य उपहार है। लेखक को इतिहासकार होने का कोई गुमान नहीं अलबत्ता लाडनूँवासी होने का उन्हें गर्व जरूर है। इस छोटे से शहर की अस्मिता को जिस समग्र रूप में लेखक ने उजागर किया है, उससे शहर की गरिमा बढ़ी है। निसन्देह इस ग्रंथ के प्रकाशन से इतिहास लेखन की एक सार्थक परम्परा का जन्म हुआ है।

स्थापना नवरात्र
सम्वत् 2062
134-गाँधीनगर, चूरू (राजस्थान)

डॉ. भंवरसिंह सामौर
प्राचार्य (से.नि.)
लोहिया महाविद्यालय, चूरू

स्वकथ्य

अपना गाँव या शहर अपने निकटतम अपनों में से एक होता है। हमारे व्यक्तित्व का एक बड़ा भाग हमारे गाँव या शहर की भावभूमि पर ही विकसित होता है। प्रतिफल में हमारे गाँव या शहर का व्यक्तित्व अंश-अंश हमारा ही कुल योग है। लाडनूँ शहर मेरे समग्र परिवेश का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इस शहर की अस्मिता में मुझे अपने जीवन सूत्र मिले हैं। उन सूत्रों के प्रति मै आस्थावान हूँ अत: कृतज्ञता के सर्वोपरि भाव के वशीभूत मैं इस बस्ती की कहानी लिखने को तत्पर हुआ हूँ।

यह लेखन अनेक महानुभावों की प्रेरणा व सहयोग का प्रतिफल है। श्री सखा बोरड़ का आत्मीय निर्देशन कि मैं कुछ लिखूं मुझे निरन्तर प्रेरित करता रहता था। स्व. नवरत्न शर्मा का अनुभवसिद्ध मार्गदर्शन मैं कभी नहीं भूल पाऊँगा। श्री रायचन्द फूलफगर ने बड़े सहज भाव से मेरा उत्साहवर्द्धन किया। शहर के मूर्धन्य विद्वत् मनीषी स्व. अक्षयचन्द्र शर्मा का शुभ्र वरद् हस्त आशीर्वाद की मुद्रा में सदैव मेरे साथ रहा।

इस शहर के प्रबुद्ध नागरिक श्री शार्दुलसिंह जैन की प्रबल इच्छा रही कि लाडनू शहर का इतिहास संकलित होकर प्रकाशित हो। उन्होंने इस पुस्तक के सम्बन्ध में बड़ी उत्साहजनक प्रतिक्रिया जाहिर की और इसके प्रकाशन में सहयोग देने का मानस बनाया।

पुस्तक की प्रवर्तक संस्था श्री राम आनन्द गौशाला लाडनू तथा इसके मार्गदर्शक स्वामी रामनिवासजी के प्रति मैं श्रद्धाभाव से नमित हूँ। गौशाला ट्रस्ट मण्डल के अध्यक्ष श्री श्यामसुन्दर अग्रवाल का विश्वासभरा आग्रह कि यह पुस्तक अपने श्रेष्ठतम स्वरूप में प्रकाशित हो—मेरे लिए प्रेरणा का विशेष आधार बना।

श्री अभयराज भंसाली के प्रति मैं अति अनुग्रहीत हूँ कि उन्होंने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि बड़े मनोयोग से पढ़ी और अपने बहुमूल्य सुझावों से मुझे अवगत कराया। श्री शंकरलाल पारीक का सहयोग भी बहुविध रहा। सर्वश्री डॉ. धर्मचन्द जैन, राजेश विद्रोही, खींवराज पांड्या, माणकचन्द दौलावत व स्व. भाई श्रीचन्द वर्मा द्वारा पुस्तक प्रकाशन के सम्बन्ध में जाहिर की गई सतत जिज्ञासाएँ मेरे प्रमाद को निरन्तर झकझोरती रहीं।

ठा. मनोहरसिंह—लाडनूँ, ठा. मदनसिंह—निम्बी जोधां, ठा. देवेन्द्रसिंह—गोराऊ, स्व. कन्हैयालाल सेठी—भूतपूर्व अध्यक्ष, नगरपालिका, लाडनूँ से भी मुझे महत्त्वपूर्ण

जानकारियाँ हासिल हुईं। सर्वश्री डॉ. सुधीर सक्सेना, आनन्दप्रकाश माथुर, यासीन अख्तर, फूलसिंह मोहिल, पवनकुमार किला, मोहनसिंह जेतमाल, छोटूसिंह भाटी, गीगेखाँ मोहिल, सैय्यद अली अकबर, रामस्वरूप सोनी, अमीचन्द बरमेचा, उम्मेदसिंह बैद (पहली पट्टी) के सहयोग को भी मैं हृदय से स्वीकार करता हूँ।

भाई फूलेखाँ कायमखानी के सहयोग को मैं विशेष रूप से रेखांकित करना चाहूँगा कि अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ हासिल करने में मैंने उनके श्रम का बहुत सहारा लिया। वे इस पुस्तक को शीघ्र प्रकाशित देखना चाहते थे। मुझे भारी दुःख है कि उनके रहते मैं यह पुस्तक प्रकाशित नहीं करवा पाया।

लोहिया महाविद्यालय, चूरू के पूर्व प्राचार्य डॉ. भंवरसिंह सामौर तो मेरे लिए आसोज की वर्षा बनकर आए। श्री सामौर इस अंचल के लोकजीवन, साहित्य और इतिहास से अभिन्न रूप से जुड़े हुए व्यक्ति हैं। इस क्षेत्र के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री गोविन्द अग्रवाल से भी मैंने जब-जब जानकारी चाही—उन्होंने अस्वस्थ रहते हुए भी वांछित जानकारी से मुझे अवगत कराया। समाजोन्मुख होकर मैं यदि कुछ भी उपयोगी बन सका तो इसका एक बड़ा श्रेय मैं युवक परिषद् लाडनू को देना चाहूँगा।

केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग की नागपुर स्थित अरबी-फारसी शाखा के तत्कालीन निर्देशक डॉ. जेड.ए. देसाई के शोध-प्रपत्र 'इन्स्क्रिप्सन्स ऑफ फीरोजशाह तुगलक' से भी मुझे इस शहर के इतिहास के बारे में अच्छी जानकारी हासिल हुई। मोहन कम्प्यूटर्स लाडनू के श्री मोहन चौधरी व चित्रा स्टूडियो के श्री जगदीश शर्मा से मिला आत्मीय भाव मुझे सदैव स्मरण रहेगा।

इस शहर के सम्बन्ध में कुछ जानकारियाँ मुझे लिखी हुई मिली, कुछ सुनी हुई, कुछ यत्र-तत्र बिखरी हुई। बड़े ऐतिहासिक सन्दर्भों के छोटे-छोटे प्रसंगों में इस शहर का नाम यदा-कदा ही उभरा है। उन सभी प्रसंगों को मैंने संकलित करने का प्रयास किया है। सांस्कृतिक तलाश में कुछ प्रसंग मैंने दूर से भी लिए हैं। इससे लेखन विस्तृत अवश्य हुआ है लेकिन मेरा मानना है कि उन सन्दर्भों को छोड़ना उचित नहीं, जिनसे प्रत्यक्ष या परोक्ष यह शहर प्रभावित हुआ है। जानकारियों के स्रोत मैंने बड़ी सावधानी से चुने हैं। निष्कर्ष मेरे अपने हैं। अतः इस समस्त लेखन के प्रति मैं स्वयं साक्षी हूँ।

लेखक

विषयानुक्रम *पृष्ठ*

अध्याय–1

अध्याय-2

अध्याय-3

अध्याय – 1

I

पृष्ठभूमि

स्वयं की कहानी लिख पाना ही बड़ा कठिन है। सबकी कहानियों को बटोरकर इतिहास के रूप में संजोना तो और भी अधिक दुष्कर है। वस्तुओं को तो फिर भी कुछ सीमा तक जाना जा सकता है लेकिन व्यक्तियों को सिर्फ बुद्धि की घुसपैठ से नही पहचाना जा सकता है। अतः प्रयास पूर्वक संकलित इतिहास पर सदैव प्रश्न चिह्न लगे रहेंगे।

अस्तित्व नैसर्गिक है – जबकि आदमी के समस्त क्रियाकलाप इतिहास का विषय हैं। इतिहास मात्र एक अहसास है। उसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी कह पाना कठिन है। कुछ लाक्षणिक आधारों पर ही उसके स्वरूप को निरूपित किया जा सकता है। कुछ सीमा तक यह बात सही है कि आज आदमी इतिहास में जी रहा है। लेकिन इतिहास मात्र उतना ही नहीं है जितना पुस्तकों में लिखा जाता रहा है। यद्यपि इतिहास का विस्तार जीवन जितना है परन्तु जीवन का प्रारम्भ इतिहास का प्रारम्भ नहीं है। इतिहास का विचार मनुष्य के विकास क्रम की देन है।

माना कि आदमी इतिहास का केन्द्र है। तब प्रश्न उठना स्वाभाविक हो जाता है कि आखिर आदमी की हैसियत क्या है ? मात्र बुद्धि के भरोसे इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ पाना सम्भव नहीं। फिर भी कुछ सीमा तक बुद्धि का सहारा लेने के अतिरिक्त दूसरा कोई विकल्प भी तो नहीं है।
प्रारम्भ में आदमी प्रकृति का अभिन्न अंग था। मस्तिष्क विकास के साथ प्रकृतिजन्य वर्जनाएँ उसको असह्य लगने लगी। नतीजन वह प्रकृति से मुक्त होने को तत्पर हुआ। 'बाइबिल' ने अपनी प्रतीकात्मक शैली में इस घटना को आदमी के पतन की संज्ञा दी है। हकीकत में यहीं से उसके इतिहास का प्रारम्भ माना जाना चाहिए।

आदमी के सम्बन्ध में इतना तो स्पष्ट है कि वह अन्य प्रजातियों से गुणात्मक रूप से भिन्न है। वह सोचने की कला में प्रवीण है। समझ, बुद्धि, अन्तश्चेतना, तर्क आदि गुणों की उसमें क्षमता है। अनजाना जानने को वह सदैव आतुर है। वह आनन्द का अर्थ

जानता है, उसके स्रोतों को पहचानता है। वह संस्कृतियों का रचनाकार है, वह अकेला प्राणी है जिसमें रचनाधर्मी संस्कार है।

आदमी अपने भीतर नित स्फुरित होते रहने वाले ऊर्जा स्रोतों से जुड़े रहने की कला जानता है। इसके बावजूद भी वह अपने विकासक्रम के किसी मध्य पड़ाव पर ही है। अलबत्ता वह सचेष्ट रहकर अपने विकास की गति को तीव्रतर बना सकता है। सौभाग्य से आदमी को एक काल-निरपेक्ष दृष्टि मिली है जिससे वह कभी अतीत नहीं होता।

धरती पर समग्र जीवन साझेदारी का है। पृथ्वी की समस्त प्रजातियाँ परस्पर सम्पोषित हैं परन्तु सर्वाधिक विकसित प्राणी मनुष्य ने इतनी क्षमता हासिल कर ली है कि वह चाहे तो पृथ्वी का जैविक सन्तुलन बिगाड़ सकता है। निरन्तरता जीवन की एक अनिवार्य प्रवृत्ति है। पृथ्वी का समस्त रचनात्मक वैभव इसी निरन्तरता की देन है। इतिहास इसी प्रवृत्ति के सहारे श्रेयस्कर का संचयन करता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यही श्रेयस्कर संस्कृति से जुड़ता चला जाता है और उसके प्रवाह को सतत गति देता रहता है। नकारात्मक भाव, यथा—आतंक, भय, क्रोध जीवन की निरन्तरता को निरुत्साहित करते हैं, परिणामस्वरूप इतिहास का प्रवाह बाधित होता है।

000 000

घटनाओं के माध्यम से जीवन अभिव्यक्त होता है। कोई नहीं जानता कि घटनाओं के बीज कहाँ से आते हैं। घटनाएँ तो मात्र लाक्षणिक होती हैं, अतः निर्दोष भी। स्मृतियों के सहारे वे भविष्य में अवगाहन करती हैं। उनकी सुगंध जीवन को उद्बोधित करती है। विडम्बना है कि उस सुवास को छोड़कर आज का इतिहास लेखक विनष्ट हुए बीजो की तलाश में ही इतिहास की सार्थकता मान बैठा है।

प्रत्येक घटना का अन्दाज, त्वरा व चेतना के तल अलग-अलग होते हैं। अतः घटनाओ की परस्पर तुलना में कोई सार्थकता नहीं। घटनाओं के विश्लेषण में इतिहास ठीक उसी तरह नहीं मिलता जिस तरह किसी दरिया के जलकण में दरिया नजर नहीं आता। घटनाएँ तो मात्र अंकुरण हैं। विकसित होकर फलित हुए बिना अंकुरण का कोई महत्व नहीं है। फिर भी घटनाओं के सिलसिलेवार निरूपण से इतिहास का वास्ता जोड़ा जा सकता है।

इस सिलसिले में अनगिनत लोग, जातियाँ अथवा नस्लें समाहित है। साम्राज्य उभरते ढह जाते हैं। उत्थान पतन के ज्वार निरन्तर उठते हैं। घटनाएँ कहानियाँ बन जाती

हैं, फिर गाथाएँ। मिथक उभर आते हैं। इन मिथकों के ईर्द-गिर्द मन:पटल पर अतीत उभरता है। वर्तमान फलता है। भविष्य के सपने जन्म लेते हैं। अनुभूतियाँ मंजती हैं। अनुभव निखरते हैं। कुछ टूटता है, कुछ बनता है। अनदेखे अनजाने कुछ नया निर्मित होता है। घटनाओं का क्रम चलता रहता है—शायद यही इतिहास है। लेकिन इतिहास का यह अहसास बहुत धुंधला है। इसका वर्तमान तो पकड़ में ही नहीं आता। ठीक भागती रेलगाड़ी की तरह—न डिब्बों पर लिखा कुछ नजर आता है, न ही खिड़कियो से झांकते चेहरे पहचान में आते हैं। एक क्षण भी गति रुकती नहीं, अत: स्थिति जैसी कुछ चीज उभरती ही नहीं।

000 000

इतिहास की यात्रा ज्ञात से अज्ञात की तरफ है। लेकिन ज्ञात व अज्ञात स्थितियाँ नही हैं, मात्र सापेक्षताएँ हैं। अत: हर जगह असमंजस और दुविधा है। ज्ञात धुंधला है। अज्ञात उससे भी अधिक। दोनों की सीमा-रेखा भी तो स्पष्ट नहीं। वहीं कहीं खड़ा आदमी अज्ञात को खटखटाने का प्रयत्न करता रहता है। नए आनन्द की तलाश उसे ऐसा करते रहने को प्रोत्साहित करती है।

अज्ञात में प्रवेश के दो उपाय हैं। एक प्रत्यक्ष—भीतर का, चेतनागत। सर्वत्र व्याप्त ऊर्जा को धीरे-धीरे आत्मसात करते हुए परम वास्तविकता तक पहुँचने का। दूसरा परोक्ष—बाहर का, विज्ञान का। क्रमबद्ध खोजों के आधार पर विकसित प्रोद्योगिकी के माध्यम से अज्ञात की टोह लेते रहने का। यही मार्ग इस समय सर्वाधिक प्रभावी है।

विज्ञान का आधार मनुष्य का मस्तिष्क है। मस्तिष्क मनुष्य के शरीर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। मस्तिष्क का कम्पनांक (Frequency) स्थिरांक नहीं। कम्पनांक बढ़ने के साथ मस्तिष्क की क्षमता विकसित होती है। नतीजन अज्ञात में मनुष्य की गति बढ़ने लगती है। ठीक वैसी ही स्थिति बन जाती है—रेलगाड़ी के सापेक्ष गति बढ़ने पर रेलगाड़ी कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगती है। समान गति से उसके साथ दौड़ने पर तो वह स्थिर जान पड़ती है। तब उस पर लिखा हुआ या खिड़कियों से झांकते चेहरे साफ उभर आते हैं। वर्तमान स्पष्ट सामने उपस्थित हो जाता है। लेकिन यह तो गति की चरम स्थिति है। उससे पहले एक लम्बी पुरुषार्थ पूर्ण यात्रा है।

सूत्रों के माध्यम से विज्ञान आगे बढ़ता है। मस्तिष्क का दायरा ज्यों-ज्यों विस्तृत होता है—गणित के सूत्र सूक्ष्मत्तर होते चले जाते हैं। न्यूटन के सूत्रों की एक हद है। आइंस्टीन ने उस हद को काफी कुछ आगे बढ़ा दिया था। लेकिन वर्तमान तक ज्ञात भौतिकी के चार मूल बलों के एकीकरण की पहेली को हल करने में आइंस्टीन महोदय का मस्तिष्क भी नाकाफी साबित हुआ।

विज्ञान का प्रत्येक सूत्र यथास्थिति सूचक भी है। जबकि सृष्टि में यथास्थिति जैसी कोई व्यवस्था नहीं है। परमवास्तविकता किसी भी सूत्र में बँधने को तैयार नहीं है। अतः सूत्रों में जितना कुछ समा पाता है, वह मात्र आभासित है।
सृष्टि सिर्फ निर्जीव पदार्थों की योजना मात्र नहीं है। वह तो चेतना का महासंघटक है। विज्ञान की यात्रा के किसी पड़ाव पर जब मनुष्य इस तथ्य को पहचानने में सक्षम हो जाएगा तो उस दिन शायद वर्तमान चतुर्आयामी सांतत्य में चेतना सम्बन्धी नया आयाम और जुड़ जाएगा। ज्ञान का एक नया क्षितिज खुल जाएगा। फिर वह सब कुछ हमारे वर्तमान पैमाने में नहीं समा पाएगा। वेद ऋचाएँ हमारे लिए अगम्य बनी हुई है क्योंकि उनके पैमाने तक हम पुनः पहुँच ही नहीं पाए हैं।

मानवीय सामर्थ्य के चरम उपयोग पर जो घटनाएँ घटती हैं उन्हीं में नए क्षितिज उभरने की सम्भावना विद्यमान रहती है। ज्ञान के नए क्षितिजों से ही आनन्द के नए झरने फूटते हैं। उससे पहले तो सब दोहराने जैसा है और किसी चीज को दोहराते रहने से अधिक नीरस कोई अन्य स्थिति नहीं। यात्रा सरल नहीं—एक पुरुषार्थ भरा रियाज है। अज्ञात स्वयं ज्ञात के दायरे में आने को आतुर है लेकिन प्रेक्षक का उससे समस्वर होना जरूरी है।

कठिनाई यह है कि मनुष्य नहीं जान पाता कि कोई घटना चेतना के किस तल पर घट रही है तथा उसके वेग व त्वरा का आकलन मनुष्य के बूते की बात नहीं। प्रत्येक घटना का नतीजा भी अपने समय से उभरता है। आदमी के प्रयासों में सबसे बड़ी कमी यह है कि मनवांछित फल अतिशीघ्र पाने की लालसा में वह धैर्य खोता रहता है। आदमी की बार-बार की असफलताओं का यही मूल कारण है।

वैज्ञानिक प्रयासों में एक आक्रामक भाव भी है। "यह सत्य है" ऐसा कहकर वैज्ञानिक अपने अहम् की घोषणा करता रहता है। इस कथन में यह भाव भी निहित है कि इस

सत्य का उद्घाटन "मैंने" किया। लेकिन परम-वास्तविकता उसके अहम् जाल मे फँसने को तैयार नहीं। वह तो सब कुछ रूपान्तरित कर सकने की क्षमता रखती है। उसके अवतरण के साथ ही भाषा, मैं, तुम, वह के दायरे समाप्त हो जाते हैं।

प्राप्त सामर्थ्य का पूरा उपयोग कर लेने पर जब सामर्थ्य अपर्याप्त पड़ने लगता है तो चरम विवशता के उन क्षणों में मनुष्य के हाथ समर्पण में अपने आप ऊपर उठ जाते हैं। अहंकार तिरोहित हो जाता है। यही वह तल है, जहाँ वास्तविकता के स्वतः स्फुरण की सभावना बन जाती है। तब जो घटित होता है वह अनुपम होता है। इतिहास अनायास ही आगे बढ़ने लगता है। बहुत जरूरी है कि अपनी सामर्थ्य की अन्तिम सीमा तक मनुष्य प्रयत्नरत रहे।

कर्तापन के अहंकार का प्रतीकात्मक नाम ही असुर है। अतः असुर भाव आक्रामक है। सुर समर्पित। लेकिन सुरभाव भी अपनी श्रेष्ठता के अभिमान से आवेशित हो जाता है। यद्यपि मात्र अहंकर का सहारा मनुष्य के लिए पर्याप्त नहीं लेकिन अहंकार के अभाव में समर्पण का भी अस्तित्व कहाँ ? अतः अलग-अलग दोनों ही अधूरे हैं। ज्ञान की खोज के लिए दोनों का सम्मिलित प्रयास जरूरी है। पुराणों में वर्णित समुद्र मंथन की कथा का यही अभिप्राय है।

पुराण बड़ी अद्‌भुत गाथाओं से भरे पड़े हैं। उनमें विलक्षण चरित्रों का समावेश है। राजवंशों की लम्बी गाथाएँ हैं। फिर भी इतिहासकार उन्हें इतिहास मानने से इनकार करते हैं। सिर्फ इस आधार पर कि उनमें इतिक्रम का अभाव है। उनको नकारने का एक कारण और भी है कि वे मनुष्य के पुरुषार्थ को प्रत्यक्ष चुनौती हैं और मनुष्य चुनौती स्वीकार करने से कतराता है।

तो फिर पुराण क्या हैं ? इतना बड़ा लेखन निष्प्रयोजन हुआ हो इसकी तो कोई सम्भावना नहीं। क्या इतिहास होने का एकमात्र पैमाना उसका इतिवृत्तात्मक होना ही है ? सब गिरी हुई पत्तियाँ घटनाएँ हैं। वे अपना सत्व पेड़ को दे जाती हैं। अनगिनत फूल खिलने और फलों के बनने में उनका योगदान रहता है। तब इस बात में क्या अर्थ रह जाता है कि कोई पत्ती कब जन्मी या कब गिरी ?

पुराणों के रचनाकार व्यास एक अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न पुरुष थे। उन्होंने अपने लेखन में जीवन को जिस विशदता से चित्रित किया है उसका अन्यत्र उदाहरण ढूँढ़

पाना कठिन है। व्यास द्वारा रचित पुराण और महाभारत मनुष्य के जीवन की चेतनागत क्षमता के विलक्षण विवेचन हैं। सृष्टि की रचनाधर्मिता के प्रतीक ब्रह्मा के कम्पनांक को भी मनुष्य छू सका—इसके भी पुराणों में उदाहरण हैं। पुराण मनुष्य की असीमित सम्भावनाओं के लक्षित संकेत हैं। अतः विशुद्ध इतिहास हैं और व्यास आदर्शतम इतिहासकार।

घटनाओं को तोड़-मरोड़कर एक ढाँचे में सजा देना इतिहास नहीं। सिर्फ तिथिक्रमों में उलझकर अपनी सारी सामर्थ्य चुका देना भी इतिहासकार के लिए कोई सार्थक दिशा नहीं। इतिहास लेखन को पेशा बनाना तो ठीक वैसा ही अपराध है जैसा ब्राह्मण समाज ने कर्मकाण्ड को वृत्ति बनाकर किया था। परम्परागत इतिहास कुछ विशिष्ट व्यक्तियों और राजघरानों तक सीमित घटनाओं का अस्पष्ट सा संकलन है। कुछ सीमा तक प्रेरणादायी होते हुए भी वह अपर्याप्त है।

000 000

इतिहास सूचनाओं का संकलन मात्र नहीं है। भावनाएँ जीवन का अभिन्न अंग हैं अतः किसी घटना का भाव विलग चित्रण उसका अधूरा चित्रण है। कोई भी वर्णन तब तक सार्थक नहीं जब तक कि वह घटना से जुड़े हुए भाव जगत को न छूए। कोरे आँकड़ों और तिथियों से इतिहास नहीं जुड़ता।
समूहगत जीवन का तो एकमात्र आधार भावबोध ही है। संश्लेषण भाव-जगत में ही सम्भव है। फूल अपने रंगों का आदान-प्रदान नहीं कर सकते हैं लेकिन उनकी सुगंधों के समन्वय को कोई नहीं रोक सकता है। यद्यपि विचारों के वैविध्य में सृष्टि का सौन्दर्य निहित है, लेकिन इस वैविध्य को एकरूपता में बाँध रखने का महत्ती कार्य तो भाव सूत्रों का ही है।
सम्मुख घटने वाली घटनाएँ चाहे कितनी ही अनाकर्षक लगे लेकिन कालान्तर में वे सुग्राह्य बन जाती हैं। क्योंकि युगों का भावबोध उनसे जुड़ता चला जाता है। यही कारण हैं कि जनश्रुतियाँ रसमय प्रतीत होती हैं।

ऐतिहासिक घटनाओं के साथ कभी-कभी बड़े मोहक अंदाज भी जुड़ जाते हैं। ग्रीक सुन्दरी हेलन अपने ही लिए लड़े जाने वाले युद्ध को देखने की इच्छा से जब ट्रोय के युद्ध मैदान में पहुँची तो सैनिक अपनी सुधबुध खो बैठे। हेलन के परमगतिमान सौन्दर्य के सामने सैनिकों के मन की गति भी असीमित रूप से बढ़ गई। समय थम गया। जो

हाथ जिस किसी हथियार पर था उस क्षण के लिए वहीं थम गया। ऐसे अन्दाज जीवन के सृजनात्मक बोध का ही एक हिस्सा हैं। अतः उनका प्रभाव ऐतिहासिक महत्त्व का है।

महत्त्वपूर्ण वह नहीं जो घटता है। महत्त्वपूर्ण तो उसके द्वारा होने वाला जीवन का उद्वेलन है। ठीक वैसे ही जैसे नन्हा-सा कोई कण किसी सीप के पंख के नीचे संयोग से अवस्थित हो जाता है—सीप उसके चारों ओर एक रस स्रावित करने लगती है। कालान्तर में वही रस ठोस होकर मोती बन जाता है। कण चाहे कैसा ही हो—कोई रजकण या कि किसी मरे हुए सूक्ष्म कीड़े का खोल—कुछ अन्तर नहीं पड़ता। महत्त्व उस मोती का है जो उस कण की प्रतिक्रिया से फलित होता है।

आल्हा-उदल जैसे शौर्य के उदाहरण इतिहास में अनेक मिल जाएँगे लेकिन 'आल्हा' लोक गीतों ने जो कमाल किया उसका अन्यत्र उदाहरण खोज पाना कठिन है। रामदेवजी की यश गाथाएँ उनके वीरता के कार्य से कई गुना विस्तारित होकर फलित हुईं। कई बार घटनाएँ छोटी लगने पर भी कालान्तर में फलीभूत होकर वटवृक्ष बन जाती हैं।

कई बार बड़ी-बड़ी घटनाएँ भी हमारी संवेदना को मात्र छूकर फिसल जाती हैं। मसलन बीती सदी के अन्तिम दशक में पोलपोट शासन काल में कम्बोडिया में तीस लाख निर्दोष लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया था। ईरान और इराक की अकारण लड़ाई में दस लाख नागरिक मौत का शिकार हुए। अफ्रीका के अनेक मुल्कों में आज भी लाखों लोग जातीय दंगों और भूखमरी के शिकार हो जाते हैं। खबर पड़ती है तो भी कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं उपजती।

000 000

इस देश में इतिहास कथन की एक वाचिक परम्परा रही है। अतः इस देश में इतिहास के नाम पर सिर्फ गाथाएँ हैं। दंत कथाएँ इतिहास का एक लोक संस्करण हैं। उनमें एक आध नाम या घटनाएँ ही आधार होते हैं। शेष सारा ताना-बाना वर्णनात्मक होता है। आम आदमी अपनी प्रेरणा इन्हीं कथाओं से ग्रहण करता है। उनके लिए इन कथाओं का महत्त्व किसी सुगठित इतिहास से कम नहीं। जनश्रुतियों में संचित इतिहास माँ की गोद में पलने वाले शिशु की तरह है जो निरन्तर विकसित होता रहता है। लिखित इतिहास तिजोरी में बन्द गहनों की तरह है जो यथावस्थित रहते हैं। वर्तमान का हिस्सा बन पाने की उनकी सामर्थ्य चुक जाती है।

जीवन इतना व्यापक है कि उसे लेखन के दायरे में समा पाना सम्भव नहीं। हर लिखी गई चीज विश्वसनीय हो यह भी जरूरी नहीं। सत्तालोलुपता, मुनाफे की तलाश और भौतिक सुखों की लालसा आदमी को सही सलामत रहने कहाँ देती है। लिखा इतिहास कई बार साजिश का हिस्सा बनकर रह जाता है। शब्दों के पीछे छुपी हुई असलियत ढूँढ पाना कठिन है।

सभ्यताओं के विनाश को उपलब्धियाँ बताकर इतिहास की किताबों को सजाया जाता रहा है। आतंक और लालच के सहारे अनेक धर्मप्रचारकों ने मनुष्य की परम्परागत संस्कृतियों को विनष्ट कर उनकी मूल आस्थाओं और श्रद्धाओं को अपने मनमाने ढंग से विस्थापित किया। इतिहास लेखकों ने ऐसे धर्म प्रचारकों को यह कहकर सम्मानित किया कि उन्होंने असभ्य दुनियाँ को सभ्य बनाया।

कोलम्बस की महान खोज मात्र सोने की तलाश बनकर रह गई। युरोप से आए लूटेरो ने सिर्फ सोने के गहनों के खातिर नई खोजी गई अमेरिका के अनगिनत मूल निवासियों को निर्दयता से मौत के घाट उतार दिया। युरोप के अनेक राजघरानों ने इन समुद्री डाकूओं को खिताब देकर सम्मानित किया। इतिहास ने उन्हें अन्वेपकों का दर्जा देकर गौरवान्वित किया।

000 000

आदमी की उद्वेलित ऊर्जा ने चेतना के सम्मुज्वल शिखर छूए हैं तो पंक भरे गव्हर भी उससे अछूते नहीं रहे। आनन्द की पराकाष्ठा उसने जानी तो बीभत्स का अतिरेक भी उसने पहचाना। बरबरता भी इतिहास के हर युग में रही है। ऐसे लोग निरन्तर होते रहे हैं, जिनको खून खराबा करने में तृप्ति मिलती है। युद्ध, क्रान्ति, मजहब, धर्म—कोई नारा हो कि वाद—बहाने अनेक हैं। मकसद एक ही रहा है—आतंकित करना, खून बहाना। महमूद गजनवी, चंगेज, तैमूर, नादिर, हिटलर इतिहास का ही हिस्सा हैं।

सत्ता के नशे में यह गलत फहमी पाली जा सकती है कि इसे हासिल करने में जिन क्रूरताओं का सहारा लिया गया है, उन्हें भूला दिया जाएगा। लेकिन इतिहास के अदृश्य पृष्ठों पर सब कुछ अंकित हो जाता है। कुछ भी विस्मृत नहीं होता। न जाने किस दुर्भाग्यपूर्ण घड़ी में आदमी ने मान लिया कि बेरहम होना लाभ का सौदा है।

तथ्य यह है कि जो विनाशकारी है, वह नपुंसक है। सृजन में ही इतिहास फलीभूत होता है।

इतिहास का दायरा सिर्फ वहीं तक सीमित नहीं जितना हम जानते हैं। न जाने कितने सीप के मोती अन-पहचाने ही काल के प्रवाह में समा गए। किसी भी घटना की अभिप्सा नहीं कि, 'कोई अन्य उसे जाने। यह तो आदमी का स्वयं का अहंकार है कि चिह्नित होना वह सौभाग्य मान बैठा है। जाने-अनजाने हर जन्म कुछ नया दे जाता है। सृष्टि का वैभव उससे विस्तार पाता है।

किसी भी घटना का सही मूल्यांकन सम्भव नहीं क्योंकि गति और स्थिति का सही सम्बन्ध स्थापित कर पाना अति कठिन है। ज्यामिती की तरह किसी एक तल पर उनहें सीमित कर समाधान ढूँढ़ना तो मनुष्य की अपनी सुविधा है। जीवन सर्वत्र एक है लेकिन उसकी चेतना के तल अनेक। पदार्थ और ऊर्जा समान तत्त्व के दो पहलू हैं परन्तु पदार्थ नापने की इकाई से ऊर्जा का नापा जा सकना नितान्त असम्भव है।

जो सामने घटता है, उसकी व्याख्या कर पाना ही आसान नहीं। तब युगों या शताब्दियो पहले जो घटा उसका निरूपण तो और भी अधिक कठिन है। फिर भी अतीत के मूल्यांकन के साथ एक सुविधा है। समय की बिलोवन नवनीत लक्षित कर देती है। अतीत का कालजयी तत्त्व स्पष्ट आभासित हो जाता है।

मनुष्य के जन्म के साथ उसका अहंकार और निजता ही नहीं जन्मती — एक शाश्वतता भी जन्मती है। इसीलिए मनुष्य को अमृतपुत्र कहा जाता है। करुणा, दया, प्रेम उसी अमृत की देन है। मनुष्य के कालकल्वित हो जाने पर उसका अहंकार, व्यक्तिगत सीमाएँ, इच्छाएँ आदि तिरोहित हो जाती हैं, लेकिन उसका यह नैसर्गिक अमरत्व यथावत रहता है। वह निरन्तर एक प्रकाश नि:सृत करता रहता है। यही कारण है कि अतीत का मनुष्य भला लगता है।

000 000

इतिहास घटनाओं का गणक मात्र है। नतीजों का आकलन उसके बूते की बात नहीं। नतीजे उभरने में सैकड़ों, हजारों कभी-कभी लाखों वर्षों का अन्तराल ले लेते हैं। पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गौरी को परास्त करके बख्श दिया था लेकिन जब गोरी को मौका लगा तो वह ऐसा नहीं कर सका। कौन सही था?

माना कि दोनों के व्यवहार में इतना बड़ा अन्तर उनकी संस्कृतियों का अंतर था, फिर भी नतीजों के आकलन में उतावला होना ठीक नहीं, अन्यथा माना जाएगा कि दया जैसे उदात्त भाव में हमारा विश्वास ही नहीं था। मात्र तर्क जल्दबाजी है। सही निष्कर्ष सब्र के बिना सम्भव नहीं। क्या लूट का माल काबुल या गजनी को सम्पन्न कर पाया ?

मात्र तर्कों के सहारे इतिहास नहीं रचा जा सकता है। तर्क तो मनुष्य की बौद्धिकता की उपज हैं। जबकि इतिहास हमारी बुद्धि के आधीन नहीं है। इतिहास जीवन्त होता है मनुष्य की जीवन्तता से। आदमी यदि हृदयहीन हो जाए तो कोरे तर्क उसे खड़ा नही रख सकते।

हम सब एक सार्वभौमिक गतिचक्र से जुड़े हुए हैं। स्थिति तो मन का मात्र भ्रम है। एक ठहराव है। जडता है। गति और स्थिति के सम्बन्ध का सहज अहसास ज्ञान की पराकाष्ठा है। यही मनुष्य के प्रयासों का अन्तिम लक्ष्य है। उस स्थिति में सर्वत्र वर्तमान ही व्याप्त रहता है। उस क्षण का अहसास आनन्द की भी पराकाष्ठा है। यही सापेक्षता से मुक्त होना है। इस स्थिति की कोई परिभाषा नहीं। इतिहास के सम्बंध में यही मेरी दृष्टि है। इसी के आधार पर मैं इस कस्बे की कहानी लिखने को प्रवृत्त हुआ हूँ।

इस शहर ने अनेक उत्कर्ष देखे, अनेक अपकर्ष भी। यह शहर उस सबका वारिस है जिसे इसके निवासियों ने सैकड़ों वर्षों से हासिल किया, विचार किया, अनुभव किया या कि जिसे सहा। इसकी सफलताओं की घोषणाओं का, हारों की तीखी वेदनाओं का, उस समस्त वैविध्यभरी जिन्दगी का जो हजारों वर्ष पहले शुरु हुई थी और आज भी चल रही है। कितनी निरोग है यह धरती कि गहरे से गहरा घाव भरने में समय ही नही लगता। कटुता, कसक, द्वेष—सारा कलुष यह अपने उदर में समा गई।

मेरी लेखनी की सीमाएँ हैं। मैं आग्रह मुक्त भी नहीं। फिर भी अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य को बटोरकर इस शहर के अतीत का रेखाचित्र बनाने का प्रयास कर रहा हूँ। अनगिनत घटनाओं में से यह भी एक छोटी-सी घटना है। मेरी कोई अपेक्षा नहीं कि यह किस रूप में फलित हो। मैं तो स्वयं भी इस शहर के इतिहास का एक छोटा-सा पात्र हूँ। चेतना के प्रतिफलन की एक नन्ही-सी पहचान मात्र हूँ।

II

प्रयाण पथ : राजपथ

जबसे मनुष्य ने समझ पकड़ी है, वह एक जगह नहीं टिका। एक जगह नहीं टिके रहना उसकी सबसे बड़ी समझदारी साबित हुई। जो एक जगह रुके रहे वे आदिवासियों के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाए। जिन्होंने जगह छोड़ी वे आर्य बनकर उभरे। प्रयाण की प्रवृत्ति ने मानव विकास में एक महत्ती भूमिका निभाई है। बीज में विकरित होने का गुण सहज समाहित है।

ऐसा माना जाता है कि इस धरती का सबसे पहला मानव सदृश प्राणी आज से करीब दस लाख वर्ष पूर्व अफ्रीका महाद्वीप के सवाना घास के मैदानों और भू-मध्य-रेखीय जंगलों के संधि स्थल पर कहीं अस्तित्व में आया। कमोवेश यह घटना भूमध्य रेखीय सभी वनों में घटित हुई। अतिवृष्टि, तूफानी नदियाँ, अनियन्त्रित वनस्पति, व्यथित कर देने वाली उमस, कदम-कदम पर हिंसक जानवर, जहरीले कीट, पग-पग पर सरीसृप, प्रतिक्षण रोगी बना देने को आतुर जीवाणु—मनुष्य का प्रारम्भिक जीवन बड़ी विकट परिस्थितियों से घिरा हुआ था।

उन परिस्थितियों में अपनी पूरी उम्र भर जी पाना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं था। उस काल में उसकी मात्र एक ही अभिप्सा रही कि अपने अस्तित्व को बचाया कैसे जाए? भविष्य के सपनों का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। बीज का सामर्थ्य अपने आपको बचाए रखने तक ही विकसित हो सका।

पैर उसके मजबूत बनते गए। हाथों को दौड़ने के काम से उसने मुक्त कर लिया था। भागना उसने सहज ही सीख लिया। भागने की कला के साथ उसकी गति विकसित हुई। अन्यत्र प्रयाण की बात उसे लाभकारी लगने लगी। यद्यपि उस स्थान पर उसके लिए भोजन की तो कमी नहीं थी, फिर भी सुगम परिस्थितियों की तलाश उसके लिए अनिवार्य बन गई। इस तलाश ने उसे अन्यत्र जाने को प्रेरित किया।

अफ्रीका के उत्तरी किनारे तक पहुँचते-पहुँचते उसे परिस्थितियाँ काफी अनुकूल मिलीं। मिश्र को उसने आबाद किया। तब तक उसके जीवन संघर्ष को लाखों वर्ष बीत चुके थे। लेकिन सामर्थ्य के विकसित होने की एक प्रक्रिया है। उसकी गति भी बहुत धीमी है। सामर्थ्य बीज की सम्भावनाओं का अतिक्रमण कभी नहीं कर सकता है। मिश्र के

पास यद्यपि भारत जैसी ही परिस्थितियाँ थीं लेकिन उस समय तक विकसित हुए बीज की सम्भावनाएँ बहुत सीमित थीं। अतः मिश्र में जो कुछ संजोया जा सका वह चेतना का उच्चतम शिखर नहीं बन सका।

मिश्र में मनुष्य की चेतना को पूर्ण समाधान नहीं मिला। अतः मनुष्य भू-मध्य सागर के पूर्वी किनारे के साथ-साथ और आगे बढ़ा। तब तक उसने पानी पर चल सकने वाली नौकाएँ भी विकसित कर ली थीं। धीरे-धीरे वह वर्तमान युरोप के उत्तरी छोर तक पहुँच गया। उस समय तक धरती का विभाजन नहीं हुआ था। न ही किसी तरह का नामकरण हो पाया था। हवा, पानी की तरह जमीन भी सबको सहज सुलभ थी। मनुष्यों की संख्या कम थी अतः जमीन के लिए संघर्ष के सूत्रपात की आवश्यकता ही नहीं बनी।

सुदूर उत्तर में इस धरती की जलवायु शीत प्रधान है। जिस स्थान पर पहला मानव जन्मा था उस स्थान से एकदम विपरीत। अतः नई जलवायु के प्रभाव से मनुष्य की देहयष्टि में आमूल परिवर्तन शुरु हुआ। देह का रंग गौर बनने लगा। नाक नक्श भी नुकीले हो गए। एक नई नस्ल विकसित हुई, जिसे आगे चलकर आर्य नाम से पुकारा गया। जन्मदर यद्यपि सीमित हो गई थीं लेकिन जीवन की गुणवत्ता बढ़ गई।

ऐसा घटित होने तक फिर लाखों वर्ष बीत गए। यह जमीन रोगकारी जीवाणुओं से काफी कुछ मुक्त थी। जहरीले कीटों और हिंसक जानवरों का खतरा भी अपेक्षाकृत कम था। लेकिन जीवन यापन के साधन बहुत सीमित थे। अतः एक नई परिस्थिति उत्पन्न हुई। जीवन में एक नया आयाम जुड़ा। जीवन यापन के लिए शारीरिक श्रम पराकाष्ठा की सीमा तक करना जरूरी हो गया। सौभाग्य से जलवायु व अन्य भौतिक परिवेश शारीरिक श्रम के अनुकूल था। अतः प्रमाद का भाव शिथिल पड़ा।

शारीरिक श्रम एक ईश्वरीय वरदान है। यह मनुष्य के मन को अपना सही स्वरूप समझने योग्य भागों में बाँट देता है। इस श्रम ने भौतिक सम्भावनाओं का तो शोधन किया ही, साथ-साथ वह शरीर के पार के क्षितिज भी पहचानने लगा। यही वह जमीन थी जहाँ मनुष्य अपने बलबूते पर खड़े होने का सामर्थ्य संजो पाया। विषम परिस्थितियाँ उपयुक्त बीज तैयार करने में बड़ी मददगार होती हैं। इस भू-भाग पर मनुष्य का सर्वाधिक सबल बीज तैयार हुआ लेकिन दुर्भाग्य यह रहा कि सारा पुरुषार्थ भौतिक परिस्थितियों के समंजन में ही चुक जाता था।

चेतना के नए उद्‌घाटन के साथ आनन्द के द्वार तो इस जाति ने चीह्न लिए थे लेकिन उच्चतर अवगाहन के लिए आवश्यक सामर्थ्य बच नहीं पा रहा था। एक अद्‌भुत प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। लोहा तप्त था लेकिन सांचे का अभाव था। विवशता का यह अन्तराल लम्बा चला। बीज दिन-प्रतिदिन सबल बनता गया।

मनुष्य की सामर्थ्य तो असीमित है लेकिन प्रत्येक भौतिक परिवेश की एक सीमा है। उस सीमा तक सामर्थ्य उद्‌घाटित करने में वह मनुष्य की मदद करता है। उसके बाद फिर नई जमीन की तलाश मनुष्य के लिए जरूरी हो जाती है जो उसकी वृहत्तर सम्भावनाओं के साथ तालमेल बैठा सके। अन्यथा मनुष्य की सम्भावनाएँ कुंठित होकर दम तोड़ने लगती हैं। किसी एक स्थान से बँधना जड़ता को आमंत्रित करना है अतः प्रयाण मनुष्य का सहज धर्म है।

जाने-अनजाने इसी प्रेरणा के वशीभूत एक तलाश शुरू हुई। यह तलाश नई उभरी हुई स्थिति को थाम कर रख सकने वाली जमीन की तलाश थी। एक तपस्वी जाति जो सत्‌सता की ओर बढ़ रही थी लेकिन उपयुक्त जमीन के अभाव में बरस पाने का सामर्थ्य नहीं जुटा पा रही थी—आखिरकार अपनी मंजिल के रूप में फिर एक उपयुक्त जमीन खोजने में सफल हुई। आर्यों ने इसे आर्यावर्त का नाम दिया।

यह कोई सामान्य घटना नहीं थी। बहुत गहरे में इसके आधार चेतनागत थे। आर्यावर्त की परिस्थितियाँ सम थीं। अतः थका देने वाले शारीरिक श्रम से आर्यों को राहत मिली। श्रम थमा नहीं लेकिन नई परिस्थितियों में कुछ आसान हो गया। उच्चतर अवगाहन के लिए पुरुषार्थ प्रचुर मात्रा में बच गया। फिर भी काम इतना सरल नहीं था कि जमीन मिलते ही सध जाए। गति का आवेग जारी रहा। शरीर विकास के साथ मन का विकास भी आगे बढ़ा। मन की अराजकता कम हुई। अनुशासन सधा। विवेक घनीभूत हुआ। प्रज्ञा प्रखरतर बनी। स्वधार्मिकता का सहज पथ प्रशस्त हुआ।

फिर जो घटित हुआ वैसा विश्व के इतिहास में शायद आज तक नहीं घटा। मनुष्य की उद्वेलित ऊर्जा ने अपने उच्चतम शिखरों को छू लिया। ज्ञान और सामर्थ्य की पराकाष्ठा में मनुष्य के आनन्द की वर्षा वेदों के रूप में फलित हुई। आर्यावर्त की यह पावन रज धन्य हो गई। आर्य भी इस परम रज के प्रति धन्यता के भाव से सराबोर हो गये। युगों-युगों तक यह प्रकाश समग्र धरती पर फैला।

पृथ्वी टुकड़ों में बँटी हुई नहीं है। मनुष्य ने उसका विभाजन कर दिया है। आर्यावर्त को कालांतर में भारत नाम की पहचान मिली। भारत की यह धरती सुरम्य है। सब तरह

का शुभ्र प्राकृतिक परिवेश यहाँ व्याप्त है। नदियाँ, पहाड़, जंगल, उर्वर मैदान, स्वास्थ्य को बढ़ाने वाली जलवायु — सब कुछ यहाँ उपलब्ध है। इस धरती में एक अनुपम सम है। जो भी यहाँ आया उसने माँ का दुलार पाया। यह रज प्रयाणधर्मी मनुष्य के लिए सदैव ही आकर्षण का कारण रही।

भारत तीन ओर से सागर से घिरा हुआ है। उत्तर में विशाल हिमालय की श्रृंखलाएं हैं, पूर्व में यद्यपि कम ऊँचाई की पहाड़ियाँ हैं लेकिन वे जंगलों से आच्छादित हैं। उत्तर-पश्चिम की पहाड़ी श्रृंखलाओं में कुदरती मार्ग हैं। सर्वाधिक लोग इन उत्तर-पश्चिम के पहाड़ी दर्रों से होकर ही भारत पहुँचे। यह मार्ग सुदूर-पश्चिम में भू-मध्य सागर से जुड़ा हुआ है। लेबनान, फिलस्तीन, मेसोपोटामिया, ईरान, अफगानिस्तान होकर यह भारत पहुँचता है। युरोप से इसका सम्बन्ध टर्की, इराक, ईरान होकर रहा।

इस मार्ग से अनगिनत लोग भारत पहुँचे। यह विश्व का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयाण पथ रहा है। आर्यों के अलावा शक, हूण, यूनानी भी इसी मार्ग से भारत आए। अफ्रीका के उत्तरी तट तथा लेबनान आदि के व्यापारिक काफिले भी इसी मार्ग से भारत पहुँचे। इस मार्ग के समानान्तर एक मार्ग काकेशस से चीन तक विकसित हुआ। आर्मेनियाई मूल के लोग इस मार्ग का अनुसरण कर आज से करीब पाँच हजार वर्ष पूर्व चीन पहुँचे। तब तक पहिये का आविष्कार हो चुका था।

भारत की धरती पर एक जीवन्त समाज रचना के सहारे आर्यों ने वह हासिल किया जो आज तक नहीं किया जा सका। चेतना के परम उत्तुंग ज्योतिशिखरों को उन्होने छूआ। उनके अवगाहन की सबसे विलक्षण बात यह रही कि उनकी यात्रा सामूहिक थी। क्रमबद्ध थीं। एक सुसंगठित व्यवस्था का प्रतिफल थीं। उन्होंने सृष्टि के विकासक्रम को स्पष्ट रूप से पहचान लिया था। उनका सृजनात्मक सामर्थ्य नई सृष्टि रचना की घोषणा करने तक विकसित हो गया था।
आर्यावर्त आर्यों के लिए इस धरती का सबसे महत्त्वपूर्ण सोपान साबित हुआ। उनका उर्ज्वसित बीज नई सम्भावनाओं की तलाश में सृष्टि के उच्चतर लोकों में विसर्जित हो पाने में फिर समर्थ बना। इस धरती के मनुष्य की यह सबसे बड़ी विजय थी।

सुखमय परिस्थितियों की अनिवार्य परिणति है कि किसी भी बीज को अंकुरित और पोषित कर पाने की उनकी क्षमता तो असीमित होती है परन्तु नए बीज के उत्तरोत्तर विकास में वह पर्याप्त नहीं ठहरती। उर्ध्वगमन की यह यात्रा श्रमसाध्य तो थी ही नए उर्ज्वसित बीज के अभाव में वह शिथिल पड़ने लगी। प्रणेता थकने लगे। उसी अनुपात

नए आनन्द के अभाव में जीवन का उत्साह शिथिल पड़ा। कर्मकाण्ड स्थूल होकर वृत्ति बन गए। वेदों के प्रतीक भौतिक अर्थों में ले लिए गए। गाएँ और घोड़े बलि की वस्तुएँ बन गए। अन्धविश्वास जन्मा। व्यथा घनीभूत हुई। बुद्ध और महावीर का अवतरण हुआ। एक बड़े वर्ग को उनसे समाधान मिला। लेकिन थकने का क्रम जारी रहा। कमजोर पड़ गए सामर्थ्य के लिए चेतना के स्तर को थामे रखना कठिन हो गया।

बाहरी आक्रमणों का सिलसिला तेज हुआ। नई सभ्यताओं का समागम हुआ। आधारभूत मान्यताओं पर आघात भी लगा। अनेक प्रकार के आतंक और बलात्कार को भी सहन करना पड़ा। गुलामी की एक लम्बी अवधि शुरु हुई। अवसाद फिर घनीभूत हुआ। विवशता में समर्पण के द्वार खुले। सन्तों का आविर्भाव हुआ। भक्ति की धारा बही। एक सहारा फिर मिला। तप्त मन को कुछ समाधान भी। जीवन पुनः-पुनः सम्भला। कुछ स्तरों पर समन्वय भी सधा लेकिन स्वस्थ सन्तुलन का सदैव अभाव रहा।

देश आजाद हुआ लेकिन जीवन मूल्य मात्र आर्थिक आधारों पर आकर अटक गए। चेतनागत अवगाहन का तो प्रश्न ही खत्म हो गया। कहने को तो हम कहते रहते हैं कि अपने सभ्यता भण्डार में से विश्व को देने के लिए अभी भी हमारे पास बहुत कुछ बचा है लेकिन यह मात्र एक दम्भ की स्थिति है।

सर्वत्र जीवन एक है। कहीं से भी खण्डित नहीं। हम सब जीवन के महासागर पर लहरों के समान हैं। घटनाओं के अपने-अपने तल हैं। ज्ञानेन्द्रियों के अपने-अपने कम्पनांक। इन्हीं के अनुरूप उनकी औकात है। उसमें जितना समा पाता है, उतने मात्र की वे व्याख्या कर देती हैं। कम्पनांक बदलने पर तल भी बदल जाता है। तल बदलने पर व्याख्या भी। घटनाएँ ऊपर हैं, जीवन भीतर। भीतर के जीवन का समय की रेत पर कोई अंकन नहीं होता। वह शाश्वत, सनातन और समयातीत है। भीतर के जीवन से जुड़ना स्व से जुड़ना है। यही धार्मिकता है। धार्मिकता हृदय का स्वभाव है, उसका कोई वृत्त लेखन सम्भव नहीं।

अच्छा-बुरा, शुभ-अशुभ, हार-जीत अपने अपने आग्रहों के परिणाम हैं। मनुष्य को प्रिय लगने वाले ये आग्रह कभी-कभी इतने प्रबल हो जाते हैं कि धार्मिकता धूमिल पड़ने लगती है। उसका सहज प्रवाह अवरुद्ध होने लगता है। जीवन ऊर्जा श्रेयस्कर स्रोत के अभाव में अराजक हो जाती है। वह पुनः किसी सहज, सरल उद्गम की तलाश में व्यग्र हो उठती है। तब फिर कोई पंथ मजहब या धर्म जन्म लेता है।

करीब चार हजार वर्ष पहले भू-मध्य सागर के पूर्वी तट पर यहूदी धर्म प्रभावी था। यह धर्म ईमान वाले पुरुषार्थी लोगों का धर्म था। कालान्तर में शास्त्रों और जीवन में दूरियां उभरती गईं। शास्त्र रूढ़ से रूढ़तर बनते गए। उनकी लचक समाप्त हो गई। जीवन की वास्तविकताओं को प्रवाह दे पाने की उनकी क्षमता नगण्य रह गई। परस्पर तनाव इतना बढ़ गया कि ईसा जन्मे।

पश्चिम और मध्य एशिया की परिस्थितियाँ भी कम विषम नहीं थीं। वहाँ भी कुछ ऊर्जा बीज अंकुरित होने की प्रतीक्षा में थे। पहाड़ों की लम्बी कतारें, सपाट ऊसर पठार, अजगर की तरह पसरे गोबी और अरब के रेगिस्तान, कहीं घास के विस्तृत मैदान, दल-दल, जंगल, जानवर और खानाबदोशी जीवन। जलवायु भी विषमतम, बर्फीली हवाएँ, चमड़ी जला देने वाली धूप। जंगली घोड़े और जंगली इंसान। अस्थिर प्रकृति में जीवन स्थिर कैसे रह सकता था। परन्तु था सब कुछ जमीन से जुड़ा हुआ। उससे पोषित और बंधित। बर्बरता संस्कारगत थी लेकिन पाखण्ड और फरेब का अभाव था। जीवन ऊर्जा से लबालब भरी यह विशाल झील मुक्त होने को आतुर थी।

हर तलाश को मार्ग मिलता है। इजराइल मूल के अग्रसर पुरुष दाउद की वंश परम्परा में जन्मे हजरत इब्राहिम ने अपनी मूल धरती को छोड़कर अरब के मक्का स्थान पर अपना डेरा बसाया। वे बड़े ईमानपरस्त इन्सान थे। उन्हीं के एक नेक दिल सरल और निष्पाप वंशज हजरत मुहम्मद को इस महा ऊर्जा ने अपना माध्यम चुना। एक नायाब दरिया इस्लाम के नाम से बह निकला।

पैगाम बाहर से मिला था। बाहर का जीवन परिणाम देता है। घटनाएँ घटती हैं। इतिहास पर इतिवृत्त बनता है, यही वजह है कि सभी सेमेटिक समुदायों में इतिवृत्त लिखने की एक व्यवस्थित परिपाटी रही है।

इस्लाम ने पश्चिमी और मध्य एशिया में पसरी पड़ी इस जीवन ऊर्जा को नया मार्ग दिया। सभ्यताएँ शीघ्र बन जाती हैं और नष्ट भी हो जाती हैं परन्तु संस्कृतियाँ विकसित होती हैं। संस्कृतियाँ किसी तरह के आदेश भी नहीं मानती—धैर्य और सब्र पहचानती हैं। हर विकासक्रम के लिए समय जरूरी है। बाहरीआकार आसानी से बदले जा सकते हैं परन्तु अन्तस्तल में बहने वाला संस्कृति का दरिया समंजित होने में समय मांगता है। मजहब तो मिल गया लेकिन संस्कार बदलना आसान काम नहीं था। यही कारण है कि एक फिलीस्तीनी और एक मंगोल में बड़ा अन्तर है जबकि उनके मजहब समान है।

यह असीम ऊर्जा पहाड़ी दरिया की तरह जिधर मार्ग मिला, बहने लगी। घोड़ों पर धावक गए। सैनिक और दरवेश भी। टट्टू भी चल पड़े, खच्चरों पर खानाबदोश भी। हर रास्ते से लश्कर निकल पड़े। नई धरती पाने के उन्माद में, दौलत की तलाश में, अधिक सुविधाजनक जीवन की खोज में। ऐसे प्रवाह सम होने तक बड़े विनाशकारी रहे। तातार, खिरगीज, मंगोल, खुरासानी, अफगानी—विभिन्न रूपों में अनेक दिशाओं में यह प्रवाह बहा। इन जातियों के अभियानों का मुख्य रुख भारत की ओर था।

भारत की परिस्थितियाँ भिन्न थीं। भौगोलिक असमानता के बावजूद भी इस धरती में एक अनुपम सम है। जीवन की अलकनन्दा गंगा में बदलकर शान्त और मंथर बह रही थी। यद्यपि अति ऊँचे आदर्शों और वास्तविक जीवन में फासले उभर आए थे लेकिन पराक्रम कम नहीं था। अलबत्ता तालमेल का अभाव था। हमलावरों के साथ सांस्कृतिक अन्तर भी बहुत अधिक था। हमलावर संख्या में अधिक नहीं थे लेकिन बर्बर और संगठित थे तथा युद्ध के नए साधनों से सुसज्जित थे।

विदेशी हमलों का दबाव पंजाब, सिंध, गुजरात और मालवा पर अधिक रहा। पंजाब और गुजरात के काफी लोग सुरक्षा की तलाश में राजस्थान के मरुस्थलीय प्रदेश में उतर आए। मरुस्थल होने के कारण यह प्रदेश विदेशियों के लिए कम आकर्षण का कारण बना। इस मरुप्रदेश में आने का एकमात्र कारण सुरक्षा की तलाश था। अपने अस्तित्व को बनाए रखना मात्र था।

000 000

जिस समय इस्लाम का अवतरण हुआ था—लाडनू कस्बा इस धरती पर मौजूद था। इस कस्बे पर डाहलियों का शासन होने की बात इसके अस्तित्व को ईसा की तीसरी शताब्दी तक खींच कर ले जाती है। परन्तु यह तय कर पाना कठिन हो रहा था कि ईसा के जन्म के समय यह कस्बा अस्तित्व में था या नहीं। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस कस्बे ने एक लम्बी यात्रा तय की है।

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस निर्जन भू-भाग पर इतनी लम्बी यात्रा यह कस्बा किस बूते पर तय कर पाया? अपने अस्तित्व को बचाए रख सकने के इस कस्बे के पास क्या साधन रहे? डाहलिया साम्राज्य की परिधि पर यह कस्बा स्थित था अतः उनकी कोई महत्त्वपूर्ण सैनिक चौकी के रूप में ही इसकी कल्पना की जा सकती है। इसके समकालीन अन्य कस्बों—रिणी, डीडवाना आदि की भी करीब-करीब यही स्थिति रही।

अनेकानेक पारिवेशिक और ऐतिहासिक पहलुओं के अवलोकन से एक बात स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इस कस्बे से बड़े महत्त्वपूर्ण राजपथ गुजरते थे। उस समय की आवाजाही का यह कस्बा प्रमुख केन्द्र था। इससे इस कस्बे का व्यवसायिक महत्त्व बढ़ा तथा अनेक व्यवसायिक जातियों ने इसे अपना आवास भी बनाया।

अपनी केन्द्रीय स्थिति और पानी की सुलभता के कारण अनेक सैनिक अभियानों का भी यह कस्बा महत्त्वपूर्ण पड़ाव रहा। राठौड़ जैसे बड़े राजवंश का उदय यहाँ बहुत बाद में हुआ था अतः पंजाब से गुजरात पहुँचने के लिए यह मार्ग सैनिक दृष्टि से निरापद माना जाता था। कस्बे से गुजरने वाले प्रमुख सैनिक तथा व्यापारिक मार्गों की एक सूची अवलोकनार्थ यहाँ प्रेषित है–

✲ सोमनाथ अभियान में महमूद गजनवी–मुल्तान, बहावलपुर, भटिण्डा, ददरेवा, लाडनू, मेड़ता, अजमेर होकर गुजरात पहुँचा।

✲ शहाबुद्दीन गोरी ने भी अपने कुछ सैनिक अभियानों के लिए इसी मार्ग को चुना।

✲ दिल्ली से तक्षशिला (उच्च नगर) तक का कारवां मार्ग लाडनू होकर गुजरता था।

✲ आगरा से कच्छ तक का मार्ग भी लाडनू होकर जाता था।

✲ दिल्ली से पाली तक का व्यापारिक मार्ग भिवानी, राजगढ़, रिणी, लाडनू, नागौर होकर ही बहता था।

✲ भिवानी मण्डी से सांभर तक का मार्ग राजगढ़, लाडनू, डीडवाना होकर था। भिवानी से लाडनू का सम्पर्क निरन्तर बना रहा। दैनिक उपयोग का अधिकतर सामान कणक, गुड़ आदि भिवानी मण्डी से ही आता था। सांभर से नमक भिवानी जाता था।

✲ आगरा से गुजरात के मार्ग का लाडनू एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। अकबरनामे में इस मार्ग का अनेक बार जिक्र आया है। विलियम फिंच ने अपनी पुस्तक – 'अर्ली ट्रेवल्स इन एन्शिएण्ट इंडिया' में आगरा से अहमदाबाद का मार्ग चाकसू, लाडनू, मेड़ता, जालोर होकर लिखा है।

✲ लाडनू निवासियों के सम्बन्ध मध्य-प्रदेश के उज्जैन, इन्दौर और झालावाड़ के झालरापाटण से भी बड़े गहरे बने। उपरोक्त शहरों के अधिकतर खण्डेलवाल महाजन लाडनू से प्रयाण करके ही वहाँ पहुँचे थे।

क्षत्री वैश्य बने :

मनुष्य के पैर कभी एक जगह नहीं रुके। चौहान, प्रतिहार, परमार, राठौड़ भाटी—सब राजस्थान में बाहर से आए। ये क्षत्रिय जातियाँ इस प्रदेश में खूब फलीफूली। लेकिन इनका लम्बे समय तक क्षत्रिय बने रहना कठिन हो गया। इतनी जमीन थी नहीं कि सब राजा या जागीरदार बने रहते। युद्ध हमेशा नहीं चलते थे अतः सदैव के लिए सैनिक बने रहना भी सम्भव नहीं हो सका। नतीजतन क्षत्रियों को जहाँ जमीन दिखाई दी उधर ही चल पड़े। अनेक वृत्तिपेशा समुदायों में भी क्षत्रिय घुसने को विवश हुए, फिर भी स्थाई समाधान नहीं मिल पाया।

एक कहावत प्रचलित है कि जब ब्राह्मण मार्ग च्युत होता है तो शुद्र बन जाता है। क्षत्रिय थकने पर वैश्य बनने को मजबूर हो जाता है। परिस्थितियों ने क्षत्रिय समुदाय को विवश कर दिया कि वे वैश्यवृत्ति अपनाएँ। यह वृत्ति व्यवसाय से जुड़ी हुई थी और व्यवसाय का दायरा भी बहुत विस्तृत था। ओसवाल, माहेश्वरी खण्डेलवाल इसी मजबूरी में वैश्य बने। यद्यपि वैश्य समाज में अग्रवालों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है लेकिन उनका इतिहास कुछ दूसरी बात कहता है, अतः उसका विवेचन मैं आगे के पृष्ठों में यथास्थान करूँगा।

परिस्थितियाँ बदलने के साथ प्रयाणपथों के आधार भी बदल जाते हैं। क्षत्रियों के आभिजात्य का आधार शौर्य था। वैश्य बन जाने पर शौर्य का स्थान धन ने ले लिया। धन की इस प्रदेश में कमी थी अतः धन की तलाश में उन्हें अन्यत्र जाना पड़ा। पहले वे दक्षिण की ओर बढ़े और महाराष्ट्र तक पहुँच गए। फिर पूर्व की ओर गए—बंगाल, आसाम होते हुए ब्रह्मा तक पहुँच गए। उनके अभियान लम्बे होते थे। मार्ग भी निरापद नहीं था। इन्हीं साहसिक अभियानों का फल है कि भौगोलिक दृष्टि से विपन्न होते हुए भी राजस्थान आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बन सका।

लाडनू मे वैश्य समुदाय का जमाव शुरु से ही अधिक रहा। सर्वप्रथम यहाँ खण्डेलवाल महाजन (सरावगी) आए। फिर महेश्वरी, ओसवाल और अग्रवाल आए। तभी यह शहर सेठाणा कहलाया। व्यवसायिक अभियानों में यह शहर किसी भी अन्य शहर से पीछे नहीं रहा। प्रचुर मात्रा में इन जातियो ने धन-सम्पदा कमाकर शहर को सम्पन्न बनाया। राजस्थानी कहावत चरितार्थ हुई कि 'जो फिरता है वही चरता है।'

000 000

लेबनान से भारत तक सम्पूर्ण मार्ग में यत्र-तत्र व्यक्तिशः अनेक पुरुषों ने चेतना के चरम को छुआ। जरथुस्त्र हुए, मूसा, ईसा और मुहम्मद जन्मे। लेकिन ये लोग अपवाद थे। भारत की जमीन पर एक व्यवस्था जन्मी जिसके सहारे हजारों लोग उर्ध्वगामी बने।

सबल बीज हमेशा ही विषम परिस्थितियों में पनपता है। बीज चाहे कहीं से भी आया, वह कैसा भी रहा हो — भारत की जमीन पर उसे समग्रता में खिलने का अवसर मिला। यह धरती मातृ धर्मा है। बीज को उसके सर्वोपरि सामर्थ्य में फलित कर देने की इस धरती में अद्भुत क्षमता रही है। यह भारतीय परिवेश का फल है कि यहाँ संबोधि के सर्वोधिक फूल खिले। वेद, उपनिषद्, महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थ सनातन हैं। इन पर सम्पूर्ण मानव जाति का अधिकार है। ये सब भारत की निर्मल रज की उपज हैं। अगर यह रज स्वस्थ है तो हम सब निःसंदेह स्वस्थ रहेंगे।
भारत में विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय, वंश और कुनबों का समागम हुआ। सब ने यहाँ प्यार और पोषण पाया लेकिन मात्र किसी बाहरी भिन्नता के आधार पर धरती के विभाजन की बात एक ऐतिहासिक दुर्घटना ही मानी जाएगी। माँ के स्तन बाँटने की वस्तु नहीं होते हैं। भौगोलिक परिवेश के साथ राजनैतिक छेड़खानी किसी भी पक्ष के लिए कभी भी हितकर साबित नहीं हुई।

देशप्रेम शुभ है लेकिन देशभक्ति के नाम पर कोई रूढ़ि पाल लेना अशुभतम है। जीवन्तता को समाप्त कर देने से अशुभत्तर कोई अन्य परिस्थिति नहीं। 'हम और हमारा देश' इस महाविश्व का एक छोटा-सा हिस्सा है। मात्र हिस्सा बने रहने में कोई सार्थकता नहीं। सार्थकता है व्याप्ति में। समग्र होना ही परिपूर्ण होना है और परिपूर्ण हुए बिना समाधान नहीं।

स्थानान्तरण जीवन विकास के लिए जरूरी है। जो अटक गया सो भटक गया। पक्षी भी एक जगह नहीं टिकते। पौधों के लिए भी स्थानान्तरण अधिक फलदाई है। अतः प्रयाण को नकारना विकास को नकारने जैसा ही है। यह शुभ बात है कि देश का युवा वर्ग बाहर विदेशों में जा रहा है। हमारा सपना विश्वभारत का होना चाहिए। उसी के लिए अपने हृदय के द्वार खोलो। यही शुभ है। मजहब, धर्म और क्षेत्र की कट्टरता आदमी को सीमित बनाए रखती है। यह कट्टरता उन्माद जनित है अतः बहुत प्रियकर लगने के बावजूद भी इसमें श्रेयस्कर कुछ भी नहीं है और जो श्रेयस्कर नहीं उसका कोई भविष्य भी नहीं। यही हमारा सांस्कृतिक आधार है। इस धरती का प्रत्येक गाँव, कस्बा, शहर, जाति, सम्प्रदाय इसी भाव से अनुप्राणित और अनुसंवेदित हो।

III

क्षेत्र-परिचय

भूगोल अनेक प्रकार से इतिहास को प्रभावित करता है। पहाड़ों ने सीसोदियों की रक्षा की तो रेतीले टीबों ने राठौड़ों को संरक्षण दिया। दिल्ली के शासक शेरशाह सूरी को मारवाड़ के राव मालदेव राठौड़ के साथ हुए युद्ध की समीक्षा में कहना पड़ा था, "कुछ मुट्ठी भर बाजरे के खातिर मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत खो बैठता।" भूगोल मनुष्य की संस्कृति, स्वभाव और चरित्र को न केवल प्रभावित ही करता है बल्कि उनकी दिशा भी निर्धारित करता है।

प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, जिनके आधार पर उसकी पहचान उभरती है। कुछ नाम क्षेत्र विशेष की भौगोलिक संरचना के आधार पर उपजते हैं, कुछ उन जातियों के आधार पर जो वहाँ बाहुलता में निवास कर रही होती हैं। कभी-कभी राजवंश भी नामकरण का कारण बन जाते हैं जो उस प्रदेश पर शासन करते हुए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा जाते हैं। प्रचुरता में उगने वाली वनस्पति भी कभी अपने क्षेत्र की पहचान का आधार बन जाती है। कुछ नाम भाव प्रधान भी होते हैं जो उस अंचल विशेष के सांस्कृति परिवेश को उजागर करते हैं। लोक शैली में सज्जित इस क्षेत्र वर्गीकरण में भूगोल और संस्कृति का अद्‌भुत सम्मिश्रण है।

वर्तमान तथ्यों, प्राचीन आलेखों, ग्रंथों तथा लोक परम्पराओं के आधार पर क्षेत्र वर्गीकरण की एक रूपरेखा निर्धारित की गई है। क्षेत्र परिचय को यथा सम्भव लाडनू कस्बे पर पड़ने वाले उसके प्रभाव तक सीमित रखने की ही दृष्टि रही है अतः उसके सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा से बचा गया है। वर्गीकृत क्षेत्र की सीमारेखा को भी स्पष्ट रूप से चिह्नित कर पाना कठिन है अतः सीमा रेखाओं के सम्बन्ध में अनुमानों का ही सहारा लिया गया है।

मरुप्रदेश :

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री रामकरण आसोपा ने मरुप्रदेश को एक क्षेत्र नहीं मानकर क्षेत्रयुग्म माना है तथा उसे मरु व धन्व नामों से विभेदित किया है। मरुक्षेत्र में वर्तमान चुरू तथा बीकानेर जिले, जोधपुर जिले की फलौदी तथा शेरगढ़ तहसिलें, बाड़मेर का मालानी तथा शिव, नागौर जिले का उत्तर पश्चिमी भाग, शेखावाटी का चुरू जिले से सटा हुआ भाग तथा सम्पूर्ण जैसलमेर संभाग शामिल है। इन रेगिस्तानी क्षेत्रों के

अलावा शेष मैदानी भाग, यथा—पुरानी मारवाड़ रियासत के प्रसंग में लाडनू, डीडवाना, कुचामन, परबतसर, मेड़ता, सोजत, जेतारण, पाली, जालौर, जसवन्तपुरा आदि परगने धन्व क्षेत्र में शुमार हैं।

गुर्जर प्रदेश :

धन्व नाम से चिह्नित मारवाड़ का उपरोक्त भू-भाग गुर्जर देश के नाम से भी जाना जाता था। प्राचीनकाल में जब मारवाड़ और गुजरात की राजनैतिक सीमाओं का स्पष्ट निर्धारण नहीं हो पाया था तब गुर्जर देश का विस्तार वर्तमान गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र तक था। गुजरात शब्द 'गुर्जरात्रा' का ही अपभ्रंश है। राजपूताने के प्रसंग में गुर्जर देश की पूर्वी सीमा अलवर तक मानी जाती थी। करोली और भरतपुर का इलाका भी इसकी हद में शुमार था।

चीनी यात्री व्हेनसांग (ई. सन् 641) ने अपने यात्रा विवरण में गुर्जरदेश का भी वर्णन किया था तथा उसकी राजधानी भीनमाल बताई थी। प्रतिहार राजा भोज के वि. सं. 900 के एक दानपत्र में गुर्जरात्र भूमि में डीडवाना का होना दर्शाया गया है। कालींजर के नौवीं सदी (वि.) के एक शिलालेख में मंगलानक (मंगलाना) कस्बे का उल्लेख गुर्जर देश के प्रसंग में हुआ है। मंगलाना—डीडवाना के दक्षिण पूर्व में कुचामण से कुछ दूरी पर स्थित एक कस्बा है।

जांगल देश :

प्रसिद्ध ग्रंथ 'शब्द कल्पद्रुम' के अनुसार जिस देश में जल और घास की कमी हो, वायु तथा धूप की प्रचुरता हो, जमीन उपजाऊ हो—उसे जांगल देश मानना चाहिए। एक अन्य पुस्तक 'भाव प्रकाश' के अनुसार जांगल देश की पहचान इस प्रकार है—आकाश स्वच्छ और उन्नत हो, जल और वृक्षों की कमी हो। शमी (खेजड़ी), केर, बिल्व, आक, पीलू (जाल) और बेर के वृक्षों की बहुतायत हो। इन मान्यताओं के आधार पर लाडनू क्षेत्र का समस्त पश्चिम भाग, यथा—वर्तमान बीकानेर जिला तथा उससे संलग्न चुरू जिले का सीमावर्ती भू-भाग, जांगल देश में स्थापित होते हैं। जोधपुर जिले की फलौदी तहसील भी इसी वर्ग में शुमार है। यही कारण है कि पुरानी बीकानेर रियासत के राठौड़ शासकों का विरुद 'जंगलधर' रहा है।

थळी (स्थली)

रेतीले धोरों की धरती के विस्तृत फैलाव का नाम ही थळी है। थळी शब्द का सीधा-सा

अर्थ है—वह प्रदेश जहाँ स्थल की प्रधानता हो। सड़कों तथा आवागमन के यांत्रिक साधनों के प्रादुर्भाव से पहले इन क्षेत्रों में बसना कष्ट साध्य था। ऊँट ही आवाजाही का एकमात्र जरिया था। चुरू और बीकानेर जिलों सहित दक्षिण-पश्चिम में फलौदी अंचल से आगे जैसलमेर संभाग का सम्पूर्ण क्षेत्र थळी नाम से ही जाना जाता है। थळी नाम एक सांस्कृतिक परिवेश का भी द्योतक है। इन टीबों की धरती से पूरे राजस्थान का व्यक्तित्व परिलक्षित होता है।

राजस्थानी भाषा में एक कहावत प्रचलित है—'थळ गोकळ'। अर्थात् थळी प्रदेश राजस्थान का गोकुल है। थोड़ी-सी वर्षा हो जाने पर ही सारी धरती हरी-हरी घास से ढक जाती है। यह घास पशुओं के लिए पौष्टिक चारा प्रदान करती है। अत: गो-पालन इस प्रदेश का प्रमुख धंधा है। थळी प्रदेश के ऊँट भी उत्तम प्रकार के होते हैं।

सोन थळी :

थळी प्रदेश की मरुभूमि तथा मारवाड़ की समतल भूमि को अलग-अलग करने वाला सीमांचल सोनथळी कहलाता है। जोधपुर, नागौर, डेह, काणूता, निम्बी (जोधां), लाडनू, सुजानगढ़ तक फैला मार्ग थळी प्रदेश तथा मारवाड़ की समतल भूमि का अच्छा विभाजक है। लाडनू कस्बा इसी सीमांचल में स्थित है। सोनथळी वह प्रदेश है, जहाँ मनुष्य के प्रति स्थल की विषमता अपेक्षाकृत कम आक्रामक रह गई हो।

गारब

बीकानेर जिले की लूणकरणसर तहसील तथा उससे जुड़ी हुई हनुमानगढ़ तथा चुरू जिलों के सीमावर्ती भागों की जमीनें रेतीली होते हुए भी अपेक्षाकृत समतल हैं। इस क्षेत्र को गारब नाम से चिह्नित किया जाता है। यह भू-भाग राठी गायों के लिए प्रसिद्ध है। राठी गायों के अधिकतर पालक मुसलमान राठ हैं। ये कुशल पशुपालक होते हैं। इस क्षेत्र के एक प्रमुख कस्बे का नाम भी गारबदेसर है।

लूणकरणसर तहसील का एक बड़ा भाग 'भण्डाण' नाम से भी जाना जाता है। भण्डाण क्षेत्र राजस्थानी तरबूजों (मतीरों) के लिए भी प्रसिद्ध है। कोलायत से फलोदी तक का क्षेत्र मगरा कहलाता है। इस क्षेत्र की जमीन अपेक्षाकृत ऊँची तथा कंकरीली है। यहाँ टीबों की न्यूनता है। जमीन शेष भाग की तुलना में कठोर तो है लेकिन पथरीली नही है।

बागड़ :

वह धरती जो खेती के लिए तैयार नहीं की जा सकी हो, जहाँ हल नहीं चला हो तथा झाड़-झंखाड़, बांठ-बोझों की प्रचुरता हो—बागड़ कहलाती है। राजपूताने में बागड़ नाम से दो क्षेत्र विशेष प्रसिद्ध हैं। बांसवाड़ा व डूँगरपुर का क्षेत्र तथा वर्तमान चुरू जिले का दक्षिण पूर्वी भाग, सीकर जिले का उत्तरी भाग व सम्पूर्ण झुंझुनूँ जिला 'बागड़' में गिने जाते थे। किसी जमाने में इसी बागड़ क्षेत्र में झुंझुनूँ तथा फतेहपुर के कस्बे आबाद हुए थे। नागौर जिले का एक बड़ा भाग भी बागड़ नाम से जाना जाता था। कच्छ के रण के एक विस्तृत हिस्से को भी बागड़ कहते हैं।

शेखावाटी :

राजस्थान के झुंझुनूँ तथा सीकर जिलों का मिला-जुला नाम शेखावाटी है। इसके प्रमुख घटक—न्हाण, अमरसर, झुंझुनूँ, उदयपुरवाटी, सीकर, फतेहपुर, दांतारामगढ़ और खण्डेला हैं। इस क्षेत्र के एक बड़े भाग पर चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों में कायमखानियों का अधिकार था। कछवाहा राजवंश की शेखावत शाखा का प्रादुर्भाव होने पर यह इलाका उसके अधिकार में चला गया। तब से यह क्षेत्र शेखावाटी कहलाने लगा। पंजाब और हरियाणा के अधिकतर अग्रवाल सुरक्षा की तलाश में इसी भू-भाग पर आकर बसे। देश के बड़े-बड़े उद्योगपति इसी अंचल के हैं।

उदयपुरवाटी :

सीकर जिले का श्रीमाधोपुर, लोहार्गल, सिकराय तथा उदयपुर (शेखावाटी) का इलाका 'उदयपुरवाटी' कहलाता है। यह शेखावाटी का ही एक उप-विभाग है। लोहार्गल (लुहागर जी) और सिकराय प्रसिद्ध तीर्थस्थल हैं।

तोरावाटी (तोमरवाटी) :

सीकर जिले का नीम का थाना, झुंझुनूँ जिले का खेतड़ी, सूरजगढ़, जयपुर जिले का उत्तरी भाग तथा इससे सटे हुए हरियाणा के नारनोल इलाके का एक बड़ा भाग तोराटी कहलाता है। कभी यहाँ तोमरों (तंवरों) का राज्य था। भूतपूर्व जयपुर रियासत का 'पाटन' नामक टीकाई ठिकाणा भी तोमरों का था। इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण काल खण्ड में तोमरों की दखल दिल्ली तक थी। अभी भी कहावत प्रसिद्ध है—'जद कद दिल्ली तंवरां'।

गौड़ाटी (गौड़वाटी):

नागौर जिले के मारोठ, कुचामण, परबतसर, रूपनगढ़ आदि कस्बों के आस-पास का क्षेत्र गौड़ाटी कहलाता है। कभी यहाँ गौड़ राजपूतों का राज्य था। अधिकतर पुरुष धोती अंगरखी और मोटा साफा पहनते हैं। परम्परागत राजस्थानी पहनावे में यहाँ की महिलाएँ भी सुरुचिपूर्ण लगती हैं।

ढूँढाड़ :

जयपुर, दौसा, सवाईमाधोपुर, टोंक जिले का उत्तरी-पूर्वी भाग, नागौर जिले की कुचामण तहसील का पूर्वी भाग ढूँढाड़ क्षेत्र में शुमार है। प्राकृतिक आधार पर सोता, साबी, कांटली, चम्बल व बनास नदियों के बीच बसे भू-खण्ड का नाम ढूंढाड़ है। ढूंढाड़ की उत्तरी सीमा कोटपूतली तक चली गई है। इस क्षेत्र में पानी कम गहरा है अत: खेतो मे कूओं से सिंचाई की अच्छी व्यवस्था है। यहाँ का मुख्य धंधा खेती है।

ढूंढाड़ी विशेषताओं को परिलक्षित करने वाली कुछ उक्तियाँ जन-मानस में इस प्रकार प्रचलित हैं—

—ऊँचा परबत, शेर-बन, कारीगर तरवार।
इतरा बधका नीपजे, रंगदेश ढूंढाड़ ॥

—गाजर मेवा कांस खड़, पुरखन पून उघाड़।
उन्धै ओझरै इस्तरियां, अइयौ धर ढूंढाड़॥

सपाद्लक्ष :

चौहान राज्य के फैलाव का प्रतीकात्मक नाम सपाद्लक्ष था। सम्भवत: इस वंश का प्रथम अग्र पुरुष चाहमान—मध्य एशिया के महलावरों से त्रस्त होकर पंजाब की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर बसे मुल्तान, मॉण्टगुमरी, तक्षशिला आदि स्थानों से अपने लश्कर के साथ किसी नए राज्य की तलाश में राजपूताना आने को विवश हुआ। इतिहास के उस कालखण्ड में यह मरुप्रदेश सुरक्षित स्थान समझा जाता था।

पंजाब की समतल और सजल मिट्टी के आदी इन क्षत्रिय पुत्रों को धोरों की धरती रास नहीं आई। समतल भूमि की तलाश में यह काफिला सांभर झील तक पहुँच गया। शायद वहीं पर उन्हें अपना नया राज्य स्थापित करने की सुविधा भी मिली। चौहान

जिस जमीन से आए थे उसके उत्तर में हिमालय की पहाड़ी श्रृंखलाओं का एक अन्तहीन सिलसिला शुरु हो जाता है। जन-मानस की नजरों में इन पहाड़ी चोटियों की संख्या लाखों में थी अतः उस क्षेत्र को उन्होंने 'सपद्लक्ष' नाम से पहचान दी। चौहानों ने अपनी मूल पहचान को यथावत रखते हुए अपने नए राज्य का नाम भी सपादलक्ष ही रखा।

अनन्तगोचर :

जहाँ-जहाँ तक सांभर (शाकम्भरी) के चौहानों का राज्य विस्तार हुआ, वहाँ-वहाँ तक सपादलक्ष की सीमाएँ भी फैलती गईं। नागौर भी उनकी हद में आ गया। खाटू, थांवला, पीसांगण, पुष्कर से आगे उनकी हदों का विस्तार हुआ। कालान्तर में अजमेर की स्थापना भी इसी क्षेत्र में हुई। पूर्व में सीकर के पास स्थित हर्ष की पहाड़ियों तक चौहान राज्य का फैलाव हुआ तब यह सम्पूर्ण क्षेत्र अनन्तगोचर नाम से जाना जाने लगा।

स्वाळख :

विदेशी हमलावरों का दबाव उत्तर-पश्चिमी हिमाचल के आम आदमी पर भी पड़ा। शासक वर्ग के साथ कृषक वर्ग भी अपनी जमीन छोड़ने को मजबूर हुआ। जमीन के पारखी हिमाचल के इन किसान पुत्रों ने नागौर के पास बहुत ही समतल और उपजाऊ जमीन का चयन किया। यद्यपि यह भू-भाग क्षेत्रफल में बहुत छोटा है लेकिन उपजाऊपन में पंजाब की धरती को भी मात देता है।

'चौहान' शासक थे अतः उन्होंने राजभाषा संस्कृत को अपनाया। उनका सपद्लक्ष उनकी राजनैतिक सीमाओं के साथ फैलता गया। जबकि उन्हीं सवा लाख पहाड़ियों वाली धरती से आने वाले ये कृषक अपनी लोक भाषा से जुड़े रहे और सवालखिए कहलाए और उनकी नई धरती सवालख (कालान्तर में स्वाळख) नाम से प्रसिद्ध हुई। स्वाळख को सपाद्लक्ष का अपभ्रंश मानना उचित नहीं। लोक परम्परा से उपजा स्वाळख नाम एक विशिष्ट भौगोलिक तथा सांस्कृतिक परिवेश का परिचायक है। यह नाम आज भी प्रचलन में है और अपनी पहचान बनाए हुए है।

स्वाळख अंचल की उत्तर-पश्चिमी सीमा नागौर है तथा पूर्वी सीमा जायल। दक्षिणी सीमा कुचेरा कस्बे से कुछ आगे तक है। इस अंचल के मुख्य मुकाम नागौर, रोल, मूण्डवा, कुचेरा, इनाणा, भाखरोद, भदाणा, जनाणा, अड़वड़, इग्यार आदि गांव या

कस्बे हैं। लोकदेवता वीर तेजा जी का जन्म इसी अंचल के खरनाल गाँव में हुआ था। यह जाट बहुल क्षेत्र है। स्वाळख के बैल भी प्रसिद्ध हैं।

गौड़वाड़ :

पाली जिले का दक्षिणी भाग गोडवाड़ कहलाता है। इसमें बाली, नाणा, नालाई, नाडोल, घाणेराव, सादड़ी आदि स्थान शामिल हैं। यह क्षेत्र भी गौड़ वंश के राजपूतों के शासन से जुड़ा हुआ था। धन का संचय और संरक्षण यहाँ के लोगों की स्वभावगत विशेषता है।

मेवाड़ :

मेवाड़ नाम उस क्षेत्र में मेव जाति की बाहुलता के कारण पड़ा। मेव एक प्राचीन जनजाति थी। वह जिस क्षेत्र में रहती थी उसका नाम भी मेव पड़ गया। मेव की सन्तान कालान्तर में मेवणा कहलाई। 'णा' गुजराती भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है 'का'। मेवणा शब्द ही मेणा—मीणा बन गया।

हुआ ऐसा कि इतिहास के मध्ययुग में सामन्ती घरानों से जुड़े हुए वे लोग जिनको अपनी मूल जागीर में किसी तरह का भाई-बंट प्राप्त नहीं हो पाता था—नए राज्य की तलाश में जनजाति क्षेत्रों में पहुँच जाते थे। ये क्षेत्र अधिकांशत: पहाड़ी इलाके के होते थे। उनके विवाह सम्बन्ध भी उन जन-जातियों से जुड़ जाते थे। अत: नैसर्गिक सौन्दर्य और सुगठित देहयष्टि वाली इन जन-जातीय महिलाओं की सन्तानें क्षत्रिय मूल की हुई जिन्होंने कालान्तर में अनेक स्थानों पर अपनी राजसत्ताएँ भी स्थापित कीं। धाकड़ मीणा अपने आपको ब्राह्मण मूल का मानते हैं।

मेरवाड़ा :

अजमेर संभाग मेरवाड़ा कहलाता है। मेर जाति अपने आपको पृथ्वीराज चौहान की वंशज मानती है। उनके अनुसार पृथ्वीराज ने जब बूँदी पर आक्रमण किया तब उन्होंने सहदे नाम की आसावरी जाति की मीणा किशोरी को हाडी मानकर अपने पुत्र जोधलखण को सौंप दिया। उसके अनहल और अनूप नाम के दो पुत्र हुए। जब जाति का भेद खुला तो उसे त्याग दिया गया। वह अपने पुत्रों को लेकर अजमेर के चंग गाँव के चन्देले गूजरों के आश्रय में रहने लगी। उसकी सन्तानों के मीणा, भील तथा धाकड़ मीणों में विवाह सम्बन्ध हुए। उसका वंश बहुत बढ़ा तथा मेर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मारवाड़ :

उन शौर्यवान पुरुषों का देश जो अपनी आन-बान और आदर्शों पर मर-मिटने को सदैव तत्पर रहे—मारवाड़ कहलाया। पुरानी जोधपुर रियासत ही मूलतः मारवाड़ का प्रतीकात्मक रूप थी। देश को आजादी मिलने तक यहाँ पर राठौड़ राजवंश का शासन रहा।

राजस्थानी संस्कृति के उन्नयन में भी राठोड़ों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। यद्यपि 'मारवाड़ पुराने राजपूताने की एक रियासत मात्र थी और उसका क्षेत्र सीमित था, लेकिन मारवाड़ी शब्द बहुत व्यापक बन गया। आज स्थिति यह है कि राजस्थान के किसी भी अंचल का निवासी अन्य प्रदेशों में जहाँ भी प्रवास कर रहा है—उसकी पहचान मारवाड़ी नाम से ही होती है। मारवाड़ी शब्द राजस्थानी संस्कृति का प्रतीकात्मक नाम बन गया है।

मांढ :

सौराष्ट्र और सिंध के समुद्री तट से मंढ नामक जाति को अरब हमलावरों ने मरुभूमि की ओर धकेल दिया। वह वर्तमान जैसलमेर और लोद्रवा क्षेत्रों में आकर बस गई। उसी के कारण यह क्षेत्र मांढ कहलाया। धीरे-धीरे इसकी सीमाएँ बीकानेर के पूगल इलाके तक पहुँच गई। मांढ नाम इस क्षेत्र के सांस्कृतिक परिवेश को भी उजागर करता है। लगता है प्रकृति ने यहाँ की भौगोलिक नीरसता को यहाँ के निवासियों के हृदय की सरसता से पूरा करने की कोशिश की है। प्रसिद्ध लोक राग मांढ का जन्म भी इसी अंचल में हुआ। मधुर स्वभाव और आकर्षक देहयष्टि के लिए यहाँ की नारियाँ जगप्रसिद्ध है। उनकी नैतिकता भी अति विश्वसनीय मानी जाती है। उनकी प्रशंसा में प्रचलित एक कहावती पद्य इस प्रकार है—

उर चौड़ा कटि पातळी, जीकारै री बाण।
जे सुख चावे जीव नै तो, धण माढेची आण॥

हाडोती :

कोटा-बून्दी का भू-भाग हाडोती कहलाता है। हाडा राजपूतों के शासन से जुडे होने के कारण ही यह नामकरण हुआ। हाडा राजपूत चौहान मूल के है। यह राजवंश वीरता के लिए प्रसिद्ध था। अपने स्वाभिमान की रक्षा का भाव हाडा राजपूतां के रग-रग में समाया हुआ था। राजपूताने के प्रायः सभी बड़े राजवंशों के शासक अपनी एक रानी हाडावंश की रखते थे। उनकी सन्तानें शौर्यवान होती थी, ऐसा माना जाता था।

मेवात :

मेवात क्षेत्र में भरतपुर, धौलपुर, अलवर और करोली के भू-भाग शामिल थे। दिल्ली के पास इसकी सीमा मेहरोली से लाडो सराय तक थी। मूल रूप से मेवाती यादव वंशी थे। वे वीर और साहसी थे। दिल्ली तक उन्होंने अपना आतंक जमा रखा था। दिल्ली के सल्तनत काल से ही इनका दमन शुरु हो गया। अन्तत: मेवाती मुसलमान बनने को विवश हो गए। दिल्ली की सरहद पर बसे होने के कारण अनेक बड़े युद्ध भी उन्होंने लड़े।

राठ :

राठ अंचल अलवर जिले के मुण्डावर, बहरोड़, बानसूर तथा इनसे संलग्न हरियाणा के कुछ भू-भाग से मिलकर बना है। कहते हैं बारहवीं सदी में मुहम्मद गोरी से पराजय के बाद पृथ्वीराज चौहान के वंशज दिल्ली छोड़कर इस अंचल में आ बसे तथा अपने आहत अभिमान की पूर्ति इस क्षेत्र को राष्ट्र मानकर की। राष्ट्र का ही अपभ्रंश राठ हो गया।

सामन्ती-राजसी विलास भोगने के बजाय राठों ने सदैव संघर्ष का ही रास्ता चुना अत: उनका स्वभाव जुझारू ही बना रहा। स्वभाव से राठ हठीले होते हैं। उनके स्वभाव को परिलक्षित करने वाली एक उक्ति इस प्रकार है– "काठ नवे पर राठ नहीं नवे"। कालानतर में राठ हरियाणा से लगी हुई राजस्थान की सीमा के सहारे चुरू, बीकानेर तथा गंगानगर जिलों के सीमावर्ती भागों में पहुँच गए। गो-पालन इनका मुख्य धंधा बना। वे जिस नस्ल की गाएँ पालते हैं, उसका नाम भी राठी नस्ल प्रसिद्ध हुआ।

मोहिलवाटी :

मोहिलवाटी उस क्षेत्र का नाम था जहाँ मोहिल चौहानों का राज्य था। पूर्व दिशा में इस क्षेत्र की सीमा नेछवा, गणेड़ी, उत्तर में रिणी, पश्चिम में रायसीसर (रासीसर) तथा दक्षिण में ओडींट गाँव तक थी। इस क्षेत्र में कुल 1440 गाँवों का होना बताया जाता है। छापर, पड़िहारा, जसवन्तगढ़ तालों के ईर्द-गीर्द बसे हुए सभी गाँव मोहिलवाटी का अंग थे। छापर, द्रोणपुर (वर्तमान में गोपालपुरा), लाडनूं, कसूम्बी, वर्तमान सरदारशहर आदि इसके प्रमुख ठिकाणे थे।

जब मोहिलों की धरती पर राठौड़ काबिज हो गए तो इसका एक हिस्सा बीदावाटी या बीदाहद कहलाया। बीदासर, सांडवा, चाड़वास, छापर, गोपालपुरा, वर्तमान सुजानगढ़ बीदावाटी में शुमार थे।

सोरठ :

गुजरात का सौराष्ट्र प्रदेश ही सोरठ कहलाता था। यहाँ की भाषा भी सोरठ नाम से ही जानी जाती थी जो राजस्थानी से मिलती-जुलती है। संगीत की एक राग भी सोरठ नाम से प्रचलित हुई। उसकी गिनती भारतीय संगीत की मधुरतम रागों में होती है। किसी जमाने में सोरठ प्रदेश और मारवाड़, वृहद् गुर्जर देश का ही भाग थे।

IV

परम्परा : राजवंशों की

जब बाइबिल संकलित हो रही थी तब यह कस्बा जन्म चुका था। दो हजार वर्ष का सफर कोई छोटा सफर नहीं होता। निःसन्देह इस अवधि में अनेक घटनाएँ घटीं। अनेक राजवंशों से इस कस्बे के दूर या नजदीक के सम्बन्ध बने। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उन राजवंशों से यह कस्बा प्रभावित हुआ। कुछ घटनाएँ भले ही यहाँ नहीं घटी हों, पर पड़ोस में घटने वाली घटनाएँ भी कम प्रभावित नहीं करतीं। अतः उन राजवंशों या कुनबों की जानकारी जरूरी है, जिन्होंने कमोबेश कस्बे के इतिहास को प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभावित किया है।

नाग :

नागौर शब्द नागपुर का प्राकृत रूप है। लाडनू कस्बे से प्राप्त स्थानीय बावड़ी सम्बन्धी संवत् 1373 के शिलालेख में नागौर के लिए नागपत्तन नाम का प्रयोग हुआ है। चौहान वंश के अनेक आलेखों में इस शहर को अहिछत्रपुर नाम दिया गया है। सिर्फ नाम के आधार पर कुछ इतिहासकारों ने इस शहर का सम्बन्ध क्षत्रिय मूल के किसी नागवंश से जोड़ने का प्रयत्न किया है। मेरी धारणा उनसे भिन्न है।

नागौर का सम्बन्ध किसी नागवंश से नहीं सीधा नागों से ही रहा है। नागौर थार मरुस्थल का प्रवेशद्वार है। इस शहर के पश्चिम में सुदूर सिंध प्रदेश की सीमाओं तक इस मरुस्थल का प्रसार है। एक जमाना था जब न तो सुस्पष्ट मार्ग थे, न साधन ही। न ही अधिक आवागमन था। यह प्रदेश जन-विहीन था। रेत के टीबों का अन्तहीन पसार और दूर तक फैली मगरे की धरती—झाड़ झंखाड़, कंटीले बांठ बोझों और

झाड़ियों का एक विस्तृत अरण्य था। ऐसा निर्जन प्रदेश सरीसृप प्रजातियों के लिए प्रजनन और अभिवर्धन का आदर्श स्थल होता है। सभी जातियों के नाग यहाँ पनपे। गोह, गोहरे भी खूब फले फूले। क्षेत्र के अधिकांश लोकदेवताओं का सम्बन्ध नागों से रहा। नाग पूजा हमारे संस्कारों का अंग बनी। ऐसी परिस्थितियों में परिवेश का कोई शहर या स्थान नाग नाम से जुड़ जाए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

गुप्त :

लाडनू शहर के दक्षिण पश्चिम में करीब 70 किलोमीटर की दूरी पर जायल नाम के कस्बे के पास दो जुड़वाँ गाँव हैं—गोठ-मांगलोद। वहाँ दधिमथि माता का एक अति प्राचीन और कलात्मक मन्दिर है। उस मन्दिर में एक गुप्तकालीन शिलालेख अंकित है। सम्भावना बनती है कि यह क्षेत्र गुप्तों के अधीन रहा। इसी स्थान से ब्राह्मणों की दाहिमा शाखा का जन्म हुआ। दाहिमा क्षत्रिय भी यहीं से निकले। अनेकानेक शिल्पकर्मों से जुड़ी जातियों के शासन भी दायमा हैं। इतिहास प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान का प्रमुख सामन्त कैमास दाहिमा भी इसी स्थान का था।

गुर्जर :

प्रतिहारों के सत्ता में आने से पहले (करीब सातवीं शताब्दी में) वर्तमान जोधपुर संभाग के उत्तर पूर्व में स्थित डीडवाना कस्बे से लेकर गुजरात के भड़ोंच तक का क्षेत्र गुर्जर वंश के आधीन था। गुर्जर कौन थे, कहाँ से आए—यह बता पाना कठिन है। परन्तु गुर्जर राजस्थान के सामाजिक ढांचे का महत्त्वपूर्ण अंग रहे हैं।

प्रतिहार :

ईसा की आठवीं से दसवीं शताब्दी तक इस मरुप्रदेश में कोई दूसरा राजवंश प्रतिहारों की बराबरी नहीं कर सका। प्रतिहारों के मुख्य दो केन्द्र थे—भीनमाल और मण्डोवर। पूरे गुर्जर प्रदेश पर प्रतिहारों ने अपना अधिकार जमा लिया था। अतः उन्हें गुर्जर-प्रतिहार नाम से भी सम्बोधित किया जाने लगा। अनेक शिलालेखों में उन्हें सूर्यवंशी माना है। इस वंश में नागभट्ट प्रथम (ई. सन् 730 से 760) देवराज, वत्सराज (ई. सन् 783 से 795) आदि उल्लेखनीय शासक हुए हैं।

डीडवाना के पास स्थित सीवा (दौलतपुरा) गांव से प्राप्त एक ताम्रपत्र के अनुसार वत्सराज ने गुर्जरदेश के दण्डवानक (डीडवाना) में एक गाँव भट्ट वासुदेव को दान में

दिया था। उसके शासनकाल में जैन मुनि उद्योतन सूरि ने कुवलयमाला की रचना की। इसी परम्परा में मिहिर भोज नाम का एक प्रसिद्ध राजा हुआ। ई. सन् 851 में भारत आए एक अरबी यात्री सुलेमान ने उसके सम्बन्ध में लिखा है — "गुर्जर नरेश के पास एक विशाल सेना थी। भारत में किसी अन्य नरेश के पास इतनी बड़ी अश्वसेना नहीं थी। विदेशी आक्रमणकारियों का वह दुश्मन था। उसका राज्य चोर, डकैतों से मुक्त था तथा धन-धान्य सम्पन्न था।"

मिहिर भोज का पुत्र महेन्द्रपाल (प्रथम) (ई. सन् 890-908) भी एक योग्य शासक था। उसका राजकवि 'राजशेखर' बड़ा विद्वान था। उसने अनेक ग्रंथों की रचना की जिनमें — कर्पूर मंजरी, काव्यमीमांसा, विद्धसालभंजिका, हरिविलास, भुवनकोष आदि उल्लेखनीय हैं। इन ग्रंथों में तत्कालीन समाज व्यवस्था, शिक्षा और शासन आदि की प्रामाणिक जानकारी मिलती है।

प्रतिहार शासक धर्म सहिष्णु थे। उनके काल में मन्दिर निर्माण की गुर्जर-प्रतिहार शैली विकसित हुई। खाटू कस्बे में इस शैली के अनेक स्थापत्य अवशेष उपलब्ध हैं। लाडनूं के कुछ प्राचीन अवशेष भी इसी शैली के लक्षित होते हैं। बाहरी हमलों के आघातों से यह परम्परा शिथिल पड़ती गई और इन्दा, चोहिल, बारी आदि शाखाओं में विभक्त होकर धीरे-धीरे लुप्त हो गई। बारी शाखा के कुछ प्रतिहार परिवार लाडनूं मे भी वास करते हैं।

परमार :

मारवाड़ में परमारों का आगमन मालवे से हुआ था। आबू को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। आबू का सिंधु राज परमार मरुमण्डल का महाराजा कहलाया। इसी परम्परा में धरणीवराह नाम का प्रसिद्ध राजा हुआ। उसने सम्पूर्ण मारवाड़ राज्य के बराबर नो भाग करके अपने भाइयों में बाँटे। इसी आधार पर मारवाड़ नोकोटी कहलाया। ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी तक इस वंश का अच्छा प्रभाव रहा। परमार शासनकाल में ही सन् 1088 में आबू का प्रसिद्ध जैन मन्दिर बना।

कवि सोमेश्वर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कीर्ति कौमुदी' में धरणीवराह के भाई प्रह्लादनदेव (पल्हनदेव) की बड़ी प्रशंसा लिखी है। गुजरात का पालनपुर शहर उसी के नाम पर बसा। उसी के शासन काल में देलवाड़ा का दूसरा जैन मन्दिर बना। परमारों की कुल 36 शाखाएँ मानी जाती हैं। उमरकोट के सोढा जहाँ लोकदेवता पाबू जी की ससुराल थी — परमार

ही थे। सांखला भी परमारों (पंवारों) की ही एक शाखा है। परमारों से राज्य राठौड़ों ने छीना।

सांखला (परमार) :

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में महिपाल का पुत्र रायसी मारवाड़ का रूण क्षेत्र (रूण नाम का कस्बा अभी भी स्वालख क्षेत्र में है) छोड़ कर जांगलू चला आया। वहाँ सांखलों ने दहिया राजपूतों को अपदस्थ कर अपना अधिकार जमा लिया। रायसी, मूंजा, ऊदा, पुनपाल, माणकराव, नापा आदि इस शाखा में प्रसिद्ध शासक हुए। राजसी के बड़े पुत्र अभा को मारकर मूंजा जांगलू का अधिपति बना। अभा के पुत्र गोपालदेव को मूंजा के पुत्र ऊदा ने मार दिया। उस वक्त गोपालदेव की पत्नी मांगलियाणी (मांगलिया वंश की) सगर्भा थी। चारण धर्मा उसे पीहर पहुँचा आया। वहाँ उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम महराज रखा गया। यह महराज अनेक ऐतिहासिक प्रसंगों से जुड़ा जिनका विवरण आगे के पृष्ठों में दिया गया है।

जब महराज समझदार हुआ तो उसने ऊदा को मारकर अपने पिता की हत्या का बदला लिया। महराज एक उज्ज्वल चरित्र व्यक्ति था। उसने जांगलू का राज्य नहीं छीना और आप पिहपाल गाँव में रहकर जनहित के कामों में लगा रहा। उसने उस क्षेत्र में तीन बड़े तालाब बनवाए—महिराजाण, लूमासर, हरभूसर। उसके दो पुत्र थे—एक का नाम अल्हण तथा दूसरे का हरभम था। यही हरभम हरभू नाम से लोकदेवता के रूप में पूज्य हुआ। सांखलों का राज्य मोहिलवाटी की पश्चिमी सरहदों को छूने लगा था।

इसी परम्परा के नापा सांखला ने नापासर कस्बा आबाद किया। जब यह इलाका बालूचियों से त्रस्त रहने लगा तो नापा ने राव जोधा के पराक्रमी पुत्र बीका को जांगल देश में अपना राज्य बसाने की राय दी। तब से सांखले राव बीका के विश्वास पात्र बने रहे। बीकानेर की स्थापना के बाद किले की चाबियां सांखलों के पास ही रहती थी। बीका की ननिहाल भी सांखलों में ही थी। बीका और बीदा दोनों एक ही माँ के पुत्र थे।

चौहान :

चौहानवंश का उद्भव राजस्थान में ही हुआ। मरुप्रदेश के प्रसंग में यह वंश अपनी पहचान ईसा की छठी शताब्दी से ही बनाने लगा था। प्रारम्भ में इसकी

अजमेर। लाडनू क्षेत्र से भी चौहानों का सम्बन्ध धीरे-धीरे बढ़ा। डाहलियों से लाडनू बागड़ी राजपूतों ने छीना। फिर मोहिल काबिज हुए। बागड़ी और मोहिल दोनों ही चौहान मूल के थे।

मूल पुरुष चाहमान का उत्तराधिकारी वासुदेव शाकम्भरी (सांभर) का अधिपति बना। उसके बाद सामन्तराज, अभयराज, विग्रहराज या बीसलदेव, चामुण्डराज आदि इस परम्परा के प्रसिद्ध शासक हुए। चामुण्डराज के पुत्र दुर्लभराज ने गौड़ों से युद्ध किया और विजय पाई। दुर्लभराज का पुत्र गोविन्दराज या गूवक (प्रथम) मण्डोर के पड़िहार राजा नागभट्ट का समकालीन था जिसका एक लेख संवत् 872 का उपलब्ध है। विदित रहे प्रारम्भ में चौहान प्रतिहारों के सामन्त ही थे।

इसी परम्परा में चन्द्रराज, गूवक (द्वितीय), चन्दनराज, वाक्पतिराज आदि हुए। चन्दनराज की राणी ने पुष्कर राज में एक सहस्र शिवलिंगों की स्थापना करवाई। वाक्पति के तीन पुत्र—सिंहराज, लाखन तथा वत्सराज हुए। लाखन ने पाली जिले के नाडोल क्षेत्र में अलग से राज्य की स्थापना की। सिंहराज का समय वि. संवत् 1010 के लगभग माना जाता है। सिंहराज के दो पुत्र हुए—बीसलदेव (द्वितीय) और दुर्लभराज (द्वितीय)। बीसलदेव संवत् 1012-1013 में गद्दी पर बैठा।

बीसलदेव ने नर्मदा नदी तक अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया। गुजरात के मूलराज सोलंकी को उसने परास्त किया। अणहिलवाड़ के निकट उसने बीसलपुर नगर बसाया। उसका एक लेख वि. संवत् 1030 आषाढ़ सुदी 15 का हर्षनाथ मन्दिर (सीकर के पास) में मौजूद है। बीसल के भाई दुर्लभराज के दो पुत्र चामुण्डराज और वीर्यराज हुए। वीर्यराज के विग्रहराज या बीसलराज (तृतीय) और दुर्लभराज (द्वितीय) हुए। बीसलदेव रासो में उल्लेख है कि उसने भोज परमार की कन्या राजमती से विवाह किया था।

इसी परम्परा में पृथ्वीराज प्रथम हुआ। सीकर के पास जीण माता मन्दिर में वि. संवत् 1162 में हरदत्त मोहिल के शिलालेख में इसी पृथ्वीराज का उल्लेख है। उस लेख में उसे महाभट्टारक परमेश्वर के विरुद से सम्बोधित किया गया है। पृथ्वीराज (प्रथम) का पुत्र अजयराज भी एक प्रतापी राजा हुआ। उसने अपने राज्य को अनेक प्रकार से सुदृढ़ किया तथा अजमेर नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया।

इसी बीच अजमेर पर गजनी आक्रमणों का सिलसिला बढ़ गया था। अजयराज ने गजनवियों को खदेड़ा और उन पर विजय पाई। इस विजय से उसे गर्जन मातंग विजेता

का विरुद मिला। उसका पुत्र अरणोराज वि.सं. 1200 के लगभग गद्दी पर बैठा। अरणोराज के दो रानियाँ थीं — एक मरवण सधवा जिससे जगदेव और बीसलदेव (चतुर्थ) — दो पुत्र हुए। दूसरी कांचनदेवी जो गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धदेव की पुत्री थी, उससे सोमेश्वर का जन्म हुआ। अरणोराज ने ही अजमेर का प्रसिद्ध तालाब अनासागर बनवाया।

बीसलदेव (चतुर्थ) चौहानों में बड़ा वीर और विद्वान राजा हुआ। उसने संवत् 1208 में तंवरों से दिल्ली छीन ली। उसने अनेक मुसलमान हमलावरों को परास्त किया। दिल्ली की प्रसिद्ध लाट पर उसका एक लेख वि.सं. 1220 बैशाख सुदी 15 का उत्कीर्ण है। अजमेर नगर में जो प्रासाद ढाई दिन के झोंपड़े के नाम से जाना जाता है — बीसलदेव द्वारा बनवाई गई नाट्यशाला या संस्कृत पाठशाला थी। उसमें नरेन्द्र रचित हरिकेलि और राजकवि सोमेश्वर का ललित विग्रहराज नाटक शिलाओं पर उत्कीर्ण है।

दुश्मनों के भय से सोमेश्वर को उसकी माता कांचनदेवी अपने पीहर गुजरात ले गई थी। सोमेश्वर का विवाह त्रिपुर कलचुरि राजा की कन्या कर्पूरी से हुआ। उसके गर्भ से पृथ्वीराज (तृतीय) और हरिराज नाम के दो पुत्र हुए। यही पृथ्वीराज दिल्ली और अजमेर का अन्तिम महाराजा हुआ। उसके शासन काल में चौहान साम्राज्य की सीमा उत्तर में लाहौर तथा दक्षिण में विध्यांचल तक फैल गई थी। वि.सं. 1247 में काबुल के मुहम्मद गोरी से उसका युद्ध हुआ। गोरी परास्त हुआ। दूसरे साल गोरी फिर चढ़ आया। इस बार तराइन के मैदान में पृथ्वीराज हार गया और मार दिया गया।

पृथ्वीराज का पुत्र गोविन्दराज रणथम्भौर के किले में चला गया। वि.सं. 1250 में कुतुबदीन एबक ने हरीराज को हराकर अजमेर पर अधिकार कर लिया। गोविन्दराज की सन्तान रणथम्भौर पर काबिज रही। इसी परम्परा में हमीरदेव प्रसिद्ध शासक हुए। हमीरदेव वि.सं. 1358 में अल्लाउदीन खिलजी से परास्त होकर वीरगति को प्राप्त हुए। इस प्रकार चौहानों की केन्द्रीय सत्ता का पराभव हुआ।

तब तक चौहान वंश अनेक शाखाओं में विभक्त हो चुका था। अलग-अलग घटक अपने स्थानीय क्षेत्रों में काफी समय तक काबिज रहे। लाडनूं, छापर, द्रोणपुर पर मोहिलों का अधिकार था। जालोर के सोनगरा, सिरोही के देवड़ा तथा बूँदी के हाड़ा प्रसिद्ध हुए। संवत् 1111 में नाडोल के चौहान शासक आसकरण का पुत्र माणकराव जायल आया और उसने जायल, भदाणा, चौरासी की सम्पूर्ण कांकड़ पर अधिकार

कर लिया तथा खीची शाखा की स्थापना की। जायल का गोरधन खीची एक प्रसिद्ध शासक हुआ।

सुदूर उत्तर में भटनेर, रिणी (तारानगर) तक चौहान काबिज थे। भटनेर के खींची शासक ने तैमूर लंग के साथ शाका और जौहर किया। उसी क्षेत्र के एक मुकाम ददरेवा के शासक लोकदेवता गोगाजी भी चौहान थे। कालान्तर में सम्पूर्ण मोहिलवाटी पर राठौड़ों का अधिकार हो गया। खीचियों सहित अन्य चौहान भी राठौड़ों के सामन्त बनकर रहने को विवश हुए।

राठौड़ :

राठौड़ शब्द राष्ट्रकूट का अपभ्रंश है। राठौड़ों का मूल स्थान दक्षिण भारत था। वहाँ से उनकी एक शाखा कनौज पहुँची। कन्नौज पर जब सुल्तान शमसुदीन अलतमश ने अधिकार कर लिया तो वहाँ का राठौड़ शासक हरिश्चन्द्र फर्रुखाबाद जिले के महुई ठिकाणे में आया। उसके पुत्र का नाम सेतराम था। सेतराम के दो पुत्र हुए—सीहा और धनराज। जब फर्रुखाबाद पर भी मुसलमानों का दबदबा बढ़ा तो सीहा अपने दलबल सहित द्वारिका की यात्रा को चल पड़ा।

रास्ते में पुष्कर तीर्थ पर उसकी मुलाकात भीनमाल के ब्राह्मणों से हुई। ये ब्राह्मण बहुत धनाढ्य थे लेकिन मुल्तान का नवाब उन्हें समय-समय पर लूट लेता था। उन्होंने सीहा से मदद माँगी। सीहा तो स्वयं किसी ठिकाणे की तलाश में था। उसने भीनमाल से मुसलमानों को खदेड़ दिया। इस सम्बन्ध में एक दोहा प्रसिद्ध हुआ—

भीनमाल लीधी भड़े, सीहे सेल बजाय।
दत दीनो सत संग्रहों, ओ जस कदैन जाय॥

राव सीहा :

द्वारिका की तीर्थयात्रा से लौटते वक्त सीहा पाली में रुके। यह घटना वि.सं. 1300 (ई सन् 1243) के आस-पास की है। उस समय पाली वाणिज्य का बड़ा केन्द्र था। फारस अरब आदि पश्चिम एशिया देशों से अनेक तरह का माल यहाँ आता था। यहाँ से कपड़ा व अन्य कीमती सामान उन देशों को निर्यात होता था। बड़े-बड़े सार्थ तथा ऊँटों के काफिले इस मार्ग से गुजरते थे।

पाली में आदि गौड़ ब्राह्मणों की एक बड़ी बस्ती थी। पाली में निरन्तर निवास के ये पालीवाल ब्राह्मण कहलाए। इन परिवारों में परस्पर बड़ा प्रेम था। ये धनाढ्य

ब्राह्मण आस-पास के चोर डकैतों से बहुत त्रस्त थे। उन्होंने सीहाजी से सहायता की गुहार की। सीहाजी वहीं रुके रहने को राजी हो गए। उन्होंने पालीवाल ब्राह्मणों के जानमाल की रक्षा की। धीरे-धीरे आस-पास के क्षेत्र पर अपना कब्जा भी जमा लिया। पाली से 70 मील की दूरी पर लूणी नदी के किनारे खेड़ नाम का एक प्रसिद्ध ठिकाना था। राव सीहा उस पर कब्जा करने की फिराक में गए हुए थे कि पीछे से मुसलमानों ने पाली पर हमला बोल दिया। सीहाजी खेड़ से पाली पहुँचे। वि.सं. 1330 की कीर्तिक बदी 12 सोमवार को वे वीरगति को प्राप्त हुए।

उनके दूसरे भाई धनराज दक्षिण में चले गए थे। उन्होंने महाराष्ट्र के होल ग्राम में अपना ठिकाणा जमाया। कालान्तर में वे होलकर कहलाए। होलकर मराठों का एक प्रसिद्ध राजवंश माना जाता है। इनकी बड़ी राजधानी इन्दौर हुई। सीतामऊ राज्य भी राठौड़ों का एक ठिकाणा रहा। वहाँ के कुलगुरु प्रख्यात कवि लालजी रचित एक सोरठा इस प्रकार है—

कीरतजुत कमधेश, सेतराम सुत दो भए।
सीहोज मरुधरदेश, धन राज दक्खिन गए।।

राव आसथान :

राव सीहा की गद्दी पर उनके बड़े पुत्र आसथान बैठे। खेड़ के शंकरशाह ओसवाल महाजन की सहायता से आसथान ने खेड़ पर कब्जा कर लिया। इसी काल में आसथान और उनके एक भाई सोनंग ने मिलकर गुजरात के ईडर प्रदेश को भी अपने कब्जे में ले लिया। वि.सं. 1348 में दिल्ली सुल्तान जलालुदीन फिरोजशाह (द्वितीय) फिर पाली पर चढ़ आया। आसथान युद्ध में काम आए तथा ब्राह्मण पाली छोड़कर गुजरात, आगरा व दिल्ली की तरफ चले गए। बोरगत करना उनका मुख्य धन्धा बना। वे नन्दवाना बोहरे कहलाए।

राव धूहड़ :

आसथान के आठ पुत्रों में बड़े पुत्र धूहड़ तथा एक अन्य धांधल हुए। धांधल के वंशज धांधल कहलाए। लोकदेवता पाबूजी राठौड़ इसी वंश के थे। पाबूजी गायों की रक्षार्थ फलौदी परगने के गांव देच्छू में वि.सं. 1383 मिंगसर बदी 9 को काम आए। उनका बड़ा देवरा फलौदी परगने के कोलू गांव में है। आसथान के बाद धूहड़ उनकी गद्दी पर बैठे। धूहड़ दक्षिण के कोंकण (कर्नाटक) से अपनी कुलदेवी चक्रेश्वरी की मूर्ति लाए और पचपदरा से सात मील दूरी पर स्थित नागाणा गांव में स्थापित की। वह देवी

नागणेची नाम से प्रसिद्ध हुई। राव धूहड़ के बाद क्रमशः राव रायपाल, कान्हपाल, जालणसी, छाड़ा, टीडा, कान्हदेव, सलखा तथा मल्लीनाथ हुए। राव रायपाल ने भाटियों और परमारों से अनेक युद्ध लड़े। कनौज से आने के बाद राठौड़ों के कोई चारण नहीं था। राव रायपाल ने चान्दा भाटी को एक चारण कन्या ब्याह दी और राठौड़ वंश का पोलपात्र चारण थरप दिया। मुंधियाड़ ठिकाणे के बारहट जागीरदार उन्हीं के वंशज हैं। राव रायपाल बड़े वीर और दानी थे।

राव रायपाल के तेरह पुत्र हुए। सभी नख प्रवर्तक हुए। एक पुत्र मोहनसी से मोहनिया राठौड़ हुए। मोहनजी ने जैसलमेर के ओसवाल दीवान की कन्या से भी विवाह किया था। उससे सम्पत नाम का पुत्र हुआ। उसके वंशज मोहनोत (मूणोत) कहलाए। जोधपुर के प्रसिद्ध ख्यात लेखक नैणसी मूणोत इसी वंश के थे।

राव रायपाल के पुत्र कान्हपाल भी बड़े पराक्रमी थे। उन्होंने भी भाटियों से अनेक युद्ध लड़े। अन्तिम युद्ध में रावजी के पुत्र भींव ने मारवाड़ और भाटियों के बीच सीमा विवाद का अन्त किया। इस सम्बन्ध में एक सोरठा प्रचलित है—

काक नदी छै सींव, राठौड़ां नै भाटियां।
आधी धरती भींव, आधी लोद्रवे धणी॥

कान्हपाल के उत्तराधिकारी राव जालणसी ने सिंध के सोढ़ा पंवारों से युद्ध किया। उन्होंने विजय चिह्न के रूप में सोढ़ा सरदार का साफा छीन लिया। उसी दिन से राठौड़ों ने सिर पर साफा धारण किया जो आगे चलकर जोधपुरी साफे के नाम से जगप्रसिद्ध हुआ। यह साफा जोधपुरी शान की पहचान बन गया।

राव छाडा, तीडा, कान्हड़देव तथा सलखा ने मुसलमान हमलावरों से अनेक लड़ाइयाँ लड़ी तथा अपनी जमीन की रक्षा की।

राव मल्लीनाथ :

राव सलखा के पुत्र मल्लीनाथ (संवत् 1431 से 1447) एक वीर, बुद्धिमान और दूरदर्शिता के धनी पुरुष हुए। वे सिद्ध पुरुषों की श्रेणी में भी गिने जाते हैं। उन्हीं के नाम से राठौड़ों का यह प्रदेश मालाणी कहलाया। कन्नौज छोड़ने के बाद उनकी कीर्ति का सौभाग्य सूर्य इसी प्रदेश में उदित हुआ अतः मालाणी को राठौड़ वंश का पालना भी कहते हैं। राव मल्लीनाथ को मारवाड़ तथा बीकानेर रियासतों में एक लोकदेवता के रूप में भी माना जाता है। लूणी नदी के किनारे तिलवाड़े में उनकी स्मृति में एक बड़ा मेला भरता है। इस मेले की गिनती राजस्थान के प्रसिद्ध मेलों में होती है।

राव मल्लीनाथ का पुत्र जगमाल भी तलवार का धनी था। उसने भी विदेशियों से अपने राज्य की रक्षा की। एक दोहा प्रचलित है—

पग पग नेजा पाड़िया, पग-पग पाड़ी ढाल।
बीबी पूछे खान ने, जग केता जगमाल॥

वीरम राठौड़ :

जोहियों को शरण देने के कारण जगमाल की अपने चाचा वीरम से नहीं बनी। विवश होकर वीरम मारवाड़ छोड़कर थलवट (थळी प्रदेश) में चला गया। वहाँ जोहियों ने उसका बड़ा स्वागत किया। उसकी सांखली राणी ने जोहियों को अपना राखी बन्ध भाई भी बनाया। लेकिन वीरम बड़े महत्त्वाकांक्षी थे।

वीरम राठौड़ और जोहियों की ज्यादा दिन निभी नहीं। दल्ला नामक जोहिए द्वारा लखबेरा स्थान पर संवत् 1440 में वीरम की हत्या कर दी गई।

वीरम की मृत्यु के समय उनके दो पुत्र गोगदेव और चूण्डा छोटे थे। चूण्डा तो मात्र शिशु ही था। चूण्डा की माँ जसहड़ राणा दे ने बालक को धाय के सुपूर्द कर दिया और बोली, "पृथ्वीमाता और सूर्यदेव तुम्हारी रक्षा करें।" उसने धाय को आदेश दिया कि वह बालक को लेकर आल्हा चारण के पास शेरगढ़ चली जाए। "मैं अपने पति का साथ निभाऊँगी।" और जसहड़ सती हो गई। धाय ने बालक को यथास्थान पहुँचा दिया और आल्हा से बोली, "बाई जसहड़ ने तुम्हें आशीष दी है और अपनी यह अमानत तुम्हें सौंपी है।" आल्हा ने जसहड़ के विश्वास को साकार किया।

जब वीरम का बड़ा पुत्र गोगदेव जवान हुआ तो अपने पिता का बदला लेने की सोची। उसने किसी तरह उस स्थान का पता लगा लिया जहाँ वीरम का हत्यारा दल्ला जोहिया और उसका पुत्र धीरदेव सोते थे। संयोग ऐसा हुआ कि उस दिन धीरदेव अपना दूसरा विवाह रचाने पूँगल गया हुआ था। उसके स्थान पर उसकी बेटी सो रही थी। गोगदेव ने दल्ला की चारपाई पर वार करके उसे मार दिया। गोगदवे के पुत्र ने दूसरी खाट पर वार किया और उसके दो टुकड़े कर दिए। वार इतना जबरदस्त था कि उसकी तलवार पास रखी घटी (आटा पीसने की चक्की) से जा टकराई। वह तलवार रळतळी कहलाई।

सूचना देने घुड़सवार पूँगल पहुँचा। अपने जाने पहचाने घोड़े की हिनहिनाहट सुनकर धीरदेव जाग गया। पिता की मौत का समाचार सुनकर उसने शस्त्र संभाले। पूँगल

अधिपति राणगदेव भी साथ हुआ। वह धीरदेव से बोला कि वह कंकण डोर तो खोल दे। धीरदेव ने जवाब दिया कि नए बांधने से तो अच्छा है ये ही पड़े हैं। भाटियों और जोहियों ने गोगदेव राठौड़ को पाद्रोलाई तलाई पर जा घेरा। गोगदेव को यह अन्देशा नहीं था कि दुश्मन इतना शीघ्र पहुँच जाएगा। उसने अपने घोड़े चरने को छोड़ दिए थे। घोड़े दूर निकल गए। उसने घोड़ों को बहुत आवाज लगाई लेकिन घोड़े उसे प्राप्त नहीं हो पाए। बिना घोड़ों के ही गोगदेव को लड़ना पड़ा। उसके दोनों पैर कट गए और उसके साथी सरदार मार डाले गए। इस प्रसंग को लेकर एक दोहा प्रचलित हुआ—

भूखा तिसिया थाकड़ा, राखीजे नेड़ाह।
ढलियाँ हाथ न आवसी, गोगादे घोड़ाह॥

गंभीर अवस्था में घायल गोगदेव तलवार के सहारे किसी प्रकार उठ पाया कि उधर से घोड़े पर सवार राणगदेव भाटी गुजरा। गोगदेव उससे बोला, "राणगदेव! पारवाड़ा (जुहार) तो ले ले।" राणगदेव ने गोगदेव को एक भद्दी-सी गाली दी और आगे बढ़ गया। थोड़ी देर बाद धीरदेव जोहिया भी उधर आया। वही बात उसने धीरदेव से कही। धीरदेव घोड़े से नीचे उतरा। उसी वक्त गोगदेव की तलवार बही और धीरदेव उसके सामने आ पड़ा। धीरदेव इतना ही कह पाया कि जोहियों और राठौड़ों का बैर आज से समाप्त हुआ। मरते-मरते वह एक बैर बुझा गया। इस लड़ाई में महराज सांखला का पुत्र अल्हण भी मारा गया था।

गोगदेव ने एलान किया कि "राठौड़ों और जोहियों का बैर तो बराबर हो गया। राणग देव भाटी ने राठौड़ों को अपमानजनक गाली दी है अतः भाटियों से नया बैर जुड़ गया है।" गोगदेव की यह अन्तिम आवाज राठौड़ सरदार झींपा ने सुनी और उसने यह सन्देश समस्त राठौड़ों को पहुँचा दिया। मरते-मरते गोगदेव एक नए प्रतिशोध का बीज बो गया।

राव चूण्डा :

वीरमदेव का दूसरा पुत्र चूण्डा बड़ा होने पर मण्डोवर की तरफ चला गया और सालेड़ी नाम के स्थान पर अपना ठिकाना जमाया। उस समय नागौर और मण्डौर पर मुसलमान काबिज थे। मारवाड़ की ख्यात में एक उल्लेख इस प्रकार है—बालेसर के इन्दा पड़िहार (प्रतिहार) राणा उगमसी के सरदारों ने मुसलमानों से मण्डौर छीन तो लिया था

लेकिन इन्दा इतने शक्तिशाली नहीं थे कि उस पर निरन्तर अपना अधिकार जमाए रख सकें। उन्होंने सालेड़ी से चूण्डा को बुलाकर अपने मुखिया राव धवल की कन्या केशर गोगादे ब्याह दी और मण्डौर उसे दहेज में दे दिया। इस प्रसंग में एक दोहा प्रचलित है—

चूण्डो चंवरी चाढ, दियो मण्डौवर दायजे।
इन्दा रो उपकार, कमधज कदे न बीसरे॥

चूण्डा ने शीघ्र ही अपनी शक्ति सम्भाल ली। उसके अन्य राठौड़ बन्धुओं ने भी उसका साथ दिया। मण्डौवर का बड़ा राज्य हाथ लगने पर राठौड़ों की दिन-दिन यशवृद्धि हुई। चूण्डा ने नागौर, डीडवाना, खाटू और सांभर पर भी अपना अधिकार कर लिया। चूण्डा के दस रानियों से चौदह पुत्र हुए। सांखली रानी सूरमदे के पुत्र का नाम रणमल, राणी भटियाणी लाडां के पुत्र का नाम अरड़कमल और भोहिलाणी के पुत्र का नाम कान्हा था। चूण्डा की मोहिलाणी राणी लाडनू इलाके के ही गाँव ओडीट के मोहिल शासक मेघराज की पुत्री थी। चूण्डा की एक पुत्री हंसा थी जिसका विवाह मेवाड़ राणा लाखा के साथ हुआ था। हँसा के एक पुत्र हुआ उसका नाम मोकल रखा गया।

चूण्डा का नाम राठौड़ कुल के स्तम्भों में गिना जाता है। उन्होंने सल्तनत युग के मुसलमान शासकों का बड़ी वीरता से सामना किया। उस बीच महराज सांखला चूण्डा से अनुमति लेकर नागौर के गांव भूंडेल में रहने लगा। चूण्डा का पुत्र अरड़कमल बड़ा पराक्रमी और बात का धनी था।

राव चूण्डा ने मण्डौर का राज्य अपनी मोहिलाणी राणी के पुत्र कान्हा को देने का मानस बना लिया था। उनके बड़े पुत्र रणमल ने अपने पिता की इच्छा का सम्मान किया। वे अपने भाणजे मोकल की सहायतार्थ मेवाड चले गए। वहाँ उन्हें पचास गाँवों की एक जागीर मिली और वे मेवाड़ की रक्षार्थ युद्धों में भाग लेने लगे। संवत् 1465 तद्नुसार ई. सन् 1409 में, मुल्तान के नवाब खिजर खाँ के सहयोग से राणगदेव भाटी के पुत्र केल्हण ने नागौर पर हमला करके राव चूण्डा को मार दिया। उसका पुत्र कान्हा उसका उत्तराधिकारी हुआ लेकिन वह भी एक वर्ष से अधिक शासन नहीं कर सका। इस कमजोरी में गुजरात के खानजादाओं ने नागौर पर अधिकार कर लिया। मण्डौर की गद्दी पर राव सत्ता बैठे। लेकिन अपने पिता के साथ रणमल की वचनबद्धता सिर्फ राव कान्हा तक ही सीमित थी। रणमल ने राव सत्ता से राजगद्दी छीन ली।

राव रणमल :

राव रणमल संवत् 1484 (ई. सन् 1427) में मण्डौर की गद्दी पर बैठे। लेकिन वे ज्यादातर मेवाड़ में ही रहते थे। संवत् 1490 में राव रणमल कहीं दूर युद्ध में गए हुए थे। पीछे से राणा खेता के दासी पुत्र चाचा और मेरा ने मोकल की हत्या कर दी। राव रणमल समाचार मिलते ही मेवाड़ लौटे और पाईकोटड़ा गाँव में दासी पुत्र चाचा और मेरा को मारकर मोकल का बदला लिया। मेवाड़ में शान्ति स्थापित की। उस समय मोकल के पुत्र कुम्भा की उम्र सिर्फ चार वर्ष की थी। राव रणमल अभिभावक के रूप में मेवाड़ में रहने लगे।

दुर्भाग्य से रणमल के प्रति मेवाड़ियों का अविश्वास पनप गया। उन्होने रणमल को मारने का षड्यन्त्र रचा। एक रात सोते हुए रणमल को उनकी दासी ने चारपाई से बाँध दिया। इस बंधी हालत में मेवाड़ियों ने उन पर वार किया। रणमल जाग गए और कुछ मेवाड़ियों को मौत के घाट भी उतार दिया। लेकिन चारपाई कुछ लम्बी थी जिससे रणमल के पैर जमीन पर नहीं टिक पाए और वे मार डाले गए। तब से मारवाड़ में चारपाई से पैर बाहर निकाल कर सोने की प्रथा चली। राठौड़ों के किलों में तो चारपाई सिर्फ कमर तक आने वाली ही रखी जाती है।

राव जोधा :

अपने पिता की मृत्यु के समय राव जोधा मेवाड़ में ही थे। वे किसी तरह वहाँ से निकल भागे और मण्डोवर पहुँचे। मेवाड़ियों ने उन्हें वहाँ से भी खदेड़ दिया। राव जोधा बड़े साहसी और धैर्यवान थे। इस विपत्ति काल में वे फलौदी की तरफ चले गए। वहाँ उनकी मुलाकात हरभम (हरभू) सांखला से हुई। हरभू ने राव जोधा का मनोबल बढ़ाया और उन्हें एक कटार उपहार में दी। वह कटार आज भी राठौड़ों के पूजनीय चिह्न के रूप में बीकानेर किले के संग्रहालय में रखी हुई है।

राव जोधा के दिन फिरे और उन्होंने मण्डोवर पर फिर अधिकार कर लिया। उन्होंने जोधपुर शहर बसाया जिसकी नींव संवत् 1516, जेठ सुदी 11 को रखी गई थी। संवत् 1531 तक राठौड़ों द्वारा मोहिलवाटी पर अधिकार कर लिया गया। राव जोधा के बड़े पुत्र बीका ने जांगल प्रदेश में सांखला, भाटी, जाट, जोहियों और चौहानों से जमीने छीनकर एक विस्तृत राज्य की स्थापना की। संवत् 1545 में उन्होंने बीकानेर किले की नींव रखी।

मोहिल वाटी का शासनाधिकार जोधा के पुत्र बीदा को मिला। बीदा, बीका का सगा भाई था। अत: बीदा ने बीकानेर रियासत का हिस्सा बनकर रहना तय किया। मेड़ता क्षेत्र पर जोधा के एक अन्य पुत्र दूदा काबिज हुए। दूदा के वंशज मेड़तिया राठौड़ कहलाए। दूदा की पौत्री मीरां जगत प्रसिद्ध हुई। राठौड़ों को अनेक बाधाएँ पार करनी पड़ी। सल्तनत युग के शासकों से उन्होंने अनेक युद्ध लड़े। राठौड़ काल के प्रारम्भ से एक मात्र जोधा अपनी स्वाभाविक मौत मरे बाकी—राव सीहा से लेकर रणमल तक सभी तेरह शासक युद्धों में ही काम आए।

एक सांस्कृतिक परम्परा का जन्म :

राव जोधा के बाद राव सातल जोधपुर की गद्दी पर बैठे। राव सातल सिर्फ तीन वर्ष ही राज कर पाए। संवत् 1548 में मेड़ता अंचल में भयंकर अकाल पड़ा। वहाँ के शासक दूदा और बरसिंह ने पीड़ित जनता की सहायतार्थ धन इकट्ठा करने के दृष्टिकोण से सांभर के मुसलमान हाकिम पर धावा बोल दिया और शाही खजाना लूट लिया। इसकी प्रतिक्रिया में अजमेर के शासक मल्लू खाँ ने मेड़ता पर चढ़ाई कर दी। उसके सेनापति मीर घुड़ला खाँ ने गौरी पूजन को गई 140 किशोरियों को घेर लिया।

दूदा और बरसिंह की सहायता में राव सातल मेड़ता पहुँचे। उन्होंने मुसलमान सेना को हरा दिया। सातल जी के सेनापति सारंग ने घुड़ला खाँ को तीरों से बींध कर मार डाला। गौरी पूजन को गई किशोरियों को छुड़ाया तथा घुड़ला खाँ का तीरों से बींधा हुआ सिर उनको सौंप दिया। उन्होंने उसे घर-घर घूमाया। इस घटना ने कालान्तर में सांस्कृतिक रूप ले लिया। गणगौर पर्व पर घुड़ला खाँ के सिर के प्रतीक रूप में किशोरियाँ कुम्हार के घर से मिट्टी का बना हुआ छेदों वाला एक बर्तन लाती हैं। उसमें दीपक जलाकर गौरी पूजन करती हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि घुड़ला खाँ की पुत्री ने राव सूजा से कहकर अपने पिता की स्मृति में यह परम्परा शुरू करवाई। राव सातल इस युद्ध में इतने घायल हुए कि डेरे पहुँचने पर उनकी मृत्यु हो गई।

राव सातल के बाद उनके छोटे भाई राव सूजा जोधपुर की राजगद्दी पर बैठे। राव सूजा ने 24 वर्ष राज किया और संवत् 1572 में स्वर्ग सिधारे। उनके बाद राव गांगा जोधपुर की गद्दी पर बैठे। संवत् 1584 में राणा सांगा और बाबर के बीच हुए 'खानवा' के ऐतिहासिक युद्ध में, राणा सांगा की सहायतार्थ राव गांगा ने अपने पोते रायमल, रतनसिंह मेड़तिया (मीरां के पिता) तथा एक अन्य सरदार खेतसी के साथ चार हजार सैनिक भेजे। उपरोक्त तीनों वीर उसी युद्ध में काम आए।

राव गांगा का एक विवाह सिरोही के राव जगमाल की पुत्री पद्मावती से हुआ था। राव गांगा सिरोही से एक विष्णु की मूर्ति लाए थे। जो उनके द्वारा निर्मित गंगश्यामजी के मन्दिर में विराजित है। इसी रानी के साथ सिंघी शाखा के ओसवाल महानन पहले पहल जोधपुर आए। सिंघी ओसवालों के पूर्वज कुलीन नन्दवाना बोहरे (पल्लीवाल ब्राह्मण) थे जो जैनी बनकर ओसवाल जाति में समाहित हो गए। राव जी की इसी रानी से मालदेव का जन्म हुआ। गांगा की एक दूसरी रानी राणा सांगा की पुत्री थी। उसका नाम भी पद्मावती था। उसने अपने नाम से जोधपुर का पदमसर तालाब बनवाया।

राव मालदेव :

राव गांगा के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र राव मालदेव जोधपुर के अधिपति बने। वे बड़े यशस्वी और हौसले वाले राजा हुए। जब वे गद्दी पर बैठे तो उस समय सिर्फ जोधपुर और सोजत दो ही परगने मारवाड़ में शेष रह गये थे। मारवाड़ को अपना सही स्वरूप राव मालदेव ने ही प्रदान किया। उनका सारा जीवन विजय अभियानों में बीता। दिल्ली शासक शेरशाह से भी उन्होंने युद्ध किया। कपटपूर्ण चालों के सहारे ही शेरशाह उन्हें जीत पाया। मालदेव को सिवाणे के पहाड़ों में शरण लेनी पड़ी। संयोग से शेरशाह दो वर्ष बाद ही कालींजर में मर गया। उसके मरने की खबर सुनकर मण्डौर के माळी राजपूतों ने शेरशाह के थाणों को उठा दिया और मालदेव को छप्पन के पहाड़ों से बुला लिया। इस प्रकार मालदेव को पुनः जोधपुर का राज्य प्राप्त हुआ। जोधपुर रियासत में माळी समाज का रुतबा उसी समय से बढ़ गया।

राव मालदेव ने नागौर के नवाब सरखेल खाँ को मारकर नागौर से खानजादा वंश का अन्त कर दिया। तभी से लाडनू पर से मोहिलों का शासन भी समाप्त हो गया। लाडनू मारवाड़ रियासत की उत्तर-पूर्वी सीमा का प्रमुख कस्बा बना। लाडनू का सामरिक महत्त्व जितना सल्तनत युग के सुल्तानों के लिए था उतना ही मारवाड़ के राठौड़ों के लिए भी रहा।

लाडनू कस्बे का राठौड़ राजकुल से सम्बन्ध राव मालदेव के शासनकाल में ही जुड़ा। यद्यपि इस कस्बे का पट्टा उस समय तक किसी जागीरदार के नाम नहीं किया गया था लेकिन यहाँ का राज कार्य चलाने के लिए राव मालदेव ने एक सिंघी मुसाहिब को लाडनू भेजा। ओसवाल भी शनैः-शनैः यहाँ आकर बसने को उत्सुक हुए। राठौड़ों और ओसवालों का सम्बन्ध ऐतिहासिक रहा है।

जोधपुर तथा बीकानेर की राठौड़ रियासतों के अतिरिक्त अजमेर के पास स्थित किशनगढ़, गुजरात के ईडर तथा मालवा के सीतामऊ व रतलाम राज्यों पर भी राठौड़ राजकुल का शासन रहा। मारवाड़ के सांस्कृतिक उन्नयन में राठौड़ों का योगदान बहुत महत्त्व का माना जाएगा।

भाटी :

भाटी अपने आप को चन्द्रवंशी यादव परम्परा में मानते हैं। गुजरात के जाड़ेजा भी इसी श्रेणी में आते हैं। मुसलमान शासकों के दबाव से भाटी सौराष्ट्र (गुजरात) से सिंध होते हुए राजस्थान के मरूप्रदेश की तरफ उतर आए। प्रारम्भ में उनकी राजधानी लोद्रवा थी। वि.सं. 1234 में जैसलमेर की नींव भाटियों ने ही रखी थी। धीरे-धीरे भाटी जांगल प्रदेश के पूंगल तक पहुँच गए।

जोहिया :

यह एक प्राचीन क्षत्रिय जाति थी। पाणिनी ने भी अपने प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ अष्टाध्यायी में उनका उल्लेख किया है। सतलज नदी के दोनों तटों पर पाकिस्तान के भावलपुर के निकट का क्षेत्र जोहियावार कहलाता है। मुसलमान हमलों से त्रस्त होकर ये राजपूताने के जांगल प्रदेश में पहुँचे। फिर पूर्व में उतरकर मोहिलवाटी के लाडनू सहित कुछ भू-भागों में काबिज हुए। कविवर बांकीदास ने अपनी 'ऐतिहासिक वार्ता' में मोहिलों द्वारा जोहियों से लाडनू छीनना लिखा है। लाडनू के प्रसिद्ध मोहिल शासक जयसिंह (द्वितीय) की एक राणी जोहिया वंश की थी। राजपूताने में खिसक आए जोहियों ने काफी समय तक इस्लाम से परहेज रखा। लेकिन छितरे जनबल और विवाह सम्बन्धों में आने वाली रुकावटों से परेशान होकर वे मुसलमान बनने को विवश हुए।

गुहिल (गुहिलोत) या सीसोदिया :

मेवाड़ प्रदेश अपने पर्वतों, बीहड़ जंगलों, खनिज तथा जल स्रोतों के कारण सामरिक तथा आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थल है। गुहिलवंश की उत्पत्ति आनन्दपुर (गुजरात) से आए गुहदत्त ब्राह्मण से बताई जाती है। गुहदत्त की सातवीं पीढ़ी में हुए बप्पा रावल को इस वंश का अग्र पुरुष माना जाता है। बप्पा ने भीनमाल के प्रतिहारों के साथ मिलकर अरब आक्रमणकारियों से युद्ध किया था। उसके उत्तराधिकारी खुमाण (प्रथम)

से लेकर राणा सांगा (ई. सन् 800 से 1528) तक के सवा सात सौ वर्षों में मेवाड़ पर चालीस नरेशों ने शासन किया।

इस परम्परा के उल्लेखनीय नाम—खुम्माण, अल्लट, शक्ति, जेत्रसिंह, समरसिंह, रतनसिंह, खेता, लाखा, कुम्भा, सांगा आदि हैं। बारहवीं शताब्दी में रणसिंह के समय में रावल तथा राणा शाखाएँ अलग हुईं। डूँगरपुर-बांसवाड़ा बड़ी शाखाके शासक रावल कहलाए तथा चित्तौड़ की कनिष्ठ शाखा के राणा नाम से प्रसिद्ध हुए। राणा परम्परा में समरसिंह ने आबू पर अधिकार कर लिया तथा अनेक मुसलमान हमलावरों पर विजय पाई। चित्तौड़ का कीर्ति स्तम्भ उसी के समय का बना हुआ है।

राणा रतनसिंह का नाम अल्लाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ आक्रमण और महारानी पद्मिनी से जुड़ा हुआ है। गोरा बादल की वीरता तथा पद्मिनी का जौहर इतिहास प्रसिद्ध घटनाएँ हैं। राणा लाखा को चूण्डा राठौड़ की पुत्री हँसा ब्याही थी। उसके पुत्र का नाम मोकल था। मोकल का पुत्र राणा कुम्भा बहुत पराक्रमी हुआ। उसने मेवाड़ राज्य को अच्छा विस्तार दिया। मालवा तथा गुजरात के सुल्तानो से भी लगातार युद्ध लड़े। चित्तौड़ दुर्ग की प्राचीर, विष्णु स्तम्भ तथा कुम्भलगढ़ के दुर्ग के निर्माण का श्रेय उसी को जाता है। 'संगीतराज' ग्रंथ उसी के संरक्षण में लिखा गया।.

इसी परम्परा में राणा सांगा एक प्रसिद्ध शासक हुए। वे एक बहादुर, पराक्रमी और महत्त्वाकांक्षी राणा थे। उन्होंने मेवाड़ राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। उनका अन्तिम युद्ध बाबर के साथ हुआ। राजपूताने के प्रायः सभी राजा सांगा के सहयोग में लड़े। दुर्भाग्य से सांगा की इस युद्ध में हार हुई और देश में मुगल साम्राज्य की नींव पड़ी। युद्ध में सांगा को अस्सी घाव लगे। सांगा के पुत्र रतनसिंह गद्दी पर बैठे। वे आपसी झगड़ों में मारे गए। मीरां उन्हीं को ब्याही गई थी। उनके बाद उनका सौतेला भाई विक्रमादित्य राणा बना। उसके समय में मुसलमान हमलावारों ने राज्य को बहुत क्षति पहुँचाई। दासी पुत्र बनबीर ने विक्रमादित्य की हत्या कर दी। वह बालक उदयसिंह को भी मारना चाहता था परन्तु पन्ना धाय की स्वामिभक्ति ने उसे बचा लिया।

सन् 1541 में सामंतों की सहायता से उदयसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। हिन्दू स्वाभिमान के प्रतीक पुरुष महाराणा प्रताप उनके पुत्र थे। राणा प्रताप ने मुगल सम्राट अकबर साथ हल्दीघाटी सहित अनेक युद्ध लड़े लेकिन मुगल साम्राज्य की आधीनता

नहीं मानी। प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने भी अपनी स्वाधीनता बचाने का पूरा प्रयत्न किया लेकिन वे थकने लगे। इस सम्बन्ध में एक प्रवाद प्रचलित है। राणा अमरसिंह ने मुसीबतों से हार कर अकबर के प्रसिद्ध दरबारी रहीम खानखाना को एक पत्र लिखा—

गोड़, कछावा, राठवड़, गोखां जोख करन्त।
कहज्यो खानखान नै, बनचर हुया फिरन्त॥
तंवरां सूं दिल्ली गई, राठौड़ां कनवज्ज।
अमर पयंपै खान नै, वो दिन दीसै अज्ज॥

उत्तर में कवि रहीम ने निम्नलिखित दोहा लिखकर भेजा—

धर रहसी रहसी धरम, खप जासी खुरसाण।
अमर विसम्भर ऊपरां, राख नहचो राण॥

रहीम के इन शब्दों से अमरसिंह को सहारा मिला और अपना मनोबल बनाए रखने में वे सफल हुए। इस प्रकार यह कीर्तिमयी परम्परा देश के इतिहास में प्रसिद्ध हुई। विपत्तिकाल में महाराणा प्रताप को श्रेष्ठि पुरुष भामाशाह द्वारा दिया गया अर्थ सहयोग भी इतिहास में लिखी जाने वाली घटना है। महाराणा प्रताप हिन्दुओं के सूर्य कहलाए। यह वंश आजादी पर्यन्त स्वतन्त्र ही रहा।

कछवाहा :

मुणोत नैणसी के अनुसार आमेर के कछवाहा शासक ग्वालियर तथा नरवर के कच्छपघातों के वंशज हैं। ख्यात के अनुसार ग्यारहवीं शताब्दी में सोढ़देव का पुत्र दुल्हराज अपनी ससुराल दौसा आया। दौसा में उस समय चौहानों और बड़गूजरों का सम्मलित राज था। उसने अपने ससुराल पक्ष चौहानों से मिलकर दौसा पर अधिकार कर लिया। उसके उपरान्त उसने मीणा मुखियाओं को शनैः :शनैः अपने पक्ष में किया तथा उनके सहयोग से मांची, खोह, आमेर आदि स्थानों पर अपना अधिकार जमा लिया।

आमेर राज्य का करीब-करीब सारा क्षेत्र मैदानी इलाका है तथा दिल्ली से यह क्षेत्र अधिक दूर भी नहीं है। अतः कछवाहा शासकों को दिल्ली के बादशाहों तथा सुल्तानो

की निरन्तर दहशत बनी रही। जिससे यह राजवंश अधिक पनप नहीं पाया। राजा भारमल द्वारा अपनी पुत्री का विवाह बादशाह अकबर से कर देने के बाद ही कछवाहों के दिन फिरे। दिल्ली दरबार में उनके लिए दरवाजे खुल गए। आमेर के आस-पास का एक बड़ा इलाका भी उन्हें प्राप्त हो गया। राजा भारमल के पुत्र भगवन्तदास ने मुगलों की तरफ से अनेक युद्धों में भाग लिया। उन्हें पाँच हजारी मनसब मिला।

भारमल का ही पुत्र राजा मान अकबर का विश्वासपात्र सेनापति बना। उन्होंने देश-विदेश में कुल सड़सठ युद्धों में भाग लिया और विजय प्राप्त की। इन युद्धों की लूट से उन्होंने आमेर का खजाना भी खूब भरा। बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में मुगल साम्राज्य के विस्तार में राजा मान की अहम भूमिका रही। राजा मान धर्म परायण और दानी भी थे। राजा मान का पुत्र जगतसिंह भी वीर था। उसकी मृत्यु युवावस्था में ही हो गई थी। आमेर का जगत शिरोमणि मन्दिर उसी की स्मृति में बना। जगतसिंह का पुत्र महासिंग भी छोटी अवस्था में ही (संवत् 1671) में दक्षिण में काम आया। उसका पुत्र जयसिंह मिर्जा राजा गद्दी पर बैठा। वह भी वीर और नीतिकुशल था। शिवाजी और औरंगजेब की मुलाकात करवाने में उसकी ही भूमिका प्रमुख रही थी।

इसी परम्परा में सवाई जयसिंह एक योग्य और कुशल शासक हुए। अपनी योग्यता से मालवा की सूबेदारी पाने में वे सफल रहे। राजपूताना के समस्त राजाओं और मुगल दरबार के अमीर उमरावों में उनका अच्छा दबदबा था। जयपुर शहर उन्होंने ही बसाया था तथा जयपुर सहित दिल्ली, उज्जैन तथा बनारस में उन्होंने खगोल विद्या के अध्ययन हेतु वेधशालाएँ स्थापित कीं। वे कलाप्रेमी और संस्कृति के पोषक थे। उनका स्वर्गवास संवत् 1800 में हुआ। धीरे-धीरे कछवाहा शासक कमजोर पड़ने लगे। मराठों ने भी जयपुर को परेशान करना शुरु कर दिया। राजघराने के आपसी षड्यन्त्रों से भी कछवाहा शक्ति कमजोर हुई। अन्त में अंग्रेजों से संधि करके सुरक्षा का मार्ग तलाशना उनके लिए अनिवार्य हो गया।

कायमखानी :

चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वर्तमान चुरू जिले के उत्तरी भाग में ददरेवा नाम से चौहानों का एक प्रसिद्ध ठिकाना था। इसी शताब्दी के उत्तरार्ध में दिल्ली के सुल्तान फीरोज तुगलक की आज्ञा से हिसार के फौजदार सैयद नासिर ने ददरेवा पर हमला किया। वहाँ का शासक पराजित हुआ। मोटे राव का एक किशोर पुत्र

कर्मसी नाम से था। वह बड़ा होनहार प्रतीत होता था। सैयद नासिर उसे अपने साथ हिसार ले गया। वहीं उसकी शिक्षा हुई तथा उसे इस्लाम में दीक्षित कर दिया गया। वही युवक कायमखाँ नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके वंशज कायमखानी कहलाए। कायमखाँ के साथ उसके दो भाई भी मुसलमान बने।

सुल्तान फीरोज तुगलक कायमखाँ की वीरता और योग्यता से बहुत प्रभावित था। सैयद नासिर के मरने के बाद कायमखाँ को हिसार का नवाब बना दिया गया। कायमखाँ का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। दिल्ली दरबार में भी उसका अच्छा रुतबा कायम हो गया। सुल्तान ने उसे खानखाना की उपाधि से भी नवाजा। नवाब कायम खाँ ने सात शादियाँ की। उनसे उसके छः पुत्र हुए। ताज खाँ, मुहम्मद खाँ, अक्खन खाँ, अहमद खाँ, कद्दन खाँ तथा मोहन खाँ।

ई. सन् 1388 में फीरोज तुगलक का देहावसान हो गया। उसके बाद दिल्ली सल्तनत अस्थिर हो गई। छब्बीस वर्षों में सात शासक बदले। आठवां शासक सैयद खिजर खाँ हुआ। खिजर खाँ कायम खाँ के बढ़ते प्रभाव से सशंकित हो गया। उसने धोके से नवाब कायम खाँ और उसके पुत्र अहमद खाँ को मरवा दिया। उसने ताज खाँ और मुहम्मद खाँ को भी हिसार छोड़ने को मजबूर कर दिया।

संयोग से दो वर्ष बाद ही खिजर खाँ की मृत्यु हो गई। ताज खाँ और मुहम्मद खाँ हिसार लौट आए। ताज खाँ ने हिसार पर छब्बीस वर्ष राज किया। उसके पुत्र फतेह खाँ ने पांच वर्ष तक। अनेक युद्ध लड़ने पर भी दोनों ही शासक राज्य वृद्धि करने में सफल नहीं हुए। इसका कारण यह था कि हिसार में उनका अपना जातीय जन-बल कम था। इसके साथ-साथ हिसार में दिल्ली बादशाह की दहशत सदैव बनी रहती थी अतः राज्य निरापद नहीं था।

नतीजन मुहम्मद खाँ और उसके भतीजे फतेह खाँ ने किसी अन्य सुरक्षित स्थान की तलाश शुरु की। उन्होंने अपनी मूल धरती पर ही एक बड़ा भू-भाग कब्जे में किया और वहाँ झूंझुनूँ तथा फतेहपुर नाम से दो शहर आबाद किए। इन स्थानों पर कायमखानियों की दिन-दिन तरक्की हुई। आस-पास के क्षेत्र में उनके दर्जनों ठिकाने बन गए। कायमखानी वंश का यह राज्य काफी विस्तृत हो गया। कायमखानियों का यह राज्य सन् 1730 तक कायम रहा। फतेहपुर पर कामयखानी नवाब 279 वर्षों तक काबिज रहे। इस अवधि में कुल बारह नवाब हुए। इन नव. ों की हिसे . बहु

थी। नवाब ताज खाँ, आलिफ खाँ, दौलत खाँ आदि ने दिल्ली दरबार से बराबर सरोकार बनाए रखा। उन्होंने दिल्ली बादशाहों की तरफ से अनेक युद्धों में भाग लिया तथा जीत हासिल की।

फतेहपुर के दूसरे नवाब जलाल खाँ बड़े रहमदिल व्यक्ति थे। उन्होंने फतेहपुर शहर के दक्षिण में करीब बारह कोस के दायरे में पशुओं के चरने के लिए एक बीहड़ छोड़ा। यह बीहड़ आज दिन तक पशु-पक्षियों के लिए अभयारण्य का काम कर रहा है। सन् 1474 से 1489 तक उनका शासन रहा। तीसरे नवाब दौलत खाँ भी बड़े नेक दिल और बहादुर स्वभाव के इन्सान थे। लोग स्नेहवश उन्हें दर-दौलत भी कहते थे। उनका नजरिया सूफियाना था। फतेहपुर का प्रसिद्ध लक्ष्मी नारायण मन्दिर उन्हीं के राजकाल में बना।

फतेहपुर के सातवें नवाब अलिफ खाँ सबसे श्रेष्ठ हुए। वे बादशाह अकबर तथा जहाँगीर के समकालीन थे। हल्दीघाटी तथा काँगड़ा सहित अनेक युद्धों में उन्होंने भाग लिया था। सन् 1625 में जहाँगीर ने उन्हें पंजाब के सुदूर उत्तर में कांगड़े का फौजदार नियुक्त किया। सन् 1626 में पहाड़ियों के साथ हुई मुठभेड़ में वे काम आए। उनका शव पेटी में बन्द कर फतेहपुर लाया गया। उनके पुत्र दौलत खाँ (द्वितीय) ने उनकी कब्र पर एक सुन्दर मकबरा बनवाया जो आज भी मौजूद है। सन्त सुन्दरदास जी का एक मठ भी इसी काल की देन है।

फतेहपुर के प्रथम आठ कायमखानी नवाब दूरदर्शी, सजग, बहादुर और नेकदिल थे। शेष चार शासकों का झुकाव ऐशो-आराम की तरफ हो गया। ऐय्याश होना कमजोर होने का ही दूसरा नाम है। उस समय तक मुगलिया सल्तनत भी कमजोरी की तरफ बढ़ने लगी थी। फलस्वरूप कामयखानी दिन-प्रतिदिन निर्बल होते गए। आपसी कलह भी उनके पतन का कारण बनी। इस कमजोरी में शेखावतों ने उन्हें दबा लिया।

नियामत खाँ उर्फ कवि जान :

आप नवाब अलफ खाँ के पुत्र तथा नवाब दौलत खाँ के छोटे भाई थे। नियामत खाँ का फारसी, संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी भाषाओं पर अच्छा अधिकार था। नियामत खाँ द्वारा रचित पुस्तकों की संख्या 75 से ऊपर है। उनकी प्रसिद्ध रचना 'कायमखां ' है, जिसमें कायमखानी वंश के बारे में उपयोगी जानकारी हासिल होती है।

इसके अतिरिक्त रत्नावली, नल-दमयन्ती, पुहुपवरिषा, छवि सागर, रूप मंजरी, मधुकर मालती, प्रेम सागर, वियोग सागर, बुद्धि सागर आदि उत्तम रचनाएँ हैं। उपरोक्त सभी ग्रन्थ हिन्दी में हैं। आपका रचनाकाल ई. सन् 1615 के आसपास का है।

बेगम ताज बानो :

फतेहपुर नवाब फदन खाँ की पुत्री थी तथा बादशाह अकबर को ब्याही गई थी। बेगम ताज का बीरबल के परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध था। गोस्वामी बिट्ठलदास से शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की थी। कृष्ण भक्त थीं। उनकी प्रमुख रचनाएँ—गणेश स्तुति, निरोष्ठ कवित्त, मुरलीधर कवित्त, भवानी वन्दना, होरीफाग, सरस्वती समाराधना, हरदेव की प्रार्थना आदि हैं। उनकी रचना का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

आशिफ दीवानी बन रीझि पग पूजि पूजि।
कान्ह की मैं 'ताज' राधिका सी बन जाऊँगी॥

शेखावत :

सूर्यवंशी कछवाहा आमेर के अधिपति थे। आमेर के तेरहवें शासक उदयकरण के छोटे पुत्र बालाजी को बरवाड़ा की जागीर मिली। उनके पुत्र मोकल बरवाड़ा से अमरसर आ गए। बड़ी उम्र तक मोकल निःसन्तान रहे। एक रोज जंगल में विचरण करते समय उनकी मुलाकात शेख बुरहान नाम के एक फकीर से हुई। फकीर को मोकल ने अपनी मनोव्यथा बताई। फकीर ने सम्भावना प्रकट की कि वे शीघ्र ही एक पुत्र के पिता बनेंगे। संयोग ऐसा हुआ कि कुछ समय बाद मोकल को पुत्र प्राप्ति हुई। शेख बुरहान की याद में मोकल ने अपने पुत्र का नाम शेखा रखा। यही शेखा शेखावत शाखा के प्रवर्तक हुए।

शेखा जी अमरसर में सन् 1497 में गद्दी पर बैठे। वे बड़े पराक्रमी योद्धा और कुशल प्रशासक थे। अपने बाहुबल से शीघ्र ही उन्होंने उस क्षेत्र के 360 गाँवों पर अपना स्वत्व स्थापित कर लिया। इतिहासकार कर्नल टॉड ने भी अपने इतिहास ग्रंथ में इस कथन की पुष्टि की है। शेखा जी सिर्फ बारह वर्ष ही राज कर पाए। सन् 1509 में वे स्वर्गवासी हुए।

सन् 1721 में शेखा जी की दसवीं पीढ़ी में राव शिवसिंह सीकर की गद्दी पर बैठे। उन्हीं के समकालीन वंशज शार्दूलसिंह ने सन् 1729 में कायमखानियों से झुँझुनूँ छीन लिया था। इसी बीच फतेहपुर के नवाब सरदार खाँ ने अपनी एक तेलण पत्नी के पुत्र महबब

को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा। चूड़ी, बेसवा आदि प्रमुख कामयखानी ठिकानों ने इस बात का विरोध किया। कामयखानियों की इस दुविधा का लाभ उठाकर सन् 1731 में शिवसिंह शेखावत ने फतेहपुर पर अधिकार कर लिया। तब से फतेहपुर सीकर के शेखावतों के कब्जे में आ गया।

इस परम्परा में सीकर की शेखावत शाखा में दस शासक हुए। छठे शासक राव लक्ष्मणसिंह ने सीकर से 18 किलोमीटर दूर उत्तर में एक छोटी-सी पहाड़ी पर किला बनवाया और लक्ष्मणगढ़ कस्बा बसाया। सातवें शासक रामप्रताप सिंह हुए। राव राजा स्वयं बड़े सज्जन थे लेकिन शेखावाटी में इस कालावधि में लूट-खसोट और डकैतियों का आतंक बहुत बढ़ गया।

देखादेखी अनेक ठाकुर जागीरदार धाड़े और चोरियों की वारदातों में मशगूल रहने लगे। इसका बुरा प्रभाव सीमावर्ती क्षेत्रों पर भी पड़ा। लाडनू जैसे बड़े ठिकाने भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष इस आतंक की चपेट में आए। जीवन और माल असुरक्षित हो गए। आतंक इतना बढ़ गया कि अंग्रेज सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा। उसने सेना का सहारा लिया। नसीराबाद छावनी से एक सेना की टुकड़ी इन उपद्रवकारियों को शान्त करने के लिए भेजी गई। इस सैनिक टुकड़ी का नाम शेखावाटी ब्रिगेड रखा गया। इस सैनिक टुकड़ी ने हालात को काफी हद तक सुधारा। बदनाम जागीरदारों के अनेक ठिकाने और किले नष्ट कर दिए गए।

सीकर के दसवें शासक राव राजा कल्याणसिंह हुए। वे सन् 1922 में गद्दी नसीन हुए। वे बड़े शान्त, सरल और भद्र व्यक्तित्व के धनी थे। दुर्भाग्य से जयपुर महाराज से उनके सम्बन्ध किसी कारणवश बिगड़ गए। उस समय के प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ जमनालाल बजाज ने इस विवाद में मध्यस्थता की। उनकी सूझ-बूझ से दोनों पक्षों में सुलह हुई। इस विवाद में सीकर की जनता कल्याणसिंह के साथ रही।

शेखावत बड़े दुस्साहसी योद्धा थे। जयपुर राज्य उनसे आतंकित रहता था। परन्तु शेखावतों ने अपनी सीमा का कभी उल्लंघन नहीं किया। लाडनू कस्बा शेखावाटी का पड़ौसी है। यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि लाडनू शेखावाटी के धाड़वियों से आतंकित था लेकिन कोई बड़ी डकैती की वारदार उन्होंने लाडनू में कभी नहीं की।

V

स्मृतियों में थमा लाडनूं शहर का अतीत

सुदूर अतीत में झाँकने के कुछ साधन हैं, यथा—प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, प्राचीन स्थापत्य अवशेष, भाटों की बहियाँ, प्रसिद्ध इतिहासवेताओं द्वारा समय-समय पर लिखी गई ख्यातें, चारण कवियों की रचनाएँ, प्राचीन सिक्के, जनश्रुतियाँ आदि। उन्हीं का सहारा लेकर मैं इस इतिहास-क्रम को आगे बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

कस्बे के इतिहास से सम्बन्धित राजवंशों, व्यक्तियों और घटनाओं का इतिवृत्तात्मक लेखा-जोखा बहुत कम उपलब्ध है। जो भी उपलब्ध है, किसी बड़े संदर्भ में है अतः कस्बे का उससे अप्रत्यक्ष ही सम्बन्ध जुड़ पाता है। जन-श्रुतियों में भी समय की लम्बी अवधि में विसंगतियाँ आ जाती हैं अतः मार्ग ढूँढ़ने में कठिनाई तो होती ही है, साथ-साथ भ्रम भी पैदा हो जाता है। इतिहास संकलन में कल्पना या अटकल बाजियों का सहारा लेना भी उचित नहीं।

सुना जाता है कि फारसी दस्तावेजों का एक बड़ा जखीरा स्थानीय गढ़ में था। विभिन्न प्रकार के अनेक दस्तावेज भी किले में मौजूद थे लेकिन अब कुछ भी उपलब्ध नहीं है। फिर भी अन्यान्य स्रोतों से काफी कुछ सामग्री बटोर पाना सम्भव हो सका है, जिसके क्रमवार संयोजन से कस्बे के इतिहास की एक स्पष्ट रूपरेखा उभरती नजर आती है।

कहते हैं कस्बे के प्रारम्भिक शासक डाहलिए थे। उस समय कस्बे का नाम क्या था—कोई नहीं जानता। डाहलियों के बाद सत्ता बागड़ी चौहानों के हाथ लगी। पड़ोस के अनेकानेक क्षेत्रों पर जोहिए भी कब्जा जमा बैठे थे। महमूद गजनवी का लश्कर इस रास्ते से गुजरा। फिर मोहिल काबिज हुए। काबुल के शहाबुद्दीन गोरी ने भी अपना मोर्चा यहाँ जमाया। तुगलक सुल्तानों की नजर से भी यह कस्बा नहीं बच पाया।

गरदेजी पठान और गुजरात के खानजादे भी यहाँ राज कर गए। मोहिलो का राज इस धरती पर करीब चार सौ वर्षों तक रहा। मोहिलों से सत्ता राठौड़ों ने हस्तगत की। इस जमीन पर राठौड़ राजवंश का शासन, अंग्रेजों की दासता से मुक्त होने तक बना रहा। यह अवधि भी करीब चार सौ वर्षों तक पहुँच गई। एक बड़ी अवधि तक राठौड़ मुगलों के आधीन रहे अतः प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष मुगलों की मातहती भी इस कस्बे के हिस्से में आई।

कस्बे की प्राचीनता – एक आकलन :

लाडनू कस्बे की प्राचीनता और इतिहास सम्बन्धी अनेक धारणाएँ जन-मानस में प्रचलित हैं। कुछ लोग इसका अस्तित्व महाभारत काल से जोड़ते हैं। इसका पुराना नाम चन्देरी होना बताते हैं तथा इसे बूढ़ी चन्देरी के नाम से गौरवमण्डित करते हैं। एक लम्बे अन्तराल में काफी कुछ अनुमान प्रचारित होकर जन-मानस में रूढ़ हो गए है। साथ-साथ अधिक प्राचीन और विशेष ऐतिहासिक दिखने के मोह मे हम इसके नागरिक भी अपनी भावनाओं की लगाम ढीली छोड़ देते हैं। इसी का नतीजा है कि मात्र अफवाहों को हम तथ्य मान बैठे हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि लाडनू नाम से जानी जाने वाली यह बस्ती बहुत पुरानी है। अब तक यहाँ से प्राप्त सबसे पुराना शिलालेख संवत् 198 का है। सम्भवत: यह कलचुरि संवत् है, जो वि. सं. 504 के समतुल्य है। बड़े जैन मन्दिर की कुछ जिन प्रतिमाएँ अति प्राचीन हैं। भूरे और गेहुएँ पाषाणों में उत्कीर्ण इन प्रतिमाओं पर तिथियाँ तो अंकित नहीं हैं परन्तु शैलीगत आकलन के आधार पर पुरातत्ववेत्ता इन्हें दसवीं शताब्दी से पहले की बनी हुई मानते हैं।

प्राचीन शिल्प अवशेष :

बडा जैन मन्दिर इस कस्बे का सबसे पुराना शिल्प स्थापत्य है। गाजी उमरशाह की दरगाह – अजमेर के ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की प्रसिद्ध दरगाह से भी काफी पहले अस्तित्व में आ चुकी थी। स्थानीय हदीरा स्थित मस्जिद चौदहवी शताब्दी के उत्तरार्ध में बन चुकी थी। जोधा शासकों की छतरियों को निर्मित हुए करीब ढाई सौ वर्ष पूरे हो चुके हैं। अनेक हिन्दू मन्दिर तोड़-फोड़ का शिकार हुए, जिनका कोई लेखा-जोखा नहीं।

यह आम जानकारी की बात है कि स्थानीय गढ़ की बुर्जों, प्राचीरों और इसके चारों ओर बनी खाई की दीवारों में बेतरतीब चुनाई किए हुए अनेक कलात्मक पत्थर तथा विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते थे। ये तराशे हुए पत्थर या मूर्तियाँ पुराने समय में घटित हुई किसी तोड़-फोड़ के अवशेष थे जो पुनर्निमाण में मात्र चुनाई के सामान्य पत्थरों के रूप में फिर काम में ले लिए गए। नए निर्माणों के सम्बन्ध मे होने वाली जमीन की खुदाइयों में जमीन की भिन्न-भिन्न सतहों पर भी अनेक महत्वपूर्ण अवशेष मिलते रहते हैं जो कस्बे के प्राचीन होने का स्पष्ट संकेत देते हैं।

मिट्टी के बरतन पकाने का प्राचीन आंवां (न्यावड़ा) :

आज से करीब दो सौ साल पूर्व वर्तमान स्थानीय मुख्य बाजार के उत्तर में कुम्हारों की बस्ती आबाद थी। शहर के फैलाव के साथ शनैः-शनैः ये परिवार अपनी जमीनें बेचकर शहर के उत्तर-पूर्व में अपने वर्तमान स्थान पर बसने लगे। अंतिम परिवार को यह स्थान छोड़े हुए करीब 60 साल बीत चुके हैं। बर्तन पकाने का यह विशाल आंवां समय की एक बहुत लम्बी अवधि तक कुम्भकारों की इस स्थान पर उपस्थिति का परिचायक है।

पचोलियों की पोल के पूर्वी किनारे से शुरू होकर, उत्तर दिशा में एक बड़े क्षेत्र को घेरते हुए यह आंवां पहली पट्टी मौहल्ले से दक्षिण छोर तक पहुँच गया है। आधी पट्टी की बस्ती का एक बड़ा भाग इस आंवें की जमीन पर आबाद है। इसकी राख की मोटाई कहीं-कहीं करीब 20 फीट तक है। स्थानीय बड़े रामद्वारे की उत्तरी दीवार को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि विगत वर्षों में करीब डेढ़ मीटर मोटाई की परत वर्षा के पानी के साथ बह गई है। इतने बड़े राख के ढ़ेर को बनने में कितना लम्बा समय लगा होगा, इसका अनुमान सहज ही नहीं लगाया जा सकता है। यह शहर इस आंवें जितना ही पुराना है। इस शहर की प्राचीनता का यह आंवां स्पष्ट संकेत हैं।

कस्बे का प्राचीन भौगोलिक परिवेश :

लाडनू शहर तथा इसके आस-पास का इलाका थार मरुस्थल का ही एक संधि भाग है। अतः यहाँ प्राकृतिक संसाधनों का तो सदैव ही अभाव रहा। इस मरुप्रदेश में जल स्रोत बहुत सीमित हैं। नदी, नालों का तो यहाँ कभी अस्तित्व ही नहीं रहा। वर्षा की न्यूनता के कारण सिर्फ रेगिस्तानी वनस्पति ही यहाँ पनप पाई। केर, कंकेड़ों के झुरमुटों, बेर, बबूल, पीलू, फोग, शमी वृक्षों तथा बांठ-बोझों से जमीन आच्छादित रहती थी। कुल मिलाकर यह पूरा प्रदेश एक बीहड़ रेगिस्तानी क्षेत्र ही था।

जंगली सूअर, जरख, भेड़िए, हिरण, लोमड़ी, खरगोश आदि जानवरों की बहुतायत थी। कई ऐतिहासिक प्रसंगों से प्रमाणित होता है कि सिंह भी यहाँ रहते थे। कर्नल टॉड ने भी जांगल प्रदेश में शेरों की उपस्थिति की बात कही है। अनेक प्रकार की गोहें, सांप तथा अन्य सरीसृप जातियाँ भी स्वतन्त्रा पूर्वक यहाँ विचरती थीं।

यद्यपि वर्षा ऋतु में जमीन हरी घास से ढक जाती थी और सतत गिरती रहने वाली पत्तियों की खाद जमीन की उर्वरता को निरन्तर बनाए रखती थी लेकिन बीहड़ो को साफ करके खेती के लिए तैयार करना एक श्रमसाध्य काम था। वर्षा की अनिश्चितता के कारण यह जोखिम उठाए भी कौन? आबादी छितरी थी। खेती कम होती थी।

जीविका का बड़ा आधार पशु-पालन ही था। अतः इस सम्भावना के आधार तो बहुत क्षीण हैं कि यहाँ किसी बड़े साम्राज्य की स्थापना हुई होगी।

ईसा की छठी शताब्दी तक इस रेगिस्तानी प्रदेश में राजनैतिक प्रतिस्पर्धा जैसी कोई स्थिति नहीं उभरी थी। जब पंजाब, गुजरात, सिंध, मालवा आदि प्रदेशों में बाहरी आक्रमणों का दबाव बढ़ने लगा तो इन प्रदेशों की क्षत्रिय मूल की जातियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया। वे सुरक्षा और नए राज्यों की तलाश में इस निरापद भू-खण्ड में शरण लेने को विवश हुईं।

पंजाब के जोहिए जांगल तथा बागड़ प्रदेश में यत्र-तत्र काबिज हो गए। सौराष्ट्र के यादव (भाटी) मांढ प्रदेश होते हुए पूंगल तक पहुँच गए। परमार वंशी सांखले भी अपने प्रसार को मारवाड़ से थली प्रदेश तक बढ़ा ले गए और लाडनू क्षेत्र की पश्चिमी सरहदों को छूने लगे। जाट जाति भी बहुत बड़ी संख्या में यहाँ बसने को मजबूर हुई। जाटों ने काफी कुछ समतल भागों को खेती योग्य बना लिया।

कस्बे का नाम चाहे कुछ भी रहा हो, महत्त्व नाम का नहीं, महत्त्व तो उस जमीन का है, जहाँ यह स्थित है। यहाँ शासन चाहे किसी भी राजवंश का रहा हो, समय चाहे कैसा ही गुजरा हो — इस कस्बे का आंचलिक महत्त्व इतिहास के सभी कालखण्डों में बरकरार रहा। इस तथ्य के भी यथेष्ठ प्रमाण मौजूद हैं कि कुछ प्रमुख प्राचीन राजमार्ग इस कस्बे से होकर गुजरते थे तथा लम्बी यात्राओं में बसेरा लेने और घोड़े बदलने का यह एक आदर्श पड़ाव था। यहाँ पीने का पानी सुगमता से उपलब्ध है अतः बड़े काफिले जिनमें पशुओं की बहुतायत रहती थी, इस स्थान पर अवश्य रुकते थे।

लाडनू थळी और गुर्जर प्रदेश के सन्धि स्थल पर बसा हुआ है। वर्षा चाहे कितनी ही अधिक आए, मगरे की इस धरती पर पानी नहीं ठहरता है। सारा पानी उत्तर-पूर्व में बह जाता है। लाडनू की उत्तर दिशा में करीब दो मील की दूरी पर एक बड़ा टीबा पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ है। उससे आगे थळी प्रदेश शुरु हो जाता है। थळी प्रदेश और मारवाड़ की यह सीमा रेखा है। अतः भौगोलिक दृष्टि से लाडनू की स्थिति बड़े महत्त्व की है। इस कस्बे में सामान्य रहन-सहन के अनुकूल परिस्थितियाँ मौजूद हैं। यही कारण है कि इस कस्बे ने अनेकानेक जातियों के लोगों को यहाँ बसने के लिए आकर्षित किया।

शहर का प्रारम्भिक स्वरूप :

नए निर्माणों के सम्बन्ध में यदाकदा जमीन की खुदाई में अनायास ही कुछ-न-कुछ

पुरातात्विक सामग्री मिल जाती है। इस प्रकार की पुरानी वस्तुएँ मिलने का यह क्षेत्र स्थानीय गढ़ (जो अब ढहा दिया गया है), इसके आसपास की भूमि तथा सरावगियों के मोहल्ले तक ही सीमित है। कस्बे की पूर्वी सीमा वर्तमान अग्रवालों के मोहल्ले तक ही थी। पारीक कस्बे के उत्तर-पूर्व में बसे हुए थे। कस्बे की दक्षिणी हद दक्षिण दरवाजा था। कस्बा एक मोटी दीवार के परकोटे से घिरा हुआ था, जिसके अवशेष यत्र-तत्र अब भी मौजूद हैं। कुम्भकारों का बर्तन पकाने का आंवां कस्बे की सीमा से बाहर था। कस्बे में ओसवाल जाति का पदार्पण एक परवर्ती घटना है।

'लाडनू' नाम का उल्लेख करने वाले कुछ ऐतिहासिक प्रसंग :

- 'पृथ्वीराज रासो में वि.सं. 1230 तदनुसार ई. सन् 1173 के एक ऐतिहासिक प्रसंग में लाडनू का नाम अंकित है। इस प्रसंग की पूरी विवेचना अगले पृष्ठों में यथास्थान की गई है।
- नागौर के एक प्रसिद्ध सूफी संत हमीदुद्दीन सव्वाली (ई. सन् 1193 से 1273) ने अपनी डायरी में लाडनू नाम का उल्लेख किया है। लाडनू में उनकी ससुराल थी। वे जब भी लाडनू आते थे तो गाजी उमरशाह की दरगाह पर मत्था टेकने अवश्य जाते थे।
- खरतरगच्छ की बृहद् गुर्वावलि में लाडनू नाम का उल्लेख है।
- स्थानीय बावड़ी से सम्बन्धित संवत् 1373 (तदनुसार ई. सन् 1316) के संस्कृत शिलालेख में इस कस्बे का नाम 'लाडणु' अंकित है, जो नागपतन (नागौर) से साढ़े सात योजन की दूरी पर बताया गया है।
- ऐतिहासिक कस्बे खाटू के एक सूफी फकीर शेख अहम्मद के स्मृति लेख (रोजनामचा) में इस कस्बे के तत्कालीन मोहिल शासक जैसिंह के नाम के साथ लाडनू नाम का भी उल्लेख है। यह लेख ई. सदी चौदहवीं के उत्तरार्ध का है।
- एक प्राचीन राजस्थानी कृति 'वीरवाण' (वि.सं. 1440) में लाडनू नाम का उल्लेख है।
- एक नो सौ वर्ष पुराने फारसी दस्तावेज में भी 'कस्बा लाडनूँ' नाम अंकित है। यह जानकारी श्री अली अकबर रिजवी से प्राप्त हुई।
- स्थानीय शान्तिनाथ श्वेताम्बर जैन मन्दिर की पीतल की एक पुरानी परात पर वि.सं. 1405 के साथ लाडनू नाम अंकित है।
- करीब पांच सौ-छः सौ वर्ष पुराने काजियों के पास उपलब्ध शाही तथा राजाई फरमानों व दान पत्रों में कस्बे का नाम लाडनू ही दर्ज है।

❖ मुगल बादशाह अकबर तथा जहाँगीर के शासनकाल में लाडनू को परगने का द हासिल था। इस प्रसंग में लाडनू नाम के साथ यहाँ से प्राप्त होने वाला राजस्व अकबर और जहाँगीर के काल में क्रमशः दो लाख तथा तीन लाख इकतालीस हजार दर्शाया गया है।

लाडनू सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण मान्यताएँ :

वि.सं. 1201 के एक शिलालेख में लाडनू को 'गीणगणो देवरान' कहा गया है। डॉ. परमेश्वरलाल सोलंकी का मानना है कि लाडनू खाण्डल पाल वंशीय महाजनों का नगर था जो पाली जिले के नाडोल क्षेत्र के थलोपग्राम की तरह एक स्वशासित इकाई था। खाण्डल पालवंश का उल्लेख स्थानीय बड़े जैन मन्दिर में अवस्थित भगवान ऋषभदेव की अष्टधातु प्रतिमा के पृष्ठ भाग पर अंकित संवत् 1226 के लेख में भी पाया जाता है। विदित रहे खाण्डल पाल वर्तमान में प्रचलित खण्डेलवाल (सरावगी) जाति का मूल एवं प्राचीन नाम है। जब से इस जाति समूह का उद्‌भव हुआ है, लाडनू इस जाति का प्रमुख केन्द्र रहा है।

❖ दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के प्रमुख तीर्थों में लाडनू की गिनती होती है। यहाँ पर तीस पचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न होने की क्रमवार सूची उपलब्ध हैं। तीर्थराज सम्मेदशिखर के बाद यह संख्या सर्वाधिक है। सबसे पहली प्रतिष्ठा छठी शताब्दी विक्रमी की बताई जाती है।

इतिहासकारों के आलेख और शासकीय अनुक्रम :

विभिन्न ख्यातों तथा ऐतिहासिक आलेखों में लाडनू के प्राचीन तथा मध्यकालीन राजवंशों का अनुक्रम इस प्रकार वर्णित है—

मुणोत नैणसी के अनुसार यह कस्बा डाहलियों के आधीन रहा। नैणसी ने डाहलियों को परमार बताया है। डाहलियां के बाद बागड़ी चौहानों ने इस पर राज किया। बागड़ियों से यह क्षेत्र वि.सं. 631 में मोहिलों के हाथ में चला गया। मोहिलों का शासन इस धरती पर 900 वर्षों तक रहा। मोहिलों से यह धरती राठौड़ जोधा तथा उसके पुत्र बीदा ने छीन ली।

कविवर बाँकीदास ने अपनी ऐतिहासिक वार्ता में लाडनू का उल्लेख करते हुए लिखा है कि लाडनू डाहलिया राजपूत बसायो। डाहलिया पाछे जोहिया मालिक हुया। जोहिया कना सूं मोहिल, मोहिलां सुं राव मालदेव ठिकाणो लियो।

बीदावतों की बिगत में लिखा है कि—मोहिल अजीत न राणौ बच्छो—इयांरो राजधान लाडनु नै छापर हुतो। नै द्रोणपुर मोहिल कान्हो बसतो—पाच्छै महाराई श्रीजोधा जी सगलानु मारि नै मोहिलां री धरती लेय नै राजश्री बीदा जी नै राखीया।

मोहिलों की ख्यात में उल्लेख बताया जाता है कि मोहिल चव्हाण अड़कमल ने संवत् 1489 (तदनुसार ई. सन् 1432) में द्रोणपुर से आकर लाडनू पर अपना कब्जा जमाया। उस वक्त इस कस्बे पर गरदेजी मुसलमानों का अधिकार था। अरड़कमल के बाद राव भोज हुए, फिर राव जयसिंह।

आलेखों की विवेचना :

उपरोक्त कथनों में विसंगतियाँ दिखते हुए भी मूल रूप से सभी कथन ऐतिहासिकता से ओत-प्रोत हैं। नैणसी ने अपनी धारणाएँ जनश्रुतियों के आधार पर निर्धारित की थीं लेकिन समय की लम्बी अवधि में जनश्रुतियों पर भावनाओं की बदली छा गई। अत: नैणसी की मान्यताएँ ऐतिहासिक होते हुए भी तथ्यगत भूलों से भरी पड़ी है। उनके द्वारा दी गई कालावधियाँ अतिशयोक्ति पूर्ण हैं। तिथियाँ भी इतिहास संगत नहीं। फिर भी नैणसी के आलेख से एक बात स्पष्ट है कि उनके समय में भी लाडनू कस्बा अति प्राचीन माना जाता था।

भाटों के वृत्त—अनेक इतिहासकारों ने भाटों के वृत्तों का सहारा लिया है लेकिन भाट एक वृतिपेशा समुदाय है। ये अपने यजमान के वंश का वृत्त लिखते हैं। इनका मुख्य ध्येय यजमान का विरुद् बखानना रहता है। ये अपने कथन को रसमय बनाकर प्रस्तुत करने की कला में माहिर होते हैं। इतिहास से इनका कोई सीधा वास्ता नहीं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी इनमें यजमानों के परिवारों का बँटवारा भी होता है।

बँटवारे के अनुसार परिवारों के वृत्त मूल बही से अलग-अलग बहियों में स्थानान्तरित होते रहते हैं। अपने लेखन में यह समुदाय परम्परा से एक सांकेतिक लिपि ही अपनाए हुए है। अत: पाठान्तर की सम्भावना सदैव बनी रहती है। यही कारण है कि इनके वृत्तों में विसंगतियाँ पाई जाती हैं। तिथिक्रम भी कभी-कभी अन्य स्रोतों से प्राप्त प्रामाणिक तिथियों से मेल नहीं खाता। अत: भाटों के वृत्त पूर्ण रूप से विश्वसनीय नहीं समझे जा सकते हैं। फिर भी उनके ऐतिहासिक महत्त्व को नकारना भी सम्भव नहीं।

मुख्य-मुख्य स्रोतों से प्राप्त यह तथ्य तो प्रामाणिक लगता है कि कस्बे के प्रारम्भिक शासक डाहलिये ही थे। इससे इस कस्बे के अति प्राचीन होने की बात उजागर होती है। नैणसी ने डाहलियों से आगे का क्रम बागड़ी राजपूतों से जोड़ा है। जबकि कविवर बांकीदास ने जोहियों से। दोनों धारणाओं में अंशतः सच्चाई भी है। मोहिलों के उद्भव से पहले बारहवीं शताब्दी के मध्य तक नागौर सहित एक बड़े भू-भाग पर बागड़ी चौहानों का आधिपत्य था। लाडनूं पर भी ये डाहलियों से सत्ता छीनकर बड़े अरसे से काबिज थे।

पंजाब के जोहियों पर जब विदेशी हमलावारों का दबाव बढ़ने लगा तो वे वर्तमान हरियाणा की सीमा से लगे हुए राजस्थान के बागड़ प्रदेश में उतर आए। वहाँ से वे जाँगल प्रदेश में फैल गए। फिर उन्होंने दक्षिण-पूर्व की ओर रूख किया और लाडनूं क्षेत्र की सीमाओं में भी घुस आए। छितरे जन-बल के कारण वे कोई बड़ी राजनैतिक उपलब्धि तो हासिल नहीं कर पाए, फिर भी उनके छोटे-छोटे ठिकाणे इस क्षेत्र में कायम हो गए थे।

बागड़ियों से सत्ता मोहिलों ने छीनी तथा यत्र-तत्र बिखरे जोहियों पर भी काबिज हो गये। फीरोज तुगलक से हारने पर जयसिंह प्रथम ने इस्लाम स्वीकार कर लिया था लेकिन इस जैसिंह के साथ सब मोहिल मुसलमान नहीं बने थे। यह धर्मान्तरण की घटना सिर्फ लाडनूं तक ही सीमित रही। मोहिलवाटी पर राठौड़ों का कब्जा हो जाने के बाद हालात बदल गए। मोहिलों को बड़ी आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसी पराभव काल में लाडनूं की गद्दी पर राव जयसिंह (द्वितीय) बैठे। यद्यपि उन पर धर्मान्तर का कोई प्रत्यक्ष दबाव नहीं था लेकिन मन के किसी कोने में वे इस्लाम की तरफ झुक चुके थे।

यह उल्लेखनीय तथ्य है कि धर्मान्तरण के बाद भी मोहिलों ने अपने मूल वंश का नाम यथावत रखा। विश्वास बदल सकते हैं लेकिन पूर्वज नहीं। इण्डोनेशिया के बहुसख्यक निवासी मुसलमान हैं लेकिन उनका वंशानुराग यथावत बना हुआ है। उनके नाम आज भी सुहार्तो, सुव्रतो या सुकर्ण हैं। धर्मान्तरण चाहे मजबूरी में हुआ हो कि समझ से—कोई फर्क नहीं पड़ता। भारत के अधिकतर मुसलमान क्षत्रिय मूल के हैं—राठौड़, चौहान, सिसोदिया, टाक या सोलंकी—पूर्वज तो उनके मल्लीनाथ, हमीर, सांगा या मूलराज ही रहेंगे। फिलस्तीन, सीरिया या जोर्डन की तरह वे दाऊद की सन्तान तो कभी नहीं कहे जा सकते हैं।

VI

'लाडनू' नामकरण की पहेली

लाडनू नाम की प्राचीनता :

इतिहास की एक लम्बी अवधि में इस शहर का विकास हुआ है। अनेक बार यह बस्ती उजड़ी है। यह भी सम्भव है कि जब-जब यह बस्ती पुनः आबाद हुई, इसका नया नामकरण हुआ। इस ऐतिहासिक तथ्य को भी मध्यनजर रखना बहुत जरूरी है कि यह कस्बा डाहलियों, बागड़ी तथा राठौड़ राजवंशों की परिधि पर ही रहा। मोहिलों के इतिहास के एक बड़े भाग का यह कस्बा साक्षी रहा। इस राजवंश के सत्ता केन्द्रों में इस कस्बे का स्थान महत्त्वपूर्ण था। अतः कस्बे के वर्तमान स्वरूप तथा विकास में मोहिलों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही—ऐसा मानना युक्तियुक्त है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक और साहित्यिक ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' में लाडनू नाम का उल्लेख पहली बार देखने को मिलता है।

नामकरण का आधार :

प्राचीन गुर्जर प्रदेश का फैलाव गुजरात सहित वर्तमान मारवाड़ के भीनमाल, डीडवाना, लाडनू, छापर व बागड़ प्रदेश के एक बहुत बड़े भू-भाग तक था। गुजरात को मारवाड़ से अलग करने वाली सीमा-रेखा उस समय तक नहीं उभर पाई थी। नतीजन गुजराती बोली का प्रभाव मारवाड़ सहित बागड़ प्रदेश में दूर तक व्याप्त था।

एक प्राचीन हस्तलिखित गुटके (छोटी पुस्तक) में 'रूपावली' नाम से एक आख्यान का वर्णन है। इस आख्यान की पहली ही चौपाई में इसके कवि लेखक ने प्रतिपादित किया है कि बागड़ प्रदेश में जो भाषा बोली जाती है वह भली प्रकार की सोरठ-मारु है। मारु का अर्थ तो स्पष्ट है कि जिसका सम्बन्ध मरुभूमि से हो वह मारु है। पर इसके साथ सोरठ शब्द का क्या सम्बन्ध है?

भौगोलिक दृष्टि से गुजरात का एक विशेष भू-भाग सोरठ (सौराष्ट्र) नाम से सर्वत्र विश्रुत रहा है। वहाँ की जन-भाषा जो इस समय गुजराती नाम से ही प्रसिद्ध है—उस समय सोरठ नाम से पुकारी जाती होगी और बागड़ प्रदेश (वर्तमान शेखावाटी का एक बड़ा भाग) की जो बोली रही है, उसमें मारु और सोरठ का सम्मिश्रण रहा हो। अतः कवि ने उसे मारु-सोरठ नाम से एक अलग पहचान दे दी।

आधुनिक राजस्थानी तथा गुजराती भाषाएँ मूल रूप से एक थीं। मुगलों के शासनकाल में धीरे-धीरे इनमें पार्थक्य हुआ। भाषा वैज्ञानिकों को एक ऐसे नाम की तलाश थी जो दोनों भाषाओं की एकता को सुनिश्चित करे। गुजरात के प्रसिद्ध कवि, विचारक और लेखक श्रीयुत उमाशंकर जोशी ने उसके लिए मारूगुर्जर शब्द का प्रयोग करना पसन्द किया। राजस्थान और गुजरात की सांस्कृतिक एकता का सार-सूचक यह शब्द उपयुक्त लगता है। इसका प्रेरणा आधार मारु-सोरठ शब्द ही रहा है।

गुजराती बोली के णा, णी, णू या णो—मारवाड़ी बोली के रा, री, रो या खड़ी बोली के का, की, को के समानार्थी हैं। इस आधार पर लाडनू (लाडणु)का अर्थ बनता है लाडोजी की या लाडां की (बस्ती)। इसी तर्ज पर कुछ परवर्ती कस्बों, यथा—झुंझनूं, बाघणू आदि का भी नामकरण हुआ। नामकरण की यह पद्धति आकस्मिक नहीं कही जा सकती है बल्कि किसी मान्य परिपाटी की परिचायक है। जोधाणा, बीकाणा, नागाणा, पिलाणी, देवाणी आदि कस्बों और गाँवों के नामों में भी यही तर्ज लक्षित है।

किसी भी परिपाटी के विकासक्रम की एक समायावधि होती है। गुजराती बोली के प्रभाव में कस्बों, गाँवों या शहरों के नामकरण की इस पद्धति का चलन ग्यारहवीं से पन्द्रहवीं सदी तक ही मिलता है। अतः यह प्रतिपादित करना काफी कुछ तर्कसंगत है कि 'लाडणू' नामकरण की यह घटना ग्यारहवीं सदी से पहले की नहीं है।

नरबलि का विधान :

प्राचीनकाल में किसी नए किले या गढ़ की स्थापना के अवसर पर नींव भरते समय किसी जीवित पुरुष को उसमें चुने जाने की प्रथा प्रचलित थी। इस हेतु प्राथमिकता किसी ब्राह्मण पुत्र को ही दी जाती थी। मान्यता यह थी कि ऐसा करने से वह राजवंश या किला दुश्मनों के लिए अविजित रहता था। सम्भवतः बागड़ियों ने इसी विचार से नर बलि के प्रचलित अंधविश्वास का सहारा लिया हो और आहुति देने वाले प्राणी के प्राणों का मोल उसके किसी प्रमुख परिजन के नाम पर इस कस्बे का नामकरण करके चुकाया हो।

नव स्थापित किले की नींव में नर बलि का प्रसंग जोधपुर के प्रसिद्ध किले मेहरानगढ़ के साथ भी जुड़ा हुआ है। जोधपुर सूरसागर क्षेत्र के भूतपूर्व विधायक श्री मोहन मेघवाल ने बताया कि उनके पूर्वजों में से किन्हीं दो व्यक्तियों ने किले की नींव में जीवित चुन दिया जाना स्वेच्छा से स्वीकार किया था। फलस्वरूप उनके वंशजों को एक बड़ी

जमीन उपहार में मिली। उस जमीन का वे आज तक उपभोग करते रहे हैं तथा छित्तर के पत्थर की उनकी कीमती खानें उसी जमीन का हिस्सा है।

नामकरण से जुड़ा एक अन्य प्रसंग :

लाडनूं के पारीक ब्राह्मणों में एक श्रुति परम्परा से चली आ रही है कि वे इस नगर के प्रारम्भिक वाशिन्दों में से हैं। इस नगर की स्थापना में उनकी भूमिका प्रमुख रही है। नगर स्थापना के अवसर पर किया गया भूमि-पूजन पारीकों के चौक में ही सम्पन्न हुआ था। उसकी स्मृति स्वरूप बना चबूतरा आज तक विद्यमान है। पारीक अपने अग्र पुरुषों में तीन भाइयों के नामों का भी उल्लेख करते हैं। उनके नाम लाडोजी, पाबोजी तथा हेमो जी थे। उनकी मान्यता है कि लाडोजी के नाम पर ही नगर का नाम लाडनूं पड़ा। पाबोजी तथा हेमोजी के नामों पर पाबोलाव तथा हेमा बावड़ी बने।

आज से करीब सात दशक पूर्व हेमा बावड़ी अस्तित्व में थी। वह कस्बे की पूर्व दिशा में वर्तमान इन्द्रसागर कुए के उत्तर में करीब दो सौ कदम की दूरी पर स्थित थी। उपयोग में नहीं आने के कारण उसकी उपादेयता समाप्त हो गई थी। शनैः-शनैः उसे पाट दिया गया। अब उस स्थान पर बस्ती आबाद है और वहाँ बसे परिवारों को 'बावड़ी वाले' विशेषण से सम्बोधित किया जाता है।

पाबोलाव तालाब कस्बे की पूर्व दिशा में करीब चार मील की दूरी पर स्थित है। जिस समय का प्रसंग चल रहा है उस समय कस्बे की पूर्वी सीमा सेवगों के चौक तक ही सिमटी हुई थी। इतनी दूरी पर स्थित तालाब से पनघट का रिश्ता जुड़ना सम्भव नहीं। लाडनूं इलाके की खेतिहर जमीन का फैलाव भी उत्तर और पश्चिम दिशा में अधिक है। पूर्व दिशा में तो बहुत ही कम। ऐसी परिस्थिति में इस तालाब का निर्माण किसी लाडनूंवासी ने करवाया हो—इसकी सम्भावना कम लगती है।

अलबत्ता हेमा बावड़ी के निर्माण का श्रेय पारीक ब्राह्मणों को ही जाता है। इस कस्बे के कुछ बुजुर्ग भी इस आशय की जनश्रुति के प्रचलन की पुष्टि करते हैं। इस मान्यता के सहारे लाडोजी के नाम पर लाडनूं नामकरण की धारणा को बल मिलना भी स्वाभाविक है। परन्तु जनश्रुति यह स्पष्ट नहीं कर पा रही है कि किस पुरुषार्थपूर्ण कार्य के फलस्वरूप ये नामकरण की घटनाएँ घटीं।

विदित रहे उस वक्त के शासकों में अपने नाम पर किसी नगर के नामकरण का मोह कम था जबकि अपनी राज्यसत्ता की स्थापना, उसके स्थायत्व व विस्तार का अधिक।

मसलन झुंझुनूँ शहर की स्थापना कायमखानियों ने की थी लेकिन उसका नामकरण झूँझा नाम के किसी जाट के नाम पर हुआ क्योंकि कायमखानियों को अपने राज्य की स्थापना व विस्तार में झूँझा का बहुत सहयोग रहा था।

गढ़ के निर्माण में नर बलि का प्रसंग :

स्थानीय गढ़ से प्राप्त प्राचीन अवशेषों में एक अद्भुत प्रतिमा प्राप्त हुई है। प्रतिमा हाथ जोड़े हुए प्रतीत होती है। दाहिने हाथ की अंगुलियों के अग्रभाग बाएँ हाथ की तुलना में अपेक्षाकृत ऊँचाई पर हैं। अतः आशीर्वाद की मुद्रा में लक्षित होती है। इसमें शास्त्रीय शैली की झलक है। लोक शैली की देवलियों से यह भिन्न है। ऐसा लगता है कि इसे शीघ्रता से उकेरा गया था। फलस्वरूप छैनियों के निशान स्पष्ट झलकते हैं।

करीब 18 ईंच लम्बे और दस ईंच चौड़े शिलाफलक पर गहराई में खुदाई करके इस प्रतिमा को उभारा गया है। पृष्ठ भाग अनघढ़ ही है। अतः किसी दीवार के सहारे इसे चुनाई करके रखा जाने का विचार लक्षित होता है। प्रतिमा के पैरों के नीचे चार पंक्तियों का एक लेख उत्कीर्ण है। यद्यपि देवनागरी लिपि के अक्षर पुरानी शैली में हैं तथा अस्पष्ट भी हैं, फिर भी काफी कुछ पढ़ने में आ जाता है। पुराने मन्दिरों और किलों के प्रवेश द्वारों के पास लगी हुई ऐसी प्रतिमाएँ किसी आहुति के स्मृति रूप में ही मानी जाती रही हैं।

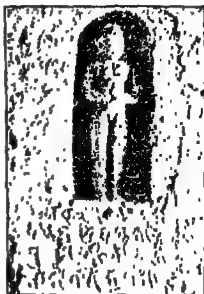
स्थानीय गढ़ ध्वस्त कर दिया गया है तथा उसके एक बड़े भू-भाग पर अब व्यवसायिक भवन बन चुके हैं। कुछ वर्ष पूर्व जब यह गढ़ सलामत था तब उपरोक्त प्रतिमा गढ़ के दूसरे मुख्य द्वार से प्रवेश करने पर करीब दस कदम की दूरी पर, गढ की दाहिनी बाजू की प्राचीर में, जमीन की सतह से लगभग पन्द्र फीट की ऊँचाई पर पट अवस्था में लगी हुई थी। निश्चित रूप से इस प्रतिमा का यह सही स्थान नहीं था। लाडनूं शहर के सम्बन्ध में अपने लेख में चूरू शहर के प्रसिद्ध इतिहास लेखक श्री गोविन्द अग्रवाल ने इस प्रतिमा के शयन अवस्था में लगे होने का उल्लेख किया है। शयन अवस्था से उनका आशय क्षैतिजाधार से ही है।

ऐसा लगता है प्राचीन गढ़ का मूल स्वरूप समय की लम्बी अवधि में आक्रमणकारियों के आघातों से नष्ट हो चुका था। यह प्रतिमा अनेक अन्य ध्वस्त कलात्मक अवशेषों के

साथ पत्थरों के ढेर में दबी हुई पड़ी रही होगी। पन्द्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में जब नागौर के खानजादों के शासनकाल में गढ़ का पुनरोद्धार हुआ तब अन्य पत्थरों के साथ इस प्रतिमा को भी मात्र एक सामान्य पत्थर मानकर प्राचीर निर्माण के काम में ले लिया गया।

प्रतिमा पर अंकित शिलालेख :

शिलालेख का मूल पाठ इस प्रकार है—



संवत् 1010

भाद्र (पद) सुदि 6 शुक्र (दिने)

प (   ) ज दुहित्रक स्व

(भोगांगति) हुतः ॥

(   ) कोष्ठक में दिए गए शब्द या अक्षर कम स्पष्ट हैं। शिलालेख में आया प (   ) ज शब्द 'पद्मज' हो सकता है। पद्मज शब्द ब्रह्मा का पर्यायवाची है। 'ज' से समास होने वाले शब्द अधिकांशतः जातिवाचक होते हैं। अतः 'पद्मज' से यहाँ ब्राह्मण जाति का अर्थ लेना संगत हो सकता है। शिलालेख का तिथि सम्बन्धी अंश करीब-करीब स्पष्ट है तथा मात्र पाँच शब्दों के इस मूल लेख में दो शब्द दुहित्रक तथा हुतः साफ पढ़ने में आते हैं। हुतः शब्द से आहुति परक आशय स्पष्ट होता है। ऐसी आहुति को कोई सामान्य घटना भी नहीं माना जा सकता। प्रतिमा गढ़ से प्राप्त हुई थी अतः उपरोक्त घटना इसी संदर्भ में घटी है। बहुत सम्भव है कि यह आहुति गढ़ के किसी नव-निर्माण के समय दी गई हो।

शिलालेख की कुछ विशेषताएँ :

कई दृष्टियों से यह शिलालेख अभूतपूर्व है। इसकी भाषा अपभ्रंश मिश्रित संस्कृत है। अतः इसका सम्बन्ध किसी विशिष्ट उच्च वर्ग से है। शिलालेख में संवत्, तिथि तथा दिन स्पष्ट है अतः यह किसी घटना के स्मृति स्वरूप ही स्थापित था।

शिलालेख में कोई व्यक्तिगत नाम नहीं है, अतः यह प्रतिमा आहुति की घटना का लिं
प्रतीकात्मक संकेत है। इसका सम्पूर्ण परिवेश बोझिल-सा प्रतीत होता है।
हुत किए गए बालक के सम्बन्ध में सारी जानकारी को गुप्त रखा गया है। छुपाने के
पीछे निश्चित रूप से आत्मग्लानि का भाव लक्षित है।
शिलालेख से सिर्फ इतना ही स्पष्ट है कि कोई दुहित्रक (दुहिता पुत्र) हुत हुआ।

संवत् सर्वेक्षण :

स्वस्तिक चिह्न के बाद प्रतिमा पर संवत् 1010 अंकित है। अगर इस संवत् को विक्रम संवत् माना जाए तो मोहिलों के उद्भव काल से इसका सम्बन्ध बैठा पाना सम्भव नहीं प्रतीत होता। मोहिलवंश की स्थापना का समय विक्रम की ग्यारहवीं सदी का अन्तिम दशक या बारहवीं का प्रथम दशक ही ज्यादा सही है। अतः इस प्रतिमा का सम्बन्ध बागड़ियों से जोड़ना ही युक्तियुक्त है।

लाडणवा पारीक ब्राह्मणों का प्रसंग :

पारीक ब्राह्मणों की जोशी शाखा में लाडणवा एक नख (शासन) है। जोशी शब्द ज्योतिषी का अपभ्रंश रूप है। लाडनू में सबसे पहले बसने वालों में इसी शासन के पारीक ब्राह्मण थे। इनकी कुलदेवी जीण है। जीण कोई पौराणिक नाम नहीं ऐतिहासिक पात्र है। जीण चौहान वंश की थी। उसका उद्भवकाल नौवीं शताब्दी के ईर्द-गिर्द है। मोहिल चौहानों में भी जीण की मान्यता सर्वाधिक है। मोहिल पुत्र हठड़ (हरदत्त) का जीण के मन्दिर में जीर्णोद्धार सम्बन्धी संवत् 1162 का एक शिलालेख भी है।

लाडनू के प्रसंग में लाडणवा पारीक ब्राह्मणों से सम्बन्धित एक जनश्रुति प्रचलित है। उस जनश्रुति से इस कुल के किसी सदस्य की गढ़ की नींव में आहुति की बात की पुष्टि होती है। जनश्रुति में हवि के रूप में इस कुल के किसी बालक का बलिदान इंगित होता है। ऊपर वर्णित शिलालेख से भी जाहिर होता है कि कोई दुहित्रक (दुहिता पुत्र) हुत हुआ। स्थिति कुछ भी रही हो—कहते हैं इस घटना से ब्राह्मण पुत्री (बालक की माँ) का आक्रोश इतना बढ़ गया था कि उसने अपने पितृ कुल को शाप दे दिया था कि उनके कुल का कोई भी परिवार इस शहर में फलीभूत नहीं हो सकेगा।

कहते हैं इस घटना से लाडणवा पारीक परिवारों की आत्मग्लानि का भाव इस कदर घनीभूत हुआ कि वे नगर त्याग कर हमेशा के लिए अन्यत्र चले गए। सदियाँ बीत गई परन्तु कोई भी लाडणवा परिवार पुनः लौटकर इस शहर में नहीं बसा। पारीकों के भाट ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है। उसके अनुसार लाडनू छोड़कर कुछ परिवार चरला कुछ परावा आदि गाँवों को तथा कुछ सुदूर दक्षिण में महाराष्ट्र के जलगाँव में चले गए थे।

लाडनू नामकरण की पहेली फिर भी सुलझी नहीं। यह तय कर पाना भी कठिन हो रहा है कि लाडनू में वास करने के कारण पारीकों की इस शाखा का नाम लाडणवा पड़ा या लाडणवा पारीकों के कारण इस शहर का नाम लाडनू पड़ा। यद्यपि गाँवों के आधार पर भी उपजातियाँ बनी हैं, जैसे इसी पारीक जाति की एक उपशाखा कसूम्बीवाल है जो कसूम्बी गाँव से निकली।

पारीकों के भाट का इस सम्बन्ध में कहना है कि लाडणवा पारीकों के कारण ही इस शहर का नाम लाडनू पड़ा। यह बात कुछ सीमा तक सही भी लगती है। अगर लाडनू के आधार पर शाखा जन्मी होती तो उसका नाम लाडणवा नहीं होकर लाडनूवाल होता जैसा कि अनेक अन्य जातीय समूहों में लाडनूवाल नख (शासन) प्रचलित है। काफी कुछ सम्भावना उभरती-सी प्रतीत होती है कि लाडनू नामकरण की यह पहेली—नरबलि सम्बन्धी प्रचलित जनश्रुति, ऊपर वर्णित प्रतिमा तथा उस पर अंकित लेख के ईर्द-गिर्द घूमती हुई नजर आती है। फिर भी किसी तरह का निश्चित मत दे पाने की स्थिति में मैं नहीं हूँ। इस विषय को शोध के लिए खुला छोड़ देना ही श्रेयस्कर है।

नामकरण सम्बन्धी अन्य अटकलें :

यत्र-तत्र प्रकाशित अखबारी लेखन मे कुछ लेखकों ने यह भी प्रतिपादित किया है कि इस कस्बे का लाडनू नाम लाडखानियों के कारण पड़ा। यह बात न केवल निराधार है बल्कि इतिहास की दृष्टि से सर्वथा असंगत भी है। लाडखानी शेखावतों की एक शाखा है और शेखावतों का उद्‌भव एक परवर्ती घटना है। लाडखानियों का इस कस्बे पर कभी भी शासनाधिकार नहीं रहा। अतः उनके नाम पर इस कस्बे का नामकरण हुआ हो, ऐसी कोई सम्भावना नहीं।

जाने लगी। इस आधार पर डाहलियों को शिशुपाल वंशी मानने में कोई कठि नहीं।

चन्देरी विशुद्ध रूप से एक ऐतिहासिक नगर है। नावीं शताब्दी से इस ... में उल्लेख मिलता है। चन्देरी का सम्बन्ध चन्देल राजवंश से अवश्य रहा। चन्दे का उद्‌भव काल भी नौवी शताब्दी के आस-पास ही माना जाता है। प्रारम्भ में उनः राज्य विस्तार भी बुन्देलखण्ड, गुना चन्देरी से ही प्रारम्भ हुआ। जबकि पुराण पुरु शिशपुाल का चन्देरी से व्यक्तिशः किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध जोड़ना सम्भव है नहीं है।

श्रीमद्‌भागवत पुराण और महाभारत में शिशुपाल को चेदि नरेश कहा है न कि चन्देरी नरेश। यह तो मात्र एक ऐतिहासिक संयोग है कि चन्देरी पर शिशुपाल वंशी डाहलियों का शासन हुआ। लेकिन चन्देरी को शिशुपाल की राजधानी मानना सरासर एक ऐतिहासिक भूल है। लाडनू के सन्दर्भ में भी करीब-करीब ऐसा ही घटित हुआ। यहाँ भी शिशुपाल वंशी डाहलियों का राज रहा लेकिन स्वयं शिशुपाल का यहाँ राज बताना या शिशुपाल से किसी तरह का व्यक्तिगत सम्बन्ध जोड़ना एक निराधार प्रयास है।

एक बात यह भी विशेष ध्यान देने की है कि लाडनू पर डाहलियों का शासन उस वंश के प्रथम उत्कर्ष काल में प्रारम्भ हुआ जो करीब ईसा की तीसरी शताब्दी से सम्बन्ध रखता है। उस समय तो वर्तमान चन्देरी नगरी अस्तित्व में ही नहीं आई थी। लाडनूं और चन्देरी में सिर्फ एक ही समानता है कि दोनों ही स्थानों पर डाहलियों का शासन रहा लेकिन वह रहा इतिहास के दो सर्वथा भिन्न कालखण्डों में—अतः दोनों स्थानों की तुलना में किसी तरह की कोई संगतता नहीं प्रतीत होती।

लाडनू को चन्देरी नगरी मानने की भ्रान्ति का आधार पृथ्वीराज रासो पुस्तक है। यह पुस्तक इस शहर में गत शताब्दी के तीसरे दशक में ओसवाल हितकारिणी सभा के गठन के साथ ही उसके पुस्तकालय में आ गई थी। उस पुस्तक को उस समय के शहर के प्रायः सभी विद्वत् जनों ने पढ़ा। साथ-साथ ... मृणोत की ख्यात भी पढ़ी जिससे लाडनू पर शिशुपाल वंशी डाहलियों ... है। लेकिन इतिहास की गहराई में कोई

ार्फ इस एक समानता के आधार पर कि चन्देरी और लाडनू पर शिशुपालवंशी हलियों का शासन रहा—लाडनू को ही चन्देरी मान लेना एक निराधार बात है। और वयं शिशुपाल की राजधानी मान लेने का भी कोई स्पष्ट आधार प्राप्त नहीं होता है।

'III

ृथ्वीराज रासो में लाडनू

ृथ्वीराज रासो में लाडनू नाम का उल्लेख है। यद्यपि 'पृथ्वीराज रासो' एक रस प्रधान ाहित्यिक रचना है तथा इसके ऐतिहासिक प्रसंगों पर अनेक बार प्रश्न चिह्न भी लगे ;, फिर भी उसका ऐतिहासिक स्वरूप पूर्ण रूप से अविश्वसनीय मानकर नकारा नहीं ा सकता है। प्रसंग कैमास युद्ध (अध्याय 43) से सम्बन्धित है।

ासो के अनुसार काबुल का बादशाह शहाबुद्दीन (मुहम्मद) गोरी अनेक बार पृथ्वीराज ौहान से पराजित हुआ। गोरी सदैव पृथ्वीराज की किसी कमजोर स्थिति की टोह में हता था। उसको अपने गुप्तचरों से सन्देश मिला कि पृथ्वीराज खट्टूबन (वर्तमान में ाटू) में शिकार खेलने में रत है। विदित रहे पृथ्वीराज के शिकार अभियान बहुत म्बे चलते थे।

गोरी ने एक बड़े सैनिक दस्ते के साथ पंजाब होकर राजपूताने की धरती में प्रवेश किया। उसने सारुण्डा नाम के स्थान पर डेरा डाला। उस समय मरु प्रदेश का यह क्षेत्र निरापद था। कोई शक्तिशाली राजवंश इस मार्ग में काबिज नहीं था। अत: किसी प्रकार के सैनिक विरोध की कोई सम्भावना नहीं थी। सारुण्डा गाँव लाडनू की उत्तर-पश्चिमी दिशा में नोखा तहसील में आज भी मौजूद है। इस धरती पर राठौड़ों का अधिकार हो जाने पर राव बीका ने सारुण्डा की जागीर अपने चाचा माण्डल को दे दी थी। माण्डल जी के वंशज माण्डलोत कहलाए। देश को आजादी मिलने तक यह जागीर माण्डलोतों के ही अधिकार में रही।

पृथ्वीराज चौहान को गोरी के मनसूबे और हरकत की भनक मिल गई थी। उन्होंने भी अपने सामन्तों से सलाह मशविरा किया। पृथ्वीराज के प्रमुख सामन्त राव चावण्ड ने

सलाह दी कि पृथ्वीराज स्वयं खाटू में ही रहें। इस बार उनके सामन्त ही गोरी से नि लेंगे। परन्तु पृथ्वीराज इस बात से सहमत नहीं हुए। अपने सामन्तों को युद्ध में झोंक स्वयं मौज-मस्ती करते रहना उन्हें कतई गवारा नहीं था। तब तक गोरी अपनी से सहित लाडनू पहुँच गया था। पृथ्वीराज की सेना ने भी पांचासर में अपना मोर्चा ज लिया। रासो में इस प्रसंग में काव्य रचना इस प्रकार है–

चल्यो साह खद्दू दिशा, किय मेलान मिलान।
लाल, हसन, आकूब, सम, च्यार भए अगिवान॥
चारि खान अगवान, सहित सारुण्ड सु अइये।
सुनी खबरि चहुआन, मंत्रि कैमास बुलइये॥
इह कहे राव चावण्ड तब, राज रहे खट्टू धरह।
हम जाई जुरैं सामंत बंधि, साह आनि घरह॥
किय मुकाम चहुआन दल, पुर पांचोसर नाम।
सुनी खबरि सुरतान की, लखि लाडनू मुकाम॥

इस युद्ध में पृथ्वीराज की विजय हुई। उन्होंने गोरी से हरजाना वसूल करके छो दिया। कैमास युद्ध का समय रासो में चेत बदी एकादसी सोमवार संवत् 1140 दि गया है। रासो के टीकाकार के अनुसार यह अनन्द संवत् है तथा इसके सभी प्रसंगों में नब्बे वर्ष जोड़ देने पर विक्रम संवत् उभरता है। अतः उपरोक्त युद्ध विक्रम संवत् 13 तद्नुसार ई. सन् 1173 में हुआ साबित होता है। यह तिथि इतिहास संगत है।

IX

डाहलिया राजवंश : लाडनू के प्रसंग में

मारवाड़ के प्रसिद्ध इतिहासकार नैणसी मुणोत तथा कविवर बांकीदास ने प्राची काल में लाडनूं पर डाहलियों का राज्य होना माना है। बांकीदास का तो यहाँ तक कथन है कि लाडनू को बसाया ही डाहलियों ने था। नैणसी उनके राज्यकाल की अवधि 1500 वर्ष बताते हैं। जनश्रुति के आधार पर भी इस क्षेत्र पर शिशुपाल वंश

डाहलियों का शासन होना इंगित होता है। प्राचीन दिखने के अति उत्साह में लोग लाडनू को बूढ़ी चन्देरी भी कहते हैं।

उपरोक्त सभी कथनों से एक बात समान रूप से ध्वनित होती है कि कस्बे के प्रारम्भिक इतिहास के किसी महत्त्वपूर्ण कालखण्ड में यहाँ डाहलिया राजवंश काबिज था। अतः एक प्रश्न उठना सहज स्वाभाविक है कि 'डाहलिए' थे कौन ?

इस प्रश्न का उत्तर ढूँढने के लिए तत्कालीन भारत के राजनैतिक परिदृश्य पर नजर डालना आवश्यक हो जाता है। मध्य भारत (वर्तमान में मध्यप्रदेश) देश का हृदय प्रदेश है। देश के सर्वाधिक प्राकृतिक सम्पदा सम्पन्न, उपजाऊ और वैभवशाली प्रदेशों मे इसकी गिनती होती है। उत्तरी भारत के अधिकतर राजवंश इसकी गोद में पले। विदेशी आक्रमणकारियों को भी इस भू-भाग ने बहुत आकर्षित किया।

करीब सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ से बारहवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों तक उत्तरी भारत के इतिहास में प्रतिहार राजवंश बहुत प्रभावी रहा। ई. सन् 712 में अरब आक्रान्ताओं ने सिन्ध को जीत लिया था। उस समय प्रतिहार बहुत शक्तिशाली थे। उन्होंने अरब हमलावरों को आगे बढ़ने से रोका। राजपूताने का समस्त गुर्जर प्रदेश प्रतिहारों के अधिकार में था। मालवा के पंवार तथा बून्देलखण्ड के चन्देल उनके सामन्त थे। उनकी सत्ता का फैलाव बंगाल की सीमा को छू चुका था। लेकिन इस सत्ता प्रसार में प्रतिहारों को राष्ट्रकूटों (राठौड़ों) से परास्त भी होना पड़ा। तब से सत्ता पर प्रतिहारों की पकड़ शिथिल पड़ने लगी।

कालान्तर में प्रतिहार साम्राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गया। बुन्देलखण्ड के चन्देल, मालवा के परमार, ग्वालियर में कच्छपघट, कन्नौज में गहरवाल, गुजरात में चालुक्य (सोलंकी) राजवंशों ने अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए। इसी कालखण्ड में चेदि प्रदेश के 'कलचुरि' भी अपनी शक्ति पुनः बटोरने में सफल हुए। उससे पहले प्रतिहारों ने उन्हें एक छोटे से प्रदेश तक बने रहने को विवश कर दिया था।

मध्य प्रदेश के जबलपुर शहर के आस-पास का क्षेत्र प्राचीनकाल में चेदि प्रदेश के नाम से जाना जाता था। उसकी राजधानी त्रिपुर थी जो आजकल तेवर नाम से पहचानी

जाती है तथा जबलपुर शहर से करीब दस मील पश्चिम में स्थित है। कलचुरि राजाओं के ताम्रपत्रों तथा शिलालेखों से विदित होता है कि वे अपना सम्बन्ध चन्द्रवंश की हैहय शाखा से जोड़ते थे। श्रीमद्भागवत पुराण में चन्द्रवंश का श्रृंखलाक्रम वर्णित है, जिसमें हैहयवंश का उल्लेख इस प्रकार है—

चन्द्रमा से बुध उत्पन्न हुए। बुध द्वारा सूर्य पुत्री इला के गर्भ से पुरुरवा का जन्म हुआ। पुरुरवा से नहुष, नहुष से ययाति। ययाति की सन्तानों में यदु तथा पुरु प्रसिद्ध हुए। यदु से सहस्रजित, फिर शतजित, शतजित से हैहय हुए। इसी वंश में सहस्रबाहु अर्जुन हुआ जिसका वध भगवान परशुराम ने किया। पुरु या कुरु परम्परा में महाभारत के प्रसिद्ध राजवंश कौरव और पाण्डव हुए।

हैहयवंश में ही विदर्भ हुए। विदर्भ से रोमपाद फिर उशिक। उशिक से चेदि। चेदिवंश में दमघोष हुए। दमघोष का पुत्र शिशुपाल हुआ। यदुवंश की एक अन्य शाखा में वसुदेव के पुत्र कृष्ण हुए। कालान्तर में चेदि प्रदेश अपने आंचलिक नाम डाहल से जाना जाने लगा। इसी आधार पर चेदि प्रदेश के कलचुरि राजा डाहलिए कहलाए। हैहयवंश की चेदि शाखा में जन्मे शिशुपाल का सम्बन्ध भी इसी आधार पर डाहलियों से जुड़ गया। डाहलियों को परमार मानना एक ऐतिहासिक भूल है। इस भूल को नैणसी ने प्रारम्भ किया था और आगे के इतिहासकार उसे उसी रूप में दोहराते गए। तथ्य तो यह है कि डाहलियों, परमारों, चन्देलों, चालुक्यों और राष्ट्रकूटों में सदैव ही परस्पर अनबन रही। स्थानीय बड़े जैन मन्दिर में भी हाल ही मे लगे एक शिलालेख में डाहलियों को शिशुपाल वंशी परमार लिख दिया है। तथ्य यह है कि पुराण पुरुष शिशुपाल का परमारों से कोई सम्बन्ध नहीं था। इतिहास सम्बन्धी इन भूलों को दुरुस्त कर लेना ही उचित है।

हैहयवंश की पहचान एक पौराणिक राजवंश के रूप में है जबकि कलचुरि राजवंश का आधार विशुद्ध रूप से ऐतिहासिक है। किसी ऐतिहासिक राजवंश का सम्बन्ध किसी पौराणिक राजवंश से स्थापित करने में बड़ी अड़चन आती है क्योंकि दोनों परम्पराओं के बीच की अनेक बहुमूल्य कड़ियाँ काल के लम्बे अन्तराल में विलुप्त हो गई होती हैं। कठिनाई तब और बढ़ जाती है जब पुराणकारों ने तिथिक्रम की तरफ कभी गम्भीरता से ध्यान ही नहीं दिया।

कलचुरि राजवंश का इतिवृत्तात्मक आलेख कहीं उपलब्ध नहीं है, फिर भी अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा ऐतिहासिक प्रसंगों के आधार पर इसकी रूपरेखा उभारी जा सकती है। हैहयवंश के कुछ लोग महाभारत काल से ही शौंडिक (कलाल) कहलाते थे। कलचुरि राजाओं के कतिपय ताम्रपत्रों से इस तथ्य की पुष्टि भी होती है। ये लोग शैव थे। पाशुपत पंथी होने के कारण शराब के उपयोग तथा निर्माण से उन्हें किसी प्रकार का कोई परहेज नहीं था।

सम्भवतः इस कारण ही उनका नाम कलचुरि पड़ गया। संस्कृत में शराब को कल्य कहते हैं और चुरि का अर्थ होता है चुआने वाला। सम्भावना यह भी है कि जो लोग राजघराने से सम्बन्धित रहे वे कलचुरि कहलाए तथा जिन्होंने शराब का व्यापार शुरु कर दिया वे कल्यवार कहलाए। कल्यवार शब्द ही अपभ्रंश होते होते कलवार और फिर कलाल बन गया।

भारत के इतिहास में कलचुरि नाम एक अति प्राचीन राजवंश के रूप में जाना जाता है। उत्तरी भारत में कलचुरियों की डाहलियो के नाम से पहचान उभरी जबकि दक्षिण भारत में उनका संस्कृत नाम कलचुरि ही प्रचलन में रहा। इस राजवंश की प्रसिद्धि का सबसे सशक्त प्रमाण कलचुरि संवत् से मिलता है। कलचुरि संवत् — विक्रम संवत् 306 की अश्विन शुक्ला 1 से प्रारम्भ होना साबित होता है। इस संवत् का प्रचलन ईसा की तेरहवी शताब्दी तक मिलता है।

कलचुरि संवत् का उपयोग न केवल कलचुरि ताम्रपत्रों तथा लेखों में मिलता है बल्कि उनके समकालीन गुजरात के चालुक्यो, गुर्जर, सेन्द्रक और त्रैकूटक वंश के राजाओं ने भी अपने ताम्रपत्रों में उसका बहुत उपयोग किया है। नि:सन्देह इस संवत् का प्रसारण काल इस वंश के उत्कर्ष का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काल रहा होगा। अतः उससे सौ या दौ सौ वर्ष पहले कलचुरियों के उद्भव की कल्पना करना अव्यावहारिक प्रतीत नहीं होता।

कलचुरियों ने अपने साम्राज्य का विस्तार भी बहुत किया। अपने प्रारम्भिक उत्कर्ष काल मे यह राजवंश देश में दूर-दूर तक फैला। मध्य भारत के बड़े भू-भाग पर काबिज होने के बाद वर्तमान उत्तरप्रदेश, राजस्थान के गुर्जर प्रदेश तथा बिहार के भी कुछ इलाके इसकी प्रसार सीमा में आ गए। उन्होने गुजरात के कुछ भू-भाग पर भी

कब्जा जमा लिया था। अपने उत्कर्ष के दूसरे दौर में दक्षिण का महाकौशल तथा आन्ध्रप्रदेश का कल्याण इलाका भी इस वंश के अधिकार क्षेत्र में आ गए। महाकौशल तथा कल्याण के कलचुरि शासक अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते थे।

कलचुरि राजवंश ने कई उतार-चढ़ाव देखे। वि.सं. 920 से कलचुरियों के इतिहास की कड़ियाँ काफी कुछ स्पष्ट रूप से प्राप्त हैं। इससे पूर्व का इतिहास तो कहीं-कहीं प्रसंगवश ही निकल आता है। मसलन चालुक्यों के इतिहास से जानकारी मिलती है कि सवत् 550 के आसपास दक्षिण (कर्णाट) पर चालुक्यों ने अपना राज्य स्थापित किया था। चालुक्यों ने यह धरती नल, मौर्य, राष्ट्रकूट और कलचुरियों से छीनी थी। एक अन्य लेख से प्रमाणित होता है कि चालुक्य मंगलीश (शंक संवत् 513-532, वि.सं. 648-666) ने कलचुरियों से राजलक्ष्मी छीनी थी।

चालुक्य विक्रमादित्य (वि.सं. 753-80) ने हैहयवंशी डाहलियों की दो बहिनों से विवाह किया था जिसमें बड़ी का नाम लोक महादेवी तथा छोटी का त्रिलोक्य महादेवी था जिससे कीर्तिवर्मा (द्वितीय) ने जन्म लिया। इन घटनाओं से सिद्ध होता है कि वि.म 550 से 790 के बीच डाहलियों का राज्य चालुक्य राज्य के पूर्व मे चेदिप्रदेश (वर्तमान जबलपुर के आस-पास का क्षेत्र), गुजरात के लाट प्रदेश (भड़ौच) और राजस्थान के गुर्जर प्रदेश में था। परन्तु इस सम्बन्ध में किसी तरह का श्रृंखलाबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं।

बनारस से मिले एक दानपत्र में कोकलदेव नाम के एक डाहलिया राजा का नाम प्रकाश में आता है। वह बड़ा शास्त्रवेता, धर्मपरायण, परोपकारी और दानी था। कोकलदेव की परम्परा में करीब 16 राजाओं का क्रमवार सिलसिला स्थापित कर पाना सम्भव हुआ है। दक्षिण का राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज कोकलदेव का समकालीन था। कृष्णराज के समय के कुछ लेख शक संवत् 799 (वि.सं. 932), 822 (वि.सं. 957), 824 (वि.सं. 959) और 833 (वि.सं. 968) के मिले हैं। इन लेखों से प्रमाणित होता है कि कृष्णराज का विवाह चेदिनरेश कोकल की पुत्री से हुआ था। कोकलदेव का राज्य वि.सं. 920 से 960 के बीच अनुमानित किया जाता है।

कोकलदेव से सम्बन्धित एक शिलालेख लाडनूं में भी प्राप्त हुआ है। शिलालेख पर सम्वत् 936 कार्तिक बदी 6 का एक संक्षिप्त लेख उत्कीर्ण है। शिलालेख की

विस्तृत विवेचना अगले पृष्ठों में की गई है। इस शिलालेख का प्राप्त होना लाडनूँ के इतिहास की एक प्रमुख घटना है। इससे यह धारणा पूरी तौर पर प्रमाणित हो जाती है कि इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण काल-खण्ड में यहाँ डाहलियों (कलचुरियों) का राज्य रहा।

कोकलदेव की परम्परा में गांगेयदेव भी काफी प्रसिद्ध हुए। कलचुरियों के लेखों में गांगेयदेव की बड़ी प्रशंसा मिलती है। महोबा से मिले चन्देलों के एक लेख से भी गांगेयदेव की प्रसिद्धि का आभास मिलता है। अल्बेरूनी ने अपने प्रसिद्ध ऐतिहासिक वर्णन में गांगेयदेव का उल्लेख किया है। गांगेयदेव के पुत्र कर्णदेव का एक ताम्रपत्र कलचुरि संवत् 793 वि.सं. 1099 का प्राप्त हुआ है जिसमें उल्लेख है कि वेणगंगा में स्नान करके अपने पिता श्रीमद्गांगेयदेव के संवत्सर श्राद्ध पर पण्डित विश्वरूप को फागुन कृष्णा द्वितीया के दिन सूसी गांव दान में दिया था। डाहलियावंश में कर्णदेव एक प्रतापी राजा हुआ। उसने अपने नाम से कर्णावती नगरी बसाई। जनरल कनिंघम के मतानुसार इस नगरी के अवशेष मध्यप्रदेश के कारीतलाई के पास आज भी उपलब्ध हैं। काशी का कर्णमेरु मन्दिर भी उसी ने बनवाया। भेड़ाघाट के एक संस्कृत लेख में उसकी प्रशस्ति इस प्रकार वर्णित है—कर्णदेव के विक्रम और प्रताप के सामने पांण्ड्य देश के राजाओं ने उग्रता छोड़ दी, मुरलों ने गर्व करना छोड़ दिया, कुंग सीधी चाल चलने लगे, बंग व कलिंग देश वाले कांप गए, कीरवाले पिंजरे के तोते की तरह चुप बैठे रहे और हूणो ने हर्ष मनाना छोड़ दिया। (Ep. Ind. Vol II, Page-11)

'प्रबन्ध चिन्तामणि' में कर्णदेव के सम्बन्ध में वृतान्त इस प्रकार है— 'डाहल देश के राजा की देमती नाम की राणी से कर्ण का जन्म हुआ था। वह वीर तथा नीतिनिपुण था। 136 राजा उसकी सेवा में रहते थे। विद्यापति आदि महाकवियों से उसकी सभा विभूषित थी। कर्णदेव मालवे के प्रसिद्ध राजा भोज का समकालीन था। कर्ण ने चालुक्यराज भीम को साथ लेकर राजा भोज पर आक्रमण कर दिया था। राजा भोज अस्वस्थ थे। कर्ण ने राजा भोज का खजाना भी लूट लिया था। इसका बदला भोज के वंशज उदयादित्य ने डाहल राजा कर्ण को हरा कर लिया। (Ep. Ind. Vol II, Page-185)

जैन धर्म के प्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने भी अपने एक काव्य ग्रंथ मे डाहलियावं कर्ण का विवरण दिया है। उसने लिखा है कि सोलंकी राजा भीम ने डाहलिया नं कर्ण को पराजित कर दिया था। कश्मीर के विल्हण कवि ने अपने ग 'विक्रमांकदेवचरित' में डाहल के राजा कर्ण का कालींजर राजाओं के लिए कलि होना लिखा है। उपरोक्त उद्धरणों से कर्ण का अनेक पड़ोसी राजाओं पर विजय प सिद्ध होता है। कई बार वह स्वयं भी पराजित हुआ। उसकी राणी हूण वंश की थ उससे यशः कर्णदेव का जन्म हुआ। यशः कर्णदेव का उत्तराधिकारी गयकर्णदेव हु चेदि संवत् 902 (वि.सं. 1208) का एक शिलालेख त्रिपुर से मिला है जो गयकर्णदेव सम्बन्धित है।

पृथ्वीराज विजय महाकाव्य से विदित होता है कि अजमेर के चौहान राजा सोमेश्व बचपन से ही अपने नाना गुजरात के सिद्धराज जयसिंह के पास रहे। उनका विव डाहल राजा की कन्या कर्पूरीदेवी से हुआ। कहते हैं डाहलियों का शासन विस्तार उ समय खाटू तक भी था और कर्पूरीदेवी खाटू के डाहलिया नरेश की पुत्री थी। इन कर्पूरीदेवी के गर्भ से इतिहास पुरुष पृथ्वीराज (तृतीय) का जन्म हुआ। इस प्रक डाहलियावंश को पृथ्वीराज का ननिहाल पक्ष होने का गौरव भी प्राप्त है।

इस श्रृंखला के सोलहवें राजा अजयसिंह देव हुए। अपने पिता विजयसिंह देव के चेदि संवत् 932 (वि.सं. 1237) के एक लेख में अजयसिंह देव का नामोल्लेख है। इस राजा के बाद डाहलियावंश का कोई भी हाल नहीं मिलता। सम्भवतः उसके पु त्रैलोक्य वर्मा को हराकर रीवां के बघेलों ने इस वंश की इतिश्री कर दी। डाहलियों की मुद्रा में लक्ष्मी की मूर्ति मिलती है, जिसमें हाथी अंकित हैं। इसी तरह की लक्ष्मी की एक प्रतिमा लाडनूँ में भी प्राप्त हुई है। पशुपतिनाथ शिव की भी एक खण्डित मूर्ति मिली है।

दक्षिण भारत में भी कलचुरि अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुए। इस श्रृंखला में कलिंगराज एक प्रसिद्ध शासक हुआ। उसका राज्य दक्षिण कौशल (महाकौशल) में था। उसका वंशधर जाजलदेव भी एक प्रसिद्ध शासक हुआ। जाजलदेव– चेदि नरेश यशकर्ण, कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द और महोबे के चन्देल राजा कीर्तिवर्मा का समकालीन था। इन सभी राजाओं से उसने मित्रभाव बनाए रखा। दक्षिण में ही कलचुरियों

का एक अन्य राज्य आन्ध्रप्रदेश के कल्याण नगर में था। इस शाखा का बिज्जलदेव एक प्रसिद्ध शासक हुआ। शक् संवत् 1084 (वि.सं. 1219) के एक शिलालेख में इस राजा के लिए महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक आदि स्वतन्त्र राजाओं के विरुद् मिले हैं।

बिज्जलदेव के समय में जैनधर्म का अधिक प्रचार हुआ। उसी काल में बसव नामके एक ब्राह्मण ने लिंगायत नाम का नया शैव पंथ चलाया। जैनों और शैवों में परस्पर विरोध भी बना। ऐसा प्रतीत होता है कलचुरि शासक (डाहलिए) धर्म की दृष्टि से उदार थे। बहुत सम्भव है कि लाडनू और रिणी के प्रसिद्ध जैन मन्दिर उन्ही के राज्य काल में बने। साथ-साथ दोनों ही स्थानों पर प्राप्त होने वाली शिव प्रतिमाओं के आधार पर उनका शैव होना भी लक्षित होता है।

यह है संक्षिप्त इतिहास कलचुरि या डाहलियावंश का—जो इस देश में ईसा की पहली शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक अस्तित्व में रहा। इन्हीं डाहलियों का लाडनू, खाटू, रिणी आदि स्थानों पर भी राज्य होना माना जाता है। यह सुनिश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि डाहलियावंशी किसी शाखा ने स्वतन्त्र रूप से अपना अस्तित्व लाडनू पर बनाए रखा या यह शहर उनकी केन्द्रीय सत्ता, जो चेदि प्रदेश के त्रिपुर नगर में अवस्थित थी, के अधीन रहा। यह निश्चित है कि कस्बे का 'लाडनू' नाम उस समय तक अस्तित्व में नहीं आया था। यहाँ यह प्रश्न फिर उठना स्वाभाविक है कि इस क्षेत्र पर डाहलियों का अधिकार किन परिस्थितियों और इतिहास के किस कालखण्ड में हुआ ?

मध्यभारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा राजपूताने के गुर्जर प्रदेश को छूती थी। अपने प्रारम्भिक उत्कर्षकाल (ईसा की तीसरी शताब्दी) में मालवा सहित सम्पूर्ण मध्यभारत पर अधिकार कर लेने के बाद गुर्जर प्रदेश पर अधिकार कर लेना डाहलियों के लिए आसान हो गया। लाडनू आदि स्थानों पर वे उसी दौर में काबिज हो गए। उस काल में सत्ता के लिए संघर्ष देश के सम्पन्न प्रदेशों तक ही सीमित था। अतः राजस्थान के इस निर्जन भू-भाग पर डाहलियों को अपना राज्य स्थापित करने में किसी तरह के प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा।

अपने उत्कर्ष के दूसरे दौर में डाहलियों की नजर दक्षिण भारत की तरफ ही अधिक रही। अतः इस दौर में उनका राजस्थान की ओर मुख करना सम्भव नहीं लगता।

इतिहासकारों का भी यही मत है कि डाहलियों से सत्ता बागड़ियों ने छीनी थी तब डाहलिए बहुत लम्बे समय तक लाडनूं पर काबिज रहे—यह तभी सम्भव हो सकता है जब अपने प्रथम उत्कर्ष काल, ईसा की तीसरी शताब्दी में ही डाहलिए लाडनूं पर काबिज हो गए हों।

ईसा की दसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में रिणी (वर्तमान में तारानगर) पर भी चाहिल चौहान काबिज हो गए थे। चाहिल भी एक प्रकार से बागड़ी श्रेणी के ही थे। अतः ईसा की दसवी शताब्दी के पदार्पण के साथ ही राजस्थान के इस गुर्जर क्षेत्र में डाहलियों के राज्य का सूर्य सदैव के लिए अस्त हो गया। कहते हैं रिणीपाल नाम के डाहलिया शासक ने रिणी की स्थापना की थी और इस परम्परा में रिणी का अन्तिम शासक जसवन्त डाहलिया हुआ।

लाडनूं और रिणी के जैन मन्दिर भी डाहलिया काल में ही बने। उस समय तक दक्षिण भारत के कलचुरि (डाहलिए) जैन धर्म को प्रोत्साहन देने लगे थे अतः इस सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि डाहलियों का झुकाव धीरे-धीरे जैन धर्म की ओर हुआ। फिर भी मैं कोई आग्रह स्थापित नहीं करना चाहता। इस विषय को शोध के लिए खुला छोड़ना ही श्रेयस्कर मानता हूँ।

डाहलिया काल के कुछ शिलालेख तथा प्राचीन शिल्प अवशेष

मेरी मान्यता है कि इस कस्बे से प्राप्त शास्त्रीय शैलीगत सभी मूर्तियाँ डाहलिया काल की हैं। डाहलियों का सम्बन्ध मध्य भारत सहित शेष दक्षिण भारत से भी था। उनके साथ उन प्रदेशों के शिल्पी भी यहाँ आए और उन्होंने कलात्मक सुन्दर मूर्तियों का निर्माण किया। विदित रहे मोहिल काल की प्रायः सभी देवलियाँ लोकशैली में हैं जबकि राजपूत काल का स्थापत्य समन्वित शैली का है। उनमें ईरानी शैली का प्रभाव स्पष्ट झलकता है।

शिलालेख

स्थानीय सब्जी मण्डी के प्रतिष्ठित आढ़ती श्री मोहनसिंह जेतमाल के पास दो लेख सहित प्रतिमा उपलब्ध हैं। ये प्रतिमाएँ उन्हें अपना आवासीय भवन बनवाते समय

नींवों की खुदाई से प्राप्त हुई थी। श्री जेतमाल का निवास स्थान गढ़ परिसर के ठीक उत्तर में है। दोनों ही शिलालेख बड़े ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। दोनों का ही सम्बन्ध डाहलिया काल से है। उनमें से एक में एक खड्गासन प्रतिमा के नीचे निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण है—

श्री संवत् 198 (महा)
सुदी 15 सिव लोयं
सुदित पुत्रो ( )
भोजादित्य ( )

लेख पूरा पढ़ने में नहीं आता है। लेकिन इसका संवत् वर्ष स्पष्ट है। संभवत: यह कलचुरि संवत् है, जो वि.सं. 504 के तुल्य है। कलचुरि या डाहलिया वंश का इतना पुराना शिलालेख अब तक दूसरा उपलब्ध नहीं। इस शहर के इतिहास का भी यह प्राचीनतम दस्तावेज है। डाहलिया वंश पर शोध करने वाले छात्रों के लिए तो इसका मूल्य नि:संदेह बहुत बढ़ जाता है।

दूसरे शिलालेख में एक बैठी हुई (शासनासन) मूर्ति उत्कीर्ण है। उसके नीचे अंकित लेख का अंशत: पठन इस प्रकार है—

संवत् 936
कार्तिक बदी 6
मंगलवारे ( ) श्रि
कुकलदेहु (कोकलदेव) (ह लु)
(त्रं पृ लु सु झ पु)
ॐ प्रीयमी लोकं
सेसिति: ॥

कोष्ठक में दिये गए शब्द या अक्षरों का अर्थ स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। सम्भवत: यह शिलालेख डाहलिया वंश के एक प्रसिद्ध शासक कोकलदेव से सम्बन्धित है। इतिहास के अनुसार कोकलदेव का समय वि.सं. 920 से 960 तक माना गया है। उपरोक्त शिलालेखों से मिली जानकारियों के आधार पर यह प्रामाणिक रूप से माना जा सकता

है कि डाहलिये विक्रम की चौथी शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक लाडनूं क्षेत्र पर कब्जा जमाए रह सके। इस प्रकार उनकी कुल शासनावधि करीब 600 वर्ष हो जाती है। नैणसी ने डाहलियों का लाडनूँ पर एक लम्बे समय तक राज होना बताया है।

पशुपति नाथ शिव की खण्डित प्रतिमा

यह प्रतिमा काले पत्थर में है तथा स्थानीय श्री छोटूसिंह भाटी के पास रखी हुई है। श्री भाटी के निवास स्थान के पास ही गढ़ परिसर में एक तहखाने तथा हौज बनाने के निमित की गई खुदाई (ई.स. 2002) में कुछ खण्डित मूर्तियों के टुकड़े मलबे में श्री भाटी को नजर आए। उन टुकड़ों को उन्होंने बटोर लिया। उनमें एक खण्डित शिव प्रतिमा तथा एक लक्ष्मी की मूर्ति उन्हें मिली। पशुपति रूप में शिव की इस खण्डित प्रतिमा में हाथी तथा सिंह की मुखाकृतियों के साथ गन्धर्व-गन्धर्वी भी अंकित हैं। त्रिशूल का अग्र भाग खण्डित है। संभवतः अपने असली रूप में मूर्ति नान्दी पर आरूढ़ शिव की थी तथा उनके वामपक्ष में उमा की प्रतिमा भी थी लेकिन वह भाग अब उपलब्ध नहीं है। विदित रहे डाहलिए शैव थे तथा लक्ष्मी उनकी कुलदेवी थी।

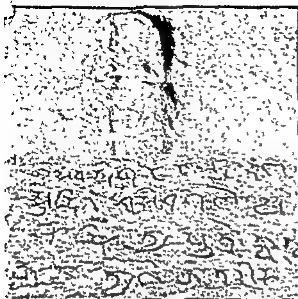
नान्दी पर सवार उमा-महेश की प्रतिमा

यह प्रसिद्ध प्रतिमा गढ़ के मुख्य भवन के सामने की दीवार पर लगी हुई थी। लेकिन वह इस मूर्ति का सही स्थान नहीं था। यह कोई प्राचीन अवशेष था, जो गढ़ के पुनर्निर्माण में वहाँ लगा दिया गया था। अब वह प्रतिमा जोड स्थित बंगले की एक दीवार पर लगी हुई है। यह खण्डित नहीं है लेकिन उसको आधुनिक पेन्ट से पोत दिया गया है, जिससे इसका प्राचीन शिल्प वैभव कुछ सीमा तक मन्द पड़ गया है।

एक अद्भुत देवी प्रतिमा

यह प्रतिमा भी गढ़ परिसर से प्राप्त हुई थी। इस समय यह जोड़ स्थित बंगले में रखी हुई है। यह देवी प्रतिमा प्रसवासन स्थिति में है। इस तरह का शिल्प बहुत ही कम उपलब्ध है। इसी श्रेणी की एक मूर्ति चित्तौड़गढ़ के गुप्तेश्वर महादेव मन्दिर में पूजान्तर्गत है। इस शैली की कतिपय अन्य मूर्तियाँ सुंधा माता मन्दिर, जिला-जालौर तथा गुजरात की मंजुश्री, वापी से भी प्रकाश में आई हैं। संभवतः देवी का यह जग-जननी स्वरूप है। यह प्रतिमा अनुमानतः 8वीं शताब्दी की है।

डाहल काल के शिलालेख

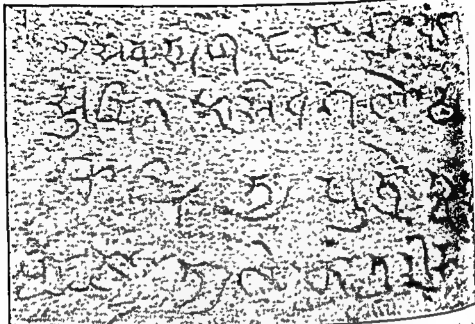


इस लेख में सम्वत् 198 अंकित है, जो संभवतः कलचुरि सम्वत् है।



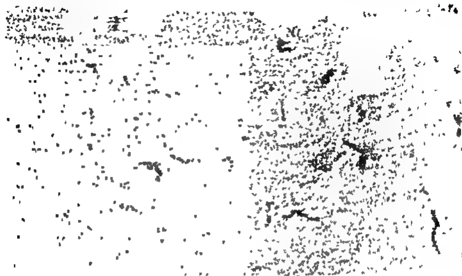
इस शिलालेख में सम्वत् 936 कार्तिक बदी 6, मंगलवार अंकित है।

पिछले पृष्ठ के शिलालेख संवर्द्धित रूप में



नृत्यरत गणेश

डाहलिया काल के कुछ पुरातात्विक शिल्प अवशेष



एक देवी प्रतिमा



विष्णु प्रतिमा

सौजन्य—श्री आशाराम पुजारी, निरंजनी सम्प्रदाय मन्दिर, लाडनूं



लक्ष्मी





एक भाँति शिल्प



कुबेर





नन्दी पर सवार शिव-पार्वती



एक खण्डित मूर्ति शिल्प

प्राप्ति स्थान-
गढ़ परिसर

इतिहास और व्यक्ति



मानव विकास की समस्त प्रक्रिया को समेटता हुआ इतिहास सदा गति[illegible] आगे चलता है। विभिन्न संस्कृतियाँ और जीवन पद्धतियाँ इस प्रवाह में जन्मी, विकसित होती हैं और इसी में समा जाती हैं। एक अन्तहीन सिलसिला है।

विकासक्रम की तल-प्रतल गहराइयों से गुजरते हुए इतिहास पथ पर किसी व्यक्ति या घटना विशेष की निरपेक्ष पहचान को उभारना, सापेक्ष सामर्थ्य के लिए अति कठिन है। यही उसके पुरुषार्थ को उजागर होता है।

अस्तित्व की विराट सत्ता के आगे व्यक्ति की क्षुद्रता तो स्पष्ट ही प्रमाणित है, परन्तु यह भी है कि व्यक्ति चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो — है वह इस विराट से समग्र रूप से जुड़ा हुआ। बिन्दु मात्र होते हुए भी सिन्धु की समस्त सम्भावना से भरा-पूरा। यहीं आकर व्यक्ति की गरिमा को स्वीकार करना ही पड़ता है........

नवरत्न शर्मा (स्वर्णकार)

बड़े जैन मन्दिर का कला-वैभव







य—2

: बागड़ी

ान में चौहान वंश का पदार्पण एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी। सम्भवतः ना की सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में घटी। चौहान वंश का राजपूताने की धरती ना प्रसार हुआ कि इसकी सब शाखाओं को सूचीबद्ध कर पाना सरल काम सर्वप्रथम ये सांभर में स्थापित हुए। फिर नागौर को उन्होंने अपनी राजधानी ा। कालान्तर में बाहरी आक्रमणों का सिलसिला तेज हो गया अतः सामरिक से अधिक सुरक्षित स्थान की तलाश महसूस हुई। चौहान पहाड़ों के सामरिक ा से परिचित थे। अतः जहाँ अजमेर बसा हुआ है वह स्थान उनको भाया। यह र अरावली श्रृंखलाओं से तीन ओर से घिरा हुआ है।

ानों की मुख्य परम्परा के शासकों के नामों पर नजर डालने से साफ जाहिर होता क वे सभी नाम संस्कृत मूल के हैं। अपने सत्ता क्षेत्रों को भी उन्होंने संस्कृत नामों चेह्नित किया, यथा—सपादलक्ष, अनन्तगोचर आदि। इस बात के भी यथेष्ठ प्रमाण जूद हैं कि बहुत से चौहान शासक स्वयं भी संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान थे तथा होंने इस भाषा में उत्तम रचनाएँ भी की। उनके शासन में संस्कृत भाषा के शिक्षण ी भी समुचित व्यवस्था रही।

परोक्त लक्षणों के आधार पर चौहानों के मूल स्थान को चीह्नना आसान हो जाता है। ससे यह बात स्पष्ट होती है कि जिस क्षेत्र से चौहान आए वह संस्कृत भाषा के शिक्षण ा अवश्य ही उत्तम केन्द्र रहा होगा। ऐसा स्थान उस समय तक्षशिला के आस-पास ा क्षेत्र ही था, जिसमें मुल्तान, मॉंटगुमरी आदि इलाके शुमार थे। मुल्तान शब्द लस्थान का ही अपभ्रंश है। निरन्तर आतंकित करते रहने वाले मध्य एशियाई मलावरों ने उन्हें अपनी मूल भूमि छोड़ने को विवश किया।

ौहानों के चरित्र की एक बात और आकर्षित करती है कि उन्हें नदी-नालों, ताल-ालैयों और पहाड़ी श्रृंखलाओं से अतिशय लगाव रहा। उनका यह गुण संस्कार जनित गता है। चौहानों की अधिकतर शाखाएँ पहाड़ी स्थानों पर ही पनपी। चौहानों ने मरु था जांगल प्रदेश की तरफ कभी मुख नहीं किया जबकि उनके आगमन के समय ये

प्रदेश बिलकुल निरापद थे। उस समय तक इन प्रदेशों में राजनैतिक विरोध की कोई स्थिति ही नहीं बन पाई थी।

चौहानों की मुख्य शाखा अजमेर से भी आगे बढ़ी। फैलते-फैलते वह पाली, जालौर, सिरोही तक पहुँचकर गुजरात की सीमा को छूने लगी। नाडोला, देवड़ा, सोनगरा, सांचोरा आदि शाखाओं में यह विभक्त हुई। बूँदी कोटा की तरफ यह हाडा कहलाई। मुख्य शाखा के सम्पर्क भी बड़े पैमाने पर बड़े राजवंशों या विदेशी हमलावरों से हुए। साथ-साथ उनके विवाह सम्बन्ध भी उच्च राजवंशों से जुड़े, यथा—चालुक्य, कलचुरि, परमार आदि।

अनेक व्यवधानों के बावजूद भी राजपूताने में चौहानवंश बहुत फला-फूला। सब को राज मिलना सम्भव नहीं बन पड़ा, और अधिक जमीन की आवश्यकता महसूस हुई। चौहानों की एक दूसरी शाखा जमीन की तलाश में उत्तर-पूर्व की ओर आमुख हुई। नागौर से लाडनू, द्रोणपुर, छापर होती हुई अधिक उत्तर में नोहर और भादरा तक पहुँच गई। वर्तमान सीकर तथा झुंझुनूँ जिलों की जमीन पर भी चौहान पसर गए। ददरेवा तथा रिणी नाम के स्थानों पर वे काबिज हुए। इस धरती का एक बड़ा भाग बागड़ नाम से जाना जाता था।

प्रारम्भ में बागड़ी नाम चौहानों की आपस में पहचान का नाम था। लेकिन कालान्तर में यह नाम रूढ़ होकर एक विशेष समूह का नाम बन गया। बागड़ी नाम नागौर के आसपास निवास करने वाले चौहानों के एक छोटे से समूह तक ही सीमित होकर रह गया। जमीन के लिए बागड़ी सदैव संघर्षरत रहे अतः इनका युद्धप्रिय और लड़ाकू होना स्वाभाविक था। नैणसी ने उनके सम्बन्ध में इन चारित्रिक गुणों का उल्लेख किया है।

दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लाडनू सहित गुर्जर प्रदेश के समस्त क्षेत्र पर डाहलियों की राजनैतिक पकड़ शिथिल होने लग गई थी। केन्द्र कमजोर हो जाने पर परिधि पर नियन्त्रण कमजोर होना स्वाभाविक है। डाहलियों की इस कमजोर स्थिति को बागड़ियों ने भांप लिया था। नैणसी मुणोत का कथन है कि उस कालखण्ड में नागौर क्षेत्र के बागड़ी काफी प्रबल हो गए थे। वे डाहलियों पर चढ़ आए। एक बड़ी लड़ाई हुई। डाहलियों के छः सौ आदमी काम आए। शेष भागने को विवश हुए। छापर सहित एक बड़े भू-भाग पर बागड़ियों का आधिपत्य हो गया। इसी क्रम में रिणी के डाहलियों को चाहिलों ने दबा लिया। ईसा की दसवी शताब्दी के उत्तरार्ध तक राजपूताने के इस क्षेत्र से डाहलियों का वर्चस्व हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

बागड़ीराज और लाडनूँ

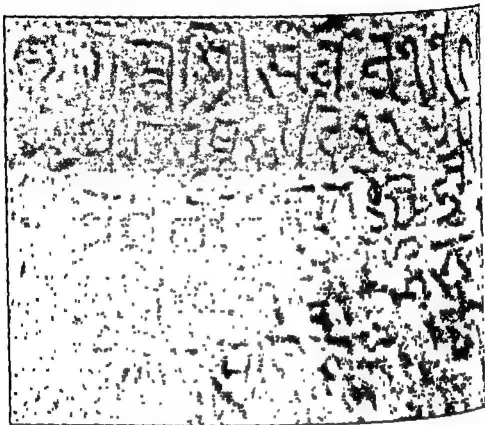
नैणसी व बांकीदास आदि प्रसिद्ध इतिहासकारों ने लाडनू पर बागड़ियों का राज होने की बात कही है। अत: प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि वे लाडनू पर कब काबिज हुए और उनका शासन काल कितना रहा ?

इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने के लिए हमें लाडनू से प्राप्त कुछ शिलालेखों का सहारा लेना होगा। देवल सहित एक शिलालेख संवत् 936 का है, जिसके सम्बन्ध में पूरी जानकारी डाहलिया वंश के संदर्भ में पिछले पृष्ठों में दी जा चुकी है। इसमें डाहलिया वंश के प्रसिद्ध शासक कोकलदेव का नाम पढ़ने में आता है अत: इस शिलालेख से यह तथ्य स्पष्ट रूप से प्रमाणित है कि संवत् 936 में लाडनू पर डाहलिए ही काबिज थे।

मेरी मान्यता है कि संवत् 1010 का आहुतिपरक शिलालेख जिसका वर्णन पृष्ठ संख्या 75 पर आ चुका है-- बागड़ियों के लाडनू पर काबिज होने का संकेत देता है। नरबलि कोई सामान्य घटना नहीं है। वह किसी बड़ी घटना के अवसर पर ही दी जा सकती है। मसलन किसी नए राज्य की स्थापना या किले के निर्माण के अवसर पर। ऐसा प्रतीत होता है डाहलियों पर विजय पा लेने के बाद बागड़ियों ने लाडनू किले के ध्वस्त रूप को फिर से सुधारा और उसके उपलक्ष में नरबलि के विधान की औपचारिकता का निर्वहन किया। अत: यह मानना युक्तियुक्त है कि विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में बागड़ी लाडनू पर काबिज हुए। शायद लाडनू नामकरण की घटना भी इसी काल में घटी।

बागड़ी (बागरी) नाम पृथ्वीराज रासो में भी आया है। देवराज बागरी पृथ्वीराज के प्रमुख सामन्तों में से था। अनेक अभियानों में वह पृथ्वीराज के साथ रहा। पृथ्वीराज उस पर बड़ा भरोसा करते थे। यहाँ फिर लाडनूँ से प्राप्त एक अन्य शिलालेख का उल्लेख करना प्रासंगिक हो जाता है। यह शिलालेख वि. संवत् 1187 का है तथा उसमें देवराज नाम अंकित है। यद्यपि जाति परक नाम बागड़ी या मोहिल कुछ भी अंकित नहीं है। लेकिन शैलीगत आकलन के आधार पर यह बागड़ियों से ही सम्बन्धित लगता है। शिलालेख की भाषा संस्कृत है परन्तु लेखन अशुद्धियों से भरा पड़ा है। डाहलिया कालीन लेखों की भाषा अपेक्षाकृत शुद्ध है। जबकि मोहिलकाल की तो समस्त देवलियाँ और शिलालेख लोकशैली और लोकभाषा में ही हैं।

उपरोक्त शिलालेख पुराने गढ़ की उत्तरी प्राचीर में एक सामान्य पत्थर के रूप में चुना हुआ प्राप्त हुआ था। शिलालेख का मुख भाग दीवार में भीतर की ओर था। बाहर से उसका पृष्ठ भाग ही नजर आता था। इस वक्त यह क्षेत्रीय विधायक श्री मनोहरसिंह के निवास-स्थान जो'ड स्थित बंगले में रखा हुआ है। मूल शिलालेख इस प्रकार है—



एक प्रस्तर खण्ड पर खड्गासन प्रतिमा के पाद-पीठ पर पाँच पंक्तियों का एक लेख इस प्रकार पढ़ा गया है :—

ओं (ओम्) स्वस्ति संवत् 1187

बइपाखु (बैशाख) सुदि 11 (नृप)

भू तल: देवराज्ये (अउम्)

रउपु (रिपु) देव रक्षत ध्रम धिइज (ध्वज)

श्रे (श्री) सुत वासुदेव (करादीप्त)

रासो में देवराज की मृत्यु का प्रसंग इस प्रकार वर्णित है—

सांपुळों सूर सामित छल। देवराज कटि कटि मरें।
ता नथ्थि पुत्त बापह तनौ। ध्रम हार होई निक्करें॥

रासो के अनुसार देवराज हांसी युद्ध में वि. सम्वत् 1240 के आसपास में काम आए। अतः शिलालेख में वर्णित संवत् 1187 देवराज का मृत्यु सम्वत् तो नहीं है। देवराज बागड़ी की मृत्यु की घटना तक छापर द्रोणपुर पर मोहिलों को काबिज हुए करीब 125 वर्ष बीत चुके थे।

यहाँ चरला गांव की दो देवलियों का उल्लेख करना भी समीचीन होगा। ये देवलियां क्रमशः वि. संवत् 1200 और 1241 की हैं। पहली देवली इतिहास पुरुष पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के समय की है जबकि दूसरी पृथ्वीराज स्वयं के उत्कर्ष काल की है। इस देवली से जाहिर होता है कि आहड़ और अम्बराक नाम के दो मोहिल योद्धा (पिता-पुत्र) नागपुर (नागौर) की लड़ाई में काम आए थे। यह लड़ाई पृथ्वीराज चौहान और चालुक्यों के बीच हुई थी। इन देवलियों से जाहिर होता है कि वि. संवत् 1241 तक मोहिलराज का प्रसार चरला गांव तक हो गया था लेकिन उस काल में लाडनू पर मोहिलों की उपस्थिति का कोई संकेत नहीं मिलता। विदित रहे चरला गांव लाडनू की उत्तर-पश्चिम दिशा में करीब 10 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

अतः ऐसा अनुमान लगाना युक्तियुक्त है कि विक्रम की तेरहवीं सदी के मध्य भाग में लाडनू पर बागड़ी ही काबिज थे। देवराज की मृत्यु के बाद बागड़ी सत्ता कमजोर पड़ने लगी। वि. संवत् 1249 में स्वयं पृथ्वीराज भी मारे गए। उस स्थिति में बागड़ियों को चौहानों की केन्द्रीय सत्ता का सहारा भी समाप्त हो गया। सम्भवतः इस कमजोर स्थिति में लाडनू से बागड़ियों को अपदस्त करने में मोहिल सफल रहे। यह घटना विक्रम की तेरहवीं सदी के मध्य में घटी। अतः करीब 250 वर्षों तक बागड़ी लाडनू पर काबिज रहे।

000 000

उत्तर या उत्तर पूर्व की ओर अग्रसर होने वाला चौहानों का यह वर्ग अपेक्षाकृत छुट भाइयों का वर्ग था। संस्कृत भाषा से इनका सम्बन्ध टूट-सा गया। डिंगल भाषा से इनके सम्बन्ध बढ़ गए। नाम तो इनके संस्कृत मूल के रहे लेकिन उच्चारण

गुजरा। यह महमूद गजनवी की फौज थी जो इस मार्ग से सोमनाथ (गुजरात) गई थी। इन जंगी फौजों के पैरों तले इस कस्बे के अपेक्षाकृत बहुत छोटे शासक भयत्रस्त होकर रास्ता देने को मजबूर हुए।

उपरोक्त सेना का तादात्म्य महमूद गजनवी के साथ जोड़ने के कुछ स्पष्ट आधार लक्षित हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. कस्बे में आबाद वर्तमान काजी परिवारों की परम्परागत मान्यता है कि उनके पूर्वज महमूद गजनवी की फौज के साथ आए थे।

2. डीडवाने के आस-पास आबाद गरदेजी भी अपने आगमन के बारे में कुछ इसी प्रकार की धारणा रखते हैं।

3. गाजी ऊमरशाह की दरगाह भी इसका एक अच्छा सबूत है। गाजी उमरशाह एक दरवेश थे। वे फौजों को शकुन सरोधे के आधार पर कूच करने या रुकने की राय देते थे। उनका इन्तकाल लाडनू में हो गया था तथा उन्हें यहीं दफनाया गया।

4. हाल ही में (फरवरी 2002) स्थानीय गढ़ के अहाते में हुए निर्माण कार्यों के बाबत खुदाई में जमीन की सतह से करीब 25 फीट नीचे कुछ प्राचीन स्थापत्य अवशेष मय खण्डित मूर्तियों के निकले हैं। उनका इस रूप में प्राप्त होना इस बात का संकेत है कि कोई मूर्ति भंजक दल इधर से गुजरा था। महमूद गजनवी ने ऐसी वारदातों को प्रमुखता से अंजाम दिया था अतः सम्भावना बनती है कि वही इधर से गुजरा।

5. यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि महमूद गजनवी सोमनाथ अभियान में राजपूताने के मरु प्रदेश से होकर गुजरा था। ई. सन् 1025 में वह अजमेर पहुंचा। लाडनू इस मार्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। अतः लाडनू होकर गुजरना एक प्रामाणिक घटना है।

महमूद गजनवी अपने द्वारा रौंदे गए प्रदेश के मुख्य स्थलों पर अपने कुछ सैनिक, मजहब प्रचारक, दरवेश तथा राजकाज सम्भालने काबिल आदमी छोड़ता गया ताकि उसकी वापसी सुरक्षित रहे। लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी बन गई कि महमूद इस मार्ग से वापिस नहीं लौटा। लूट का माल उसके पास बहुत था और मार्ग निरापद



नहीं था। अतः उसने कच्छ के रास्ते सिंध होकर अपने मुल्क लौटने की तजबीज बनाई।

महमूद गजनवी इस देश की सदियों से संचित सम्पदा को कुछ ही वर्षों में लूटकर ले गया था। यद्यपि महमूद की सफलताओं पर बगदाद के खलीफाओं ने जश्न मनाए थे लेकिन स्वयं गजनी में ऐसे लोग मौजूद थे जिन्होंने महमूद की उस दौलत को हराम की करार दिया था और खैरात के रूप में भी लेने से इन्कार कर दिया था। हकीकत यह भी है कि महमूद की मृत्यु के सिर्फ आठ वर्ष दरमियान ही गजनी साम्राज्य बिखर गया था।*

काफिले इस धरती से गुजरते गए। यत्र-तत्र बसते भी गए। निःसन्देह इस बस्ती में बसने जैसी परिस्थितियाँ थीं। यद्यपि हमलावरों के पैरों तले कुचला जाना जीवन का कटुतम अनुभव है लेकिन कितना स्वस्थ परिवेश है इस धरती का कि घाव भरने में अधिक समय नहीं लगा। कटुता, कसक, द्वेष सारा कलुष यह परिवेश अपने उदर में समा गया।

* स्रोत : सुल्तान महमूद ग़ज़नवी, लेखक—मुहम्मद हबीब—मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ़

ईरानी संस्कृति और लाडनूँ के काजी परिवार :

अनेक राजकुल आए और चले गए लेकिन ये काजी हजरात यथावत रहे। ये सीधे सादे इन्सान हैं। इनके मिजाज का यह नेक अन्दाज ईरान की तहजीब की देन है। इस्लाम के आविर्भाव से पहले भी ईरान से भूमध्य सागर तक तहजीब का एक बेमिसाल दरिया बहता था। जरथुस्त के अग्निपूजक पारसी भी यहीं से भारत आए थे। यह पारसी जाति जो बम्बई के आस-पास आबाद है आज तक किसी की आँखों में नहीं खटकी। ये सर्वरूपेण अल्प-संख्यक लोग हैं लेकिन इनकी उपलब्धियाँ किसी भी बहुसंख्यक समाज से कम नहीं।

मध्य एशिया के मंगोल, खिरगीज, तातार आदि सभ्यता की दौड़ में ईरानियों से बहुत पीछे रहे हैं। खुरासानी, बलूच, अफगान भी सांस्कृतिक रियाज में ईरानियों के बराबर नहीं बन पाए। अलबत्ता इराक, सीरिया, फिलस्तीन, जोर्डन आदि ईरान के समकक्ष रहे। ईरान के ये हमदानी हजरात न्याय, मजहबी परिपाटियों के संचालन तथा शासकीय कामों से जुड़े रहे। इन्हीं काफिलों के साथ आए गरदेजी यद्यपि सैनिक थे लेकिन ये ईरानी नहीं थे अफगानी थे। ये संख्या में अधिक नहीं थे अतः किसी महत्त्वपूर्ण सैनिक शक्ति के रूप में नहीं उभर पाए। फिर भी कहा जाता है कि कुछ समय तक गरदेजियों का लाडनू पर कब्जा रहा—इस सम्भावना पर अगले पृष्ठों में विचार किया जाएगा। इसी परम्परा में खाटू के पास बसे शेरानी भी आते हैं।

गाजी ऊमरशाह :

पीर ऊमरशाह गाजी की मजार इस कस्बे का एक प्रचीनतम स्मारक है। अजमेर की दरगाह शरीफ से भी करीब डेढ सौ साल पुराना। हिजरी सन् 1377 में बम्बई से छपी 'जनतरी इस्लामी मोहम्मद बड़ी तकवीम' नामक पुस्तक के आधार पर पीर साहब का भारत आगमन 12 जिलहजा, हिजरी 415 तदनुसार ई. सन् 1010 के आपास हुआ था। आप सम्भवतः महमूद गजनवी या मोहम्मद-बिन-कासिम की फौज के साथ आए थे। आपका मूल स्थान हमदान (ईरान) था। लाडनू आगमन के वर्षों बाद आपके खानदान की एक लड़की, अजमेर शरीफ के ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती के नागौर स्थित खलीफा हमीदुद्दीन सव्वाली को निकाह में दी गई थी।

III

मोहिलवंश का उद्‌भव

इतिहास के सभी कालों में अपने नाम से नया वंश चलाने की महत्त्वाकांक्षा सामर्थ्यवान राजपुरुषों की सदैव से ही रही है। ऐसा करना पुरुषार्थ का प्रतीक माना जाता था। सामाजिक कारणों से भी इन शाखाओं का फूटना जरूरी था। इसी क्रम में चौहान राजवंश में भी अनेक शाखाओं ने जन्म लिया। मोहिल उनमें से एक थे। मोहिल वंश की गिनती बड़े राजवंशों में होने लगी थी। प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड ने भी इस वंश की गणना राजपूताने के उस समय के प्रसिद्ध 36 राजकुलों में की है।

राणा सजन :

बागड़ प्रदेशीय चौहान परम्परा में राणा सजन नाम के एक शासक हुए। 'सजन' नाम के स्थान पर कहीं-कहीं सुरजन नाम का भी उल्लेख हुआ है। राणा सजन श्रीमौर (सिरमौर=सामौर) के राजा थे। नैणसी मुणोत् ने यह स्थान दक्षिण पूर्व में बताया है। उनके दिशा-निर्देश के अनुसार वर्तमान जयपुर जिले में इस स्थान का होना लक्षित होता है। भाटों के वृत के अनुसार राणा सजन के दो रानियाँ थी। एक तंवर वंश की पुष्पावती व दूसरी चन्देल वंश की थी। उनके पुत्रों के नाम मोहिल, बरसल, जड़ तथा आदल बताए गए हैं। मोहिल उनमें सबसे बड़े थे। राणा सजन का अपने बड़े पुत्र से लगाव कम था। मोहिल पराक्रमी होने के साथ-साथ महत्त्वाकांक्षी भी थे। उन्होंने अपना नया राज्य स्थापित करने का विचार बनाया।

राणा मोहिल :

नई धरती की तलाश में मोहिल ने अपने कुछ गुप्तचर टोही आस-पास के क्षेत्रों में भेजे। उन्होंने मोहिल को जानकारी दी कि छापर-द्रोणपुर का इलाका उस समय बागड़ियों के अधिकार में था। बागड़ियों के पास अपना पर्याप्त जनाधार नहीं था। मोहिल का मानस बागड़ियों के प्रदेश को हस्तगत करने का बन गया। इस काम के लिए एक बड़ी सेना की आवश्यकता थी। मोहिल के पास आवश्यक धन की कमी थी।

सन्तन बोरा :

सन्तन नाम का एक धनाढ्य साहूकार राणा सज्जन के राज में रहता था। मोहिल ने उसके सामने अपनी समस्या रखी। सन्तन को मोहिल की वीरता पर भरोसा था। उसने मोहिल को बतौर कर्ज धन देना स्वीकार कर लिया। करीब सोलह हजार सैनिकों की एक सेना तैयार की गई। इस अभियान में सन्तन भी मोहिल के साथ रहा। बागड़ियों ने बड़ी बहादुरी से मुकाबला किया लेकिन मोहिल के पास सैनिकों की संख्या बागड़ियों से बहुत ज्यादा थी। बागड़ी इतने बड़े संघर्ष के लिए तैयार नहीं थे। उनको पराजित होना पड़ा। मोहिल छापर की गद्दी पर राणा की पदवी धारण कर आसीन हुए। इस प्रकार एक नए राजवंश का जन्म हुआ।

मोहिल ने सन्तन को उसके आर्थिक सहयोग के एवज में कसूम्बी सहित पांच गाँवों की जागीर दी। सन्तन कसूम्बी में ही बस गया। उसने उस गाँव को और अधिक विकसित किया। उसने उस गाँव में एक बावड़ी तथा एक शिखरबन्द मन्दिर बनवाया। बावड़ी आज भी मौजूद है। मन्दिर के सिर्फ खण्डहर शेष बचे हैं। अवशेषों में तीन शिलालेख-वि.सं. 1230, 1305 तथा 1380 के उपलब्ध हैं। कसूम्बी गाँव लाडनू से 12 किलोमीटर दूर पूर्व दिशा में स्थित है।

सन्तन से सम्बन्धित उपरोक्त प्रसंग से प्रमाणित होता है कि उस जमाने में नैतिकता की अलिखित आचारसंहिता का सहज भाव से पालन होता था। सत्ता की सर्वोपरि निरंकुशता में मोहिल सन्तन को आर्थिक सहयोग देने के लिए मजबूर भी कर सकता था। उससे आवश्यक राशि छीन भी सकता था। लेकिन उसने ऐसा नहीं करके उधार लेन-देन के लोक व्यवहार का शालीनता से पालन किया। उस समय प्रचलित राजधर्म का भी यह एक अनुपम उदाहरण है। मोहिल और सन्तन बोहरा से सम्बन्धित उपरोक्त विवरण से मुंहता नैणसी सहित सभी प्रसिद्ध इतिहासकार सहमत हैं।

मोहिलों के प्रारम्भिक सत्ता केन्द्र :

मोहिलों के सत्ता केन्द्र के रूप में नैणसी ने छापर और द्रोणपुर को प्रमुखता दी है। जबकि श्री ओझा जी (श्रीयुत गौरीशंकर हीराचन्द ओझा) ने चरला गाँव की देवलियों को अधिक प्राचीन माना है तथा उनके आधार पर मोहिलों के प्रारम्भिक सत्ता केन्द्र के रूप में उस गाँव को प्राथमिकता दी है। विदित रहे प्रसिद्ध इतालवी विद्वान टेसीटोरी ने

त्री प्रदेश में बिखरी पड़ी प्राचीन प्रतिमाओं, देवलियों और शिलालेखों का सर्वेक्षण रके उन्हें सूचीबद्ध किया था। इस पुरातात्विक व ऐतिहासिक अध्ययन में महाराजा गंगासिंह जी की विशेष रुचि थी।

। क्षेत्र के चरला नामक गाँव से मिली मोहिलों की देवलियाँ वि.सं. 1200 से 1241 तक हैं जबकि छापर से प्राप्त देवलियाँ वि.सं. 1311 और 1348 की हैं। लेकिन ये देवलियाँ खलाबद्ध नहीं हैं, आकस्मिक हैं। हो सकता है अन्यत्र इनसे भी पुरानी देवलियाँ रही और किसी कारणवश विनष्ट हो गई हों। यद्यपि ये देवलियाँ इस क्षेत्र में मोहिलवंश । उपस्थिति की तो उत्तम प्रमाण हैं लेकिन एक मात्र इनके आधार पर इतिहास का म निर्धारित करना किसी भी प्रकार उचित नहीं माना जा सकता है।

ाम्पा सामौर की काव्य रचनाओं से भी मोहिल राजवंश के सम्बन्ध में नैणसी णोत के मत की पुष्टि होती है। ऐसा भी सम्भव हो सकता है कि नैणसी ने ोहिलवंश सम्बन्धी अपनी मान्यताओं का आधार चारण चाम्पा की पद्य रचनाओं को । बनाया हो। मोहिल राजवंश के सम्पूर्ण वृत्त को ऐतिहासिक धरातल पर उजागर रने में चाम्पा की काव्य रचनाएँ ही एकमात्र आधार हैं। उनके अतिरिक्त इस वंश का कोई न्य इतना विशद उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। भाटों की बहियों के आलेख तो वेसंगतियों से भरे पड़े हैं अतः उनका ऐतिहासिक उपयोग करने में बड़ी सावधानी की भावश्यकता है। चारणों की सामौर शाखा का मोहिलवंश से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध भी हा है।

ोहिल राज्य का विस्तार :

ोहिल ने अपने जीवनकाल में ही अपने राज्य की सीमाओं का अच्छा विस्तार कर लिया था। बागड़ियों को इस भू-भाग से बेदखल करने के साथ-साथ जमीन का एक बड़ा भाग उन्होंने जोहियों और जाटों से भी छीना। जहाँ तक मोहिल राज का प्रसार हुआ उसे मोहिल वाटी का नाम प्राप्त हुआ। यह एक विस्तृत प्रदेश था जिसमें 1440 गाँव शुमार थे। उस समय इस क्षेत्र में मोहिल राज के मुकाबले कोई अन्य राजनैतिक शक्ति नहीं उभर पाई थी।

मोहिल मोटा राजवी, ठकुराई ठावै।
छापर ताल चरन्तियाँ, भटनेर न भावै ॥

मोहिलवाटी का मुख्य केन्द्र छापर ताल और द्रोणपुर की पहाड़ियाँ ही थीं। छापर का विस्तार भी काफी बड़ा है। उत्तर में पड़िहारा तथा दक्षिण में जसवन्तगढ़ व गाँव के ताल इसका ही अंग थे। मोहिलों के प्रमुख ठिकाने इस ताल क्षेत्र के ईर्द-गिर्द स्थापित हुए। मोहिलों ने भटनेर जैसे किले पर कब्जा करने की महत्वाकांक्षा नहीं संजोई।

द्रोणपुर की पहाड़ी श्रृंखला मोहिल वाटी के केन्द्र में स्थित मानी जाती है। श्रृंखला में आठ छोटी बड़ी पहाड़ियाँ शामिल हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं– डूँगरी, काला डूँगर, लहर, भैंसासुर, चरला, चिमर, कोढण तथा देवी की डूँगरी देवी की डूँगरी डूँगरास गाँव में है, जहाँ देवी का एक छोटा-सा अति प्राचीन मण्डप है यह पहाड़ी श्रृंखला लाडनूं कस्बे से करीब बारह किलोमीटर उत्तर में स्थित है वर्तमान में यह सुजानगढ़ तहसील में है। इस पहाड़ी श्रृंखला ने अनेक प्रकार मोहिल राज को संरक्षण दिया। द्रोणपुर का कस्बा तो इसकी द्रोणिका में ही ब हुआ था।

यद्यपि जांगल प्रदेश से सभी चौहान शासकों ने परहेज रखा था फिर भी पश्चि दिशा में मोहिलों का प्रसार रासीसर (रायसीसर) तक पहुँच गया था। उत्त पश्चिम में यह वर्तमान सरदारशहर तथा ठेट उत्तर में रिणी के पार भी इसके पहुँ के प्रमाण हैं। करणावटी–राणा आहड़ के पुत्र किरता की जागीर होना माना ज था। पूर्व में मोहिलवाटी की सीमा हर्ष की पहाड़ियों तक पहुँच गई थी। दक्षिण ओड़ींट व लाडनू इलाके के अनेक गाँव इसकी हद में शुमार थे। मोहिलों का राज्य काल निरापद था अतः राज्य विस्तार में उन्हें विशेष कठिनाई का सामना नहीं करन पड़ा।

मोहिलवाटी के प्रमुख ठिकाणे–छापर, द्रोणपुर, लाडनू, ओड़ींट, चरला, राजल परावा, कसूम्बी, गणेड़ी, नेछवा आदि थे। इस वंश के राणाओं व रावों ने भी अप नामों से नए गाँव बसाए, यथा–बोबासर, सांगासर, इनपालसर, सोनपालसर आबसर, आढसर, लोहा, लोढसर, भोजासर, सांबतिया, मोमासर, बाल्हे माणकरासर, बछरारा, आसलसर, नरबदवास, रणसीसर, जाळपसर आदि। लाडनू का गढ़ मोहिलों के प्रमुख गढ़ों में गिना जाता था। लाडनू मोहिलों के बड़े ठिकानों में से था।

-डनू में तब तक खण्डेलवाल महाजन आबाद हो चुके थे। बड़े जैन मन्दिर का निर्माण हो गया था। महमूद गजनवी इस मार्ग से गुजर चुका था। गाजी उमरशाह की गाह अस्तित्व में आ चुकी थी। गरदेजी पठानों का आगमन प्रारम्भ हो गया था। ादानी सैय्यद भी आबाद हो गए थे। इस धरती ने सबका स्वागत किया। सबको सने का आधार दिया। सबै धरती गोपाल की। बिना किसी भेदभाव के मिलजुल कर ने का भाव विकसित हुआ। देशी-विदेशी का भाव पनपा ही नहीं।

ोहिल राणाओं की परम्परा और चाम्पा सामौर की काव्य रचना :

ोहिल वंश का उद्भव ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य भाग में हुआ। मोहिलराज ो समाप्ति विक्रम संवत् 1531 तद्नुसार ई. सन् 1474 में राणा बरसल की राठौड़ों द्वारा राजय के बाद हुई। इस प्रकार इस भू-भाग पर मोहिल राज करीब चार सौ वर्षों तक ना रहा। इस अवधि में कुल पन्द्रह राणा हुए। प्रत्येक राणा का औसत राज्यकाल करीब सताईस वर्ष आता है।

यह एक आदर्श औसत है। राजवंशों की सामान्य औसत बीस वर्ष मानी गई है। उससे मोहिल राजवंश की औसत काफी अधिक है। औसत कम आने का अर्थ आपादपूर्ण परिस्थितियों का सतत बने रहना तथा युद्धों की निरन्तरता और युद्धों में शासकों का काम आते रहना है। औसत का सामान्य दर से अधिक होना राज्य में शान्तिपूर्ण स्थिति का बने रहना दर्शाता है। मोहिलों ने निर्बाध और निरापद राज्य किया। यह उनके बल, पराक्रम का भी द्योतक है।

मोहिल राणाओं का क्रम इस प्रकार है—मोहिल, हड्ड (हरदत्त), वरसी (वीरसिंह), बालहर, आसल, आहढ़, रणसी (रणसिंह), साहणपाल, लोहट, बोब, बेग, माणकराव, सांगा, बच्छा, मेघा और बरसल। चारण कवि चाम्पा सामौर ने अपनी एक काव्य रचना (पीढ़ियों के दोहे) में इन समस्त पीढ़ियों को उनके विरुद् सहित श्रृंखलाबद्ध निरूपित किया है। यह मोहिलों के पुरुषार्थ का यशस्वी बखान है। मूल काव्य रचना नीचे दी जा रही है—

पूरबळी पण पाळवा, तुड़ तांणग गहवंत।
अजण तणो वंश ओपियो, 'सुजन' हुओ सामंत॥ (सजन)
सुबस किया खेड़ा सकल, चक्रवत चवदह चाळ।

रेणा कीधी आपरी, सह अंवखाळै सत्त।
मोहिल तण उदियो मछर, दीपक वंश 'हरदत्त'॥ (हरदत्त)
कुळ दीपक चढ़ती कळा, सुत वरसीह सुजाण।
हाथालौ जुगपुड़ हुयो, राणो 'बालह' राण॥ (बालहर)
राजवंश राड़ेधड़ौ, चूक्यो जाव सुचल्ल।
बाहळ रो टीको बड़म, ले दीनो 'आसल्ल'॥ (आसल)
अतुली बळ रावण अचड़, भुजां निवाहण भार।
आसल रे उदियो अभंग, आहड़ वंश उदार॥ (आहड़)
सोह मेवासी संकिया, भूपत खाये भीह।
आहड़ तण तपियो इला, सादूलो रणसीह॥ (रणसीह)
सुरहे चवदह चाळ से, दीने कलप दुबाह।
सोहणमल रिणसिंह रो, पतगरियो पतसाह॥ (सोहणपाल)
बलहट दव बड़ मंडणा, हुआ मुकत्ता हट्ट।
पाटजु सोहणपाल रै लाज भुजां लोहट्ट॥ (लोहट्ट)
थरकै खळ दूरे थकां, अदल बरते आण।
लोहट पाट बिराजियो, राजन बोबो राण॥ (बोब)
सिद्धां गृह साधक हुवै, जग मालम खग जेत।
बैसे गादी बोबउत, 'बेगो' बंस बनेत॥ (बेग)
छापर धणी जु छत्रपति, सामंत बेग सुजाव।
घर खांगा बल धूपटै, राणो माणकराव॥ (माणकराव)
साख चौबीसां सोहियो, नरां चढ़ावे नीर।
राणा माणक राव रै, सांगो पाट सधीर॥ (सांगा)
सोहे चवदह चाळ से, लेखी जे भुज लाज।
सांगा री गादी सुपह, राण तपै बछराज॥ (बछराज)

साह सिकन्दर संकियो, दे पिसणा सिर दौड़।
रूप गादी बछराज री, मेघो बंस सु मोड़॥ (मेघा)
मोहिल दाता मोहरी, जस गाहक गुण जाण।
सुकवि पालग बैरसल, मेघावत महराण॥ (बैरसल)

न पन्द्रह शासकों की परम्परा में आगे भी कवि ने तीन नामों का उल्लेख किया है। वे क्रमशः जाळपदास, वीण और रामचन्द्र हैं। इनके सम्बन्ध में चाम्पा सामौर का कथन इस प्रकार है—

मोहिल दीधा मांगणा, हित दाखे बरदास।
बैरावत कुल बांच जै, दीपक जाळपदास॥

परवरियो सारी पृथी, कळह संवारे काम।
जाळप रै हद जो मरै, बेणो बंस वरियांम॥

सींगाळो कुळ में सदा, जुधवेळा खगजेत।
चाल न चूके रामचन्द्र, बेणावत बानेत॥

उपरोक्त परम्परा छापर राजधानी तक ही सीमित है। छापर के अतिरिक्त अन्य जागीरों, यथा—द्रोणपुर, लाडनू, ओड़िंट, कसूम्बी, राजासर आदि की स्थिति अलग थी। इनके जागीरदार राव कहलाते थे। वे वरीयता क्रम में छापर की राणा परम्परा से कनिष्ठ थे। ईसा की चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक इस क्षेत्र में किसी बड़ी अन्य राजनैतिक शक्ति का उदय नहीं हो पाया था। जांगल प्रदेश में जोहियों, भाटियों और सांखलों (परमार) ने यत्र-तत्र अपने पैर जमा रखे थे। जाट कुलों के कुछ ठिकाणे भी अस्तित्व में थे। लेकिन कुल मिलाकर मोहिल सुरक्षित रहे। उन्हें पास-पड़ौस में ऐसी किसी शक्ति का भय नहीं था जो उन्हें बेदखल कर सके। यह स्थिति राणा माणकराव के शासन काल तक बनी रही।

राणा हरदत्त (हड्डड़) :

राणा मोहिल के बाद उनके पुत्र राणा हरदत्त छापर की राजगद्दी पर बैठे। राणा हरदत्त भी एक वीर और बुद्धिमान शासक थे। उन्होंने मोहिल राजसत्ता का अच्छा विस्तार किया। भाटों के वृत्त के अनुसार उनके तीन रानियाँ थीं। मानसिंह की कपूरदे, दूसरी

राणी सांखली (पंवार) तथा तीसरी यादव (भाटी) बुधमल की कानकंवर थी। उन
पुत्रों के नाम बरसल, चन्द्रसाल और छत्रसाल बताए गए हैं। हरदत्त ने प्रसिद्ध जीणमा
मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था। उसका वि.सं. 1162 का एक शिलालेख मन्दिर
मण्डप के स्तम्भ पर अंकित है। यह शिलालेख मोहिलवंश के सम्बन्ध में बड़ी उपयो
जानकारी देता है।

मोहिलवंश की स्थापना का काल निर्धारण :

मोहिलवंश के काल निर्धारण में ऊपर वर्णित शिलालेख का बड़ा महत्व है। मोहिलव
सम्बन्धी किसी शासक का इतना स्पष्ट और सही जानकारी देने वाला स्रोत और
दूसरा नहीं। शिलालेख में उल्लेख है कि जीणमाता के मन्दिर का जीर्णोद्धार मोहिल के
पुत्र हट्टड़ ने करवाया। यह कार्य पृथमीदेव (पृथ्वीदेव=पृथ्वीराज-प्रथम) के राज्यक
में हुआ। पृथमीदेव के लिए परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर के सर्वोच्च विरु
का उपयोग किया गया है। इससे साफ जाहिर होता है कि मोहिल राजवंश यद्य
अपने क्षेत्र में सम्पूर्ण प्रभुता सम्पन्न था लेकिन चौहानों की मुख्य सत्ता जो अजमेर
थी – से जुड़ा हुआ था। कहना चाहिए 'मोहिल' चौहानों की सर्वोच्च सत्ता के सामन्
थे। इस नाते चौहानों की केन्द्रीय सत्ता का संरक्षण उन्हें प्राप्त था।

मोहिल शासकों की औसत शासनावधि 27 वर्ष है अतः मोहिल वंश का उद्भव इ
उपरोक्त जीणमाता के शिलालेख में वर्णित संवत् 1162 से करीब 40 वर्ष (27 वर्ष रा
मोहिल के लिए अनुमानित तथा औसत का आधा 13 वर्ष राणा हरदत्त के शासन क
का) पूर्व तक अनुमानित किया जा सकता है। इस आधार पर 1162-40=1122 वि.स
मोहिल वंश के प्रारम्भ होने का वर्ष माना जा सकता है। इसे ई.सन् में बदलने पर य
1065 तुल्य आता है।

मोहिल वंश के सातवें राणा सोहणपाल की छापर से उपलब्ध एक देवली पर उन
मृत्यु संवत् 1311 अंकित है। इसमें से सात राणाओं का कुल समय 189 वर्ष घटा देने
भी 1122 का वि.सं. ही आता है। इस प्रकार राणा हरदत्त के जीण माता के शिलाले
और राणा सोहणपाल की देवली के लेख से समान समय उभरता है। अतः मोहि
वंश के उद्भव के सम्बन्ध में ई. सन् 1065 का समय मानना सही अनुमान के नि
तक पहुँचना है।

V

ाडनू में मोहिल राज : कुछ ऐतिहासिक तथ्य

ा की ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मोहिल राजवंश की स्थापना के करीब सौ वर्ष श्चात् लाडनूँ कस्बा इस राजवंश से जुड़ गया था। अन्तिम मोहिल शासक राव यसिंह के पराभव (वि.सं. 1604 तद्नुसार ई. सन् 1547) तक लाडनू पर मोहिल वश ा आधिपत्य रहा। तीन सौ वर्षों की इस लम्बी अवधि में सिर्फ सत्तर (70) वर्ष (लगभग) ा समय मुसलमान शासकों के प्रभाव में रहा — जिसमें करीब चालीस वर्षों तक यहाँ देल्ली सुल्तान फीरोज तुगलक के सैनिक और प्रशासनिक अधिकारी तैनात रहे शेष ीस (30) वर्ष (करीब) यह कस्बा गरदेजी पठानों के अधिकार में रहा।

ोहिल राजवंश के एक प्रमुख केन्द्र के समकक्ष यह कस्बा विकसित हुआ। अतः ोहिल राजवंश का प्रभाव इस कस्बे पर सर्वाधिक पड़ा। जीण मोहिलों की कुलदेवी ोने के साथ-साथ इस कस्बे के मूलवासियों में से एक जाति लाडणवा पारीकों की भी कुल देवी है और पारीक मोहिलों के कुलगुरु बताए जाते हैं। विदित रहे अनेक खण्डेलवाल (सरावगी) जातियाँ भी मोहिल मूल की हैं। जैसे — कासलीवाल, ाकलीवाल आदि। बगड़ा व सबलावत भी कासलीवाल शाखा की ही उप शाखाएँ हैं। कासलीवालों का तो लाडनू से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इस शाखा के अग्र पुरुषों में से एक श्री बींजराज जी पहले पहल लाडनू आए। फिर यह शाखा अन्यत्र फैली। इन परिवारों की कुलदेवी भी जीण ही है।

राणा माणकराव की राजकुमारी कोडमदे की दुरवान्तिका का भी यह कस्बा साक्षी रहा। राव अजीत मोहिल के शौर्य और पराक्रम को भी इसने पहचाना। अन्तिम मोहिल शासक राव जयसिंह की उदारता और जनोपयोगी कार्यों की गहरी छाप भी इस के हृदय पटल पर पड़ी। यद्यपि बहुत कुछ विस्मृति के गर्भ में समा गया है लेकिन विनष्ट कुछ भी नहीं हुआ। हर घटना का प्रभाव जन-मानस की अन्तसचेतना से जुड़ जाता है और देखे-अनदेखे, जाने-अनजाने उसे प्रभावित करता रहता है।

राव जयसिंह द्वारा निर्मित राव तालाब, राव कूआ तथा राव दरवाजा इस कस्बे के व्यक्तित्व के अभिन्न अंग रहे हैं। रघुनाथजी का मन्दिर मोहिल राव अड़कमल ने बनवाया था। दुरजनसर तालाब दुर्जनसालजी मोहिल ने बनवाया था। जैन श्वेताम्बर शान्तिनाथ मन्दिर का भी मोहिलकाल में ही जीर्णोद्धार हुआ। शहर की हदीरा स्थित सुल्तानी

मस्जिद राव जैसिंह (प्रथम) ने बनवाई थी। इन सब घटनाओं ने कस्बे के जन-जीवन को विशद् रूप से प्रभावित किया है।

मोहिलवाटी पर राठौड़ों का अधिकार हो जाने के उपरान्त मोहिलों के अधिकार में रहा एकमात्र कस्बा (परगने के रूप में) लाडनूं समस्त मोहिल जाति के लिए आशा का केन्द्र बन गया था। शेष इलाकों के सारे प्रसिद्ध मोहिल परिवार लाडनूं में आ जुड़े थे। उनका एकमात्र आश्रय स्थल मोहिलों का बड़ा बास लाडनूं ही रह गया था।

इसमे भी कोई सन्देह नही कि मोहिल राज स्वयं भी इस कस्बे से प्रभावित हुआ। विलुप्त होते मोहिल राज को सान्त्वना भरा आश्वासन इसी कस्बे ने दिया। मोहिलों की बड़ी पोळ उनकी अन्तिम मशाल के रूप में लाडनूं में ही प्रज्वलित हुई। आज भी राजस्थान के किसी भी अन्य स्थान की तुलना में मोहिलों की आबादी लाडनूं में सर्वाधिक है।

लाडनूं जनमानस के स्मृति पटल पर एक मोहिल शासक का नाम सदैव तैरता रहता है, वह नाम है—राव जयसिंह का। इस नाम के अतिरिक्त लाडनूं वासी किसी अन्य नाम को अपने शासक के रूप में कम ही पहचानते हैं। जैसिंह या जयसिंह नाम के यहाँ दो शासक हुए हैं। दोनों में करीब एक सौ बीस (120) वर्षों का अन्तर है। ऐतिहासिक आधारों पर दोनों शासक प्रामाणिक भी हैं।

सुल्तान फीरोज तुगलक के काल का फारसी शिलालेख :

राव जैसिंह (प्रथम) का शासनकाल ई. सन् 1360 तक अनुमानित किया जा सकता है। प्रारम्भ कब से हुआ—इस बारे में स्पष्ट रूप से कुछ बताया जा सकना सम्भव नहीं। इस जैसिंह से जुड़ी हदीरे वाली मस्जिद के निर्माण की घटना की सही तिथि 2 दिसम्बर, 1378 हमारे पास उपलब्ध है जो इस सम्बन्ध में स्थापित फारसी शिलालेख से प्रमाणित है। यह शिलालेख दिल्ली सल्तनत काल के प्रसिद्ध शासक फीरोज तुगलक के समय का है।

इस शिलालेख से प्रमाणित है कि ईसा की चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कस्बे पर जैसिंह मोहिल का राज्य था। जैसिंह दिल्ली सुल्तान फीरोज तुगलक से हारकर मुसलमान बन गए। मुसलमान बनने के बाद उन्होंने हदीरे वाली मस्जिद का निर्माण करवाया जिसे उस वक्त सुल्तानी मस्जिद के नाम से पुकारा जाता था। मस्जिद की एक मेहराब पर फारसी भाषा का यह शिलालेख आज भी मौजूद है। इस शिलालेख में जैसिंह के हिन्दू और मुस्लिम दोनों नाम अंकित हैं।

नागपुर (महाराष्ट्र) स्थित केन्द्रीय सरकार के अरबी और फारसी अभिलेख विभाग के तत्कालीन निर्देशक डॉ. जेड.ए. देसाई सन् 1976 में लाडनूं आए। उन्होंने ऊपर वर्णित शिलालेख का स्वयं अध्ययन किया। उनके द्वारा किया गया शिलालेख का अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार है—

In the name of Allah, the Beneficent, the Merciful and varily the mosques are for Allah only; hence invoke not only else with Allah.

The construction of this mosque (took place) in auspicious reign of the Sultan of Sultans of the time, relient on the support of the Beneficent (Lord), Abul Muzaffar (Lit. father of the victorious) FIRUZ SHAH the Sultan. May his kingdom be perpetuated (and) during the time of the Governorship of Miliku-Sharq Ikh-tiyaru'd-Daulat Wa'd-Din (Lit. selected of the state and the Faith)

CHUPAN (son of) UTHMAN, May his authority last forever (by) the (humble) creature. Allaudin (son of) Mubarak alias Jaisingh son of Bhoja Mohil. On the tenth of the mont of prophet (namely) Sha'ban, May his blessings be universal, the year (A.H.) eighty and seven hundred.

(10 Sha'ban, 780=2 December, 1378)

अभिलेख का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तरण इस प्रकार है—

स्थान : हदीरा मस्जिद की मेहराब के ऊपर।

समय : हिजरी 780, शबान 10; (=2 दिसम्बर, 1378)

उथमान के पुत्र मलिकशर्क इख्तियारु दौलतवाद्दीन चुप्पन की शासकीय देखरेख में, मुबारक के पुत्र अल्लाउद्दीन उर्फ भोजा मोहिल के पुत्र जैसिंह द्वारा मस्जिद का निर्माण करवाया गया।

इस शिलालेख से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि जैसिंह मोहिल (प्रथम) ने लाडनूं कस्बे में हदीरा स्थित मस्जिद का निर्माण करवाया था। वह मस्जिद ई. सन् 1378 में बनकर

तैयार हुई। लेकिन यह प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता कि उस वक्त वे स्वयं मौजूद रहे या नहीं। इस शिलालेख से कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ भी मिलती हैं। उनमें से एक यह भी है कि उस काल में तुगलक राज के कुछ बड़े अधिकारी लाडनू में तैनात थे।

सूफी फकीर शेख अहम्मद और उनका रोजनामचा :

उपरोक्त शिलालेख के समतुल्य एक संयोग और बना जिससे उस काल विशेष के सम्बन्ध में बड़ी महत्वपूर्ण जानकारियाँ हासिल हुईं। निर्देशक महोदय को उस समय के एक प्रसिद्ध सूफी फकीर की कहावतों (मलफूज) के अध्ययन का भी सुयोग मिला। इन फकीर का नाम शेख अहम्मद था। उनका जन्म दिल्ली में ई. सन् 1337-38 में हुआ था। चार वर्ष की अवस्था में एक काफिले के साथ यात्रा करते हुए किसी रेत भरी आँधी में वे भटक गए थे। संयोग से वे डीडवाना पहुँच गए। डीडवाना के किसी नजीब नाम के व्यक्ति ने उनको अपने पास रख लिया। वहाँ से बाबा इशाक मगरबी के पास वे खाटू चले गए। बाबा इशाक उनके आध्यात्मिक गुरु बने। उन्हीं के सान्निध्य में शेख अहम्मद सूफी साधना में दक्ष हुए। गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर शाह के अनुरोध पर वे गुजरात के सरखेज नामक स्थान पर चले गए। वहीं ई. सन् 1446 में उनका देहान्त हुआ।

शेख अहम्मद अपनी डायरी लिखते थे। उनके स्मृति लेख उनकी मृत्यु के करीब बारह वर्ष बाद ई. सन् 1456-57 में उनके शिष्यों तथा एक सहयोगी द्वारा संकलित किए गए। किताब का शीर्षक मिरकतुल-वुसुल इललिल्लाही वर रसूल है। यह फारसी में है तथा 1976 तक अप्रकाशित थी। इस हस्तलिखित प्रति का सिर्फ एक भाग एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल-कलकत्ता के सौजन्य में मलफूजती शेख अहम्मदी मगरबी के नाम से Persian Literature, Vol.-1, Part-2, Page 953 पर शामिल किया गया है।

शेख अहम्मद प्रायः लाडनू, डीडवाना तथा नागौर आते-जाते रहते थे। कभी वे अकेले होते तो कभी अपने उस्ताद इशाक मगरबी के साथ। इन यात्राओं का लेखा-जोखा उपरोक्त स्मृति लेख में है। उनके इन संस्मरणों से लाडनू, नागौर और आस-पास के क्षेत्र से सम्बन्धित काफी महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है। उनमें से कुछ संस्मरण यहाँ प्रेषित हैं। एक जगह वे लिखते हैं—

"मैं अपनी नौजवानी और बचपन में लाडनू आता-जाता रहता था। यदा-कदा मेरे साथ मेरे उस्ताद बाबा इशाक मगरबी भी रहते थे। लाडनू में हम कस्बे के मुखिया जैसिंह मोहिल जिसने नया-नया ही इस्लाम स्वीकार किया था—से मिलते थे।" उपरोक्त डायरी में लाडनू के तत्कालीन मुखिया जैसिंह मोहिल के सम्बन्ध में काफी जानकारी है। उसने दिल्ली सुल्तान से लड़ाई लड़ी थी और हारने पर मुसलमान बने।

स्मृति लेख की एक घटना इस प्रकार भी है कि एक बार वे बाबा इशाक के साथ लाडनू आए। कस्बे के मुकाद्दिम मलिक अल्लाउद्दीन (जैसिंह) ने बाबा का अच्छा स्वागत किया और उन्हें एक अच्छी राशि भेंट दी। बाबा ने अपनी भेंट सामग्री में से कस्बे की सारी मुस्लिम बिरादरी को एक दावत दी, जिसमें मलीदा (चूरमा) परोसा गया। जैसिंह के रुतबे और शेष जीवन के बारे में शिलालेख मौन है और फकीर का उपरोक्त स्मृति लेख भी। शायद कस्बे के आभासित मुखिया से अधिक उनका दर्जा नहीं रह गया था। किसी तरह के शासकीय अधिकार उनके पास नहीं थे। स्मृतिलेख में स्पष्ट उल्लेख है कि उस समय कस्बे का हाकिम काजी तुर्क नाम का एक व्यक्ति था।

इसी तरह की एक यात्रा में शेख साहब नागौर में वहाँ के मुक्ती मलिक चुपन से मिले। यह चुपन वही है, जिसका लाडनू के शिलालेख में उल्लेख आया है तथा जैसिंह के पराभव के बाद जो लाडनू का गवर्नर नियुक्त हुआ था। यह घटना बाबा मगरबी के जीवन काल की है। बाबा मगरबी का देहान्त ई. सन् 1374 में हुआ था। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि नागौर कस्बा उस समय फीरोज के शासनाधिकारियों का मुख्यालय था।

मलिक चुपन के सम्बन्ध में शेख का एक संस्मरण इस प्रकार भी है। किसी युद्ध में मलिक चुपन को खासा माल हाथ लगा। इस सम्पदा में से चार उम्दा गाएँ उसने शेख अहमद को भेंट की। शेख ने वे गाएँ मलिक गुनन को बेच दीं। ऊपर वर्णित शिलालेख से यह घटना करीब पाँच-छः वर्ष पूर्व की है।

ई. सन् 1333 के मुहम्मद बिन तुगलक शाह के बड़ी खाटू स्थित एक शिलालेख से जाहिर होता है कि उस समय यह क्षेत्र अजमेर से जुड़ा हुआ था। शेख अहम्मद के स्मृति लेख से ऐसा प्रतीत होत है कि नागौर अजमेर से अलग होकर एक अलग प्रशासकीय इकाई बन चुका था और लाडनू उसके अन्तर्गत था। तुगलक शाह का एक

शिलालेख लाडनू से भी प्राप्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुगलकों का इस इलाके से सम्बन्ध ईसा की चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही जुड़ गया था।

ई. सन् 1388 में फीरोज तुगलक की मृत्यु हो गई। उस समय तक मलिक चुपन भी मर चुका था। उपरोक्त वर्ष में ही शेख मक्का की यात्रा को चल पड़े थे। मार्ग में वे नागौर रुके तब वहाँ का मुक्ती मलिक कुतुबद्दीन नजम था। उस समय मलिक चुपन के नाम से नागौर में एक कारवां सराय बन चुकी थी। अपनी इस हज यात्रा में शेख वहीं ठहरे थे। लाडनू का शिलालेख इस चुपन के बारे में ओहदे सहित पूरी जानकारी देता है। उस शिलालेख में उसके पिता का नाम (उथमान) भी अंकित है। शेख के स्मृतिलेख से जैसिंह के हिन्दू-मुस्लिम संयुक्त नामवाली पहेली भी हल हो जाती है। शेख के स्मृति लेख में उन नामों का उल्लेख हुआ है।

किसी भी स्रोत से यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि फीरोज तुगलक के लाडनू पर हमले का उद्देश्य क्या था। हमले के तीन सम्भावित कारण हो सकते हैं—राज्यविस्तार, मजहब प्रचार या सामरिक। अगर राज्य विस्तार का ध्येय होता तो फीरोज पहले छापर पर हमला करता क्योंकि छापर मोहिल वंश की राजधानी थी या लाडनू से प्रारम्भ करके वह छापर अवश्य पहुँचता लेकिन उसने लाडनू के अतिरिक्त किसी अन्य मोहिल ठिकाने को छुआ तक नहीं। यहाँ तक कि लाडनू के निकटतम पड़ौसी चरला, द्रोणपुर पर भी उसने नजर नहीं उठाई। अगर मोहिल जाति को मुसलमान बनाने का ध्येय होता तो वह सिर्फ जैसिंह के धर्मान्तरण पर सन्तोष नहीं करता।

अतः इन परिस्थितियों में मात्र एक सम्भावना शेष रह जाती है कि फीरोज के लिए लाडनू एक सामरिक महत्त्व का स्थान था। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि नागौर पर सभी प्रसिद्ध दिल्ली सुल्तानों की नजर रही। तुगलक वंश तो अपनी बुनियाद से ही इस क्षेत्र में गस्त करने लगा था। दिल्ली और नागौर राजमार्ग का लाडनू एक महत्त्वपूर्ण स्थान था। अतः लाडनू पर अधिकार बनाए रखना फीरोज के लिए अति जरूरी हो गया। घोड़े बदलने का यह एक आदर्श स्थान था। साथ-साथ पीने लायक पानी यहाँ सुगमता और प्रचुरता में उपलब्ध था, जिससे इस स्थान का महत्त्व और अधिक बढ़ गया था।

नतीजन फीरोज तुगलक के सैनिक और प्रशासनिक अधिकारी लाडनू में तैनात रहे। विशेष रूप से उसने लाडनू के किले (गढ़) पर अपना अधिकार बनाए रखा। लगे हाथ

मजहब भी फैला। तोड़फोड़ के अवशेषों से जाहिर होता है कि फीरोज के सैनिकों ने कुछ मन्दिर भी तोड़े। वर्तमान चारभुजा नाथ मन्दिर के सामने दो कलात्मक स्तम्भ अवशेष काफी समय तक गढ़ी हुई हालत में पड़े रहते थे। लोगों का मानना था कि वे वहीं कहीं स्थित पुराने मन्दिर के अवशेष थे। सम्भवतः शान्तिनाथ श्वेताम्बर जैन मन्दिर भी उसी समय ध्वस्त हुआ।

फीरोज तुगलक के उपरोक्त फारसी शिलालेख या शेख अहम्मद के स्मृति लेख से मोहिल जैसिंह के पिता के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती। मोहिलवंश की किस परम्परा से जैसिंह जुड़ा हुआ था — यह भी स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। फीरोज से हुई लड़ाई के समय अन्य शासकों की क्या भूमिका रही, इस बारे में भी जानकारी का नितान्त अभाव है। शिलालेख या स्मृति लेख जैसिंह की सन्तति के सम्बन्ध में भी पूरी तरह मौन है।

धर्मान्तरण की इस घटना में जैसिंह तथा उसके कुछ सहयोगी ही शामिल रहे। द्रोणपुर तथा छापर आदि प्रमुख मोहिल ठिकानों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जन-श्रुति के अनुसार हदीरे में स्थित तीन कबरों में बीच वाली कब्र जैसिंह की है। एक उसकी रानी की जो दिल्ली की कोई शाहजादी बताई जाती है। तीसरी उसके किसी बहिन के लड़के की। इतनी जानकारी के बावजूद भी यह जैसिंह पहेली ही बना हुआ है, लेकिन एक बात स्पष्ट है कि यह जैसिंह 'मोहिल' वंश का पहला व्यक्ति था, जो मुसलमान बना।

डॉ. जेड.ए. देसाई की दुविधा :

उपरोक्त फारसी शिलालेख का दो बार सर्वेक्षण हुआ। पहले ई. सन् 1969 में हुए सर्वेक्षण में जैसिंह को जिख पढ़ा गया। मोहिल की जगह मोठाल पढ़ा गया। फकीर शेख अहम्मद की डायरी के अध्ययन क्रम में डॉ. देसाई को लाडनूं के तत्कालीन शासक के रूप में जैसिंह मोहिल का नाम प्राप्त हुआ। तब उन्हें लाडनूं के उपरोक्त शिलालेख की पुनः सुधि आई। वे सन् 1976 में उसके अध्ययन हेतु फिर लाडनूं आए। आस-पास के लोगों से उन्होंने जानकारी हासिल की।

उन्होंने पाया कि लाडनूं निवासियों के स्मृति पटल पर भी एक राव जयसिंह मोहिल का नाम बड़ी गहराई से जमा हुआ था। लोगों ने उनको यह भी बताया कि राव जयसिंह ने

इस कस्बे में बड़े जनोपयोगी काम किए। यथा—राव तालाब, राव कूआ तथा राव दरवाजा (कस्बे का दक्षिणी दरवाजा) उन्हीं ने बनवाए थे। राव जयसिंह के बारे में एक प्रामाणिक जानकारी और मिली कि इस राव जयसिंह ने सामौर शाखा के चारण जसुदान को 1500 बीघा भूमि खेती के लिए तथा 12 बीघा बसने के लिए दान में दी थी। उसका ताम्र पत्र जसुदान के वंशजों के पास मौजूद पाया गया।

डॉ. देसाई ने शिलालेख सम्बन्धी पहले सर्वेक्षण में सुधार किया। जिख की जगह उनको जैसिंह नजर आया। मोठाल की जगह मोहिल नाम ही उन्हें उपयुक्त लगा। यहाँ तक तो ठीक था लेकिन आगे भूल हो गई। जन-मानस की स्मृति वाले राव जयसिंह को ही उन्होंने शिलालेख वाला जैसिंह मान लिया। लोगों ने उनको जानकारी दी थी कि राव जयसिंह के पिता का नाम भोजा था। डॉ. देसाई को शिलालेख में भी भोजा ही नजर आया। जन-साधारण से मिली जानकारी से डॉ. देसाई पूर्वाग्रहित हो गए।

डॉ. देसाई—जसुदान चारण को संवत् 1544 (तदनुसार ई. सन् 1487) में 1500 बीघा जमीन के दान का ताम्रपत्र जारी करने वाले राव जयसिंह मोहिल और शिलालेख वाले जैसिंह में तालमेल बैठाने की उधेड़बुन में ही उलझ गए। वे यह अनुमान नही लगा पाए कि ये दोनों जैसिंह (या जयसिंह) भिन्न हैं। अतः जसुदान चारण के ताम्रपत्र को नकारने के अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई चारा नहीं रह गया। हकीकत यह है कि शिलालेख वाला जैसिंह मोहिल लोगों के स्मृति पटल से विलीन हो चुका था। जसुदान चारण को 1500 बीघा जमीन दान करने वाला उदार जयसिंह ही वे याद रखे हुए थे।

डॉ. देसाई स्वीकार करते हैं कि मोहिलों ने किन परिस्थितियों में इस्लाम स्वीकार किया—यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं हो रहा है। शिलालेख में वर्णित जैसिंह मोहिल थे। वे लाडनू के अधिपति थे। हदीरे वाली मस्जिद उन्होंने ही बनवाई थी तथा खाटू के फकीर शेख अहम्मद के संस्मरणों में उन्हीं का उल्लेख है। एक सम्भावना यह भी है कि जैसिंह को लाडनू की सत्ता पुनः इसलिए नहीं सौंपी गई कि मुसलमान बन जाने के उपरान्त भी उनको शक की नजर से देखा गया। लाडनूँ का गढ़ तुगलकों के लिए सैनिक महत्त्व की जगह थी। निःसंदेह वहां गुप्त सैनिक मंत्रणाएँ भी होती होंगी अतः उसे जैसिंह के नियंत्रण से मुक्त रखना जरूरी हो गया था।

धर्म परिवर्तन बड़ी दुखदाई घटना होती है। इस परिवर्तन से मनुष्य का सम्पूर्ण सांस्कृतिक आधार ही हिल जाता है। मजबूरी वश ऐसा करना तो और भी अधिक त्रासदीपूर्ण बन जाता है। पुराने प्रेरणा स्रोत बिखर जाते हैं। नयों से जुड़ पाने में मन, भय, संकोच और हीन भावना से ग्रसित हो जाता है। मोहिल शताब्दियों तक इस दुविधा में जीए। इस्लाम में पूरी तरह समाहित होने में उन्हें बहुत समय लगा।

एक अन्य फारसी शिलालेख :

डॉ. देसाई के अनुसार सल्तनत काल से ही लाडनूं एक स्पष्ट ऐतिहासिक पहचान वाला कस्बा रहा है। यहाँ करीब एक दर्जन अरबी-फारसी शिलालेख मिले हैं। तुगलक वंश से सम्बन्धित एक शिलालेख तो तुगलक शाह के समय का है जो इस वंश का संस्थापक था। लेकिन इस शिलालेख से नाम के अतिरिक्त कोई अन्य जानकारी नहीं मिलती। फीरोज तुगलक के समय के दो शिलालेख न केवल स्पष्ट हैं बल्कि इस क्षेत्र के सम्बन्ध में वे कुछ उपयोगी जानकारी भी देते हैं। उन दो शिलालेखों में से एक सन् 1378 के शिलालेख के बारे में पूरी जानकारी ऊपर दी जा चुकी है। दूसरा शिलालेख ई. सन् 1371 से सम्बन्धित है, जो इस प्रकार है—

स्थान : उमरशाह गाजी की दरगाज के पास वाली दीवार।

तारीख : ढुलकादा महिने की 27 तारीख, वर्ष 772 हिजरी = 2 जून 1371

राजवंश : तुगलक; बादशाह : फीरोज तुगलक।

शिलालेख इस प्रकार है। क्षेत्र के गवर्नर (मुक्त्ती) मलिक दबलन सुल्तानी और नायब दबलन के पुत्र मलिक समसुद्दीन इलियास तथा महान सेनापति फीरोज धनसुरी के पुत्र मुहम्मद की देख-रेख में कस्बे की क्षतिग्रस्त जामी मस्जिद का जीर्णोद्धार किया गया।

इस शिलालेख से जाहिर होता है कि सन् 1371 में भी इस इलाके में फीरोज तुगलक के तीन बड़े अधिकारी तैनात थे। उनका मुख्यालय शायद नागौर ही रहा होगा। शिलालेख से स्पष्ट होता है कि सन् 1371 में या इससे पहले फीरोज का अधिकार लाडनूं पर हो चुका था। इसका सीधा-सा अर्थ यह भी है कि जैसिंह मोहिल का पराभव भी इस तिथि से पहिले ही घटित हुआ। फकीर शेख अहम्मद के स्मृति लेख से यह बात स्पष्ट जाहिर होती है कि अपने बचपन या जवानी में जब वे लाडनूं आते-जाते थे तो जैसिंह मोहिल धर्मान्तरित हो चुके थे। शेख का जन्म 1337-38 (ई. सन्) में हुआ था अतः उनके

बचपन का काल 1350 तक तथा जवानी 1360-65 (ई.सन्) के बीच मानी जा सकती है। अर्थात् ई. सन् 1360-65 के बीच जैसिंह ने इस्लाम स्वीकार किया ऐसी सम्भावना लक्षित होती है।

हदीरा :

लाडनूँ शहर के चारभुजा चौक के दक्षिण-पश्चिम में स्थित एक बड़े अहाते में कुछ सांई परिवार रहते हैं। उसी अहाते में एक मस्जिद बनी हुई है। यहां निवास कर रहे सांई परिवारों ने इसकी दूसरी मंजिल में कुछ निर्माण कार्य ई. सन् 1934-35 में करवाया था, जिससे सम्भवतः कुछ महत्वपूर्ण प्रमाण नष्ट हो गए। फिर भी उसकी बाजू की दीवारों तथा प्रथम मंजिल का पत्थर का काम अभी भी मौजूद है। यह अवशिष्ट कार्य चौदहवीं शताब्दी के गुजरात व राजस्थान में स्थित मुस्लिम शैली के अन्य निर्माण कार्यों से मेल खाता है। इस मस्जिद के दक्षिण बाजू में पत्थर की एक छोटी-सी गुम्बददार इमारत है। यही हदीरा है। सम्भवतः इसका शुद्ध नाम हजीरा होना चाहिए। यह काफी कुछ सही हालत में उस जमाने की गुजरात में प्रचलित मकबरों की शैली की बारह खम्भों पर स्थित इमारत है। इनमें तीन कब्रें हैं। बीच वाली कब्र राव जैसिंह की बताई जाती है। उस पर एक फारसी में शिलालेख भी है। डॉ. जेड.ए. देसाई उस लेख को पढ़ नहीं पाए। इस मुख्य कब्र से सटी हुई बायीं तरफ एक औरत की कब्र है तथा दाहिनी तरफ एक बालक की। इस मकबरे के बाहर भी पश्चिम दिशा में पांच और कब्रें स्थित हैं। इनमें दो स्थानों पर स्त्री-पुरुषों की जुड़वां कब्रें हैं। इस प्रकार इस पूरे क्षेत्र में स्त्री-पुरुषों की जुड़वां कब्रों के तीन जोड़े स्थित हैं। सम्भवतः ये इस बात के संकेत हैं कि मोहिल महिलाएँ अपने पतियों के साथ सती हुईं। इससे यह भी सम्भावित लगता है कि किसी जमाने में यह स्थान इस्लाम में नव धर्मान्तरित मोहिलों का कब्रगाह था।

तुगलक वंश सम्बन्धी शोध कार्य और लाडनूं :

डॉ. देसाई का मत है कि राजस्थान के प्रसंग में तुगलक वंश के सम्बन्ध में अध्ययन करने वाले किसी भी शोध छात्र द्वारा लाडनूं का उल्लेख नहीं कर पाना एक बड़ी भूल मानी जाएगी। सन् 1967 में जैमिनी मोहन बनर्जी को फीरोजशाह के इतिहास पर जो पी.एच-डी. दी गई थी उसमें राजस्थान की शासन व्यवस्था के अन्तर्गत क्षेत्रीय प्रबन्ध के सम्बन्ध में जिलों की सूची शामिल की गई थी—उसमें लाडनूं का उल्लेख नहीं होने से कार्य अधूरा ही माना जाएगा।

डॉ. एम.ए. चुगताई ने अपने शोध-प्रबन्ध में नागौर जिले के डीडवाना स्थान का प्रसंग देकर फीरोज तुगलक सम्बन्धी एक अभिलेख का हवाला दिया है — वह अभिलेख वस्तुतः डीडवाने का नहीं होकर लाडनू का है। ऐसा प्रतीत होता है डॉ. चुगताई लाडनू के शिलालेखों का अध्ययन नहीं कर पाए। परिणाम स्वरूप जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण था वह छूट गया। लाडनू के उल्लेख के अभाव में राजस्थान के प्रसंग में फीरोज तुगलक सम्बन्धी प्रत्येक अध्ययन पूर्ण नहीं माना जाएगा।

V

छापर के मोहिल राणा

राणा हरदत के बाद उसका पौत्र बालहर छापर का अधिपति बना। बालहर के पिता का नाम वरसिंह (वरसल) था। वरसीह के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी प्राप्त नहीं है। राणा बालहर के कार्यकाल में मोहिल राज चन्द्रकला की तरह उत्तरोत्तर प्रगति करने लगा। राणा बालहर स्वयं एक पराक्रमी योद्धा थे। उनके बाद राणा आसल छापर की गद्दी पर बैठे। राणा असल भी एक योग्य शासक हुए। उनके उत्तराधिकारी राणा आहड़ हुए।

नैणसी मुणोत ने राजपूताने के प्रसिद्ध राजकुलों में मोहिलों को भी शुमार किया है। इस सम्बन्ध में मोहिलों के लिए नैणसी का उल्लेख इस प्रकार है — 'आहड़ नगर मोहिल'। इससे जाहिर होता है कि आहड़ नाम पूरी मोहिल वाटी की पहचान बन गया था। राणा आहड़ के समय मोहिल राज का बड़ा विस्तार हुआ। उनके पुत्र किरता ने किरतावाटी बसाई। आहड़ के नाम पर एक गाँव आहड़सर (आडसर) भी बसा।

राणा आहड़ के बाद छापर गद्दी पर राणा रणसिंह बैठे। राणा रणसिंह प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। पास-पड़ौस के सभी राजा उनसे भय खाते थे तथा उनमें वे एक सिंह के समान पूजित थे। राणा रणसिंह के उत्तराधिकारी राणा सोहणपाल हुए। छापर स्थित राणा सोहणपाल की देवली से उनका मृत्यु संवत् 1311 प्राप्त होता है। यह देवली एक अच्छा ऐतिहासिक प्रमाण है। राणा सोहणपाल के नाम से सोहणपालसर गांव बसा, जो आज भी सोनपालसर नाम से मौजूद है।

सोहणपाल की सांखली रानी सूरजकंवर से राणा लोहट का जन्म हुआ। राणा लोहट भी एक बलशाली राणा हुए। उनके नाम पर भी लोहटसर (वर्तमान में लोढ़सर) गाँव बसा। राणा लोहट की जाडेजा रानी बाला बाई से राणा बोब जन्मा। राणा बोब का दबदबा भी पास-पड़ोस के सभी राजा मानते थे। उनके नाम से बोबासर गाँव की स्थापना हुई, जो आज भी सामौर चारणों की बड़ी बस्ती है। राणा बोबा की सीसोदणी राणी चाँद कुंवर से राणा बेग का जन्म हुआ। राणा बेग एक कुशल धनुर्धर थे। उनके बाद छापर गद्दी पर राणा माणकराव आसीन हुए। मोहिल राणाओं की इस कीर्तिशाली परम्परा से मोहिल वंश का नाम इतिहास के गौरवशाली पृष्ठों में अंकित हो गया। मोहिलों की पहचान एक बड़े राजपूत कुल के रूप में उभरी।

VI

राणा माणक राव

मोहिलवाटी के क्षेत्र में तो निरन्तर विस्तार होता रहा लेकिन मोहिल महत्त्वाकांक्षी नहीं थे अतः किसी बड़ी उपलब्धि को वे हासिल नहीं कर पाए। वे किसी बड़ी राजनैतिक शक्ति के रूप में भी संगठित नहीं हो सके। सौभाग्य से इतिहास के उस काल खण्ड में उनके राज्य क्षेत्र के पास-पड़ौस में कोई अन्य बड़ी राजनैतिक शक्ति नहीं उभर पाई थी, जो उन्हें भयभीत करे। यही कारण था कि मोहिल करीब तीन सौ सालों तक निर्विघ्न राज कर सके।

धीरे-धीरे हालात बदलने लगे। मोहिलवाटी के पश्चिम और उत्तर-पश्चिम सीमा से सटे हुए जांगल प्रदेश में राठौड़ों की घुसपैठ शुरु हो गई थी। राठौड़ वीरम मारवाड़ छोड़कर थली प्रदेश में आ गए थे। उनके साथ उनका बड़ा पुत्र गोगा राठौड़ भी थळवट में बस गया था। कालान्तर में वीरम राठौड़ का छोटा पुत्र चूण्डा मण्डौर पर अधिकार कर लेने के बाद अपने पैर नागौर की धरती पर भी पसार चुका था। पूर्व में कामयखानी शक्ति ने अपनी जड़ें मजबूत कर ली थीं।

दिल्ली सल्तनत की नजरें भी बहुत पहले से ही दिल्ली की सीमाओं के पार दूर-दूर तक पसरने लगी थीं। इतिहास पुरुष पृथ्वीराज चौहान की पराजय के बाद चौहानों की केन्द्रीय सत्ता का लोप हो चुका था। ऐसा अन्य कोई संरक्षण मोहिलों को प्राप्त नहीं था

जो किसी आपदकाल में उनको सहयोग दे सके। क्षेत्र की छुटपुट लड़ाइयों के अतिरिक्त किसी बड़े युद्ध का मोहिलों को अनुभव नहीं हो पाया था। अत: किसी बड़ी विपत्ति का सामना करने को मोहिल तैयार नहीं थे। इन परिस्थितियों में बिना किसी विशेष प्रयत्न के मोहिलों का सुरक्षित रह पाना कठिन हो गया था।

इन हालात में उनका बारहवां राणा माणक राव हुआ। राणा माणक राव का जीवन काल काफी लम्बा रहा। राठौड़ वीरम के थळी प्रदेश में प्रवेश, जोहियों द्वारा उसकी हत्या, उसके पुत्र गोगदेव द्वारा अपने पिता की मौत का बदला, गोगदेव की मृत्यु, वीरम के दूसरे पुत्र चूण्डा का मण्डोवर जैसा बड़ा राज्य हस्तगत करना, उसके बाद चूण्डा का नागौर पर अधिकार करने जैसी सभी बड़ी ऐतिहासिक घटनाओं के वे साक्षी रहे। राणा माणक राव एक शक्तिशाली, पराक्रमी और सूझ-बूझ वाले राणा माने जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें अपनी तड़क-भड़क और शानशौकत के प्रदर्शन का भी मोह था।

राणा माणक राव का परिवार भी बहुत बड़ा था। उन्होंने पन्द्रह विवाह किए थे। उनके चौदह पुत्र और एक पुत्री का भाटों के वृत्तों में नामोल्लेख है। बीदावतों की ख्यात में लिखा है कि राणा माणक राव एक जबरदस्त राणा था। उसकी सवारी में सकसाई के कोतल ऊँटों का काफिला साथ चलता था। इसी ख्यात के अनुसार वह चौसल्या की लड़ाई में काम आए। बीदासर में राणा माणक राव का बनवाया हुआ एक तालाब आज विद्यमान है।

मुणोत नैणसी ने राणा माणकराव के पुत्रों में से दो का विशेष रूप से उल्लेख किया है। सांगा व सावंतसिंह। माणक राव की मृत्यु के बाद सांगा छापर का अधिपति बना। सावंतसिंह को द्रोणपुर प्राप्त हुआ। सावंतसिंह के दो पुत्र अजीत व अरड़कमल हुए। सांगा के बाद उसका पुत्र राणा बच्छराज छापर गद्दी पर बैठा। सावंतसिंह के बाद अजीत द्रोणपुर की गद्दी का उत्तराधिकारी बना। अजीत को राव जोधा राठौड़ ने अपनी पुत्री राजबाई ब्याही। अरड़कमल ने गरदेजियों से युद्ध करके उनसे लाडनूं छीन लिया। राणा माणक राव की पुत्री कोडम दे के साथ एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रसंग जुड़ा, जिसका विवरण अगले पृष्ठों में दिया जा रहा है।

यद्यपि राठौड़ों की नीयत मोहिलवाटी पर अधिकार कर लेने की सीमा तक तो अभी तक नहीं बन पाई थी, फिर भी मोहिल-राठौड़ों की परस्पर छुटपुट लड़ाइयों की शुरुआत

हो चुकी थी। राणा माणक राव के साथ घटी इस प्रकार की कुछ घटनाओं की जानकारी नीचे दी जा रही है—

जोधपुर राज्य की ख्यात से जाहिर होता है कि मालानी क्षेत्र के अधिपति राव मल्लीनाथ राठौड़ के पुत्र जगमाल ने अपने चाचा वीरम को खेड़ (मालानी का एक परगना) छोड़ने पर बाध्य कर दिया था। वीरम ने अपनी सांखली राणी को पूंगल पहुँचा कर लाडनू कांकड़ में चर रहे राणा माणक राव के घोड़े छीन लिए। गांव डांवरे में मोहिलों के साथ उसका आमना-सामना हुआ। इस लड़ाई में मोहिलों को पीछे हटना पड़ा। इसी से मिलता-जुलता कथन 'वीरवाण' के रचयिता बादर ढाढ़ी का है। बादर ढाढ़ी वीरम के सैनिक दस्ते में ऊँट के नक्कारे पर था। ढाढ़ी कौम विरुद गायकों की श्रेणी में शुमार है। वीरवाण की काव्य पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

लीधा अस फिर लाडणू वीरम वीर थै।
आय पोंहता डावरे सब मोयल सथै॥

नैणसी मुणोत के अनुसार एक अन्य प्रसंग इस प्रकार है—वीरम राठौड़ का पुत्र गोगदेव थळवट (थली प्रदेश) में रहने लगा था। एक वर्ष दुष्काल पड़ा। गोगदेव का एक चाकर अन्य सरदारों की तरह ही वहाँ से अन्यत्र चला गया। वर्षा होने पर वह पुनः लौट आया। मार्ग में मीतासर नाम के गाँव में वह एक रात ठहरा। वहाँ के तालाब पर बैठकर नहाने के कारण वहाँ के मोहिल स्वामी ने उसे पीटा। चाकर की पीठ छिल गई। गोगदेव को जब इस बात का पता चला तो उसने अपने सरदारों को इकट्ठा किया और मोहिलों पर चढ़ाई कर दी। उस दिन छापर में बहुत-सी बारातें आई हुई थीं। लोगों ने समझा यह भी कोई बारात ही है। अनेक मोहिल मारे गए। सत्ताइस बारातों को लूटकर गोगा ने अपने आदमी के अपमान का बदला लिया। राठौड़ वीरम का मृत्यु संवत् 1440 है। गोगदेव के साथ छापर राणा का उपरोक्त संघर्ष उसके बाद की घटना है।

चारण बीटू सूजा की रचना 'छन्द राऊ जेतसी रो' से ज्ञात होता है कि राव चूण्डा ने छापर पर हमला किया था। उस समय छापर के अधिपति राणा माणक राव थे। राव चूण्डा राठौड़ ने छापर को काफी क्षति पहुँचाई। चूण्डा का ध्येय मोहिलों को अपने बल और सामर्थ्य से अवगत करवाना मात्र था। छन्द इस प्रकार है—

छापरऊ कियऊ छागां छवाहं, बीलबगई राइ फरि फेर बांह।
चउण्ड राव चढ़िय मोहिल्ल चीति, राहा चरक्का देखाली रीति ।।

छन्द राउ जैतसी रो संख्या-8

हार-जीत जीवन में महत्त्वपूर्ण नहीं होते। महत्त्वपूर्ण होते हैं उनके प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण। जीवन में आए कठिनतम क्षणों के बावजूद भी राणा माणकराव एक सहनशील और धीरज वाले व्यक्ति साबित हुए। इस बात के भी ऐतिहासिक प्रमाण हैं कि उन्होंने डीडवाना पर भी अधिकार कर लिया था। डीडवाना में नमक का व्यवसाय उन्हीं के शासनकाल में शुरु हुआ। कुछ इतिहासकार लाडनू पर भी माणकराव का शासन होने की बात कहते हैं। इस सम्बन्ध में ज्यादा युक्तियुक्त बात यह है कि लाडनू शहर और गढ़ पर फीरोज तुगलक के ही अधिकारी काबिज थे।

राणा माणकराव का काल निर्धारण—*मोहिल राणा माणक राव के शासनकाल में घटी दो घटनाओं से सम्बन्धित संवतों की जानकारी प्रमाणिक रूप से उपलब्ध है। राठौड़ वीरम वि. संवत् 1440 में काम आए थे। राणा माणक राव की पुत्री कोडमदे संवत् 1462 में सती हुई थी। उपरोक्त सूत्रों से यह अनुमान लगाना युक्तियुक्त है कि वीरम राठौड़ संवत् 1435 के आस-पास थळी प्रदेश में आए तब उनकी पहली भिड़न्त राणा माणक राव से हुई थी। उससे करीब पांच साल पहले का समय उनके छापर की गद्दी पर बैठने का माना जा सकता है। इस प्रकार राणा माणकराव के राज्याभिषेक का समय वि. संवत् 1430 तद्नुसार ई. सन् 1373 निर्धारित होता है।*

माणकराव की पुत्री कोडमदे के सती होने की घटना के पांच साल बाद तक की अवधि में सम्भवतः वे चौसल्या के युद्ध में काम आए। इस आधार पर उनकी मृत्यु का संवत् 1467 के आस-पास (तद्नुसार ई. सन् 1410) अनुमानित होता है। इस तरह उनके राज्यकाल की कुल अवधि 37 वर्ष निर्धारित होती है। राणा माणक राव के छापर की गद्दी पर आसीन होने के वक्त तक लाडनू में जैसिंह मोहिल (प्रथम) का पराभव हो चुका था।

चाम्पा सामौर ने अपनी काव्य रचना में राणा माणकराव के लिए 'चक्रवर्ती' विरुद का उपयोग किया है। निःसन्देह राणा माणकराव एक उदार, धैर्यवान और प्रवण व्यक्ति थे। उनके लम्बे शासनकाल में कहीं पर भी उनके उद्विग्न ह

खो बैठने का कोई संकेत नहीं मिलता। अपने अधिकतर पुत्रों का युद्ध में काम आते देखना तथा अपनी एकमात्र पुत्री का सती हो जाना उन्हें अशान्त जरूर कर गया होगा लेकिन प्रत्यक्ष रूप में उन्होंने अपने मन की व्यथा को अपनी कमजोरी नहीं बनने दिया। फिर भी ऐसा लगता है मोहिलवाटी का सैनिक सन्तुलन उस काल तक शिथिल पड़ गया था, जिसका खामियाजा मोहिल राजवंश को आगे चलकर उठाना पड़ा।

VII

मोहिल राजकुमारी कोडमदे

राजकुमारी कोडमदे की कथा कोई प्रेम कहानी नहीं है। यह अनुपम शौर्य की एक व्यथाभरी गाथा है। इस कथा को लेकर भावुकतावश काफी कुछ गलत धारणाएँ प्रचारित कर दी गई थी जो कालान्तर में रूढ़ होकर आम लोगों के दिल-दिमाग पर उसी रूप में स्थापित हो गई। कोडमदे मोहिल राणा माणक राव की पुत्री थी। यह कथन निराधार है कि उसकी सगाई पहले राठौड़ राव चूण्डा के पुत्र अरड़कमल से हुई थी या कि अरड़कमल सांवले रंग के थे तथा देखेन में भी खूबसूरत नहीं थे अतः कोडमदे की इच्छानुसार पुनः सगाई पूंगल के राजकुमार भाटी सादू (शार्दूल) से कर दी गई।

राजपूत राजकुलों में आज भी यह मान्यता प्रभावी है कि विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद भले ही सम्बन्ध विच्छेद हो जाए लेकिन माँग (सगाई) कभी नहीं छोड़ी जा सकती है। अगर कोडमदे की सगाई अरड़कमल से हो गई होती तो उसके छोड़ने का सीधा-सा अर्थ होता युद्ध को निमन्त्रण।

अरड़कमल के साथ राजकुमारी कोडमदे की सगाई सम्भव भी कैसे हो सकती थी। अरड़कमल के पिता चूण्डा स्वयं ओडींट के मोहिलों की पुत्री ब्याह चुके थे। उसी स्थान पर उसी कुल में बेटा विवाह रचाए—यह हिन्दू सामाजिक नियमों के सर्वथा विपरीत बात होती। यद्यपि अरड़कमल की माँ मोहिलाणी नहीं थी, फिर भी बाप-बेटे की ससुराल एक ही जगह एक ही कुल में होना शोभनीय बात नहीं मानी जा सकती थी।

सादू (शार्दूल) भाटी और राठौड़ अरड़कमल के बीच हुए संघर्ष का मूल कारण था– राठौड़ों और भाटियों का परस्पर बैर। राठौड़ गोग देव की जोहियों ने हत्या की थी। उस कृत्य में सादु का पिता राणगदेव जोहियों के साथ था। उसी प्रसंग में राणगदेव ने गोगदेव को वह गाळी दी थी जो नए प्रतिशोध का कारण बनी। गोगदेव आखिरकार राठौड़ राव चूण्डा का भाई ही तो था। कोडमदे के विवाह का प्रसंग तो दुर्भाग्य से ही जुड़ गया था।

छापर अधिपति राणा माणकराव ने अपनी पुत्री कोडमदे की सगाई के नारियल पूंगल भेजे। राठौड़ों से अपने बैर का स्मरण कर, राठौड़ों की सरहद से लगी मोहिवाटी से आए नारियल स्वीकार करने में पूंगल स्वामी भाटी राणगदेव ने आनाकानी जाहिर की। परन्तु अपने बेटे सादू के यह कहने पर कि राठौड़ों से इस प्रकार डरते रहकर वे कब तक चल पाएँगे, साथ-साथ बिना किसी वाजिब वजह के नारियल लौटाना एक सम्मानजनक बात भी तो नहीं थी– भाटी राणगदेव ने मोहिलों के नारियल रख लिए।

संयोग से राव चूण्डा का पुत्र अरड़कमल भूण्डेल में महराज सांखला का मेहमान बना। यह वही महराज है, जिसका उल्लेख सांखलावंश के प्रसंग में पूर्व पृष्ठ संख्या 43 पर आ चुका है। विदित रहे महराज सांखला का एक पुत्र अल्हण गोगदेव और जोहियों के बीच हुई लड़ाई में भाटी राणगदेव के हाथों मारा जा चुका था। बातचीत के दौरान अनायास ही महराज सांखला के मुँह से एक दोहा निकल पड़ा–

बाघण पूत न बीसरै, ज्यूँ विषधर काळो।
अल्हण सी ना बीसरै, महरज मूछ्यॉंळो॥

अरड़कमल बात नहीं समझ पाया। उसने महराज से आशय स्पष्ट करने को कहा।

महराज ने अरड़कमल को बताया– "भाटियों से राठौड़ों का बैर अभी चूका नहीं है। आज से कुछ दिन बाद ही राणगदेव भाटी का पुत्र सादू अपना विवाह रचाने मोहिलवाटी आएगा। बैर बराबर करने का इससे अधिक उपयुक्त अवसर मिलना कठिन है।" राठौड़ राजकुमार अरड़कमल को इस सम्बन्ध में एक अन्य प्रसंग भी स्मरण हो आया। एक बार जब उसने एक भैंसे के तलवार के एक ही वार में दो टुकड़े कर दिए थे तो उसके पिता चूण्डा ने उससे कहा था– "ऐसे ही टुकड़े भाटी राणगदेव और उसके बेटे सादू के करो तो जानूँ।" भाटी राणगदेव द्वारा राठौड़ कुल को दी गई अपम... गाळी उसे निरन्तर सालती रहती थी।

राठौड़ अरड़कमल का रक्त उद्वेलित हुआ। उसने पर्याप्त संख्या में घुड़सवार तैयार किए और बिना किसी विलम्ब के चढ़ दौड़ा। मार्ग में उसे चार सिंह मिले। शकुन जानने वह कुचोर के गहलोत गोदा के पास गया। फिर आश्वस्त होकर लक्ष्य की तरफ बढ़ा।

निश्चित तिथि पर भाटी सादू भी बारात लेकर रवाना हुआ। उसने अपने पिता का मोर नामक प्रसिद्ध घोड़ा माँग लिया था। पिता राणगदेव सशंकित था। वह इस विचार से बारात में नहीं गया कि कोई तो बदला लेने शेष बचना चाहिए। उधर मोहिल भी सतर्क थे। उन्होंने विवाह स्थल छापर या द्रोणपुर नहीं रखकर अपने हलके के ठिकाणे ओडींट को चुना। ओडींट राव चुण्डा की ससुराल थी अतः विवाह के दौरान राठौड़ों के उपद्रव की सम्भावना कम थी। लाडनू किले पर उस समय मुसलमान काबिज थे।

विवाह सकुशल सम्पन्न हो गया। राणा माणकराव ने सादू को सुझाव दिया कि वह अपने साथियों सहित शीघ्र ही वहाँ से प्रस्थान कर जाए। दुल्हन का रथ विश्वासपात्र सरदारों के साथ पूँगल पहुँचा दिया जाएगा। सादू को इस प्रकार पलायन करना बिल्कुल नहीं जँचा। उसने कहा कि वह चारणों को त्याग बाँटकर ढोल के ढमके ही प्रस्थान करेगा।

राठौड़ भी अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे। महराज सांखला भी अपने पुत्र अल्हण का बदला लेने की मनसा से लश्कर के साथ था। राठौड़ों ने लायां के मगरे पर सादू को जा घेरा। अरड़कमल ललकार कर बोला, "बड़े सरकार जाव मत। मैं बड़ी दूर से तुमसे मिलने आया हूँ।" तब एक ढाढी (विरुद गायक) बोल पड़ा—

"उड़े मोर करे पलाई मौरे जाई पर सादौ न जाई।"

अर्थात् मोर घोड़ा उड़कर पालायन कर सकता है, लेकिन सादू ऐसा नहीं कर सकता।

दोनों तरफ से शस्त्र सम्भले। आदमी कटने लगे। सादू मोर घोड़े को दौड़ाकर शत्रु को चीरता हुआ दो बार उनके बीच से गुजरा परन्तु सादू उस घोड़े पर सवार होकर लड़ने में कम अनुभवी था। अरड़कमल ने उसकी इस कमजोरी को पहचान लिया। अरड़कमल अपने घोड़े से नीचे उतर गया। उसने ऐसा वार किया कि मोर के पैर कट गए। सादू गिर पड़ा और रणखेत रहा। उस पर अन्तिम वार महराज सांखला का था। दोनों तरफ से ही अनेक सरदार वीरगति को प्राप्त हुए।

कोडमदे ने अपनी एक भुजा काटकर अपने पति के साथ अग्नि समर्पित कर दी। आप पूंगल पहुँची। सास ससुर को सर नवाया। सती होने की आज्ञा माँगी। पूंगल की मिट्टी को माथे लगाकर वह सती हो गई। इतिहास में ऐसी शौर्यगाथा कम मिलेंगी। कोडमदे का सती आख्यान मोहिल राजवंश की एक अनमोल धरोहर है। युगों तक इसकी छाप अमिट रहेगी।

कहते हैं कोडमदे को पहुँचाने गए उसके अनेक भाई भी इस युद्ध में काम आए। कुचोर में खैराज मारा गया। वह वहाँ भोमिया के रूप में पूजित है। उस इलाके के बिश्नोइयों में उसकी बड़ी मान्यता है। सोवा में राघोदास मारे गए। भूरे पत्थर की हाथी पर सवार उसकी देवळी सोवा की कांकड़ में आज भी मौजूद है। रथ रक्षक दो मेघवाल भी वहीं काम आए। एक भाई आम्बासर में रणखेत रहा। नाळ की रोही में भिरड़ा काम आए। स्वयं सादू भाटी कोडमदेसर में काम आए, जहाँ कोडमदेसर तालाब बना।

राठौड़ अरड़कमल ने नागौर पहुँचकर अपने पिता चूण्डा को प्रणाम किया। चूण्डा ने उसे डीडवाना की जागीर प्रदान की। भाटी बदला लेने को उद्यत हुए। महराज सांखला उनका पहला निशाना बना। राणगदेव अपने एक विश्वासपात्र सहयोगी पाहू जेठी के साथ भूण्डेल जा पहुँचा। महराज बड़ा शकुनी था। उसे खतरे का आभास हो गया था। उसने अपनी आशंका से राव चूण्डा को भी अवगत करा दिया था। लेकिन चूण्डा के पहुँचने में थोड़ा विलम्ब हो गया और महराज सांखला मार डाला गया।

राव चूण्डा अपने सैनिक लेकर चढ़ धाया परन्तु जांगल प्रदेश के उस उजाड़ विस्तार में राणगदेव का अतापता ढूँढ़ पाना सरल काम नहीं था। चूण्डा अनुभवी थे। उन्होंने जांभ बघोड़े का गुडा घेर लिया। जांभ राणगदेव का भेद देने को राजी हो गया। जांभ को आगे करके चूण्डा वहाँ पहुँचा, जहाँ भाटियों का डेरा था। भाटियों ने सपने में भी कल्पना नहीं की थी कि चूण्डा इतना शीघ्र वहाँ पहुँच जाएगा। भाटियों ने समझा कि कोई सौदागर अपने घोड़े बेचने आया है और जांभ उनकी अगवानी कर रहा है। अतः असावधान अवस्था में वे बाहर निकल आए। चूण्डा ने ललकार कर कहा, "राणगदेव! गोगदेव को माँगता हूँ।" इतना कहकर चूण्डा ने राणगदेव और पाहू जेठी के मस्तक उड़ा दिए।

बात को और आगे बढ़ना था। राणगदेव का एक अन्य बेटा केल्हण मुल्तान के नवाब की शरण में चला गया। वह मुसलमान बन गया। मुल्तान के नवाब खिजर खाँ की

मदद से वह नागौर पर चढ़ आया। सम्भवतः इस अभियान में हिसार का नवाब कायमखाँ भी उसके साथ था। वह खिजर खाँ को दिल्ली के तख्त पर बैठाना चाहता था। राव चूण्डा इस संघर्ष में मारे गए। परन्तु राठौड़ सैनिक झुके नहीं। प्रबल जन-विरोध के कारण केल्हण नागौर पर काबिज नहीं हो सका।

चूण्डा का पुत्र कान्हा मण्डौर और नागौर की गद्दी पर बैठा। उपरोक्त लड़ाई में भाटियों के साथ देवराज सांखला भी शामिल था। कान्हा ने सांखलों की राजधानी जांगलू पर हमला बोल दिया। अनगिनत साँखले मौत के घाट उतार दिए गए। इस सम्बन्ध में एक दोहा प्रचलित है–

सधन हुया भड़ साँखला, ज्यों भाजै क्राझाल।
वीर रतन ऊदो बिजो, बछौ नै पुनपाल॥

महराज सांखला के मारे जाने पर उसका पुत्र हरभम भूंडेल छोड़कर फलोदी के पास बैंगटी नामक गाँव में चला गया। वहाँ उसकी मुलाकात रामदेव जी तंवर से हुई। रामदेव जी के गुरु बालीनाथ से ही हरभम ने दीक्षा ली और शस्त्र त्याग दिए। हरभम 'हरभू' नाम से लोकदेवता के रूप में प्रसिद्ध हुए। राजपूतों में पाँच लोकदेवता प्रसिद्ध हैं–तंवर रामदेव, राठौड़ पाबू, सांखला हरभू, चौहान गोगा और मांगलिया मेहा। इनके अतिरिक्त जाटों में वीर तेजा लोकदेवता के रूप में पूज्य हैं। गूजरों में देव नारायण हुए। इन सबने जन-मानस को बहुत अनुप्राणित किया है।

VIII

उत्तरवर्ती मोहिल शासक

राव अजीत :

मोहिल राणा माणकराव के पौत्र और सांवतसिंह के पुत्र राव अजीत द्रोणपुर के अधिपति थे। मोहिल राजवंश में उनका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे स्वाभिमान की तो प्रतिमूर्ति ही थे। उनका विवाह जोधपुर नरेश राव जोधा की पुत्री राजबाई (या रामाबाई) के साथ हुआ था। कहते हैं किसी कारणवश राजबाई की आँखों की ज्योति चली गई थी। विवाह के समय अजीत द्वारा उनका पाणिग्रहण करते ही उनकी आँखों की ज्योति लौट

आई। इस घटना से ऐसा लगता है कि उनका व्यक्तित्व दिव्यता के किसी क्षितिज को छूता था।

वे सही अर्थों में वीर पुरुष थे। वे आखड़ी के प्रणधारी थे, जिसका अर्थ होता है युद्ध में किसी भी परिस्थिति में पीठ नहीं दिखाना। विजय हासिल करना या लड़ते-लड़ते मर जाना। भागते हुए शत्रु का कभी पीछा नहीं करना। स्वयं घोड़े पर सवार रहकर पैदल दुश्मन पर वार नहीं करना। वे हमेशा सुसज्जित रहते थे। शौर्य का प्रतीकात्मक नाम था राव अजीत।

अजीत से आमने-सामने युद्ध करने में राव जोधा भी कतराते थे। जोधपुर आए अजीत को दबा लेना ही उनको सुगम लगा। लेकिन उनके गुप्त मनसूबे की अजीत के सरदारों को भनक लग गई। सरदार जानते थे कि अजीत जोधपुर से भागने को कभी तैयार नहीं होगा। अतः वहाँ से कूच करने के लिए उन्हें झूठ का सहारा लेना पड़ा कि राणा बच्छराज पर यादवों ने हमला कर दिया है। राव जोधा ने अपने सैनिकों सहित अजीत का पीछा किया। गणोड़ा स्थान पर उन्होंने मोहिलों को जा दबोचा। गणोड़ा गाँव लाडनूं से उत्तर-पश्चिम में दो कोस के फासले पर ही है। वहाँ से अजीत का ठिकाणा द्रोणपुर सिर्फ तीन कोस की दूरी पर ही था। अजीत चाहते तो बिना किसी कठिनाई के सुरक्षित स्थान पहुँच सकते थे। सही बात का ज्ञान होने पर वे एक कदम भी आगे नहीं बढ़े।

अपने प्राणों से भी ज्यादा प्रिय अजीत को अपने प्रण थे। जोधा ने भी अजीत के एक प्रण का ही सहारा लिया। जोधा घोड़े पर सवार रहकर अजीत से कभी पार नहीं पा सकते थे। वे घोड़े से नीचे उतर गए। अजीत ने उनको ललकार कर कहा, "जोधा। ज्ञान गौर कर, बाघोड़ा मनै भाणै की लाज है।" अर्थात् "जोधा। घोड़े पर सवार हो जाओ। मेरा प्रण है कि मैं घोड़े पर सवार रहकर नीचे खड़े व्यक्ति पर वार नहीं करता। जोधा ने अजीत की बात को हँसकर टाल दिया। वे घोड़े पर नहीं चढ़े।

विवश होकर अजीत को घोड़े से नीचे उतरना पड़ा। उस स्थिति में जोधा, बीका और नरा ने उस पर वार करके उसे रणखेत में धराशायी कर दिया। एक वीर पुरुष हमेशा के लिए धरती से विदा हो गया। यह घटना वि. सम्वत् 1521 तदनुसार ई. सन् 1464 में घटी। मोहिलों की सत्ता का यहीं से पराभव शुरु हो गया। अजीत के समकालीन चारण कवि तेजा सामौर ने उनके अवसान पर मर्सिया रचे। एक बानगी यहाँ प्रस्तुत है—

अजीत एकणि आव, दाव दिखावण दोयणा।
साळ कटारी साव, नेग चुकायर न्हास जे॥
मेटि मुद्दां मरजाद, रतन रूळायो रजकणा।
अजीत थारी याद, सदा काळजो सालसी॥
तेजळ तो बेताज आज तोय बिन अधिपती।
तिण नै बगसण ताज, अजीत पूठी आवरे।
लाखाई मन लोरां जोरां हूं धप धप जगै।
मोहिल सामोरा, नातो निहार आवजे॥

राणा मेघा :

मोहिल राजवंश की नाव मझधार में थी। सौभाग्य से उनको राणा मेघा के रूप में एक कुशल माँझी मिल गया था। राणा मेघा राणा बच्छराज के पुत्र थे। उनका एक विवाह मेवाड़ के महाराणा कुम्भा की पुत्री जीतकुंवर से हुआ था। उनका दूसरा विवाह राव जोधा के भाई कांधल राठौड़ की पुत्री से हुआ। उनके दो पुत्र हुए बरसल और नरवद। राणा मेघा पराक्रमी होने के साथ-साथ सूझबूझ के भी धनी थे। वि. सम्वत् 1522-23 में राठौड़ों के हाथ हुई राणा बच्छराज की पराजय के बाद ऐसा लगा था कि मोहिल राजवंश का सूर्य सदैव के लिए अस्त हो गया है लेकिन राणा मेघा ने अपने बल, पराक्रम और सूझ-बूझ से सिद्ध कर दिया कि सूर्य अस्त नहीं हुआ था सिर्फ घने बादलों से ढक गया था।

राठौड़ों के साथ हुए युद्ध में राणा बच्छराज काम आ चुके थे। लेकिन मेघा बच निकले। जोधा परिस्थिति को पहचान गए कि मेघा के रहते मोहिलवाटी पर अधिकार बनाए रखना किसी भी रूप में सम्भव नहीं था। राणा मेघा राठौड़ों की कमजोरी को जान गए। राठौड़ों की दोनों ही राजधानियाँ जोधपुर और बीकानेर— छापर से बहुत दूर थीं। राठौड़ों को अपनी सेना सजाकर बहुत दूर से आना पड़ता था। छापर में किसी बड़ी सेना का सदैव के लिए रखा जाना सम्भव नहीं था। छापर या द्रोणपुर पर राठौड़ों द्वारा स्थापित किसी भी शासक को अपदस्थ कर देना मोहिलों के लिए आसान काम था।

मेघा ने इसी नीति का सहारा लिया। राठौड़ों की बड़ी सेना के सामने वह मैदान देता। सेना के हट जाने पर उनके द्वारा छोड़े गए शासक को वह सुखचैन से

रहने नहीं देता। मेघा ऐसा माँझी था जिसने मोहिलों की डूबी नाव को पुनः तैरने योग्य बना दिया। राठौड़ों के अनेक हमलों को उसने विफल किया लेकिन मोहिलों का दुर्भाग्य रहा कि राणा मेघा ने उम्र ज्यादा नहीं पाई। उनकी मृत्यु के बाद मोहिल राज बिखर गया।

IX

लाडनू के उत्तरवर्ती मोहिल शासक

राव अरड़कमल :

मोहिल राणा माणकराव के पुत्र सांगा को छापर की गद्दी मिली। उनके दूसरे पुत्र सामंतसिंह को द्रोणपुर मिला। राव सामन्त के दो पुत्र हुए—अजीत और अरड़कमल। राव अजीत द्रोणपुर के अधिपति बने। लेकिन अरड़कमल को अपने लिए जमीन तलाश करनी थी। उनकी नजर अपने पड़ोसी कस्बे लाडनू पर गई। उस समय लाडनू पर 'गरदेजी' काबिज थे। अरड़कमल ने गरदेजियों को आसानी से अपदस्थ कर दिया और लाडनू पर अधिकार कर लेने में वे सफल हुए। यहीं से लाडनू पर मोहिलों की सामंतसिंहोत परम्परा का शासन प्रारम्भ हुआ।

इस परम्परा में तीन प्रसिद्ध शासक हुए। राव अरड़कमल, राव भोज और राव जयसिंह। राव अरड़कमल ने लाडनू में 'सीतारामजी' का मन्दिर बनवाया तथा रणाधीर तालाब खुदवाया। यह तालाब लाडनू की पश्चिम दिशा में आज भी मौजूद है। राव अरड़कमल के साथ छापर तथा द्रोणपुर से अन्य जातियों के अनेक परिवार भी लाडनू आकर बसे। यथा—कुम्हार, नाई, भोजक आदि। श्री जोधराज नाम के व्यक्ति सेवग जाति के अग्रपुरुषों में थे।

राव भोज :

संवत् 1489 का शिलालेख : स्थानीय गढ़ परिसर की पश्चिमी सीमा पर एक परकोटे में घिरी हुई 'गरदेजियों' की पांच कब्रें हैं। उस स्थान को 'गंज शहीदां' दरगाह के नाम से जाना जाता है। परकोटे की पश्चिमी दीवार के ठीक पास ही भीतर की तरफ

एक शिलालेख लगा हुआ है। इस शिलालेख में संवत् 1489, आसोज सुदी 10 का अंकन है। उसमें उल्लेख है कि राव भोज ने एक बीघा जमीन इस दरगाह के वास्ते प्रदान की थी। इस शिलालेख से जाहिर होता है कि वि. संवत् 1489 तद्नुसार ई. सन् 1432 में राव भोज लाडनू पर काबिज थे जबकि मोहिलों की ख्यात में इस संवत् में लाडनू पर राव भोज के पिता राव अरड़कमल द्वारा गरदेजियों को हराकर कब्जा किए जाने का उल्लेख है।

इतिहास की दृष्टि से यह कोई बड़ी विसंगति नहीं है। ऐसा होना भी सम्भव है कि राव अरड़कमल ने उसी वर्ष में राज्य सत्ता अपने पुत्र भोज को सम्भला दी हो। फिर भी कारण कुछ भी रहा हो संवत् 1489 में लाडनू पर राव भोज का अधिकार मानना ही युक्तियुक्त है। यह शिलालेख लाडनू के इतिहास का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। मोहिलवंश से सम्बन्ध रखने वाले ऐसे स्पष्ट शिलालेख कम उपलब्ध हैं। इस शिलालेख की जानकारी गढ़ परिसर का मुआयना करते समय मुझे अचानक ही हुई थी। 'मोहिलवंश का इतिहास' पुस्तक के लेखक श्री रतनलाल मिश्र जब लाडनू में मुझसे मिले थे तो मैंने उन्हें इस शिलालेख की उपस्थिति से अवगत कराया था। मैं इस बात का दावा नहीं करता कि इसको पहले-पहल मैंने ही जाना। मुझसे पहले भी इसे अनेक लोग जानते थे लेकिन मैं इस शिलालेख में वर्णित व्यक्ति को पहचानता था अतः इस शिलालेख का मेरे लिए महत्त्व बढ़ गया।

मोहिलों की ख्यात :

स्व. मौलाबख्श जी द्वारा रचित मोहिलों की ख्यात में उल्लेख है कि राव अरड़कमल ने द्रोणपुर से आकर संवत् 1489 में लाडनू से गरदेजियों को अपदस्थ कर सत्ता पर अपना कब्जा किया था। यद्यपि उपरोक्त ख्यात देखने का मुझे अवसर नहीं मिला। डॉ. जेड.ए. देसाई ने भी अपने शोध प्रबन्ध 'इन्सक्रिप्सन्स ऑफ फीरोज तुगलक' में इस ख्यात का उल्लेख किया है लेकिन ख्यात देखने का सौभाग्य उनको भी नहीं मिल पाया था। नगर श्री चूरू के प्रशस्त इतिहास लेखक श्री गोविन्द अग्रवाल ने इस ख्यात को देखने की बात कही थी। वे ही इसके एकमात्र साक्षी हैं। यह ख्यात भाटों के वृत्तों के आधार पर ही संकलित की गई थी।

गरदेजी :

का मानना है कि वे महमूद गजनवी की फौज के साथ भारत आए थे। उनका

मूल स्थान अफगानिस्तान का गरदेज प्रान्त है। इतिहास के मध्यकाल में इस प्रकार के लोग बड़े सैनिक काफिलों के साथ विजित प्रदेशों की लूट खसोट के लालच में आते रहे हैं। 'गरदेजी' कोई राजवंश नहीं था जो सत्ता प्राप्त करने का इच्छुक रहा हो। उन्होंने लाडनू किसी सैनिक बलबूते पर हासिल नहीं किया था। तथ्य यह है कि मुसलमान होने का ही लाभ गरदेजियों को मिला। मुसलमान आक्रमणकारियों से आम आदमी आतंकित था। सम्भवतः तुगलवंश के पतन के बाद तुगलकवंश के अधिकारियों से इस इलाके की सत्ता गरदेजियों को हस्तान्तरित हुई तथा नागौर के खानजादों ने उन्हें संरक्षण दिया। लाडनू की मालगुजारी नागौर पहुँचाना उनका एकमात्र काम था।

लाडनू इलाके पर गरदेजियों का कब्जा अधिक से अधिक तीस वर्षों तक रहा। राव अरड़कमल द्वारा उन्हें अपदस्थ किए जाने पर वे लाडनू को त्यागकर डीडवाना, खुनखुना, मारवाड़ बालिया आदि स्थानों को चले गए। उन्होंने गुडा गरदेजी गाँव भी बसाया। वे अपने पूर्वजों की मजारों पर जात झडूले आदि के अवसरों पर लाडनू आज भी आते हैं लेकिन यहाँ का पानी नहीं पीते। उन्होंने अपनी हार को अभी तक विस्मृत नहीं किया है।

लाडनू पर मोहिलों का यह शासन कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा। लाडनू के लोकप्रिय मोहिल शासक राव जयसिंह इसी परम्परा में हुए। लेकिन प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि शेष मोहिलवाटी पर राठौड़ बीदा का अधिकार हो जाने पर भी लाडनू का यह मोहिल राज किस बलबूते पर टिका रहा। मोहिलों में इतनी सामर्थ्य बच नहीं पाई थी कि राठौड़ो की प्रबल शक्ति का वे सामना कर पाते। अगर मोहिलों को खुद राठौड़ों का सहारा रहता तो उनके मुसलमान बनने की नौबत ही क्यों आती ?

प्रश्न यह भी उठता है कि मोहिलों द्वारा जब लाडनू से गरदेजियों को सत्ताच्युत किया गया तो नागौर के खानजादा चुप क्यों बैठे रहे? इन सभी प्रश्नों का सीधा सा एक ही उत्तर बनता है कि—राठौड़ चारों ओर प्रबल हो रहे थे। नागौर के खानजादों को भी उनका भय निरन्तर सताने लगा था। वे गरदेजियों को कमजोर मानने लगे थे। उनके हाथो में लाडनू सुरक्षित नहीं था। खानजादा जानते थे कि मोहिल आन्तरिक रूप से राठौड़ों के विरोधी थे और गरदेजियों की तुलना में वे अधिक शक्तिशाली थे अतः मोहिलों को अपने विश्वास में रखना खानजादों को सामरिक दृष्टि से अधिक फायदेमन्द लगा।

नागौर के खानजादों के लिए लाडनू उत्तर-पूर्वी सीमा का एक सामरिक महत्त्व का स्थान था। वि. सम्वत् 1539 तदनुसार ई. सन् 1482 में राव जयसिंह मोहिल के राज्यकाल में खानजादों ने लाडनू गढ़ की मरम्मत करवाई थी। इस आशय का फारसी शिलालेख आज भी मौजूद है। यह किसी प्रकार की ऐतिहासिक विसंगति नहीं है, समकालीन परिस्थितियों की सहज निष्पत्ति है। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि लाडनू के मोहिल शासकों और नागौर के खानजादों के बीच सांठ-गांठ स्थापित हो गई थी। इसका लाभ मोहिलों को भी मिला कि खानजादों के भय से बीदासर के राठौड़ लाडनू के मोहिलों की तरफ नजर नहीं उठा सके।

राव जयसिंह :

राव जयसिंह मोहिल एक लोकप्रिय शासक थे। यही कारण है कि उनका नाम लाडनू की आम जनता की स्मृति में आज दिन तक मौजूद है। वे राव भोज के पुत्र थे। भाटों के वृत्त के अनुसार वे वि. सम्वत् 1535 में लाडनू की गद्दी पर बैठे। ऐसा लगता है उनका शासन काल बहुत लम्बा रहा। उन्होंने अनेक जनोपयोगी कामों को अंजाम दिया। वि. सम्वत् 1536 (ई. सन् 1479) में उन्होंने चारभुजा नाथ का मन्दिर बनवाया। वि. सम्वत् 1542 (ई. सन् 1485) में राव कूआ तथा राव तालाब बने। वि. सम्वत् 1543 (ई. सन् 1486) में शहर का दक्षिण दरवाजा (राव दरवाजा) बना। वि. सम्वत् 1544 (ई. सन् 1487) में उन्होंने लोहार्गल (लुहागरजी) की तीर्थ यात्रा सम्पन्न की। उसके उपलक्ष्य में सामौर शाखा के चारण जसुदान को उन्होंने 1500 बीघा जमीन खेती के लिए तथा बारह बीघा जमीन बसने के लिए दी, जिसका विधिवत ताम्रपत्र उन्होंने जसुदान सामौर के नाम जारी किया जो आज तक उनके वारिसों के पास उपलब्ध है।

इस बीच ऐतिहासिक घटनाक्रम ने एक नया मोड़ लिया। ई. सन् 1540 में खानजादा सरखेल खाँ को मारकर जोधपुर शासक राव मालदेव ने नागौर पर अधिकार कर लिया। इस घटना के साथ लाडनू पर भी राठौड़ों का अधिकार हो गया। लेकिन ई. सन् 1543 में राव मालदेव शेरशाह सूरी से हार गए और मारवाड़ का राज्य खो बैठे। नतीजतन मोहिलों को लाडनू पर शासन करने के लिए कुछ वर्ष और मिल गए। ई. सन् 1556 में मालदेव मारवाड़ पर पुनः काबिज हो गए। इसके बाद लाडनू इलाके से मोहिल राज का सूर्य हमेशा के लिए अस्त हो गया।

लाडनू के मोहिल राज की उत्तरकालीन परिस्थितयाँ :

राव जयसिंह के कुल तेरह रानियाँ थीं। बारह हिन्दू रानियाँ तथा एक जोहिया वंश की मुसलमान रानी जोहियाणी से जयसिंह के पाँच पुत्र हुए—साहणमल, देवराज, सुखदेव, हँसराज और मालदेव। राव जयसिंह ने उन्हें मुसलमान बने रहने को प्रेरित किया तथा अपने राज्य में उन्हीं को प्राथमिकता दी।
देवराज लाडनू की गद्दी पर बैठे। साहणमल ने साहरिया (सहरिया बास) बसाया। सुखदेव निम्बी के अधिकारी बने। हँसराज को रोडू तथा मालदेव को बाघेड़ गांव मिले।

राव जयसिंह के उपरोक्त पाँचों पुत्र नख प्रवर्तक हुए। उनके नख क्रमशः साहपोता, देवराजपोता, सुखावत, हाँसावत व मालावत हैं। बाद की पीढ़ियों में भी नख प्रवर्तन हुआ। बड़े पुत्र साहणमल जी की परम्परा में तीसरी पीढ़ी में पातलजी हुए। उनके पुत्र भादोजी हुए। बाप बेटे दोनों से ही नख चले। मुसलमान बन जाने के बाद ऐसा होना जरूरी भी होगया था। शाखा विभाजन हुए बिना विवाह सम्बन्धों में अड़चन आना स्वाभाविक था।

लाडनू मोहिल राज का एक आदर्श प्रतीक बना। लाडनू में मोहिलराज की अन्तिम मशाल अपना सुन्दर प्रकाश बिखेर कर हमेशा के लिए शान्त हो गई। लाडनू में मोहिलों की सामंतसिंहोत परम्परा का राज करीब सवा सौ वर्ष तक रहा। लाडनू के नए राजनैतिक ताने-बाने में भी मोहिलों को सम्मानजनक स्थान मिला। जोधपुर दरबार तक इनकी पहुँच रही। इनको भोमियों का दर्जा मिला। मोहिलों के पास जमीन बहुत थी। भादोजी के पाँच पुत्र थे। प्रत्येक के हिस्से में भी काफी अच्छी जमीन थी। इस सम्बन्ध में एक दोहा भी प्रचलित हुआ—

भोम घणी भदराज कै, भड़ पाँचूं भल्ला।
सिंग, बलभद्दर, खेतसी, दुरजन संघ दल्ला॥

पराभव के बाद भी मोहिलों द्वारा निर्माण कार्य जारी रहे। वि. सम्वत् 1675 (ई. सन् 1618) में मोहिल काव्ळूशाहजी किसी लड़ाई में काम आए। उनके भाई सालरशाहजी ने उन पर दरगाह बनवाई। भादोजी के पुत्र दुरजनसालजी ने वि. सम्वत् 1727 (ई. सन् 1670) में दुरजनसर तालाब खुदवाया। यह तालाब लाडनू के प्रसिद्ध तालाबों में माना जाता था। लाडनू की पश्चिमी दिशा में यह आज भी मौजूद है। सावण की तीज का

मगरिया इसी तालाब के किनारे भरता है। वि. सम्वत् 1745 (ई. सन् 1688) में मोहिल अमरसिंह जी ने रामदेवजी का मन्दिर बनवाया। सम्वत् 1747 (ई. सन् 1690) में भादोजी के पिता पातळ जी ने मोहिलों की पोळ का निर्माण करवाया।

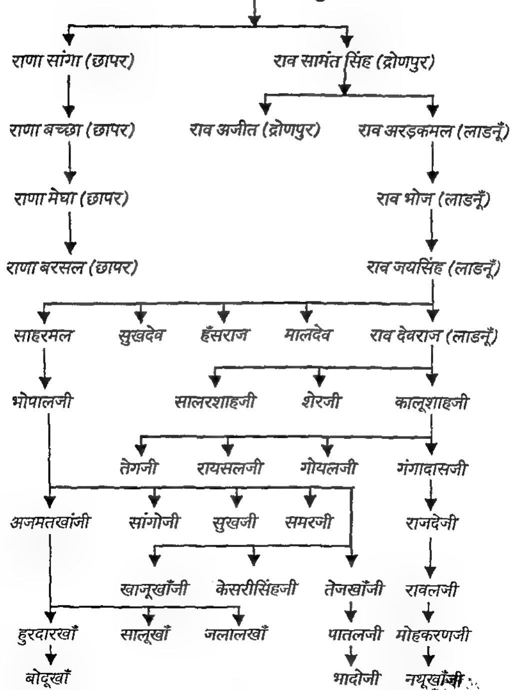
मोहिलवाटी पर बीदा का अधिकार हो जाने के बाद भी कई मोहिल ठिकाणों ने आत्म-समर्पण नहीं किया था। सूरावास का राव सूरा भी उनमें से एक था। राव बीदा ने सूरावास के गढ़ को घेर लिया। अपनी हार निश्चित जानकर सूरा ने अपना ठिकाणा चारणों को दान में दे देने की घोषणा कर दी। बीदा के सामने उसने शर्त रखी कि यदि उसके परिजनों को सकुशल लाडनू जाने की सुविधा दे दी जाए तो वह राव बीदा से द्वन्द्व युद्ध करने को तैयार है। राव बीदा ने उसकी शर्त मान ली तथा उसके परिवारजनों को सकुशल लाडनू जाने दिया गया। सूरा राव बीदा के साथ हुए युद्ध में मारा गया। इस घटना से जाहिर होता है कि शेष मोहिलों की आशा और सहारे का एकमात्र केन्द्र लाडनू ही रह गया था। शेष मोहिलवाटी के प्रमुख मोहिल परिवार लाडनू की ओर आकर्षित हुए।

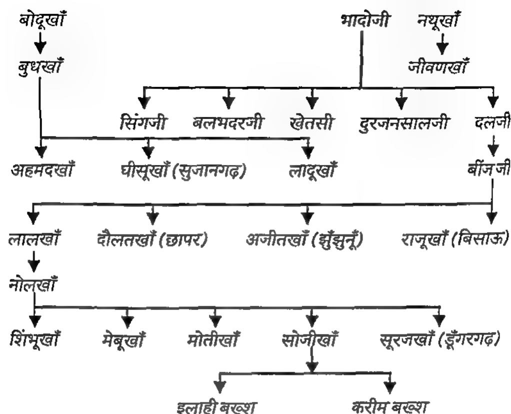
राव जयसिंह का कार्यकाल मोहिलों के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। अनेक दूरगामी निर्णय इसी कालावधि में लिए गए। राजसत्ता छिनते ही मोहिल आर्थिक दृष्टि से कमजोर हो गए थे। मोहिल उदार थे। नाजायज तरीकों से धन इकट्ठा करना उन्होंने कभी जाना ही नहीं था। यह संक्रमण काल मोहिल जाति के लिए बड़ा कठिन गुजरा। अन्य पेशेवर जातियों के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित करने को उन्हें मजबूर होना पड़ा। यही कारण है कि अनेक पेशेवर जातियाँ मोहिल मूल की हैं। खण्डेलवाल वैश्य समुदाय की भी कुछ जातियां मोहिल मूल की हैं।

इन परिस्थितियों में राव जयसिंह को अपनी जोहियाणी राणी के पुत्रों के मुसलमान बने रहने में अधिक सुरक्षा महसूस हुई।अपनी इन सन्तानों की सामाजिक सुरक्षा को लेकर वे ज्यादा चिन्तित थे। हिन्दू रानियों से हुई सन्तानों को उन्होंने अपना निर्णय आप करने की छूट दे दी। वे मारवाड़ राज्य में फैलकर हिन्दू समाज में समाहित हो गई। लेकिन राव जयसिंह (द्वितीय) स्वयं मुसलमान नहीं बने। भाटों के वृत्त के अनुसार सम्वत् 1604 (ई. सन् 1547) उनके स्वर्गवास पर जोहियाणी सती हुई।

X

मोहिल वंशवृक्ष (सामंतसिंहोत परम्परा)





XI

सिद्ध पुरुष हिम्मतसिंह मोहिल (खीवाणी)

भाटों के वृत्त के अनुसार छापर राणा बच्छराज की सोढ़ी (पंवार) राणी रायकुंवर से उनके पुत्र मेघा का जन्म हुआ। राणा मेघा का एक विवाह सीसोदिया राणा कुम्भा की पुत्री से हुआ था। उनका दूसरा विवाह राठौड़ कांधल की पुत्री से हुआ। राणा मेघा के अनेक सन्तानें हुई, जिनके नाम लोहटजी, बालुजी, बरसलजी, नरवद जी आदि थे। लोहट जी का विवाह पंवार जैसलदेव जी की पुत्री फूलकुंवर से हुआ। लोहटजी के भी अनेक पुत्र हुए, उनमें एक खींवराजजी थे। खींवराजजी नख प्रवर्तक हुए। उनके वंशज खीवाणी कहलाए।

मेघा राणा की मृत्यु के बाद संवत् 1531 में छापर पर राठौड़ों का अधिकार हो गया। शनैः-शनैः मोहिलवाटी के अधिकतर मोहिल सरदार लाडनू आ गए। खींवराज जी की सन्तान भी लाडनू आ गई। उस समय लाडनू पर राव जयसिंह मोहिल का राज था। खींवराज जी की सन्तानों को लाडनू में गुजारे लायक पर्याप्त जमीन भी मिल गई। श्रुत परम्परा से खींवाणी शाखा में एक आख्यान इस प्रकार प्रचलित है—

कुछ बालक हमेशा की तरह जंगल में बकरियाँ चराने गए हुए थे। उनमें खीवाणी परिवार का एक बालक हिम्मतसिंह भी था। बालक स्वभाव से सीधा-सादा और निश्छल था। सभी बालक विश्राम करने को एक पेड़ के नीचे बैठे हुए थे कि अचानक एक दिव्य सन्त पुरुष प्रकट हुए। कोई नहीं जान पाया कि वे कहाँ से आए। कुछ बालक भयभीत होकर भाग गए। शेष बालक डर तो गए लेकिन बकरियों को छोड़कर भागना उन्होंने उचित नहीं समझा। सन्त ने बालकों से दूध पीने की इच्छा जाहिर की।

बालक हिम्मतसिंह ने कहा, "बाबाजी! बकरियाँ अभी-अभी दूहकर लाए हैं, इस समय दूध मिल पाना तो सम्भव नहीं?" सन्त ने एक बकरी की तरफ इशारा करके कहा, "उसका दूध निकाल लाओ।" बालक हैरान हुआ कि वह बकरी तो साल भर से सूखी हुई थी, उसके दूध कहाँ था? फिर भी महात्मा जी का दिया पात्र लेकर बालक बकरी दूहने बैठ गया। उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा कि पात्र दूध से भर गया। दूध का काफी कुछ भाग महात्माजी पी गए। शेष बचा हुआ दूध उन्होंने बालक हिम्मतसिंह को पीने के लिए दे दिया। हिम्मतसिंह ने दूध पी लिया।

सन्त ने बालक हिम्मतसिंह को साथ लिया और चार स्थान बताए। एक स्थान पर देवरा (देव स्थान) बनाने को कहा। दूसरे पर कूआ खोदे जाने की हिदायत दी। तीसरे पर रहवास व साधना के लिए घर बनना था। इन सब कामों के लिए धन की आवश्यकता थी। अतः जो चौथा स्थान बताया गया, वहाँ पर खुदाई करके धन निकाला जाना था। बालक हिम्मतसिंह पर बेहोशी छाने लगी और महात्मा अन्तर्धान हो गए। शेष बालकों ने घर जाकर खबर पहुँचाई। हिम्मतसिंह के परिवार वाले उसे घर ले आए। कुछ समय बाद बालक को होश आ गया।

बालक के परिवारजनों ने महात्माजी द्वारा बताए स्थानों को चिह्नित किया। जिस स्थान पर धन होने की बात कही गई थी वहाँ पर खुदाई की गई। हकीकत में वहाँ पर्याप्त धन निकल आया। लाडनू उस समय नागौर के राठौड़ों के अधिकार में था। लाडनू ठिकाणे ने उस धन पर अपना अधिकार जताया और कब्जा कर लिया। लेकिन कुछ चमत्कार इस प्रकार घटे कि ठिकाणे को उस धन पर अपना दावा त्यागने को मजबूर होना पड़ा। ऊपर वर्णित धन से महात्मा द्वारा सुझाए गए तीनों स्थान बने। निर्धारित जगह पर देवस्थान निर्मित हुआ। कूआं खुदा तथा 'पुरा' नाम से स्थान आबाद हुआ। पुरा नाम के आवास स्थल से जो शिलालेख प्राप्त हुआ है। उस पर संवत् 1781, चैत्र बदी 10 का एक लेख अंकित है।

देवरा : गुसांई जी के देवरे के नाम से जाना जाता है। लाडनू की दक्षिण-पश्चिम दिशा में यह स्थान स्थित है। जिस समय यह देवरा बना उस समय यह स्थान लाडनू गाँव

की मुख्य भूमि से काफी दूर एक निर्जन अरण्य था। देवरा हिन्दू मुस्लिम समन्वित शैली में बना हुआ है। दो पुराने पत्थरों पर चरण चिह्न अंकित हैं। एक पत्थर संगमर्मर का है, उस पर भी चरण चिह्न बने हुए हैं। उनकी नियमित पूजा होती है। वहाँ दो पुराने शंख भी रखे हुए हैं। उनसे जल प्रक्षालन की परम्परा जारी है। चारों तरफ फेरी देने का प्रावधान भी है। अहाते में एक पुराना पीलू (जाळ) का वृक्ष भी है। पास में ही एक धूणा है। पुजारी ताजूखाँ ने बताया कि उसकी भभूत चमत्कारिक है तथा देश-विदेश से कई लोग नियमित रूप से उसे मँगवाते हैं।

पुरा : इसका एक बड़ा भाग ढह गया है, फिर भी काफी कुछ भाग अवशेष रूप में बचा हुआ है। उसमें तीन छोटे-छोटे कक्ष हैं। मध्य का कक्ष शेष दो कक्षों से जुड़ा हुआ है। नीचे उत्तर मुखी एक तहखाना है। तहखाने की फर्श पक्की है। पुरे की दीवारें बहुत मोटी हैं। उसकी बनावट किलेनुमा है। मध्य कक्ष में दो मेहराबदार बड़े दरवाजे पूर्व-पश्चिम में खुलते हैं। कालान्तर में उन दरवाजों में चुनाई करके उन्हें छोटा बना दिया गया था। हिम्मतसिंह एक सिद्ध पुरुष हुए। संलग्न एक बड़े भाग में चारदीवारी के चिह्न भी मौजूद हैं।

कूआं : कूआं तथा उससे संलग्न जमीन स्व. पूनमचन्दजी भूतोड़िया के कृषि फार्म का हिस्सा है। कहते हैं इस कूएं का पानी चमत्कारिक था। अनेक शारीरिक व्याधियों के उपचार में उसका उपयोग होता था। हिम्मतसिंह जी को सिद्ध पुरुष मानकर एक बार जोधपुर महाराजा ने उन्हें तलब किया था। उनसे चमत्कृत होकर महाराजा ने उन्हें कुछ माँगने को कहा। सिद्ध पुरुष ने कुछ भी लेने से इनकार कर दिया। दरवेश को खाली हाथ भेजना महाराजा को जचा नही। ना ना करते हुए भी महाराजा ने 900 बीघा जमीन उन्हें ससम्मान प्रदान की। वह नाटास की कांकड़ कहलाई। वहाँ नाटास नाम का एक गाँव भी बसा। संवत् 1866 की ठिकाणे की एक बही में नाटास गाँव का हवाला है। उस बही में मंगलपुरा गाँव का नाम नहीं है। सम्भव है लाडनू के जोधा शासक मंगलसिंह ने कालान्तर में नाटास को अपने नाम से आबाद किया। पड़ोसी गाँव दुजार के टीबे के ठीक उत्तर में स्थित 'गोरक्षण संस्थान' का कूआ आज दिन भी नाटास का कूआं कहलाता है। उपरोक्त दोनों कूओं ने लाडनू शहर की प्यास अनेक वर्षों तक बुझाई।

मोहिल सिद्ध हुए :

सिद्ध हिम्मतसिंहजी के पीछे उनका सारा खीवाणी वंश सिद्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह नाम आज दिन तक चला आ रहा है। संवत् 1781 के चेत्र मास में जोधपुर की राजगद्दी पर महाराजा अजीतसिंह विराजित थे। उसी साल श्रावण मास में उनकी

हत्या हुई। उनके बाद महाराजा अभयसिंह उनके उत्तराधिकारी बने। उनके बाद क्रमशः रामसिंह और बख्तसिंह गद्दी पर बैठे। संवत् 1809 में बख्तसिंह की मृत्यु हो गई। उनके बाद महाराजा विजयसिंह जोधपुर के अधिपति बने। विजयसिंह संवत् 1850 तक रहे। ऐसा लगता है सिद्ध हिम्मतसिंह जोधपुर के अनेक महाराजाओं के कार्यकाल के साक्षी रहे। उस समय जोधपुर में बल्लभ सम्प्रदाय के गुसाइयों का प्रभाव था।

इतिहास का वह कालखण्ड मारवाड़ रियासत में घरेलू कलह और अशान्ति का काल था। दक्खिन के मराठों और पिण्डारियों का उत्पात राज्य में सर्वत्र छाया हुआ था। उनके दल राज्य में बेरोकटोक घूमते रहते थे और चौथ वसूल करते थे। ऐसे ही किसी दल के एक सिपाही ने सिद्ध हिम्मतसिंह जी पर गोलियाँ दाग दी। नतीजन उनका देहान्त हो गया। उनकी इच्छानुसार 'पुरा' के दक्षिण कक्ष में उन्हें दफना दिया गया। उस कक्ष में उनकी कब्र आज दिन तक मौजूद है। अब यह सारा क्षेत्र मोहिलों की खीवाणी शाखा (सिद्धों) का कब्रगाह है।

मोहिलों की बड़ी पोळ उपरोक्त घटना के करीब चालीस वर्ष पूर्व बन चुकी थी। सिद्ध पुरुष हिम्मतसिंह लाडनू के प्रसिद्ध सन्त गोविन्दराम के समकालीन थे। यह भी सम्भव लगता है कि दरवेश आलीशाह तथा सारड़ी गाँव के सन्त केशवदास भी इनके काल में ही हुए। कैसा संयोग बना कि चार-चार सिद्ध पुरुष एक ही काल खण्ड में लाडनू की धरती पर अवतरित हुए।

XII

इतिहास पुरुष पृथ्वीराज चौहान और मोहिल

चौहानों की करीब-करीब सभी शाखाएँ, यथा—देवड़ा, खीची, सोनगरा, मोहिल सर्वरूपेण सत्ता सम्पन्न होते हुए भी अपनी मूल सत्ता जो कि अजमेर में स्थित थी—के प्रति सहजभाव से समर्पित रहीं। जब भी केन्द्रीय सत्ता को आवश्यकता पड़ी तो सभी शाखाओं ने उसे यथोचित्त सहयोग दिया। पृथ्वीराज चौहान से मोहिलों का सम्बन्ध जताने वाली इस तरह की कुछ घटनाओं का संक्षेप में उल्लेख नीचे दिया जा रहा है।

1. मोहिल राणा हरदत्त द्वारा जीणमाता मन्दिर के जीर्णोद्धार सम्बन्धी शिलालेख मे 'प्रथमी राय' का विरुद सहित उल्लेख है। यथा परम भट्टारक, परमेश्वर आदि। यह प्रथमीराय चौहानवंश की मूल परम्परा का पृथ्वीराज (प्रथम) था। इन उपाधियों सहित नामोल्लेख से स्पष्ट जाहिर होता है कि मोहिल अजमेर की केन्द्रीय चौहान सत्ता के प्रति पूरा सम्मानभाव रखते थे तथा उसके प्रति सहज भाव से समर्पित थे।

2. 'पृथ्वीराज रासो' के संयुक्ताहरण अध्याय में उल्लेख है कि संवत् 1151, चेतबदी 3, रविवार को ग्यारह सौ सवार और योद्धा लेकर पृथ्वीराज कन्नौज पहुँचे। यह सम्वत् अनन्द सम्वत् है। इसमें 90 जोड़ने पर विक्रम सम्वत् उभरता है, जो 1241 के बराबर है। रासो में 106 प्रमुख सरदारों का पृथ्वीराज के साथ होना लिखा है। सूची सिर्फ 89 सरदारों की दी गई है, जिसमें मोहिल राव के भाई वरसिंह (वीरसिंह) के नाम का भी उल्लेख है। (वरसिह वीर सु मोहिल्ल बंध) इसी लड़ाई में एक मोहिल सामन्त बारड़ मोहिल भी काम आए।

3. नागौर पर भोला भीम (चालुक्य) के साथ हुए युद्ध में पृथ्वीराज की सेना के जो योद्धा काम आए, उनके नाम रासो में इस प्रकार दिए गए हैं—पंबमाराव पड़िहार, मोहिल मलीन, महीराव सहदेव आदि। इस युद्ध में मोहिलों से पृथ्वीराज को बड़ा मूल्यवान सहयोग मिला था। चरला गांव से प्राप्त देवलियों से भी ज्ञात होता है कि नागपुर (नागौर) की लड़ाई में आहड़ और अम्बराक नाम के मोहिल सरदार काम आए थे। देवलियों पर नागपुर (नागौर) लड़ाई का उल्लेख है। चालुक्यों (सोलंकियों) से हुई इस ऐतिहासिक लड़ाई में पृथ्वीराज विजयी हुए थे।

मोहिल वंश के इतिहास की ये यशस्वी कड़ियाँ हैं। इन सबके प्रभामण्डल में मोहिल वंश विभूषित है।

XIII

मौहिलवंश सम्बन्धी भाटों के आलेख

सरजनजी के दो राणिया थी। राणी तंवर जी, राजा कीतल जी की पुत्री पहपावती (पुष्पावती)। दूसरी राणी चन्देल वंश की। पुत्र—मोहिलजी, चाहलजी, जड़जी। मोहिलजी की राणी सांखळी (पंवार) सींवसिंहजी की बेटी ओमती। मोहिलजी के पुत्र राणा हरदत्त जी। हरदत्तजी के तीन रानियाँ। चन्देली मानसिंहजी की पुत्री कुपरदे (कर्पूर दे)। सांखळी उदयपालजी की पुत्री रतनकुंवर। यादव उदयपालजी की पुत्री कानकुँवर। सुथान सरमौर।

राणा हरदत्त जी की बाप सूं अणवणती हुई। सरमौर छोड़कर छापर ताल में छः महीना डेरा दीना। सन्तन ननवाणा बोहरे से तीन लाख को करजो लियो। सन्तन की बहू नै धर्म की बहिन बणाई। ननपाल बागड़ी के तीन हजार सरदार मारकर छापर दोणपुर को राज लीनो। सन्तन की बहू को नाम कसुमी थो। बीके नाम पर कसूम्बी बसाई। पांच गांव समेत कसूम्बी सन्तन नै दीनी। सन्तन मन्दिर बावड़ी बणाया।

राणा हरदत्त जी के पुत्र बैरीसालजी, चन्दरसालजी, छत्तरपालजी हुए। बैरीसालजी की राणी भटियाणी रावतजी की पुत्री जीत कुंवर। बेटा बुधराव। बुधराव जी की राणी सीसोदणी—रतनसिंहजी की पुत्री राजमती। पुत्र कुंवरसिंह। कुंवरसिंह जी की राणी पंवार सुरताण जी की पुत्री अमृतकुंवर। बेटा पातल जी। पातल जी की राणी यादव चन्दर भाण जी की पुत्री दमयन्ती कुंवर करोली की। पुत्र महकरण। महकरणजी की राणी कछवाही हणुतजी की पुत्री मानकुंवर। पुत्र बलकरणजी। बलकरणजी की राणी सीसोदणी राव रतनसिंह जी की पुत्री मलकद कुंवर। बेटा—कुंतलरणजी, जोगजी, तखतजी, कर्तलजी, सींगजी, दलजी। कुंतलरणजी की राणी चावड़ी, राव चूण्डा जी की पुत्री मन्दोदर कुंवर, दूजी राठौड़ बैरीसालजी की पुत्री अजन कुंवर। बेटा बालुराव (राणा बालहर)। छापर गढ़ सुथान, भाट चन्दरभाण, रतनसिंह।

राणा बालहर के राणी तंवर बीकमसिंह जी की पुत्री लालमदे। बेटा आसलजी, कुंवरपालजी संभूजी, खड्गजी, रतनपालजी, रामचन्द्रजी, बिरजगजी। राणा आसलजी की राणी राठौड़जी, सोनगर जी की पुत्री मलकुंवर, दूजी सोलंकी चान्दगीर जी की बेटी सारंगदे कुंवर, तीजी वाह्मी (दायमावंशकी) बेणवीर की पुत्री चाँद। बेटा आहड़जी, समरजी, महराणजी, रणकजी।

राणा आहड़जी की राणी पंवार लुकसिंहजी की बेटी दमयन्ती। पुत्र सोनपालजी, लूणकरणजी, भगवानदासजी, चरजी। सोनपालजी की राणी भटियाणी—राव लोहकरणजी की बेटी पमावती (पद्मावती)। पुत्र सोरवसिंहजी, रणसमजी, देपालजी। राणा रणसंग (रणसिंह) की राणी भटियाणी रावल खुतलजी की बेटी चाँद कुँवर दूजी राणी कछवाही स्योपालजी की बेटी चमन कुँवर। पुत्र सुजाजी, महकरणजी, दलहरणजी, खेतसिंहजी, कुतलरणजी, लालचन्द, जैमल, चाहड़देव। छापर सुथान। चाहड़देवजी चाहड़वास बसायो और राज करियो।

सुजाजी की राणी पड़िहार—कल्याणसिंहजी की बेटी सारंग दे। पुत्र सोहणमल। राणा सोहणमलजी की राणी सांखळी (पंवार)। तेजसिंहजी की बेटी सुरजकँवर। पुत्र लटूणाजी (राणा लोहट जी)। राणा लोहटजी की राणी जाड़ेजा, विक्रमसिंहजी की बाला बाई। पुत्र बोबजी (राणा बोब)। राणा बोबजी की राणी सीसोदणी, जालमजी की बेटी चाँद कुंवर। बेटा बाघो जी (राणा बेग)।

राणा बेग की राणी कछवाही, सुगण जी की बेटी रतन दे। राणा बेग के पुत्र बखतसिंह राणपुर (द्रोणपुर) की गद्दी पर बैठे। रुघणासिंह पड़िहारा की गद्दी पर बैठे। पड़िहारा में तांबागल तलाई खुदवाई, राण सागर कूआ बनवाया, छतरी बणवाई। नाढ़राव पड़िहारा की गद्दी पर बैठे। फिर छापर गद्दी पर आये।

राणा माणक राव ने पन्द्रह विवाह किए। बड़ी राणी भटियाणी, भटनेर के बीजराज जी की बेटी आमन कुंवर, दूजी तंवर उदयराव जी की बेटी और आसलसिंह जी की पोती जतन कुंवर, कुचोर के गहलोत दलजी की बेटी केसर कुंवर। राणा माणक राव के पुत्र – गोविन्ददास, रघुदास, नारायण दास, अरवैराज, बैरीसाल, गंगासिंह, भूरड़जी, आसल रावसल, साहबजी, खड़गजी, सुरताणजी, सांगाजी, सांवतजी। बेटी कोडम दे।

कोडम दे गढ़ पूंगल के भाटी गदजी (राणगदे जी) के पुत्र सादा (शार्दूल) को परणाई। पेली सगाई रिड़मल राठोड़ सुं करी थी। बांको रंग श्यामवर्ण हो सो सगाई छोड़कर राइके के साथ पूंगल नारेल भेजिया। देवासी राइको सगाई पकी करनै छापर पूगियो जद माणकरावजी का बेटा सांगाजी गांव ककरली बधाई में दीनो। भाटी छापर परणबानै आया। बारात जांती बखत राठौड़ उठे आया। झघड़ो हुयो। भाटी गदजी (राणगदे जी) सादू के पिता काम आए। जुझार होकर लड़े। जीजा आडा फिरिया। हाथी सुदा काम आया। अखैजी कुचोर में पड़िया घोड़े की असवारी सुदा। गंगारामजी रोही का बास में। हाथी की असवारी सुदा बैरीसाल जी बाछासर में काम आया। घोड़े की असवारी सुदा भूरड़जी नाळ की रोही में काम आया। सादाजी कोडमदेसर में काम आया। बाई कोडमदे सती हुई। एक हाथ काटनै पूंगल भेजियो सासूजी के पगां लागण ने। मोयल पहुँचाने गए। तीन सौ मोयल काम आए।

माणक राव के बेटा सांगा। सांगा की राणी गोड़ वंश की राव रायमल की बेटी कानकुंवर। पुत्र बच्छु राणा। छापरगढ़ सुथान। राणा बच्छराज की राणी सोढ़ी, कल्याणदेव की बेटी रायकुंवर। पुत्र मेघा। मेघा राणा की राणी सीसोदणी, उदयपुर राणा सांगा की बेटी जीत कुंवर। बेटे लोहट, बालु, बासो। राणा लोहट की राणी पंवार राव जैसलदेव की बेटी फूलकँवर। पुत्र खींवराज, बेग, जगमाल। छापरगढ़ सुथान।

राणा जगमाल जी की राणी यादव खीनपाल जी की बेटी सजन कुंवर। बेटा अजीतसिंह जी, अरड़कमलजी, कानड़देवजी। अजीतसिंह को छापर गद्दी मिली। अरड़कमलजी की राणी भटियाणी राव लोचनसिंह जी की पुत्री जसकुंवर।

बेटा भोजराज, रतनसिंह, भींवसिंह, मालदेव, सुरताण, चन्दरभाण। अरड़क मलजी लाडनू पर चढ़ाई करी। सात सौ गरदेजी मारिया। वर्ष 1489 में लाडनू गद्दी बैठिया। छापर सूँ नाई, कुमार, सेवग आया। जोधराज सेवग आया। बाने बसणै वास्ते जमीन दी 1503 की साल। राव भोजराज जी की राणी भटियाणी रामसिंह जी की बेटी रतनकुंवर, दूसरी पंवार बनपालसिंह जी की सारंगदे तीजी तंवर धनराज जी की नलकुंवर। पुत्र राव जयसिंह जी। संवत् 1507 में लाडनू गद्दी बैठीया।

राणा अजीत की राणी राठौड़ राव जोधा की बेटी रामकुंवर। अजीत मण्डौर गयो हुतो हो जद जोधा दगो विचारियो। मोहिलां ने सुराग लागगी। मण्डौवर सूं राव अजीत की घोड़े पर चढ़ नै छापर चालिया। राणी रामकुंवर साथ हुती। जोधाजी, बीदाजी, नराजी, जोगाजी लारै सुं चढ़िया। गांव ओडींट में नावड़िया। गांव गणोड़े पर राव जोधा झघड़ो रोपियो। वे अजीत रो प्रण जाणता हा। घोड़े सुं नीचे उतर गया। अजीत बोलिया। बाघोड़ा ज्ञान गोर कर जोधा। राव जोधा हँसिया। अजीत बोलिया घोड़ा सूं उतरियोड़ा पर मनै वार करणै री आण है। अजीत घोड़ा सूं उतरिया। जद जोधाजी, बीदाजी, नराजी राणे अजीत सूं भिड़िया। अजीत काम आया। नाई लेखजी काम आया। रामकुंवरजी सती हुई। सतीजी पर छतरी कराई मेघाजी। गाँव गणोड़ा में।

राव जोधाजी, बीकाजी, बीदाजी, मोहिलां पर फेर चढ़ नै आया। राणा मेघाजी और सब मोहिल सामनो करियो। कसूम्बी छापर बीच झघड़ो हुयो। राठौड़ां मात खाई। तीन सौ लोथ पड़ी। संवत् 1538 की साल। मोहिल कानड़ जी आपरी बेटी बीदाजी ने परणाई। वा बीदाजी के साथ में सती हुई। गांव सुथान बीदासर संवत् 1548।

लाडनू में राव जयसिंह की राणिया तेरह हुई। भाटी कुम्भ करणसिंह की बेटी खेमकुंवर जैसलमेर की। राठौड़ बुधसिंह की रायकुंवर। सोलंकी राणा भंवरसिंह की चन्दरकुंवर। पंवार राणा सादुलसिंह की जल कुंवर। गोड़ मारोठ की गोपालसिंह की पोती लखधीरसिंह की बेटी पद्मावती। राणावत संग्रामसिंह की जतनकुंवर। चन्द्रावत लखधीरसिंह की बेटी आमन कुंवर गढ़ रामपुरा की। जाटू तंवर राणा चूण्डा की नौरंगदे कुंवर। कछवाहा महराज की पोती, भोलसिंह की बेटी मेह कुंवर। टाक जीवाजी की पोती दूदासिंह की बेटी चन्दन कुंवर टाकवास की। जोहियाणी, भादोखाँ का फीरोज खाँ, फीरोज खाँ के लूणा खाँ की बेटी सुखदेव बानू सिंध की।

जोहियाणी के पाँच पुत्र हुए—साहरजी, देवराजजी, सुखदेवजी, हँसराजजी, मालदेवजी। पाँचों से ही नख चले। साहपोता, देवराज पोता, सुखावत, हाँसावत, मालावत। लाडनू गद्दी मिली देवराज जी को। हिन्दू राणियों से बारह पुत्र हुए—सलबहणा, हीरसिंह, हमीरसिंह, लूणसिंह, खंगारसिंह, जैतसिंह, मोकलसिंह, तेजसिंघ, जसकरण, रायकरण, शैतानसिंह, पहाड़सिंघ। राव जयसिंह ने कूआ रावसर 1542 में खुदाया। रावसर तालाब खुदवाया। चारण सामोर जसुदान नै जमीन बीघा 1500 दीनी लुहागर जी के घाट पर। बसबा वास्ते जमीन दी बीघा बारह संवत् 1544। लाडनू गांव सुथान।

राव जयसिंहजी बारह गाँव दासी नै दीया। रूपलीसर, तापलीसर, ओडींट, सुन्दारी, दुगोली, मालासी, बल्दु, रूपायली, ममासर, भींवसर, कसुंबी, बछासर। राव जयसिंह

अकबर बादशाह सूं झगड़ो हुयो। काम आया। जोहियाणी सती हुई। संवत् 1604 लाडनू गांव सुथान। मोयल वंश को लाडनू राज गयो। मोहिलां पोळ की नींव दीनी। भादोजी, पातलजी, सींगजी संवत् 1747 की साल पोळ में आया। पांच कोटड़ी आबाद हुई।

भाटों के वृतों की समीक्षा :

चाम्पा सामौर की काव्य रचनाओं में वर्णित मोहिल राणाओं की परम्परा में और भाटों के वृत्तों वर्णित परम्परा में अनेक विसंगतियों के बावजूद काफी कुछ समानताएँ हैं। ऐसा प्रतीत होता है चाम्पा ने अपने पीढ़ियों के दोहों में वर्णित राणाओं का चयन भाटों के वृत्तों से ही किया है। भाटों के वृत्त मोहिल वंश के सम्बन्ध में काफी विस्तृत जानकारी देते हैं। राणाओं की सन्तति का पूरा लेखा-जोखा इन वृत्तों में उपलब्ध है। इन वृत्तों से मोहिल राजवंश के विवाह सम्बन्धों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। मोहिलों का संबंध उस समय के प्रायः सभी राजपूत राजकुलों से था। यथा—सीसोदिया, कछवाहा, राठौड़, भाटी, यादव, चन्देल, गोड़, पंवार, पड़िहार, सोलंकी तंवर आदि। करोली, धोलपुर, उदयपुर, जैसलमेर के रावलों तक इनके विवाह सम्बन्ध हुए लक्षित होते हैं। निःसन्देह मोहिल राजवंश एक गौरवशाली राजवंश रहा है। इस परम्परा में हरदत्त, माणक राव, अजीत, मेघा और जयसिंह जैसे शौर्यवान और उदार पुरुष रत्न उत्पन्न हुए।

लेकिन भाटों द्वारा दिए गए संवतों में (खासतौर से प्रारम्भिक संवतों से) इतिहास का तालमेल बैठा पाना कठिन हो जाता है। इतिहास की दृष्टि और वृत्त लिखने के पीछे रही भाटों की दृष्टि में मूलभूत अन्तर रहा है। अतः भाटों के वृत्त आवश्यक परिष्कार के बाद ही इतिहास को स्वीकार हो सकते हैं। भाटों के वृत्तों में कहीं-कहीं बड़ी असंगतियाँ भी हैं, जिनसे भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मसलन—राव अड़कमल और राव अजीत को राणा जगमाल का पुत्र होना बताया गया है और राणा जगमाल को राणा बच्छराज का प्रपोत्र बताया गया है। ऐसी स्थिति में राव अजीत और राणा बच्छराज में पाँच पीढ़ियों का फासला हो जाता है। ऐसा होना इतिहास की दृष्टि से नितान्त असम्भव है।

हकीकत यह है कि राव अजीत राणा बच्छराज के समकालीन थे और राठौड़ो का पहला घात राव अजीत पर ही हुआ था। वे राणा बच्छराज से पहले काम आ चुके थे। इतिहास राव अजीत को राणा माणक राव का पौत्र और सांवतसिंह का पुत्र मानता है। अतः राणा जगमाल के स्थान पर अजीत और अरड़कमल राव सांवतसिंह के पुत्र हैं। इन वृत्तों से इतिहास की एक गुत्थी सुलझ गई है कि गरदेजियों से लाडनू की गद्दी छीनने वाले अरड़कमल और राव अजीत भाई-भाई थे और वे मोहिलवंश की मूल ...म्परा से सम्ब... ...थे।

वृत्तों की एक बड़ी भूल यह भी नजर आती है कि अन्तिम मोहिल शासक राव जयसिंह का पराभव बादशाह अकबर के साथ हुए किसी युद्ध से जोड़ा गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसा होना सम्भव नहीं। राव जयसिंह अकबर से युद्ध करने की स्थिति में कभी नहीं रहे। अकबर के मुगल सलतनत की गद्दी सम्भालने से पहले ही जयसिंह का पराभव हो चुका था। सम्भावना यह ज्यादा सही है कि राव जयसिंह मोहिल का सम्बन्ध नागौर के खानजादों से अवश्य रहा और मालदेव के हाथों खानजादों के पतन के साथ ही लाडनूं पर जोधपुर के राठौड़ों का अधिकार हो गया।

XIV

चारण कवियों की सामौर शाखा और मोहिल राजवंश

चारणों की सामौर परम्परा से मोहिल राजवंश का घनिष्ठ सम्बन्ध लक्षित होता है। राणा सजन चौहान श्रीमौर के अधिपति थे। राणा सजन के पुत्र मोहिल चौहानों की मोहिल शाखा के प्रवर्तक हुए। मोहिलवंश के प्रसंग में सामौर शब्द श्रीमौर का ही अपभ्रंश माना जाता है। मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि चारणों के सामौर शासन का श्रीमौर (सामौर) से किस तरह का सम्बन्ध रहा। चारण जाति के कुछ विज्ञ पुरुष चारणों की इस शाखा का मूल स्रोत पौराणिक मानते हैं। फिर भी चारणों की सामौर शाखा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सामौर (स्थान विशेष) की किसी तरह की भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता।

सामौर चारण परम्परा के अग्र पुरुषों में राण नाम के एक यशस्वी पुरुष हुए। वे राणा मोहिल के समकालीन थे। साथ-साथ वे राणा मोहिल के घनिष्ठतम सहयोगियों में से भी थे। बागड़ियों से धरती छीनने के अभियान में राण सामौर राणा मोहिल के साथ थे। राण सामौर के प्रति मित्र-भाव के कारण राणा मोहिल ने उन्हें मोहिल राजकुल का बारठ थरपा। समकालीन रीति के अनुसार राणदान सामौर का यथोचित सम्मान किया गया। इस प्रसंग को निरूपित करने वाले कवित्त का एक अंश इस प्रकार हैं—

हीरा पन्ना जड़ाव हेम, असी लाख धन अप्पियो।
मोहिल राणै सामौर नै, थिर बारठ कर थप्पियो।

राण सामौर ने कसूम्बी में अपनी कोटड़ी (रहवास) स्थापित की। इस परम्परा में आगे सहदेव व कमल सामौर हुए। उन्होंने वि. संवत् 1331 व 1341 में छापर के मोहिल राणा लोहट तथा बोबाराव के नामों पर क्रमशः लोहसर (लोहटसर) तथा बोबा...

बसाए। इसी परम्परा के 'जैतसी' सामौर चारणों में चक्रवर्ती हुए। छापर के मोहिल राणा माणकराव ने जैतसी की प्रशस्ति में एक द्विपदी इस प्रकार कही है—

सिरे मौड़ सामौरवर, होड न किण सूं होय।
चकवै आखै चारणा, 'जैत' कसूम्बी जोय॥

जैतसी के पुत्र मांडण एवं तेजा हुए। तेजा सामौर अपने युग के अवतारी पुरुष गिने जाते थे। वे चहुँमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे द्रोणपुर के प्रसिद्ध शासक राव अजीत के समकालीन थे। विश्नोई समाज में उनके द्वारा रचित एक कवित्त धूप मंत्र के रूप में पूजित है। जीवण खरलवा नामक एक कवि ने तेजा सामौर के बारे में कहा है—

नव कूंटी होयो नहीं, एहो नखतरी और।
तेजळजी जेतळ तणो, सत सांचो सामौर॥

तेजोजी के ही पुत्र जसुदान हुए। लाडनू के प्रसिद्ध शासक राव जयसिंह मोहिल ने जसुदान को लाडनू में कोटड़ी बनाने के लिए बारह बीघा तथा खेती के लिए 1500 बीघा भूमिदान का ताम्रपत्र वि. संवत् 1544 तद्नुसर ई. सन् 1487 में प्रदान किया था। लाडनू की पश्चिमी कांकड़ में स्थित एक टीबा आज भी सामौर धोरे के नाम से जाना जाता है।

बीकानेर राज्य अभिलेखों के अनुसार मोहिल युग का बोबासर गाँव सामौर चारणों का पुराना शासन है। यह गाँव सुजानगढ़ सीकर राजमार्ग पर स्थित है। बोबासर गाँव में माण्डण सामौर के वंशज खेतसी हुए। खेतसी के पुत्र चांपा तथा मेहाजल हुए। कवि चांपा बीकानेर नरेश रायसिंहजी के समकालीन थे। (वि. संवत् 1640 से 1688)। बीकानेर नरेश ने चांपा जी सामौर को लाख पसाव भेंट किया और बहुल जमीन दान में दी।

चांपा एक पुरुषार्थी पुरुष थे। उन्होंने अपने नाम से रतनगढ़ तहसील में चांपासी गाँव बसाया। अपने अनन्य साथी मेघा नैण के नाम पर मेघाणा तालाब बनवाया। उसी गाँव में करणी माता का एक मन्दिर भी स्थापित किया। मन्दिर चमत्कारिक है। चांपासी गाँव के वे खेजड़ी के वृक्ष जहाँ महाराजा रायसिंहजी द्वार प्रदत्त हाथी बाँधा जाता था— आज भी हाथियों वाले खेजड़े कहलाते हैं। कवि चांपा ने मोहिल राणाओं की समस्त परम्परा को काव्य रूप मे संजोया। उनकी ये काव्य रचनाएँ मोहिल राजवंश के इतिहास का एकमात्र विश्वसनीय दस्तावेज है। उन काव्य रचनाओं से पाठक पिछले पृष्ठो में परिचित हो चुके हैं।

बोबासर नाम का एक छोटा-सा गाँव अपने में अथक जीवन्तता संजोए हुए है। विभिन्न विषयों के ख्याता, आख्याता, व्याख्याता तथा महाविधालयों के प्राचार्य स्तर के लोग

यहाँ बसते हैं। कुछ छात्र-छात्राएँ शोधकार्यों में भी संलग्न हैं। विरासत में मिली काव्य, जुझार और शक्ति परम्परा में पोषित यह गाँव युग के अनुरूप बने रहने की अनुपम क्षमता रखता है। इस पुस्तक के प्राक्कथन लेखक डॉ. भंवरसिंह सामौर इसी गांव के हैं।

XV

मोहिल राज के प्रमुख ठिकाणे

मोहिल राज्य की सीमाएँ विस्तृत थीं। कुछ ठिकाणे जहाँ मोहिलों का राज होने के प्रमाण मिले हैं, वे इस प्रकार हैं—

रासीसर :

यह एक प्राचीन गाँव है तथा बीकानेर शहर से 25 किलोमीटर दक्षिण पूर्व में स्थित है। इस गाँव से प्राप्त सबसे पुराना शिलालेख वि. संवत् 1288 जेठ मास की अमावस्या का है। इस लेख से ज्ञात होता है कि लाखण के पुत्र विक्रम चौहान का स्वर्गवास उस दिन हुआ था। इस स्थान से दूसरे दो शिलालेखों में सांखला रायसिंह के प्रपोत्र राणा कंवरसी के पुत्रों का उल्लेख है जिनकी मृत्यु क्रमशः वि. संवत् 1382 और 1383 में हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि सांखला रायसी ने चौहानों को अपदस्थ कर इस ठिकाणे पर अधिकार किया था और उसका नया नाम रायसीसर (रासीसर) रखा।

सारंगसर :

यह गाँव लाडनू से पश्चिम में करीब 15 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस गाँव में मोहिलवंश सम्बन्धी सबसे प्राचीन लेख एक कीर्ति-स्तम्भ पर अंकित है। यद्यपि यह लेख स्पष्ट नहीं है लेकिन फिर भी मोहिल शब्द के साथ वि. संवत् के प्रथम तीन अक्षर 118.... स्पष्ट पढ़ने में आते हैं। इस लेख से प्रमाणित होता है कि मोहिलवंश की स्थापना से ही यह ठिकाणा उनके अधिकार में रहा है।

चरला :

लाडनू कस्बे के उत्तर-पश्चिम में करीब 9 किलोमीटर दूरी पर स्थित यह गाँव बहुत पुराना रहा है। लाडनू का इतिहास इस गाँव से अनेक रूपों से जुड़ा हुआ है। पारीक ब्राह्मणों का भी यह गाँव प्रमुख केन्द्र रहा है। इस गाँव में मोहिल सरदारों
देवलियाँ विद्यमान हैं। उनसे विष्णुदत्त, देवसरा, आहड़ और अम्बराक नाम

की जानकारी मिलती है। आहड़ और अम्बराक की देवलियों से पता चलता है कि वे नागपुर (नागौर) की लड़ाई में मारे गए थे। यह लड़ाई इतिहास पुरुष पृथ्वीराज चौहान और चालुक्यों के बीच हुई थी। ये देवलियाँ वि. संवत् 1200 तथा 1241 के बीच की हैं। इतिहास के किसी काल-खण्ड में लाडनूं और चरला गाँवों के आकारों में विशेष अन्तर नहीं था लेकिन लाडनूं अपनी विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण शीघ्र विकसित हो गया। लाडनूं को एक लाभ यह भी मिला कि यहाँ व्यावसायिक जातियाँ प्रारम्भ से ही आकर बस गई थीं।

गोपालपुरा (द्रौणपुर) :

सुजानगढ़ से 7 किलोमीटर पश्चिमोत्तर यह कस्बा बसा हुआ है। इसका पुराना नाम द्रोणपुर था। द्रोणपुर मोहिल शासकों की मुख्य राजधानियों में से एक रहा है। इस क्षेत्र से मोहिलों को अपदस्थ करके राठौड़ बीका ने यह क्षेत्र अपने भाई बींदा को दे दिया था। तब से इसका नाम बीदाहद या बीदावाटी पड़ा। बीदा के प्रपोत्र गोपालदास के नाम से इस गांव का नाम गोपालपुरा पड़ा। यहाँ राव बीदा के पुत्र राव उदयकरण की देवली है, जिस पर संवत् 1565 अंकित है। इसके उत्तर में करीब पाँच किलोमीटर की दूरी पर ही बीदासर कस्बा आबाद है। बीदासर की स्थापना बीकानेर से पाँच साल पहले हुई थी। बीदासर बीदावाटी की नई राजधानी बना। यहीं पास में ही द्रोणपुर की पहाड़ी श्रृंखला है, जिसमें छोटी-बड़ी आठ पहाड़ियाँ हैं।

छापर :

लाडनूं शहर से करीब बीस किलोमीटर उत्तर-पूर्व में छापर कस्बा स्थित है। छापर कस्बा मोहिल राज की राजधानी रहा है। यहाँ मोहिल राणाओं की कुछ देवलियाँ भी प्राप्त हैं। ये देवलियाँ ईसा की चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध की हैं। एक देवली मोहिलवंश के प्रसिद्ध राणा सोहणपाल की है। उससे जाहिर होता है कि राणा सोहणपाल की मृत्यु संवत् 1311 में हुई थी। दूसरी एक अन्य मोहिल सरदार अरड़कमल की है, जिस पर उसका मृत्यु संवत् 1348 अंकित है। कुछ अन्य देवलियों के लेख पठनीय नहीं रहे हैं। एक देवली वि.सं. 1682 (ई. सन् 1625) की गिरधरदास के पुत्र आसकरण की है। संभवत: इसका सम्बन्ध किसी राठौड़ शासक से है। यहाँ 8 किमी. लम्बी और तीन किलोमीटर चौड़ी एक खारे पानी की उथली झील है। इस खारे पानी को नमक बनाने के उपयोग में लिया जाता रहा है। यहाँ एक पुराना किला है जो निश्चित रूप से मोहिलों का बनवाया हुआ है। इस समय छापर ताल में काले हिरणों का राज्य सरकार द्वारा संरक्षित अभयारण्य है। साईबेरिया से कुरज पक्षी भी यहां आते हैं।

चाड़वास :

छापर से लगभग तीन किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में बसा हुआ चाहड़वास कस्बा है। यह मोहिलों का एक गाँव था। राणा रणसिंह के पुत्र सुजाजी हुए। सुजाजी के अनेक पुत्रों में से एक चाहड़मल हुए। राव चाहड़मल ने संवत् 1253 में चाहड़वास (चाड़वास) बसाया और राज किया। आगे चलकर इस गाँव पर राव बीदा राठौड़ का अधिकार हो गया। राठौड़ खेतसी के पुत्र रामा तथा गोपाल दास के पुत्र कुंभकरण की क्रमशः संवत् 1625 (ई. सन् 1568) और वि. संवत् 1695 (ई. सन् 1588) की देवलियाँ हैं।

सरदारशहर (राजावास) :

यद्यपि वर्तमान शहर बीकानेर महाराजा सरदारसिंह जी (ई. सन् 1828-1850) के नाम पर आबाद हुआ। परन्तु यह बस्ती बहुत पुरानी है। इसका पुराना नाम राजावास था। ऐतिहासिक महत्त्व रखने वाली एक छतरी आज भी मौजूद है, जिस पर संवत् 1241 (ई. सन् 1184) का एक अस्पष्ट लेख है। लेख का सिर्फ एक छोटा-सा ही अंश पढ़ने में आता है—मोहिल इन्द्रपाल.......... । परन्तु इस आंशिक लेख से ही स्पष्ट हो जाता है कि मोहिल राज यहाँ तक पसर चुका था। वर्तमान सरदारशहर एक व्यावसायिक केन्द्र है तथा थळी प्रदेश की एक उन्नत मण्डी है। यहाँ ओसवाल जैन परिवार बड़ी संख्या में बसते हैं।

सुजानगढ़ (खरबूजी रा कोट) :

यह शहर लाडनूं से करीब दस किलोमीटर उत्तर-पूर्व में बसा हुआ है। पुरानी बीकानेर रियासत के प्रमुख शहरों में इसकी गिनती होती थी। इसका पुराना नाम 'खरबूजी का कोट' था। उस समय यह एक छोटा-सा गाँव था। लाडनूं से प्राप्त संवत् 1866 की एक बही में इस गाँव का उल्लेख खरबूजी के कोट के नाम से ही है। पहले यह गाँव साण्डवा ठिकाणे के अन्तर्गत था। बीकानेर नरेश सुजानसिंह जी ने इसके बदले में कोई दूसरा स्थान देकर इस स्थान पर अपने नाम से सुजानगढ़ शहर की स्थापना की। इसका पुराना कोट अब तक विद्यमान है। अब तो यह एक बड़े व्यावसायिक केन्द्र के रूप में विकसित हो गया है। इसकी वर्तमान आबादी लगभग एक लाख तक पहुँच गई है।

खरबूजी के कोट के सम्बन्ध में एक घटना इस प्रकार भी है। ई. सन् 1734 में जोधपुर के महाराजा अभयसिंह ने बीकानेर पर चढ़ाई की। उधर नागौर के शासक बख्तसिंह ने खरबूजी के कोट पर अधिकार कर लिया। उस समय कोट पर साण्डवा के जागीरदार दानसिंह तैनात थे। बीकनेर महाराजा सुजानसिंह ने दानसिंह [illegible] सहायता बीकानेर बुला लिया। नतीजन खरबूजी का कोट, बीदासर तथा [illegible]लपुर। [illegible]

समय तक नागौर के आधीन रहे। तभी लाडनूं से प्राप्त उपरोक्त बही में तीनों ही स्थानों पर लाडनूं का अधिकार लक्षित होता है। सुलह होने पर ये स्थान पुनः बीकानेर को लौटा दिए गए।

कसूम्बी :

लाडनूं कस्बे से लगभग दस किलोमीटर पूर्व में स्थित यह ठिकाणा मोहिलों से उनके उद्‌भवकाल से ही जुड़ा हुआ है। सन्तन बोरा नाम के एक महाजन से राणा मोहिल ने अपने सैनिक अभियान के लिए आर्थिक सहयोग लिया था। अतः चार अन्य गाँवों सहित यह गाँव, उपरोक्त महाजन को उसके ऋण के बदले दे दिया गया। मोहिलों के पराभव के बाद यह ठिकाणा राठौड़ जोधाओं के अधिकार में आ गया। लेड़ी, धोलिया, डाबड़ी आदि गाँवों में भी मोहिल जुझारों की अनेक देवलियाँ मौजूद हैं। ये सब गाँव किसी समय मोहिलवाटी के अंग थे।

ओड़ींट :

इसका पुराना नाम 'आहेड़ों की ठीड़' था, जिसका अपभ्रंश ओड़ींट हो गया। छापर के मोहिल राणा माणक राव की पुत्री कोडमदे का इतिहास प्रसिद्ध प्रसंग इसी गाँव से जुड़ा हुआ है। भाटी शार्दूल का कोडमदे से विवाह ओड़ींट में ही हुआ था। ओड़ींट के शासक राव मेघराज की पुत्री नागौर अधिपति राव चूण्डा राठौड़ को ब्याही थी। यह गाँव लाडनूं शहर से दस किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। यहाँ मोहिलों का एक किला भी खण्डहर रूप में मौजूद है।

लाडनूं :

यह एक अति प्राचीन कस्बा है। मोहिल राजवंश के प्रमुख केन्द्रों में से लाडनूं भी एक रहा है। मोहिल इतिहास से जुड़ी हुई अनेक प्रसिद्ध घटनाओं का यह शहर साक्षी रहा है। मोहिलों की सामंतसिंहोत परम्परा का एक सुस्पष्ट इतिहास इस कस्बे से जुड़ा हुआ है।

बोबासर :

चूरू जिले के दक्षिण-पूर्वी सिरे पर जहाँ चूरू, नागौर और सीकर की सीमाएँ मिलती हैं, यह गाँव बसा हुआ है। यह सामौर परम्परा के चारणों का गाँव है। इसकी स्थापना वि.संवत् 1341 तद्‌नुसार ई. सन् 1284 में सहदेव सामौर ने राणा बोबा के नाम पर की थी। चारणों की इस परम्परा में चाम्पा सामौर, तेजा सामौर तथा शंकरदान सामौर जैसे [illegible] हुए। मोहिल राजवंश से सामौर चारण परम्परा का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा।

देवाणी :

ऊपर वर्णित बोबासर की सामौर परम्परा में ही माण्डण सामौर हुए। उन्हीं के वंशज खेतसी के चांपा और मेहाजल हुए। मेहाजल सामौर ने छापर सुजानगढ़ राजमार्ग पर देवाणी गांव बंसाया। वि. संव्रत् 1613 तद्नुसार ई. सन् 1556 में मारवाड़ के आहुवा के ऐतिहासिक धरने (सत्याग्रह) के बलिदानी पुरुषों में मेहाजल सामौर भी एक थे।

इन सबके अतिरिक्त अनेक गाँव मोहिल राणाओं के नाम पर बसे, यथा—सोनपालसर, आढसर, सांगासर, आबसर, लोहा, सालासर, मोमासर, आसलसर, बालेरां, सांविंतिया, माणकरासर, बछरारा, नरबदवास, रणसीसर, जाळपसर, भोजासर, इन्दपालसर आदि। ये सब गाँव चूरू जिले की रतनगढ़, सुजानगढ़ और डूँगरगढ़ तहसीलों में हैं। इसी का नाम मोहिलवाटी भी था।

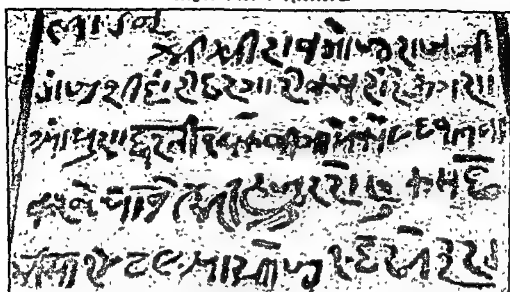
XVI

मोहिल काल की प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं का तिथिक्रम ई. सन् के अनुसार

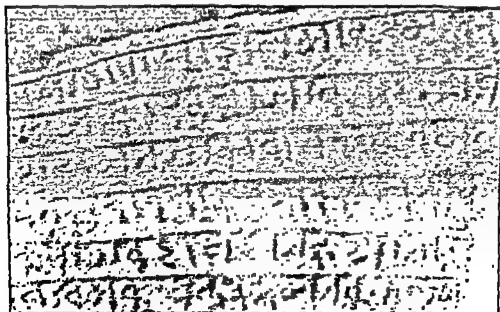
1065 (लगभग) मोहिलवंश की स्थापना
1105 मोहिल पुत्र हरदत्त द्वारा जीणमाता मन्दिर का जीर्णोद्धार
1254 छापर राणा सोहणपाल की मृत्यु
1316 सधरण नाम के व्यक्ति द्वारा लाडनू की बावड़ी का निर्माण
1365 (लगभग) लाडनू पर फीरोज तुगलक का हमला
1365 राव जैसिंह (प्रथम) की पराजय
1371 जामी मस्जिद के जीर्णोद्धार सम्बन्धी फीरोज तुगलक का फारसी शिलालेख
1378 राव जैसिंह मोहिल (प्रथम) द्वारा लाडनूँ की हदीरा मस्जिद का निर्माण (एक फारसी शिलालेख के आधार पर)
1383 राव चूण्डा राठौड़ के पिता वीरम की जोहियों द्वारा हत्या
1388 दिल्ली सुल्तान फीरोज तुगलक की मृत्यु
1399 राव चूण्डा राठौड़ का नागौर पर अधिकार
1405 वीरम राठौड़ के हत्यारे दल्ला जोहिया की वीरम पुत्र गोगदेव द्वारा हत्या
1405 गोगदेव राठौड़ की धीरदेव जोहिया तथा राणगदेव भाटी द्वारा हत्या
1405 भाटी शार्दूल का कोडमदे से विवाह
1405 चूण्डा पुत्र अरड़कमल राठौड़ द्वारा भाटी शार्दूल का मारा जाना
1405 कोडमदे का सती होना

1410 (लगभग) राणा माणकराव मोहिल का चौसल्या की लड़ाई में काम आना
1432 सामंतसिंह के पुत्र अरड़कमल द्वारा गरदेजियों से लाडनू छीनना।
1432 राव भोज मोहिल का लाडनू की गद्दी पर बैठना
1459 जोधपुर किले की स्थापना
1464 सामंतसिंह पुत्र राव अजीत का जोधा राठौड़ों के साथ हुई लड़ाई में काम आना
1464 जोधापुत्री राजबाई (या रामाबाई) का सती होना
1466 छापर राणा बच्छराज की मृत्यु
1474 छापर द्रोणपुर की मोहिल सत्ता की समाप्ति
1474 मोहिलवाटी पर राव बीदा का अधिकार
1478 राव जयसिंह मोहिल (द्वितीय) का लाडनू की राजगद्दी पर बैठना
1479 लाडनूँ के 'चारभुजा नाथ' मन्दिर का पुनर्निर्माण
1480 (लगभग) शान्तिनाथ श्वेताम्बर जैन मन्दिर का पुनर्निर्माण
1482 खानजादों द्वारा लाडनू गढ़ की मरम्मत (एक फारसी शिलालेख के आधार पर)
1485 राव तालाब का निर्माण।
1485 (बसन्त पंचमी) राव कुए का निर्माण।
1486 राव दरवाजे का निर्माण।
1487 जसुदान सामौर (चारण) को लाडनूँ में राव जयसिंह द्वारा भूमिदान (एक ताम्रपत्र के आधार पर)
1488 बीकानेर की स्थापना
1540 नागौर के खानजादा वंश का पतन और राव मालदेव का नागौर पर अधिकार।
1543 मालदेव राठौड़ पर शेरशाह सूरी की विजय
1547 लाडनू के मोहिल शासक राव जयसिंह का देहावसान
1547 राव जयसिंह की जोहियाणी राणी के पुत्र राव देवराज का लाडनू की गद्दी पर बैठना
1556 राव मालदेव राठौड़ का मारवाड़ पर पुन. अधिकार
1556 लाडनू से मोहिल राज की समाप्ति
1562 राव मालदेव की मृत्यु
1564 मुगल सम्राट अकबर का मारवाड़ पर कब्जा
1583 मुगल बादशाह अकबर की आधीनता में महाराजा उदयसिंह का जोधपुर की राजगद्दी पर बैठना
1618 कालूशाह जी मोहिल की दरगाह का निर्माण
1670 दुरजनसाल जी मोहिल द्वारा दुरजनसर तालाब का बनाया जाना
1688 अमरसिंह जी मोहिल द्वारा लाडनूँ में रामदवे जी के मन्दिर का निर्माण
1690 भादोजी के पिता पातलजी द्वारा लाडनूँ में मोहिलों की पोळ का निर्माण

मोहिल काल के शिलालेख



गंज शहिदां शिलालेख : उपरोक्त लेख इस प्रकार है—लाडनूं श्री श्री राव भोजराजजी गंजशहीदां री दरगाह एक चुणाई : अगुण आंयुण धरती । (एक) बीघा में कोई दखल ना करने पावे : ओ हजुर रो हुकम छ। सम्वत् 1489, आसोज 10 दशहरा :



पुरा स्थित शिलालेख : उपरोक्त लेख इस प्रकार है— [illegible] सालजी को दरवाजो करायो : बड़ा हिम्मतजी संवत् 1781 चेत सुदी 10 दीतवार राव रा कुआ मठ इण दिन हुया : तारीख : व : खाजी का चांद 16 (मिती) का कलम

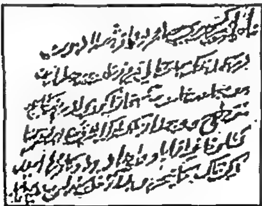
मोहिल काल के फारसी शिलालेख



(फिरोज तुगलक के समय का हदीरा स्थित शिलालेख)
समय : हिजरी 780 : शब्बान 10 = 2 दिसम्बर, 1378

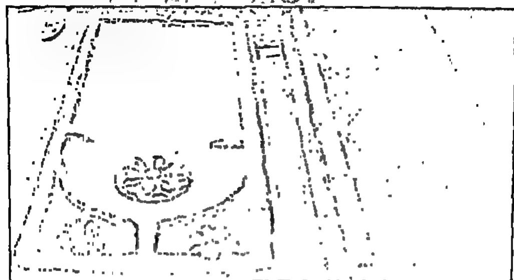


(फिरोज तुगलक के समय का उमरशाह पीर की दरगाह में लगा शिलालेख)
समय : हिजरी 772 : ढुलकाजा 27 = 12 जून, 1371



(गढ़ मे लगा शिलालेख)
शासनकाल—नागौर में खानजादा, लाडनूं में राव जयसिंह
समय : हिजरी 887 : सफर 6 = 27 मार्च, 1482

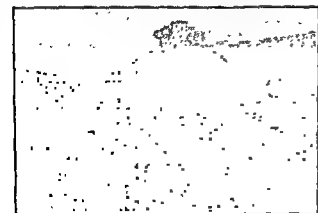
हदीरा स्थित एक जुड़वां कब्र





← एक मोहिल सती का स्मारक

स्थान –
शहर की पश्चिम दिशा में स्थित कब्रिस्तान परिसर



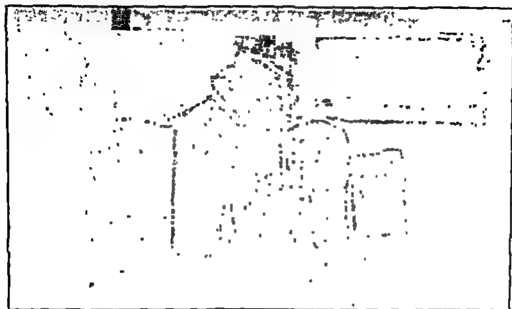
← हदीरा

मोहिलों द्वारा निर्मित मन्दिर

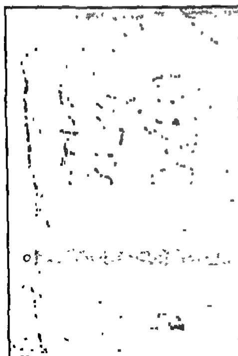
श्री रघुनाथजी का मन्दिर (निर्माता—राव अरड़कमल)

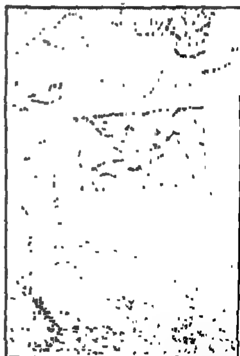
श्री चारभुजानाथ का मन्दिर (निर्माता—राव जयसिंह)

मोहिल काल की देवलियाँ



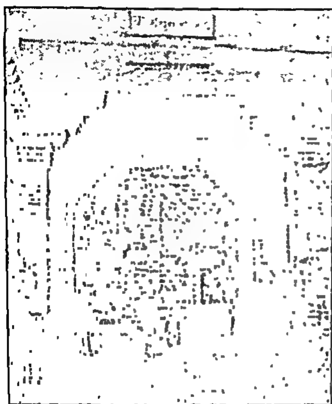
मोहिल राणाओ की देवलियां (नरवद गौशाला, छापर)



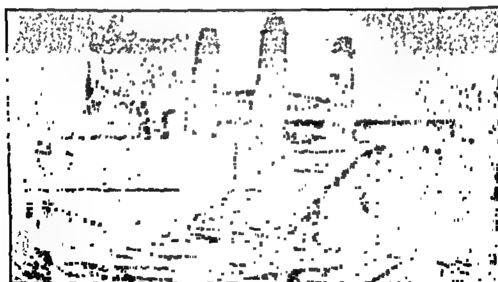


नागौर की लड़ाई में वीरगति प्राप्त योद्धाओं की देवलियाँ (स्थान—ग्राम चरला)

राव जयसिंह द्वारा निर्मित स्थापत्य



राव दरवाजा



राव कूआ

XVII

मोहिलों की धरती पर राठौड़ों का राज्य विस्तार

सीसोदियों के साथ विक्रम संवत् 1515 तदनुसार ई. सन् 1458 में हुई सन्धि के बाद राव जोधा मण्डौवर की गद्दी पर विधिवत आसीन हुए। अब वे अपने पूरे मनोबल के साथ अपने राज्य विस्तार के सम्बन्ध में नई योजनाएँ सोचने की स्थिति में थे। उन्होंने मण्डौवर के पास ही अपने नाम से जोधपुर नगर बसाया। चिड़ियानाथ की टूँक नामक पहाड़ी पर मेहरान गढ़ नाम से जोधपुर किले की नींव रखी। जोधाजी का परिवार भी बहुत बड़ा था। धीरे-धीरे मारवाड़ राज्य की सीमाओं का उन्होंने विस्तार किया।

मोहिल तब तक साढ़े तीन सौ वर्ष निष्कंटक राज कर चुके थे। मोहिलवंश का जिस रूप में विस्तार हुआ उस अनुपात में उनकी सैनिक शक्ति विकसित नहीं हो पाई थी। उनके प्रशासनिक ढाँचे में भी वांछित सुधार नहीं हो पाए थे। सैनिक दृष्टि से तालमेल का उनमें नितान्त अभाव था। पृथ्वीराज चौहान के प्रभुत्व तक चौहानों की केन्द्रीय सत्ता का मोहिलों को संरक्षण प्राप्त रहा।लेकिन मोहिल अपने में वृहद् राजनैतिक महत्वाकांक्षा विकसित करने में असफल रहे। इसका नतीजा यह हुआ कि वे शक्ति संचय की दौड़ में पिछड़ गए। पड़ौस में राठौड़ शक्ति के उदय के साथ ही मोहिलों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया।

राठौड़ों की मोहिलों से छोटी-मोटी झड़पें तो काफी समय पहले से ही शुरु हो गई थीं। अकस्मिक होते हुए भी इन झड़पों ने मोहिलों की सामरिक ताकत की पोल खोल दी। इस दौरान एक घटनाक्रम इस प्रकार घटा। राव जोधा ने द्रोणपुर के मोहिल शासक राव अजीत को अपनी पुत्री राजबाई (या रामा बाई) ब्याही थी। सामन्त पुत्र राव अजीत छापरपति राणा माणक राव का पौत्र था। वह बड़ा साहसी और वीर था। एक बार वह अपनी ससुराल जोधपुर गया हुआ था। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि राव जोधा ने मोहिल राज को हड़पने के लिए अजीत को वहीं मार डालने की योजना बनाई।

लेकिन जोधा की दुविधा को हम जान पाएँ इसका हमारे पास कोई उपाय नहीं है और पूरी जानकारी के अभाव में किसी बड़े राज पुरुष को बदनाम करना एक अपराध है।

इस सम्बन्ध में इतिहासकारों के मतों का ही हमें सहारा लेना पड़ेगा। कुछ प्रसिद्ध इतिहासकारों या ख्यातों का इस प्रसंग में उल्लेख इस प्रकार है—

बीदावतों की ख्यात के अनुसार :

वि. सम्वत् 1517 (ई. सन् 1460) में सामंत सिंह का बेटा अजीत अपनी ससुराल जोधपुर गया। राव जोधा के मन में कमजोरी आ गई। उन्होंने अजीत को वहीं मार डालने का निश्चय कर लिया। अजीत की सास ने अजीत के सरदारों को इस षड्यन्त्र का संकेत दे दिया। छापर पर जाटवों के हमले के बहाने वे अजीत को वहाँ से निकाल ले गए लेकिन जोधा ने अजीत का पीछा किया। ओडींट गाँव (लाडनू से आठ मील दक्षिण-पश्चिम में) के जेतोलाव के टीले से राठौड़ों को मोहिल दिखाई पड़े।

अजीत के आदमियों ने ओडींट के किलेदारों को फाटक खोलने को कहा। किलेदारों ने यह कहकर टाल दिया कि दाब जबरदस्त है तथा उनका यहाँ बचाव सम्भव नहीं। बचाव करते हुए मोहिल गणोड़ा गाँव तक पहुँच गए। उनका मकसद किसी तरह द्रोणपुर पहुँच जाना था। गणोड़े से द्रोणपुर सिर्फ तीन कोस ही रह गया था। वहाँ अजीत जाग गया। उसके आदमियों ने उसे सारी बात बता दी। अजीत अपने आदमियों पर बहुत नाराज हुआ। वह वहीं रुक गया और लड़ाई का एलान कर दिया। अजीत के आदमी कम थे। अजीत काम आया।

बाई रामा ने अपने पिता जोधा से सती कर जाने को कहलवाया। वह अपने भाई बीदा से इतना ही कह पाई, "भाई। तुमने जमीन की खातिर मुझे यह दिन दिखाया है। जमीन तो तुम्हें मिल जाएगी लेकिन तुम्हारी औलाद हमेशा दूसरों की मातहत ही रहेगी।" सती होती हुई रामा बाई का अपने भाई बीदा को यह परोक्ष रूप में शाप था जो कालान्तर में फलीभूत हुआ।

अजीत के पतन से राठौड़ों के हौसले बढ़ गए। राव जोधा की सांखली रानी के बड़े पुत्र बीका की महत्त्वाकांक्षा भी जाग गई। नए राज्य की स्थापना के उद्देश्य से संवत् 1522 आसोज सुदी 10 को बीका ने जोधपुर से जांगल प्रदेश की ओर प्रस्थान किया। उनके साथ उनके चाचा कांधल, रूपा, माण्डल, नापा साँखला, बेलाजी पड़िहार, लखनसी बैद, चौथमल कोठारी, नरसिंह बछावत, विक्रमसी पुरोहित, सल्लूजी राठी आदि कई लोग थे। राव जोधा ने भी सौ घुड़सवार और पांच सौ पैदल सैनिक साथ दिये।

राव बीका साँखलों, जोहियों और जाटों से जमीन हस्तगत करने में सफल रहे। शीघ्र ही उन्होंने थळी प्रदेश के एक बड़े भू-भाग पर कब्जा कर लिया। उन्होंने वि. सम्वत् 1545 में राती घाटी नामक स्थान पर अपने राज्य की नई राजधानी बीकानेर की नींव रखी। नव स्थापित इस बीकानेर रियासत के ठीक पूर्व में मोहिलवाटी की सीमा लगती थी। विदित रहे राव बीका और बीदा सगे भाई थे। वे राव जोधा की साँखली रानी के पुत्र थे।

नैणसी मुणोत का कथन :

राव जोधा की पुत्री राज बाई का विवाह छापर-द्रोणपुर स्वामी अजीत मोहिल से हुआ था। राव जोधा का मोहिलों की धरती पर अधिकार करने का विचार बना। राव जोधा यह भी जानते थे कि प्रबल अजीत के रहते उनका यह मनसूबा पूरा होने का नहीं। संयोग से अजीत का एक बार जोधपुर आना हुआ। जोधा ने उसको दबोच लेने का यह उपयुक्त अवसर समझा।

रावजी की राणी भटियाणी (राज बाई की माँ) को अपने पति के इरादे की भनक मिल गई। उसने अजीत के प्रधानों को समय रहते इस षड्यन्त्र की जानकारी दे दी। प्रधान यह बात जानते थे कि अजीत भागना कभी पसन्द नहीं करेगा। अतः इस बहाने कि छापर राणा बच्छराज पर यादवों ने हमला बोल दिया है—वे अजीत को वहाँ से शीघ्र प्रस्थान करने के लिए तैयार कर सके। राव अजीत ने नगारा बजवा कर कूच कर दिया।

राव जोधा को अजीत के प्रस्थान की जब बात मालूम हुई तो उन्होंने अनुमान लगा लिया कि उनके इरादे का कहीं-न-कहीं भेद प्रकट हो गया है। उसने हाथ में आया अवसर गवांना उचित नहीं समझा तथा अजीत का पीछा किया। द्रोणपुर पहुँचने में सिर्फ तीन ही कोस शेष बचे थे कि जोधा के दल ने गणोड़ा नाम के स्थान पर अजीत को जा घेरा। अजीत रथ में सोया हुआ था—जाग गया। प्रधानों ने उसे वस्तु-स्थिति से अवगत करा दिया। अजीत अपने प्रधानों पर बहुत बिगड़ा। वह वहीं थम गया और लड़ाई का ऐलान कर दिया।

अजीत काम आया। अजीत के 45 योद्धा खेत रहे। राज बाई ने वहीं सती होने का निश्चय किया। यहीं से राठौड़ मोहिल संघर्ष शुरु हो गया।

एक वर्ष बाद जोधा सेना सजाकर फिर छापर पर चढ़ आया। राणा बच्छराज अपने 265 सरदारों के साथ काम आए लेकिन उनका पुत्र मेघा सकुशल निकल भागने में सफल रहा। राठौड़ी सेना के उस स्थान से हटते ही मेघा ने छापर-द्रोणपुर पर फिर अधिकार कर लिया। जोधा समझ गए कि मेघा के जीवित रहते मोहिलवाटी पर अधिकार बनाए रखना सम्भव नहीं। दुर्भाग्य से राणा मेघा कुछ वर्षों बाद अपनी स्वाभाविक मौत मर गए। उनकी मृत्यु के बाद मोहिलवाटी छिन्न-भिन्न हो गई।

राणा मेघा के दो पुत्र थे—बरसल और नरवद। बरसल मेवाड़ राणा कुम्भा का दोहिता था। जबकि नरवद कांधल राठौड़ का नाती। दोनों ही पुत्रों को किसी बड़े युद्ध का अनुभव नहीं था। उपयुक्त अवसर जानकर राव जोधा ने छापर पर फिर हमला कर दिया। बरसल और नरवद मैदान छोड़कर भाग गए। कुछ दिन वे फतेहपुर रहे फिर महाराणा कुम्भा के पास उदयपुर चले गए। राणा कुम्भा बरसल की कोई मदद नहीं कर सके। वे जान गए थे कि मोहिलों का राज अब बचने वाला नहीं है।

फिर भी बरसल ने छापर की जमीन पुनः लेने के प्रयत्न जारी रखे। वह अपने साथ अपने भाई नरवद तथा मामा बाघा (राठौड़ कांधल के पुत्र) को साथ लेकर दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी की शरण में चला गया। उनकी सेवाओं से खुश होकर दिल्ली सुल्तान ने अपने एक सिपहसालार सारंग खाँ को पांच हजार सैनिकों के साथ छापर भेजा।

राव जोधा भी मुकाबले में आ डटे। सबसे पहले उन्होंने राठौड़ कांधल के पुत्र बाघा को समझा-बूझाकर मोहिलों का साथ छोड़ने को राजी कर लिया। विदित रहे राठौड़ कांधल, जोधा के भाई थे। बाघा ने राव जोधा को मोहिलों की कमजोरी से भी अवगत करवा दिया। मोहिलों के घोड़े भी बहुत कमजोर हालत में थे। राठौड़ों ने सबसे पहले उन्हीं पर धावा बोला। नतीजन मोहिलों को भागना पड़ा। शाही सेना का सन्तुलन बिगड़ गया। सारंग खाँ अपने 555 सैनिकों सहित मारा गया। बरसल मेवाड़ चले गए और नरबद फतेहपुर।

वि. संवत् 1531 (ई. सन् 1474) तक मोहिलवाटी पर राव जोधा का पूरा अधिकार हो गया। जोधा अपने पुत्र जोगा को राजकाज सम्बन्धी सारा काम सम्भलाकर जोधपुर लौट गए। जोगा से स्थिति सम्भली नहीं तो जोधा ने मोहिलों के विजित क्षेत्र का भार बीदा को सौंपा। बीदा समझदार और नीति कुशल थे। उन्होंने सारी स्थिति को नियन्त्रण में कर लिया। बीदा ने मोहिलों के साथ बड़ा सम्मानजनक व्यवहार किया। अनेक मोहिल सरदारों को उन्होंने अपनी नौकरी में रख लिया।

प्रसिद्ध मोहिल सरदार जवा सिंगरोत ने बीदा को अपनी पुत्री ब्याह दी। उसने बीदा को दायजे में सौ घोड़े तथा दो सौ ऊँट और एक लाख रुपए नकद दिए। यद्यपि जवा एक शक्तिशाली सरदार था लेकिन उसकी अपने भाइयों से अनबन थी। बीदा की आज्ञा से उसने अपने भाइयों को वहाँ से निकलवा दिया। बीदा मोहिलवाटी पर पूरी तरह काबिज हो गए। लेकिन उनका झुकाव अपने सगे बड़े भाई बीका की तरफ था।

मुंशी दयालदास की ख्यात के अनुसार :

जोधा ने छापर द्रोणपुर का इलाका अपने बेटे जोगा को दिया। जोगा अयोग्य साबित हुआ। अतः इलाका बीदा को सम्भला दिया गया। बीदा ने बड़ी कुशलता से सारी स्थिति को अपने काबू में कर लिया तथा मोहिलों के सम्मान की रक्षा करते हुए उन्हें सन्तुष्ट भी कर दिया।

बरसल भी अपना राज्य खोकर चुप नहीं बैठा। वह अपने भाई नरबद तथा मामा बाघा के साथ दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी की शरण में चला गया। कुछ अरसे बाद दिल्ली सुल्तान ने हिसार के सूबेदार सारंग खाँ को एक बड़ी फौज सहित बरसल के साथ भेज दिया। जब फौज द्रोणपुर पहुँची तो बीदा ने सामना करना उचित नहीं समझा। वह अपने बड़े भाई बीका के पास बीकानेर चला गया। द्रोणपुर पर बरसल का अधिकार हो गया।

बीका ने अपने पिता जोधा को समाचार भेजा कि यदि वह सहयोग करें तो बीदा को द्रोणपुर फिर दिलवाया जा सकता है। जोधा ने इस बार उदासीनता दिखाई। जोधा को बीदा का झुकाव बीका की तरफ अधिक लगा। जोधा बीका से कुछ सशंकित भी हो उठे थे। बीका ने स्वयं सेना इकट्ठी की। मेड़ता के शासक दूदा, रीयां के बरसिंह तथा अपने अन्य चाचा कांधल तथा माण्डल आदि को संगठित किया। उसने जोहियों को भी अपने सहयोग में कर लिया और द्रोणपुर पर चढ़ाई कर दी। उस समय तक सारंग खाँ द्रोणपुर में ही टिका हुआ था।

सबसे पहले बीका ने कांधलपुत्र बाघा को पुचकारा। उसे राठौड़ होने की याद दिलाकर अपनी तरफ कर लिया तथा सैनिक भेद भी उससे जान लिए। दूसरे दिन युद्ध हुआ। पैदल मोहिलों पर राठौड़ों ने अपने घोड़े चढ़ा दिए। बरसल और नरबद मार दिए गए। बचे हुए मोहिल और तुर्क मैदान छोड़कर भाग गए। सारंग खां का पीछा करके उसे मार डाला गया। विजित क्षेत्र पर पुनः बीदा का अधिकार हो गया। क्योंकि बीका की मदद से ही यह सब कुछ हुआ था अतः बीदावाटी नाम से जाना जाने वाला द्रोणपुर और छापर का क्षेत्र बीकानेर रियासत का अंग मान लिया गया।

इतिहासकार विश्वेश्वर नाथ रेऊ के विचार :

राव अजीत मोहिल के सम्बन्ध में इतिहासकार रेऊ के विचार अन्य इतिहासकारों से सर्वथा भिन्न हैं। वे लिखते हैं, "छापर-द्रोणपुर का स्वामी मोहिल अजीत मारवाड़ की उत्तरी सीमाओं पर उपद्रव करता रहता था। कुछ दिन तो राव जोधा अपना दामाद समझकर चुप साधे रहे परन्तु अन्त में परेशान होकर उन्हें अपने दामाद के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही का सहारा लेना पड़ा। अजीत मारे गए।

निष्पत्ति :

राठौड़ इसलिए सफल रहे कि उनमें सैनिक तालमेल था। विपत्ति के समय सब राठौड़ एक-दूसरे की मदद को पहुँच जाते थे। मेड़ता, जोधपुर और बीकानेर का भेद भुला देते थे। इसी गुण के कारण वे दिल्ली के लोदी सुल्तान का भी सामना कर सके। मोहिलों के पराभव का बड़ा कारण यह था कि उनमें सैनिक तालमेल का अभाव था। उन्हें बाहर से भी कोई कारगर संरक्षण प्राप्त नहीं था।

राव जोधा की मनसा कभी भी थळी प्रदेश के किसी भाग पर अधिकार करने की नहीं रही। लेकिन सोनथळी और उसके दक्षिण में किसी भाग पर अपनी पकड़ शिथिल होने देना वे नहीं चाहते थे। अपने पुत्र बीका से वे आशंकित थे। मोहिल अजीत एक हौसले वाला शासक था। उसकी हिम्मत और हौसला इस कदर बढ़ गया था कि मारवाड़ की उत्तर-पूर्वी सरहदों पर वह छेड़खानी करने लग गया था। इन दूर सरहदों को असुरक्षित छोड़ना जोधा को कभी नहीं जचा। राव जोधा अच्छी तरह जानते थे कि मोहिलवाटी पर एक-न-एक दिन बीका का ही अधिकार होना है लेकिन उन्हें भय था कि असावधान रहकर वे अपनी इन उत्तर-पूर्वी सरहदों को कहीं खो न बैठें।

जोधा लाडनू इलाके के सामरिक महत्त्व को पहचानते थे। मारवाड़ की उत्तर-पूर्वी सरहद पर बसा लाडनू—मारवाड़ और बीकानेर रियासतों की सीमा रेखा को सुनिश्चित करता था। लाडनू सोनथळी का प्रमुख कस्बा था। अतः मारवाड़ की सुदूर उत्तर-पूर्वी सरहद की सुरक्षा के लिए लाडनू पर जोधा का अधिकार रहना जरूरी था। आगे चलकर राव मालदेव ने भी इसी नीति का अनुसरण किया। उन्होंने राव बीदा के किसी भी क्षेत्र को छूआ तक नहीं परन्तु लाडनू इलाके पर अधिकार करने में वे पीछे नहीं रहे। राव मालदेव के बलबूते पर ही लाडनू मारवाड़ का अंग बना रह सका। जोधा द्वारा [illegible] पर लाडनू न [illegible]दा ने दिया था, न ही बीका ने।



स्व. पं. अक्षयचन्द्र शर्मा

इतिहासकार का मकसद सिर्फ प्राचीनता के अन्वेषण तक ही सीमित नहीं रह जाना चाहिए बल्कि उन सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को तलाशना भी होना चाहिए जिनमें होकर प्राचीनता बिना किसी विशेष प्रयास के [illegible]

दास और उनके शिष्य



अध्याय—3

परम्परा जुझारों की

मूमल म्हारी हालो नी, चालो थे राठौड़ां रे देश.........

राठौड़ों का देश—जहाँ शौर्य का ज्वार और प्रणय की निर्मल धारा साथ-साथ बहे, विवाह की कंकणडोर खुल नहीं पाती थी कि जौहर की घड़ी उपस्थित हो जाती थी, आदर्शों के लिए मर मिटना मांगलिक माना जाता था। ऐसे मरण पर महिलाएँ मैड़ियों पर चढ़कर बधावे गाती थी, गीत और आँसूओं का यह मिलन राठौड़ों की धरती के अतिरिक्त और कहीं भी उपलब्ध नहीं था।

जिन्दा रह पाने का मोह मनुष्य का सर्वोपरि स्वार्थ है। परन्तु मारवाड़ के राठौड़ इस स्वार्थ से मुक्त थे।

धर जातां ध्रम पलटतां, त्रिया पड़तां ताव।
तीन दिवस ए मरण रा, कुण रंक कुण राव॥

युद्ध राठौड़ों के लिए उन्माद नहीं था, कर्त्तव्य प्रेरित भावबोध था। शीश साटे जमीन मिलती थी—इतना महँगा सौदा कोई अन्य नहीं, लेकिन राठौड़ों के लिए यह सहज स्वधर्म था। प्राणों के प्रति उनका यह निर्मोह संस्कारगत था। इतिहास में ऐसी भाव-प्रवणता का दूसरा उदाहरण खोज पाना कठिन है।

बलहट बंका देवड़ा, करतब बंका गौड़।
हाडा बंका गाढ में, रण बंका राठौड़॥

खुले मैदान की लड़ाई में राठौड़ों का कोई मुकाबला नहीं था। जहाँ मौत प्रत्यक्ष रूप से सामने दिखती थी वहाँ राठौड़ पीछे की कतार में कभी नहीं रहे। दुश्मन के किलों के दरवाजों को तोड़ने के लिए हाथी हूलने के अवसरों पर दरवाजे की नुकीली कीलों से बिंध जाने का साहस राठौड़ ही कर पाते थे। मौत जब कोई अर्थ नहीं रखती उस स्थिति में जीवन सर्वाधिक अर्थपूर्ण बन जाता है।

राव मालदेव :

राठौड़ जोधा की वंश परम्परा में राव मालदेव का स्थान बड़े महत्त्व का माना जाएगा। मालदेव ने राज्य का विस्तार कर मारवाड़ रियासत को नया आकार दिया। उन्होंने

सिवाणा जेतमालों से, चोहटण, पारकर, राधनपुर और खारब पंवारों से, रायपुर और भादराजूण सींध राठौड़ों से, नागौर, सांभर और डीडवाना मुसलमानों से; गोढवाड़, बदनौर, भदारिया और कोसीथल मेवाड़ियों से तथा सिरोही देवड़ों से छीनकर अपने राज्य का विस्तार किया। उनके समय में लाडनू मारवाड़ की उत्तरी पूर्वी सीमा का प्रमुख ठिकाणा बन गया था।

राव मालदेव का 31 वर्ष का कार्यकाल घटना प्रधान रहा। जहाँगीरनामे की भूमिका में मीर हादी ने लिखा है कि राव मालदेव के पास 80 हजार सवार थे। इतनी बड़ी सेना राणा सांगा के पास भी नहीं थी। शेरशाह सूरी जैसे शक्तिशाली बादशाह से भी उनका सामना हुआ। अगर बीकानेर और मेड़ता से उसकी अनबन नहीं हुई होती तो शायद भारत का इतिहास किसी और रूप से ही लिखा जाता।

रूठी रानी :

मानवीय भावना से जुड़ी हुई राव मालदेव के जीवन की एक घटना बड़ी मार्मिक है। राव मालदेव का एक विवाह जैसलमेर के रावल लूणकरण भाटी की रूपवती कन्या ऊमादे से संवत् 1593 बैशाख शुक्ला 4 को सम्पन्न हुआ था। ऊमादे सुन्दर होने के साथ-साथ स्त्रियोचित्त दर्प और स्वाभिमान की जीती जागती प्रतिमूर्ति भी थी। जोधपुर पहुँचने पर पूजा का थाल सजाकर ऊमादे महल में रावजी के आगमन का इन्तजार करने लगी। उस दिन विधि का विधान कुछ विपरीत था। रावजी ने वह रात रूपवती दासी भारमली के साथ गुजार दी। प्रातः जब उनको अपनी भूल का अहसास हुआ तो वे रानी के महल में गए। लेकिन तब तक विलम्ब हो चुका था। पूजा की थाली औंधी पड़ी थी। ऊमादे रावजी से नहीं बोली। वह दूसरे दिन जैसलमेर लौट गई।

कुछ समय बाद राव मालदेव ने रानी को मनवाकर ले आने के लिए कवि आशानन्द को जैसलमेर भेजा। रानी ने जानना चाहा कि क्या रावजी को अपनी भूल पर खेद है। रानी को मानवती देखकर आशानन्द ने अपना मनोभाव निम्न दोहे में व्यक्त किया—

माण रखे तो पीव तज, पीव रखै तज माण।
दोय दोय गयन्द न बन्धहि, हेके खम्भू ठाण॥

कवि के कहने का आशय यह था कि दो हाथी एक खम्भे पर नहीं बाँधे जा सकते हैं। राजा की इच्छाओं पर प्रतिबन्ध लगा पाना कठिन है। पति को रखना है तो मान तज दो। मान रखना है तो पति को छोड़ना ही उचित है। रानी ने अपने स्वाभिमान की ...त पर समझौता नहीं किया। वह उम्र भर रूठी रही।

प्रसंग की मार्मिकता उस समय अनन्तगुना बढ़ गई जब कार्तिक शुक्ला 12, संवत् 1619 को रावजी का स्वर्गवास हुआ। रानी भी उनके साथ अपनी काया को अग्नि समर्पित कर सती हो गई। ऐसा उदाहरण इतिहास में शायद ही दूसरा मिले। मारवाड़ के सांस्कृतिक आंचल में एक रत्न और जुड़ गया। 'रूठी रानी' का लोकगीत आज भी हृदय को एक अलौकिक वेदना से भर देता है।

इसी रानी के साथ ज्योतिषी चण्डूजी पुष्करणा भी जैसलमेर से जोधपुर आए थे। उन्होंने संवत् 1598 में अपनी स्वयं की अन्वेषित नवीन परिपाटी से पंचांग की रचना की। उनका पंचांग मारवाड़ में सर्वत्र लोकप्रिय हुआ।

राव रायमल :

राव मालदेव के अनेक पुत्रों में से उदयसिंह, चन्दरसेन तथा रायमल प्रमुख हुए। कुंवर रायमल पर मालदेव की कृपादृष्टि विशेष थी। उन्होंने अनेक युद्धों में रायमल को सेनापति बनाकर भेजा। कुं. रायमल झाला मान के दोहिते थे। संवत् 1601 में गाँव भागासर में बादशाही फौज को राठौड़ी फौज ने मात दी। राठौड़ी फौज के मुखिया रायमल थे। संवत् 1613 में उदयपुर राणा उदयसिंह तथा पगण के नवाब हाजी खाँ के बीच अनबन हुई। हाजी खाँ ने राव मालदेव से मदद माँगी। राव मालदेव ने मदद देना स्वीकार कर लिया। मदद देने का एक कारण यह था कि राणा की फौज का मुखिया सूजा बालेचा था। सूजा ने एक प्रमुख राठौड़ सरदार नगे भारमलोत को मार डाला था। उसका बदला लेने का यह अवसर मालदेव को उपयुक्त लगा।

राठौड़ी फौज के मुखिया कुं. रायमल व जेतावत देवीदास थे। राणा की फौज के मुखिया सूजा बालेचा तथा जेतावत जेतसिंह थे। हरमाड़ा नामक स्थान पर दोनों फौजों का आमना-सामना हुआ। राठौड़ देवीदास ने सूजा बालेचा को चुनौती देकर मार डाला तथा नगे भारमलोत के बैर को चुकता किया। राणा की फौज के प्रमुख सरदार जेतसिंह भी काम आए। हाजी खाँ नवाब भी मारा गया। नवाब की कब्र तथा सूजा बालेचा व जेतसिंह की छतरियाँ आज भी गाँव हरमाड़ा में मौजूद हैं।

सीवाणा (बाड़मेर) की राठौड़ परम्परा :

इन सेवाओं से प्रसन्न होकर राव मालदेव ने कुं. रायमल को सीवाणे की जागीर प्रदान की। जब मालदेव का अन्तिम समय आया तो वे बड़ी दुविधा में थे। उन्होंने अपनी भावना इस प्रकार प्रकट की— "मेरे प्राण इसलिए नहीं निकल रहे हैं कि मेरे मरने के बाद मेरी औलाद को बादशाह की मातहती स्वीकार करनी पड़ेगी।" इस पर उनके

पुत्र चन्दरसेन ने वादा किया कि वे ऐसा नहीं होने देंगे। इस प्रतिज्ञा के फलस्वरूप संवत् 1619 में मालदेव की मृत्यु के बाद जोधपुर की गद्दी चन्दरसेन को मिली।

मालदेव के एक अन्य पुत्र उदयसिंह को भाई बँट में फलौदी की जागीर मिली। उससे वे सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने बादशाह अकबर की आधीनता स्वीकार करली और जोधपुर पर हमला कर दिया। लोहावट नामक स्थान पर लड़ाई हुई। चन्दरसेन हार गए। इस प्रकार जोधपुर पर उदयसिंह का अधिकार हो गया। चन्दरसेन अपने एक अन्य भाई की जागीर भादराजूण चले गए। उन्होंने रायमल की मदद से जोधपुर पुनः लेने की कोशीश की लेकिन सफल नहीं हुए।

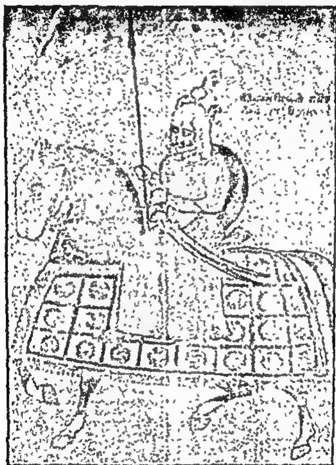
चन्दरसेन को मदद देने से बादशाह रायमल से नाराज हुए परन्तु उदयसिंह बड़े समझदार राजा थे। उन्होंने रायमल को बादशाह से सुलह करने के लिए राजी कर लिया। ख्वाजा साहब (अजमेर) की जियारत को जाते वक्त बादशाह अकबर ने मार्ग मे श्रावण शुक्ला 15 संवत् 1627 को नागौर में डेरा दिया। उस समय उदयसिंह और रायमल उनसे मिले। इस सुलह के फलस्वरूप सीवाणे की जागीर मय 125 गाँवो के रायमल के ही अधिकार में रही।

रायमल बादशाह के साथ आगरा जाने को सहमत हो गए। वहाँ उन्होंने वीरता के बड़े करतब दिखाए। मदमस्त हाथी, अनेक दिनो से भूखे सिंह तथा खीजे हुए भैंसों के साथ युद्ध करके रायमल ने बादशाह को चमत्कृत किया। अनेक युद्धों में भी उन्होंने बादशाह की ओर से भाग लिया और अपनी वीरता का परिचय दिया। बादशाह ने प्रसन्न होकर उन्हें समाळी के परगने की जागीर मय 122 गाँवां के तथा हाथी, घोड़ा और सिरोपाव देकर सम्मानित किया। बादशाह की मातहती में ही उनका देहान्त हुआ।

राव कल्याणदास :

रायमल के पाँच पुत्रों में सबसे पराक्रमी कल्याणदास थे। वे सीवाणे की राजगद्दी पर बैठे। उन्होंने भी बादशाह की आधीनता यथावत रखने का प्रयत्न किया। लाहौर आदि स्थानों की लड़ाइयों में उन्होंने बादशाह का साथ दिया। परन्तु स्वाभिमानी कल्याण की बादशाह से अधिक दिन तक नहीं निभी। उन्होंने उदयसिंह को भी बादशाह की नाजायज आज्ञाओं का पालन करने से रोका। अतः बादशाह और उनमें अनबन हो गई। भाटों के वृत्त के आधार पर बादशाह की नाराजगी का एक कारण और भी बताया जाता है। जैसलमेर के रावलजी की पुत्री से बादशाह अपने शाहजादे का विवाह करना

चाहते थे। रावलजी ने अनेक राजकुलों के सरदारों को गुप्त रूप से इकट्ठा किया और अपनी दुविधा उनके सामने रखी। कोई भी चुनौती स्वीकार करने को तैयार नहीं हुआ। तब कल्याण ने अपनी मूछों पर ताव दिया। रावलजी ने बादशाह को सन्देश भिजवा दिया कि उनकी पुत्री की सगाई तो कल्याणदास राठौड़ से की हुई है। अगर वे मान जाते हैं तो उन्हें यह रिश्ता मंजूर हो सकता है। कल्याणदास कब मानने वाले थे।



उन्होंने जैसलमेर जाकर भटयाणी से विवाह भी कर लिया। बादशाह अकबर इससे और अधिक कुपित हो गए।

बादशाह अकबर ने जोधपुर शासक उदयसिंह को मजबूर किया कि सीवाणे पर हमला करके वे उसे कल्याणदास से छुड़वालें। बादशाह ने अपनी फौज भी सहायतार्थ भेजी। संवत् 1644 के माघ महीने में लड़ाई हुई। कल्याणदास ने दोनों सम्मलित फौजों के पग छुड़वा दिये। बादशाह को इससे बड़ी खीज हुई। एक साल बाद फिर लड़ाई लड़ी गई।

बादशाह की फौज को एक बार फिर हार का मुंह देखना पड़ा। तीसरी बार सीवाणे के किले को घेरा गया। सम्मिलित फौज के 1600 और कल्याणसिंह के 500 आदमी काम आए। बादशाही फौज एक बार फिर भाग खड़ी हुई। इस बार एक चाल चली गई। करीब 12 कोस पर जाकर फौज रुक गई। घेरा उठा हुआ देखकर कल्याण ने अपने सरदारों को घर जाने का अवसर दे दिया। बादशाही फौज ने एक नाई, ढोली और राजपुरोहित को लालच देकर किले में प्रवेश के कुछ गुप्त भेद भी जान लिए।

एक रात मौका देखकर फौज लौट आई। कल्याणदास को सम्भलने का मौका नहीं मिला। अपनी रानियों को कुछ विश्वस्त सरदारों को सौंपकर व बचे हुए सरदारों को साथ लेकर किले के सदर दरवाजे से दुश्मन का सामना करने के लिए वे बाहर निकल आए। दुर्भाग्य से घोड़ा ठिठक गया। तलवार भी म्यान में आटक गई। इसी बीच उदयसिंह की फौज के एक सरदार लादू समणा की तलवार चलने से कल्याणसिंह का सिर धड़ से अलग जा पड़ा। इसके बावजूद भी वे जुझार अवस्था में दुश्मन के बहुत से सरदारों को मारते हुए पचास पांवडों तक किले की घाटी में नीचे उतर आए।

उधर शेष सरदारों ने फौज को किले में तब तक आगे नहीं बढ़ने दिया जब तक कि रानियों ने अपनी देहों को अग्नि समर्पित कर जिगड़े की रस्म पूरी नहीं कर ली। कल्याणसिंह का सिर व धड़ जहाँ-जहाँ पड़े, वहाँ अलग-अलग चबूतरे बने। सीवाणा शहर में आज भी कल्याणदास एक लोकदेवता के रूप में पूजित हैं। राव कल्याणदास के नाम का छोटा संस्करण राव कल्ला भी था। उनके वंशज कल्लौत कहलाए। लाडनूं पर कल्लौत राठौड़ों का राज करीब 300 वर्षों तक रहा। लाडनूं के अन्तिम शासक स्व. बालसिंहजी इसी परम्परा के थे।

अणखलो किलो यूं कहे, आव कला राठौड़।
मौं सिर उतरे मेहणो, तो सिर बंधे मौड़॥

II

लाडनूं के प्रथम जोधा शासक राव केसरीसिंह

राव कल्याणदास का देहावसान संवत् 1646 में भादवा सुदी 7, वार मंगलवार को हुआ था। भादवा सुदी सप्तमी को सीवाणे में उनकी स्मृति में प्रति वर्ष मेला भरता है।

कल्याणदास की एक लोकदेवता के रूप में पूजा होती है। राठौड़ कल्याणदास का बादशाह अकबर से हुआ यह संघर्ष इतिहास पुरुष महाराणा प्रताप के संघर्ष के समकक्ष ही आंका जाना चाहिए।

राव कल्याणदास (राव कल्ला) के साथ विश्वासघात करने वाले तीनों व्यक्तियों— टोगसिया जात का नाई, देधड़ा ढोली तथा सोड शाखा के राजपुरोहित को सजा स्वरूप अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। उपरोक्त तीनों जातों के लिए राठोड़ों के किलों में प्रवेश सदैव के लिए वर्जित कर दिया गया। इस प्रकार विश्वासघात करने की सजा के रूप में उनकी पूरी जात लांछित हुई। उस जमाने में यह एक बड़ी सजा मानी जाती थी।

जोधपुर महाराजा उदयसिंह राव कल्ला को जीवित पकड़ना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि उन्हें समझा-बूझाकर बादशाह अकबर से सुलह करवा देंगे लेकिन कल्ला को बचाया नहीं जा सका। महाराजा ने गणेशजी खीची को आदेश दिया कि वे निगह करें कि कहीं राव कल्ला के शरीर का मुगल अपमान न कर बैठें। खीची गणेशजी राव कल्ला के धड़ और सिर को सुरक्षित उठा लाए तथा कल्ला के पुत्रों—नरसिंहदास तथा ईशरदास के हाथों उनका सम्मान पूर्वक दाह संस्कार करवा दिया। रानियाँ पहले ही अपने शरीर अग्नि को समर्पित कर चुकी थीं।

राव कल्ला की मृत्यु के समय उनके बड़े पुत्र नरसिंहदास की उम्र सिर्फ बारह वर्ष थी। दूसरे पुत्र ईशरदास तो बहुत छोटे थे। नरसिंहदास को जोधपुर महाराजा ने खाटू (खुर्द) की जमीदारी मय कुछ अन्य गाँवों के प्रदान कर उनके गुजर-बसर का इन्तजाम कर दिया। कुछ समय बाद छोटे पुत्र ईशरदास को रेण तथा खेडुली की जागीर प्रदान कर उनकी अलग व्यवस्था कर दी। दुर्भाग्य से ईशरदास को बादशाह जहाँगीर से लड़ना पड़ा। संवत् 1664 में इस लड़ाई में वे काम आए।

संवत् 1652 में महाराजा उदयसिंह ने नरसिंहदास को अपने कुंवर सूरसिंह के साथ अकबर बादशाह की सेवा में भेज दिया था। बादशाह ने खुश होकर उन्हें अजमेर परगने का गाँव मसूदा इनायत कर दिया। नरसिंहदास चार वर्ष तक बादशाह की सेवा में रहे, फिर मसूदा आ गए। एक बार मसूदा से खाटू आते वक्त रास्ते में बलून्दा ठिकाणे पर एक गाय की कुर्बानी को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ। नरसिंहदास गाय को बचाना चाहते थे। लड़ाई की नौबत आ गई। चौबीस मुगल मारे गए। नरसिंहदास के चौदह आदमी काम आए। वे स्वयं भी घायल हो गए। इस घटना के बाद बादशाह ने मसूदा गाँव जब्त कर लिया।

ठा. नरसिंहदास ने अनेक युद्धों में वीरता दिखाई। संवत् 1663 में माण्डलगढ़ की लड़ाई में सूरसिंह के सरदारों में नरसिंहदास भी शामिल थे। उनके 52 आदमी काम आए। वे स्वयं भी घायल हुए। जीत राठौड़ों की हुई। नरसिंहदास ने जोधपुर राज्य के अच्छे सामन्तों में अपना स्थान बना लिया था। संवत् 1669 में जेठ बदी सप्तमी को भावड़ा गाँव के पास भाटी सुरताण से हुई लड़ाई में नरसिंहदास काम आए।

ठा. नरसिंहदास के बाद कुंवर केसरीसिंह खाटू की गद्दी पर बैठे। उनके एक छोटे भाई हरिसिंह ग्यारह वर्ष की उम्र में ही चेचक की बीमारी में गुजर गए थे। ठाकुर केसरीसिंह जोधपुर महाराजा की सेवा में हाजिर हुए। तत्कालीन महाराजा श्री गजसिंह उन्हें अपने साथ काबुल ले गए। वहाँ केसरीसिंह ने महाराजा गजसिंह का अच्छा सहयोग किया।

थोड़े दिन बाद महाराजा गजसिंहजी को बादशाह ने वापिस बुला लिया तथा इन्तजाम करने को उन्हें औरंगाबाद भेजा। केसरीसिंह काबुल में ही टिके रहे। वहाँ उनको पठानों से तीन बार जूझना पड़ा। एक लड़ाई में वे घायल हो गए। उन्हें देश बुला लिया गया। ठा. केसरीसिंह को स्वास्थ्य लाभ करने में बहुत समय लगा।

संवत् 1694 के जेठ मास में बादशाह शाहजहाँ ने इतिहास पुरुष राठौड़ अमरसिंह को नागौर इनायत कर दिया था। उन्हें राव की उपाधि से भी सम्मानित किया। राव अमरसिंह राठौड़ और राव केसरीसिंह में अच्छा मेलजोल था। राव अमरसिंह बादशाह के यहाँ सेवारत थे अतः उन्हें आगरे में ही रहना पड़ता था। राव अमरसिंह ने लाडनूं की तीस हजारी जागीर का पट्टा राव केसरीसिंह के नाम कर दिया तथा कुछ अन्य गाँव भी उन्हें देकर नागौर भेज दिया। उस समय लाडखानियों ने नागौर क्षेत्र में बहुत उत्पात मचा रखा था। केसरीसिंह ने सबको मार-मारकर भगा दिया तथा परगने का अच्छा इन्तजाम किया।

उपरोक्त प्रसंग को कहीं-कहीं इस प्रकार की निरूपित किया गया है। राव केसरीसिंह बादशाह शाहजहाँ की नौकरी में थे। वे एक हजारी मनसबदार थे। अटक व काबुल जाने के किसी प्रसंग को लेकर बख्शी सलावत खाँ से उनकी नोकझोंक हो गई नतीजन ठाकुर साहब ने मनसबदारी छोड़ दी। राव अमरसिंह उन दिनों आगरे में ही थे। जब उनको इस घटना की जानकारी मिली तो वे केसरीसिंह जी के डेरे पर गए और उनको अपने पास ले आए। राव अमरसिंह ने उनके नागौर जाने का इन्तजाम कर दिया। राव

उदरस्त कर ली तथा बीज नागौर की धरती पर फेंक दिए व खुपरी (ऊपर का खोल) बीकानेर की सीमा में डाल दी।

काफी खून खराबा हुआ। नागौर पक्ष के बाईस नगारबन्ध काम आए। नगारबन्ध से तात्पर्य उन जमींदारों से होता है, जिनको राज्य की ओर से नगारा निशान रखने का अधिकार मिला हुआ था। लाडनू के जागीरदार ठा. केसरीसिंह (कल्लौत) भी इस लड़ाई में काम आए। उनके साथ अनेक अन्य सरदार भी वीरगति को प्राप्त हुए, उनमें से जो नाम उपलब्ध हो सके हैं वे इस प्रकार हैं—सीलवा ठाकुर खानजी, खाटू ठाकुर अभयराज चाम्पावत, कसारी ठाकुर करणजी, गुड़ा ठाकुर भगवानदास करमसोत, सतेरण ठाकुर शेषराज पातावत, नोसरु ठाकुर बांकीदास पातावत, उरसाण ठाकुर गिरधरदास कूंपावत, रोहिणी ठाकुर भोपतसिंह नारणोत आदि। मोडरिया गाँव के जगमाल चारण भी इस लड़ाई में काम आए। उनकी सन्तान को सिरकटी में लाडनू के पश्चिम में चार किलोमीटर की दूरी पर स्थित मालासी गाँव की जागीर प्रदान की गई।

ठाकुर केसरीसिंह की छतरी नागौर में बनी। उनकी ठकुराणी नरुकी समरथदे जी लाडनू में सती हुई। उन पर भी छतरी बनी जो कुछ वर्ष पहले तक जोधों के श्मसान स्थल पर मौजूद थी। उपरोक्त घटना संवत् 1669, कार्तिक बदी 11 को घटी थी। राव मालदेव के जीवनकाल (वि. संवत् 1619 तद्नुसार ई. सन् 1562) तक लाडनू पर जोधपुर की राठौड़ सत्ता का नियन्त्रण रहा। राव मालदेव की मृत्यु के बाद नागौर पर मुगलों ने अधिकार जमा लिया। लाडनू नागौर का ही भाग था। मुगलों के शासनकाल में लाडनू का दर्जा एक परगने के समान था। संवत् 1694 में शाहजहाँ द्वारा नागौर राव अमरसिंह राठौड़ को दे दिया गया। उसी वर्ष लाडनू का पट्टा राव अमरसिंह ने ठाकुर केसरीसिंह के नाम कर दिया। राव केसरीसिंह लाडनू के पहले जोधा शासक हुए।

ठाकुर केसरीसिंह की मृत्यु के ठीक दो वर्ष बाद ही संवत् 1701 में बख्शी सलावत खाँ के अशिष्ट व्यवहार को लेकर उभरे घटनाक्रम में राव अमरसिंह भी वीरगति को प्राप्त हुए। राठौड़ जुझारों की यह कैसी परम्परा रही कि बहुत कम योद्धा अपनी स्वाभाविक मौत पा सके।

कलो धरा छै आपणी, शीश दिए साराहं।
बधै न ऊमर कायरां, घटे न जुझाराहं॥

लाडनूँ के प्रथम जोधा शासक



राव केसरीसिंह नरसिंहदासोत (मालदेवोत – कल्लोत)

(सौजन्य : विधायक श्री मनोहरसिंह)

✲ इतिहास के अनचीन्हे पृष्ठ

एक हस्तलिखित पत्रक का अंश—

उपरोक्त नोट का खुलासा इस प्रकार है—

केसरीसिंहजी : पातसाह सहाजहां : कै : एक हजारी मनसबदार थे : सो : अटक : नै : उतरण कै : वो : काबल जाणे के बाबत में : बखसी सलावत खां से · नोकचोक : होकर मुनसब छोड़ दिया : उण बगत : राव : अमरसिंह जी न : खबर होण से : केसरीसिंह जी के डेरे जाय : वाने आप कने लेय आया : बड़ा गढ़ सूं : नै : नागौर मेलीया : नागौर रो इन्तजाम करणै वास्ते = हजार तीस रो पटो : लाडणु न बगैरह गांव लिख दिया : सिरकार सूं हवेली गेनाणी पर बणाव दीवी : और नागौर आप इन्तजाम कीयो = लाडणु : केसरीसिंह जी लारै सती होई जिण नो ब्योरो =

सिध श्री गणेशाय नमः समत १६६६ काती बदी ११ वार दीतवार ठाकरां राज श्री केसरीसिंह जी : नरसिंहदासोत राव मालदेवोत : का : सती : नरुकी : समरथदेजी समत १६६६ का............

(स्रोत : लाडनू ठिकाणे से प्राप्त हस्तलिखित पत्रक)

IV

सुजस बातां हरा

लाडनू के जागीरदार केसरीसिंह के दादा, सीवाणे के अधिपति कल्याणसिंह, राठौड़ इतिहास में राव कल्ला रायमलोत के नाम से जाने जाते हैं। उनके समकालीन बीकानेर के महाराजा रायसिंह के छोटे भाई पृथ्वीराज– 'पीथळ' कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए। उनकी गिनती बादशाह अकबर के निकटतम व्यक्तियों में होती थी। उनका लिखा हुआ 'बेली क्रिसन रुकमणी' को डिंगल का सर्वोत्तम काव्य-ग्रंथ माना जाता है।

राव कल्ला की पीथळ से बड़ी घनिष्ठता थी। वे यदा-कदा उनसे मिलने बीकानेर आते-जाते रहते थे। स्वाभिमानी राव कल्ला का पीथल भी बहुत सम्मान करते थे। परन्तु पीथळ बहुत अनुभवी व्यक्ति थे। वे जान गए थे कि कल्ला के दर्प की यह रंगत, घात-प्रतिघात भरे बादलों से आच्छादित मानव इतिहास के आकाश में मात्र इन्द्र धनुष की तरह उभरकर बिखर जाएगी। उनके शौर्य का यह प्रबल ज्वार सर्वत्र खड़े स्वार्थ के तटबंधों से टकरा-टकराकर अपने मे ही समाहित होने को विवश हो जाएगा।

एक छोटे-से जागीरदार की औकात ही क्या थी कि वह बादशाह अकबर से टक्कर ले। पीथळ ने भविष्यवाणी कर दी थी कि सीवाणे के किले में शाका और जौहर होगा। राव कल्ला की एक जुझार के रूप में कल्पना करके उन्होंने उसकी यशगाथा में कुछ कुण्डलियाँ भी रची थीं। जौहर के अवसर गाए जाने वाले 'सावझड़ो' नामक डिंगल गीत की भी उन्होंने रचना की थी। शौर्य संस्कृति की सहोदर ये काव्य रचनाएँ राजस्थानी साहित्य की बहुमूल्य धरोहर हैं। उनमें से कुछ यहाँ प्रस्तुत हैं–

लम्बोदर पाये लगुं, विदिया करो पसाय
कुंवर बखाणु कलो, राणा खण्डे राय
राण बखाणु अवतार धन राठवड़
ओधरण जोधहर मेर मांडी अनड़
मुझ रतन ऊपजे अहड़ा मरुधरा
देवो गुण पसाय विदिया लम्बोदरा

कलो मरण मंगलीक कर, चढ़ियो गढ सीवाण
अकबर शाह बखाणीयो, राणा खण्डेराण
राण जस बखाणीयां बढ़े राई तणा
दीपियो जोधहर घणो थोड़े दिणा
भणै संसार जूझार साको भलो
कर मंगलीक मरण सीवीयाण चढियो कलो

थे सवीयाणो पाकड़ो, रोस बहो दुझल्ल
नवज कल्याणो नीसरे, माल तणो हेकल्ल
नवज कल्याण हेकलो नीसरे
कमध बाराह जीम कोट राहाकरे
नीमीयो नेह, आहेड़ी धाकड़ो
पाणधन राण सवीयाण थे पाकड़ो

सींहा ये ती आखड़ी, पर मारीयो न खाय
तीजी फाल न अपड़े, भागां लार न जाय
जाय किम भागतां लार जोधाहरो
खाग झड़माझीयां देव वा तत्खरो
बीखाऊ रीतभड़ रहेणा यो हो हाखड़ी
आसति कलै मरण तणी आपड़ी

सींहा सत्र न जोडिया, हाथां तणा बखाण
कलो कटक्के बीटियो राण न मेले माण
माण मेले नहीं राण बेठो मणो
घणो बोलावीयो जोर दाखे घणो
हण मोतां हलां कुंतदे हाथीयां
सींह पड़ गयो नीसर साथीयां

हैकल हेड़वीयो, हीये चढ़ ही थाट
वटाऊ बैकुण्ठ रो, ना भूल्यो खत्रवाट

बाट भूल्यो नहीं आवीयो बड़बड़े
लोह बाहा चरा बाजीयो लोवड़े
कळळ भुआळ लंकाळ मांझी कलो
हीये चढ़ावीयो घणा ठाकुरां हेकलो

सरग हुया बधावणा, बजरीया नीसाण
सिर दीधो सवीयाण नै, रथ यु बैठा राण
राण बैठो रथ रंभ पूगी रळी
अम्बर आणद हुयो गुडीया ऊछळी
तुझ पधारीयां तुंग रायमल तणा
बजे नीसाण सरग हुया बधावणा

प्रसंगवश कुछ अन्य रचनाएँ—

सिंह खंगा पड़ियो समर, अमर हुयो चहुं ओड़।
तुड़ा मोड़ रायमल तणा, रंग घणा राठौड़॥
कलियो शेखां सूं करी अकबर हंदी आळ।
रोप्या रायमल रा पग तेरहवीं पाताळ॥

सोरठा—

जासी नदी नीवाण, देवल ही डिग जावसी
कल जीत रे कल्याण, रहसी रायामाल रो

मारवाड़ के सांस्कृतिक उन्नयन में राठौड़ राजकुल का योगदान भूलाया नहीं जा सकता है। फिर भी मैं अपनी लेखकीय स्वतन्त्रता का उपयोग करते हुए राठौड़ों के साथ भाटियों का नाम भी जोड़ना चाहूँगा। इन दोनों राजकुलों के चरित्र की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि योद्धा होने के साथ-साथ इनका प्रबल भाव पक्ष आदर्शोन्मुख था। भाटी क्षेत्र की स्त्री-रत्न भी सर्वत्र प्रशंसनीय थी। उनकी देहयष्टि, सुन्दरता और सलीके का मुकाबला नहीं था।

भावुकता की सीमा तक अपने शब्दों से जुड़े रहना इन राजकुलों का सर्वोपरि गुण था। जब कथनी और करणी का अन्तर समाप्त हो जाता है तो जीवन की सुजगता

अपने आप बढ़ जाती है। अस्तित्व किसी उच्चतर कम्पनांक में स्थित हो जाता है। चेतना के इस नए विस्तार में जीवन ऊर्जा क्रिया रूप में संघनित होकर जब बरसती है तो संस्कृति की झोली नए रत्नों से भर जाती है। दिक् काल से ये ऊर्जा सम्पन्न खण्ड बड़े उर्वर होते हैं।

यद्यपि सामन्ती प्रथा के अभिशापों से कोई मुक्त नहीं था, उनसे संघर्ष की एक लम्बी कहानी है—फिर भी राज परिवारों का सान्निध्य उपहार में सामान्य जन को बहुत कुछ दे गया। उनके संसर्ग से लोकभाषा मधुर बनी। व्यवहार में ग्रामीणपन की रूक्षता कम हुई। जबान में हार्दिकता का समावेश हुआ। प्रांजल रीति-रिवाज विकसित हुए। नए त्यौहारों का सृजन हुआ। हर अवसर के उपयुक्त गीत उपजे। परिवेश के भावबोध ने गीतों को सही मोल दिया, तोल दिया। दूर से ही सुनाई देने वाली गीतों की मात्र राग बता देती है कि गीत किस अवसर का है। गीतों के स्वरों में पूरा युग ध्वनित होता है।

मारवाड़ी रागें संगीत के किसी शास्त्रीय ढाँचे में भले ही कठिनता से समाहित हो पाती हैं, फिर भी मानव हृदय को उसकी गहनत्तम गहराई तक छू देने की उनमें अद्भुत क्षमता है। मांढ राग जिस सरसता से मानव मन को भर देती है, उसका उदाहरण संसार में शायद ही कहीं अन्यत्र मिले।

रात्रि जागरणों में कहीं पाबू, हरबू के परवाड़े गाये जाते, तो कहीं जांभा के जसवाड़े। हल की मूठें पकड़े तड़के प्रभात में ही जमीन पर जोत की लीकें खींचते हुए किसान जब झीणे-झीणे स्वरों में 'लाखा फूलाणी' गुन-गुनाते तो एक अनोखा समा बँध जाता था। सब कुछ जीवन से जुड़ा हुआ था।

साधन सीमित थे, फिर भी जीवन में हलचल थी। परिस्थितियों में कशमकश। भावों में स्पन्दन। ऊपर कुछ भी घटित होता नजर नहीं आता था, भीतर बहुत कुछ घटित हो जाता था। धरती पर जीवन पसर रहा था तो भीतर जड़ें भी गहरी होती जा रही थी। जीने का हौसला था, उमंग थी, आनन्द था। ऐसी ही भाव-भूमियों में संस्कार निखरते हैं। इन्हीं अंचलों में मूमल जन्मी, मांढ उपजी, ओल्यूं का भाव निपजा। पींपली और कुर्जां के गीत गूंजे। किसी ने किसी के प्यार में लूमों वाले पोरबन्द गूंथे। घूमर थिरकी। कहीं किसी ने जोगिया गाया तो कहीं तेजे की टेर फूटी। परस्पर मिलन में हरख हुलसा, प्रेम पसरा। समय के इन अनचिन्हे काल खण्डों में जो संजोया गया उसे आज तक हम भुनाते रहे हैं।

V

राव केसरीसिंह की सन्तान

लाडनू ठिकाणे से मिले वंशवृक्ष तथा गोराऊ ठिकाणे से प्राप्त कुछ हस्तलिखित पत्रकों के आधार पर लाडनू के प्रथम जोधा शासक ठाकुर केसरीसिंह नरसिंहदासोत (कल्लोत) की वंश परम्परा का विवरण नीचे लिखे प्रकार से संकलित किया जाना सम्भव हो सका है—ठा. केसरीसिंह की सन्तति बहुत फली-फूली। स्वयं केसरीसिंह के छः पुत्र हुए। चन्दरभाण, गोपीनाथ, उदयसिंह, किसनसिंह, इन्दरभाण तथा अर्जुनसिंह। चन्द्रभाण को छाजोली तथा लाडनू, उदयसिंह को बल्दू, गोपीनाथ को डाब गाँव व बींचावा, किसनसिंह को खाटू व रासिंगपुरा, इन्दरभाण को रोजा व लोरोली, अर्जुनसिंह को खारड्यो तथा सींवों प्राप्त हुए।

तब तक जोधपुर की गद्दी पर महाराज जसवन्तसिंह आसीन हो चुके थे। महाराजा जसवन्तसिंह के साथ लाडनू ठा. चन्दरभाण उज्जैन की लड़ाई में गए। यह लड़ाई शाहजहाँ पुत्र औरंगजेब और मुराद के बीच हुई थी। यह वही ऐतिहासिक लड़ाई थी, जिसमें महाराजा जसवन्तसिंह बीच ही में लौट आए थे तथा जोधपुर में उनकी [illegible] राणी ने नाराज होकर किले के दरवाजे बन्द कर लिए थे।

महाराज जसवन्तसिंह से सीख लेकर ठा. चन्दरभाण लाडनू आ गए। संवत् 1717 में उनका देहावसान हो गया। चन्दरभाण की मृत्यु के बाद उनके छोटे भाई इन्दरभाण को लाडनू की गद्दी मिली। चन्दरभाण के चार पुत्र थे—उगरसिंह, भींवसिंह, [illegible] तथा जुझारसिंह। उगरसिंह छाजोली के जमींदार बने। भींवसिंह [illegible] को सिलणवाद मिला तथा जुझारसिंह को धुड़ीला व बांठड़ी प्राप्त हुए।

संवत् 1735 में महाराजा जसवन्तसिंह पेशावर में स्वर्ग सिधारे। [illegible] उठाकर बादशाह औरंगजेब ने सम्पूर्ण मारवाड़ खालसे घोषित [illegible]। [illegible] महाराज जसवन्तसिंह ने औरंगजेब के विरुद्ध शाहजहाँ [illegible] महाराजा का व्यक्तित्व इतना प्रखर था कि औरंगजेब उनसे [illegible] रखने का साहस नहीं कर सका था। इस वक्त उसे बदला लेने [illegible] संवत् 1735, चेत बदी 4, वार बुधवार को लाहौर में [illegible] दुर्गादास, खीची मुकन्ददास तथा नांधू मनोहरदास किसी [illegible] ले आने में सफल रहे। जोधपुर राजघराने के लिए [illegible]

इस विपत्तिकाल में धुड़ीला ठाकुर जुझारसिंह की सेवाएँ विशेष रूप से महाराजा को प्राप्त रहीं। ठा. जुझारसिंह ने लाडनू तथा कसूम्बी के बादशाही थानों को लूट लिया। डीडवाना पर भी उन्होंने हमला बोल दिया। लेकिन बादशाही ताकत का सामना करना आसान काम नहीं था। बादशाही सिपाही उन ठिकाणों पर पुनः काबिज हो गए। ठा. जुझारसिंह गंभीर रूप से घायल हो गए। संवत् 1761 में ठा. जुझारसिंह की मृत्यु हो गई। औरंगजेब की मृत्यु के बाद अपने वफादार सरदारों के सहयोग से महाराजा अजीतसिंह मारवाड़ की राजगद्दी पर पुनः काबिज हो सके।

ठाकुर जुझारसिंह के बारह पुत्र हुए। ठा. लालसिंह को धुड़ीला तथा बांठड़ी मिले, लखधीरसिंह को कसूम्बी, राजसिंह को तिपनी, जतनसिंह को जनवाण, भागीरथसिंह को मड़ाम व बिठूड़ा, मनरूप को रणसीसर, हिन्दूसिंह को छपारा, गुमानसिंह व उम्मेदसिंह को धानणी गाँव मिले। ठाकुर गंगासिंह लाडनू के भोमिया नियुक्त हुए। शेष भाइयों के सम्बन्ध में कोई विवरण प्राप्त नहीं है।

महाराजा अजीतसिंह के विपत्तिकाल में ठा. जुझारसिंह के सभी पुत्रों ने जोधपुर राज के प्रति स्वामिभक्ति का परिचय दिया। कसूम्बी ठाकुर लखधीरसिंह, महाराजा की बन्दगी में जोधपुर रहे। महाराज ने खुश होकर लाडनू ठिकाणे की देखरेख उन्हें दूसरी बार सौंपी। लखधीरसिंह के नौ पुत्र हुए। भारतसिंह को लाडनू मिला। ईशरसिंह को तीतरी, हरिसिंह को बालसमद, हिम्मतसिंह को गोदरास, सादुलसिंह को तंवरा, रामसिंह को श्यामपुरा प्राप्त हुए। शेष पुत्रों के बारे में विवरण प्राप्त नहीं है।

ठाकुर भारतसिंह दक्खनियों के साथ हुई खिरोड़ की लड़ाई में काम आए। फलस्वरूप उनके पुत्र शिवदानसिंह को संवत् 1835 में फिरवासी गाँव का लिखित पट्टा मिला। भारतसिंह के चार पुत्र हुए— शिवदानसिंह, मालमसिंह, गोपालसिंह तथा पदमसिंह। संवत् 1838 तदनुसार ई. सन् 1781 में सिंध के उमरकोट की लड़ाई में शिवदानसिंह ने अच्छी वीरता दिखाई। जोधपुर महाराजा विजयसिंह द्वारा शिवदानसिंह को लाडनू ठिकाणे का लिखित पट्टा इनायत किया गया। उस समय तक लाडनू ठिकाणे सम्बन्धी जो भी अधिकार इन जोधाओं को प्राप्त थे वे भोमिया स्तर के ही थे।

भारतसिंह के एक पुत्र मालमसिंह को गोराऊ गाँव पहले ही इनायत कर दिया गया था। संवत् 1839 में कसूम्बी के जोधाओं को उमरकोट के किले के घेरे को तोड़ने के लिए फिर लड़ाई में जाना पड़ा। इस बार ठा. शिवदानसिंह तथा मालमसिंह लड़ाई में काम आए। इनके छोटे भाई पदमसिंह को लाडनू ठिकाणे की जागीर मिली। ठा. मालमसिंह

की ठकुराणी सगर्भा थी। संवत् 1840 में उनके पुत्र जन्मा। उसका नाम रणजीतसिंह रखा गया। जोधपुर दरबार विजयसिंह ने उनको भावला गाँव लाडुओं की रस्म में इनायत किया। संवत् 1854 में गोराऊ, लूणसरो तथा बोड़वो मिलाकर गोराऊ ठिकाणे की स्थापना की। कालान्तर में ताजीम, बांह पसाव, नगारा निशान, छड़ी कुरब कायदे का सम्मान भी ठिकाणे को बख्शा गया। गोराऊ ठाकुर रणजीतसिंह संवत् 1905 में स्वर्ग सिधारे।

भारतसिंह के चौथे पुत्र गोपालसिंह को लेड़ी गाँव नसीब हुआ। यह रतनोतों का ठिकाणा था। जोधपुर महाराजा की शह पर कसूम्बी के जोधाओं ने मिलकर उनसे लेड़ी गाँव छीन लिया। ठाकुर गोपालसिंह के बाद ठाकुर माधोसिंह लेड़ी की गद्दी पर बैठे। फिर क्रमशः पेमसिंह, सांवतसिंह व मोहनसिंह हुए। पेमसिंह बड़े कठोर प्रशासक थे। उनके नाम से आस-पास का क्षेत्र भय खाता था।

लाडनूं, गोराऊ तथा लेड़ी के जागीरदारों में घनिष्ठ तालमेल था। किसी बाहरी विपत्ति के समय तीनों ठाकुर मिलकर मन्त्रणा करते थे। इसका तीनों ही ठिकाणों को लाभ मिला। पास-पड़ोस के धाड़वी तथा डकैत तीनों की इस तिकड़ी से भय खाते थे, जिससे तीनों ही ठिकाणे सुरक्षित रहे। ठा. रणजीतसिंह के बाद गोराऊ ठिकाणे की गद्दी पर क्रमशः भैरूसिंह, दानसिंह तथा धोंकलसिंह आसीन हुए। कालों की फौज के लाडनूं आगमन के समय गोराऊ पर ठा. भैरूसिंह काबिज थे। ठाकुर धोंकलसिंह कुशल प्रशासक थे। वे जोधपुर दरबार के विशेष मर्जीदानों में से थे। अनेक बार विलायत की यात्रा भी कर चुके थे। अंग्रेजी बहुत अच्छी बोल लेते थे। पोलो के अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी थे। प्रथम महायुद्ध में उन्होंने शिरकत की थी। महारानी विक्टोरिया की स्वर्ण जयन्ति पर वे सर प्रताप के साथ इंग्लैण्ड गए तथा इन्तजाम में भाग लिया और पदक प्राप्त किया।

VI

कुछ ऐतिहासिक सनदें

इतिहास सम्बन्धी इस शोध यात्रा में कुछ पुरानी सनदें भी प्राप्त हुई हैं। कुछ चयनित सनदों की मूल सहित समीक्षा यहाँ प्रस्तुत है। इन सनदों के माध्यम से वि. संवत् 1715

से 1782 तक के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है अन्यथा लाडनू के इतिहास का यह कालखण्ड काफी धूमिल था।

(1)*

श्री परमेसर जी साते छः

श्री कृष्णजी/सही छः

सिघश्री महाराजधिराज महाराजा श्री रायसिंहजी बचनायतुः महासिंध, हरीकिशनदास सुप्रसाद बांच ज्योः अठे रा समाचार भला छैः थारां दीज्यौः अपरंच परगना लाडणु कानूनगो भागचन्द वगैरह नै धरती हळ चार की कस्बा लाडणु में सदा बंद सूं छूटती आई छः मुआफी क्रसण आगे लिखी छोड़ी छैः सो चोलवणी कोई मती करोः मि. जेठ सुदी 9, संवत् 1715 : हुकम श्री मुख मुः जहानाबाद।

उपरोक्त सनद का ऐतिहासिक संदर्भ इस प्रकार है—संवत् 1715 में मुगल बादशाह औरंजेब दिल्ली तख्त पर बैठे। उस समय दिल्ली का नाम जहानाबाद था। अमरसिंह राठौड़ के पुत्र रायसिंह ने औरंजेब की मातहती स्वीकार कर ली थी। बदले में औरंगजेब ने नागौर पर रायसिंह का उत्तराधिकार यथावत मान लिया। साथ-साथ रायसिंह को महाराजाधिराज की पदवी भी दी। लाडनू नागौर के आधीन था। लाडनू पर उस समय स्व. राव केसरीसिंह के ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रभाण का राज था। ठाकुर चन्द्रभाण जोधपुर महाराजा जसवन्तसिंहजी के साथ युद्धों में रहे। उपरोक्त सनद लाडनू के मुसद्दियों के नाम जारी की गई, जिसमें कानूनगो भागचन्दके चार हळ तुल्य जमीन पर अधिकार को स्वीकृति प्रदान की गई है।

(2)*

श्री राम : सही :

राज श्री इन्दभाणजी बचनायत काजी ईस मोहम्मद नै मआफरी लिख दीवी टको ।। रोक वा तेल ऽ = (दो छटांक) रोशनाई गंज शहीदां वा मस्जिद सारूं रोजीना पाया जासी : संवत् 1719 मि. जेठ सुदी 13।

इस सनद का ऐतिहासिक आधार इस प्रकार है—

सनद से जाहिर होता है कि संवत् 1719 में लाडनू पर ठा. इन्दरभाण का राज था। ठा. चन्द्रभाण की मृत्यु संवत् 1717 में हो गई थी। सम्भवतः उसी वर्ष उनके छोटे भाई

इन्दरभाण लाडनूं के ठाकुर बने। इस सनद से स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि ठाकुर केसरीसिंह की वंश परम्परा उनके बाद भी जारी रही।

(3)*

सिधश्री महाराजाधिराज महाराजा श्री रायसिंहजी बचनायतु, रघुनाथ, अमीचन्द, जैसिंह मियां एवजदी से सुप्रसाद बांच ज्यो अठै रा समाचार भला छै आपका दीज्यो/अपरंच परगना लाडनूं का कानूनगो लालचन्द दीपचन्द जगजीवणदास को झगड़ो अमराथे छै सुं थे इंसावी खसमानो कीज्यो मि. असाढ़ सुदी 1, संवत् 1723।

रघुनाथ, अमीचन्द, जैसिंह, मियां एवजदी के नाम यह एक खास रुक्के नुमा आदेश है। उन्हें हिदायत दी गई है कि वे लाडनूं कानूनगो लालचन्द, दीपचन्द, जगजीवणदास से सम्बन्धित विवाद को न्यायसंगत तरीके से सुलझा दें। इससे उस समय की न्याय-व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है।

(4)*

सिधश्री महाराजाधिराज महाराजा श्री इन्दरसिंह जी बचनायत। परगनो नागौर रा मुतसदियान सु प्रसाद बांच ज्यो अठै रा समाचार भला छै थांरा दीज्यौ। अपरंच कानूनगो जीवणदास वगैरह नै धरती हल चार की बीघा 8 कस्बा लाडनु मां है सदाबंद छूटतीआई छै मुआफक सनद श्री महाराजा की छै जिण उपर म्हे (वाणी) लिख दी छै। दस्तुर कानूनगो ई चौतरा को सदा सरबदा आप सुं पाया जावसी गांव सुमारी आंरी माफ कीवी छै। खालसा व जागीरदार कोई चोलवणी करणे नहीं पावे। श्रीमुख मिती भादवा बदी 14 सं. 1733 मु. आलणियावास।

उपरोक्त सनद की समीक्षा इस प्रकार है—

वि. संवत् 1733 आषाढ़ बदी 12 तद्नुसार 29 मई, 1776 को नागौराधिपति महाराजा रायसिंह जी का निधन हो गया। उनके बाद उनके पुत्र इन्दरसिंह नागौर के अधिपति बने। इन्दरसिंह जी को भी महाराजाधिराज की पदवी यथावत रही।

उपरोक्त सनद किसी पुरानी सनद का नवीनीकरण है। इस सनद की एक विशेषता यह है कि लाडनूं में जागीरदार या खालसा जैसी भी स्थित रहे—यह सनद मान्य अर्थात् लाडनूं में उस समय तक किसी परम्परागत जागीरदारी वंशक्रम

मान्यता प्राप्त नहीं थी। लाडनू जागीरदारी के भोमिया स्तर के अधिकार स्थान्तरित होते रहते थे। सम्भवत: कुछ अवसरों पर थोड़ी अवधि के लिए लाडनू खालसे भी रहा। लेकिन यह बात सुनिश्चित है कि लाडनू उस काल विशेष में नागौर के आधीन था। औरंगजेब ने सम्पूर्ण मारवाड़ को खालसे घोषित कर दिया था और नागौर मुगल बादशाह औरंगजेब की मातहती में था।

सनद आलणियावास से नागौर के मुतसदियों के नाम जारी की गई है। सम्भवतः मारवाड़ में मुगल अधिकारियों का यह मुख्यालय रहा था और नागौराधिपति जब भी नागौर आते तो अपना डेरा आलणियावास रखते थे। बाद में आलणिया वास राठौड़ों की मेड़तिया शाखा का सिरायत ठिकाणा बना। कुछ और भी सनदों में आलनियावास का उल्लेख है।

(5)✤

उपरोक्त सनद का नवीनीकरण महाराजा इन्द्रसिंह द्वारा मिती जेठ सुदी 12, संवत् 1735 को जहानाबाद से जारी हुआ, वह इस प्रकार है—सिधश्री महाराजाधिराज महाराजा श्री इन्द्रसिंहजी बचनायतु भोजराज हररामोत सु परसाद बांच ज्यौ अठै रा समाचार भला छै थांरा दीज्यौ अपरंच परगना लाडनु रा कानूनगो जग जीवणदास व बखतमल वगैरह का खेत सदा बंद बहता आया छै सु वाइण दीज्यो और कोई चोलवण करो मती हुवै श्री मुख मिती जेठ सुदी 12 सं. 1735 का मु. जहानाबाद।

(6)★

एक सनद यह भी है। दीवाण बचनायत कस्वा लाडनु रा मुसदीयाना इजारदारी की सो तथा काजी ईस मोहम्मद कै टको रोज । । मसीत को न तेल ऽ = (दो छटांक) दरगाह गंज शहीदां को छै सो महाराजा का हुकम छै सु दीया जावो पाछे भी नागा हुई हुवे तो देदी ज्यो हिसाब में भरपाव स्यो मि. मिगसर बदी 11, संवत् 1755।

(7)★

अजमेर शासन तथा अजमेर के बड़े मौलवी की भी कस्बे पर अनेक प्रकार से दखल थी। बतौर बानगी एक फारसी दस्तावेज इस प्रकार है—

✤ ये सनदें श्री आनन्दप्रकाश माथुर से प्राप्त हुईं।

★ ये नकलें श्री फूलेखाँ कायमखानी से प्राप्त हुईं।

1

[illegible]

5

6

7

2

4

3

नकल मुताबिक असल

मुताबिक शरा तसदीक बामोहर सियादत व मकाबत पनाह सय्यद मोहम्मद इमाम व खादीम मस्जिद जामे किला के अन्दर कस्बा लाडनू सरकार शहर नागौर सूबा है के वाकिया मअर से बतारीख 15 मुहर्रम हराम 8 जुलूये मुअल्ला जामा मस्जिद की खिदमत में काजी मौसुफ अजमेर से परवाना नवाब मुस्तताब मुल्क मदाकल महाम से जारी हुआ है कै जो मस्जिद खालसा गांव में हो जब तक के पांच सो मनसब से कम हो उससे रोजाना वजीफा बड़ी सरकार से ओर उस जगह जागीर पांच सदी होवे गुमास्ता तहसीलदार परगना कस्बा से तनख्वाह देवे लिहाजा लिखा जाता है कै हुक्म मुकद्दस व मुअल्ला के मुताबिक अमल करें और रोजाना खर्च मुताबिक बमुजब तसदीक सिआदत व निकालवत पनाह मीर सय्यद मुहम्मद को रोज-ब-रोज पहुँचाते रहेंगे ताकि वो खिदमत में लगे रहें और सरकारी दुआएँ दौलत में मशगूल रहे लिखने की तारीख चाँद रात महीना मुहर्रमुल हराम जुलूस वाला मुबारक सन् 1077। आदि-आदि।

आगे का इतिहासक्रम इस प्रकार है। औरंजेब की मृत्यु के बाद महाराजा अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया। महाराजा अजीतसिंह व नागौर महाराजा इन्द्रसिंह के बीच लड़ाइयों की अनेक बार नौबत आई। वि. संवत् 1773 में नागौर पर जोधपुर का अधिकार भी हो गया। मुगल बादशाह मुहम्मदशाह द्वारा नागौर पुनः हस्तगत करके महाराजा इन्द्रसिंह को सौंप दिया गया। उसके सात साल बाद ही जोधपुर महाराजा अभयसिंह ने नागौर पर अधिकार कर लिया। वि. संवत् 1782 में अभयसिंह ने नागौर अपने अनुज बख्तसिंह के सुपुर्द कर दिया। तब से लाडनू जोधपुर रियासत का फिर अंग बना।

VII

समकालीन नागौर की राजनैतिक परिस्थितियाँ

नागौर का ऐतिहासिक महत्त्व सदैव से ही रहा है। लाडनू इतिहास के अनेक पृष्ठ नागौर के इतिहास से जुड़े हुए हैं अतः लाडनू के इतिहास को निरूपित करते समय समकालीन नागौर के इतिहास की संदर्भ रूप में विवेचना अति आवश्यक है।

ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ से ही देश में गजनी [illegible] हो गया
। गजनी [illegible] बादशाह का एक सूबेदार [illegible]

हो गया था। उसने आस-पास के क्षेत्रों पर सैनिक अभियान चलाने के लिए नागौर में किलेबन्दी की और वहीं अपना मुख्य शिविर स्थापित किया। ई. सन् 1121 में अजमेर के चौहान राजा अजयराज ने नागौर पर आक्रमण करके गजनवियों को खदेड़ दिया।

मुहम्मद गौरी से पृथ्वीराज चौहान की हार के बाद (ई. सन्) 1194 में चौहानों की केन्द्रीय सत्ता का लोप हो गया। सन् 1226 में दिल्ली सुल्तान शमसुद्दीन अल्तमश ने नागौर पर अधिकार कर लिया। ई. सन् 1242 में महमूद शाह नागौर पर काबिज हुआ। उसने मलिक इज्जूद्दीन बलबन किशलू खाँ को नागौर का सूबेदार नियुक्त किया। किशलू खाँ महत्त्वाकांक्षी होने के साथ-साथ कट्टर मजहबी भी था।

इसके उपरान्त चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में नागौर पर तुगलकों का अधिकार हो गया। फीरोज तुगलक के अनेक शासनाधिकारी नागौर में स्थापित हुए। इसी क्रम में लाडनू भी फीरोज तुगलक के अधिकार में आ गया। लाडनू, नागौर और खाटू में तुगलक वंश सम्बन्धी अनेक शिलालेख मौजूद हैं। लाडनू पर मुसलमानी अधिकार का सिलसिला फीरोज तुगलक से ही शुरु हुआ। फीरोज तुगलक एक कट्टर मुसलमान शासक था। फीरोज तुगलक के शासनकाल में मलिक चुपन व मलिक कुतुबुद्दीन नज्म क्रमशः नागौर के प्रान्तपति रहे। ई. सन् 1388 में फीरोज की मृत्यु के बाद तुगलक वंश की स्थिति कमजोर पड़ गई।

ई. सन् 1389 में कुतुबुद्दीन नज्म एक लड़ाई में मारा गया। दिल्ली सुल्तान मोहम्मद शाह तुगलक (द्वितीय) की मृत्यु के बाद गुजरात का नवाब मुज्जफरशाह एक स्वतन्त्र शासक बन गया। उसने नागौर पर भी कब्जा कर लिया तथा मलिक जलाल खोखर को वहाँ का प्रान्तपति नियुक्त किया। इसी जलाल खोखर को मारकर मण्डौवर पति राठौड़ चूण्डा ने नागौर अपने अधिकार में कर लिया। यह घटना ई. सन् 1399 या पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथम दशक के प्रारम्भ की है। नागौर पर राठौड़ों की यह सबसे पहली विजय थी।

राठौड़ चूण्डा एक कुशल योद्धा थे लेकिन प्रशासन के मामले में चूक गए। राव चूण्डा का एक विवाह लाडनू क्षेत्र के ओड़ींट ठिकाणे के मोहिल राव मेघराज की पुत्री किशोर कुंवरी (मारवाड़ री ख्यात में उसे सोना लिखा है) से हुआ था। मोहिल राज की राजधानी छापर पर उस समय राणा माणक राव काबिज थे। राव चूण्डा का अपनी इस मोहिलाणी राणी पर विशेष कृपाभाव था। उन्होंने नागौर का प्रबन्ध करीब-करीब

उसी के भरोसे छोड़ दिया। स्त्री स्वभाव बचत करने का होता है, फिर मोहिलों पर पूर्वांचलीय प्रभाव अधिक था अतः राणी ने कई महत्त्वपूर्ण मदों में खर्च की कटौती कर दी। घोड़ों तथा सरदारों को दिए जाने वाले घी की मात्रा में भी भारी कमी कर दी। रावजी ने इस किफायतसारी पर यद्यपि नाराजगी जाहिर की लेकिन व्यवस्था में विशेष सुधार नहीं हो पाया।

इस सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक प्रवाद भी प्रचलित है—

कलपे मतना कामिणी, घोड़ां घी देतांह।
आडा कदे ए आवसी, बाढाळी बहतांह॥

अर्थात् हे कामिनी घोड़ों को घी देते वक्त मन को कमजोर मत कर। युद्ध में जब तलवारें चलती हैं तो ये घोड़े ही काम आते हैं।

वाक् चतुर राणी ने उत्तर दिया—

आक बटुके पवन भखै, तुरियां आगळ जाय।
हूँ तनै पूछूं सायबा, हिरण किस्या घी खाय॥

राणी की किफायत सारी का नतीजा अच्छा नहीं हुआ। सहयोगी सरदार एक-एक करके रावजी को छोड़कर जाने लगे और घोड़े भी कमजोर हो गए।

राठौड़ों का भाटियों से बैर यथावत था। पूंगल पति राणगदे की चूण्डा के हाथ मृत्यु के बाद राणगदे का एक पुत्र केल्हण मुल्तान के नवाब खिज्र खाँ की शरण में चला गया और खिज्रखाँ को नागौर पर चढ़ा लाया। राव चूण्डा युद्ध में काम आए। केल्हण प्रबल जन-प्रतिरोध के कारण नागौर पर अधिकार नहीं कर सका। चूण्डा की पूर्व घोषणा के अनुसार उसकी मोहिलाणी राणी का पुत्र कान्हा उसका उत्तराधिकारी बना। कान्हा अधिक समय तक जिन्दा नहीं रह पाया। कहते हैं करणी जी के श्राप के कारण उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई।

राठौड़ राज की इस कमजोर घड़ी में गुजरात के सुल्तान का भाई शमसखाँ (दनदानी) नागौर का स्वामी बन गया। वह खानजादा कहलाया। शमसखाँ को दनदानी इसलिए कहा जाता था कि उसके मुँह के आगे के चार दाँत बड़े थे। यह घटना ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में घटी। शमसखाँ नीति कुशल था। वह दिल्ली के आधीन नहीं रहा, गुजरात के सुल्तान के आधीन रहा। कारण कि वह राठौड़

जैसी प्रबल राजपूत शक्ति से घिरा हुआ था तथा उसे तुरन्त सहयोग गुजरात से ही मिल सकता था। शमसखाँ की मृत्यु ई. सन् 1421 के आस-पास हुई। उसके दो पुत्र थे। फीरोज खाँ तथा मुजाहिद खाँ। फीरोज को नागौर मिला तथा मुजाहितखाँ को डीडवाना।

दयालदास की ख्यात के अनुसार चूण्डा के पुत्र राठौड़ रणमल ने ई. सन् 1438 में नागौर पर हमला किया। फीरोज खाँ ने यद्यपि मात भी खाई लेकिन रणमल नागौर पर अधिकार नहीं जमा पाया। फीरोज खाँ के बाद शमसखाँ (द्वितीय) नागौर की गद्दी पर बैठा। डीडवाने के शासक मुजाहिदखाँ ने उसे अपदस्थ कर दिया। शमसखाँ उदयपुर राणा कुम्भा की शरण में चला गया। कुम्भा की मदद से वह पुनः नागौर की गद्दी पर बैठा। राणा कुम्भा बड़ा वीर था। उसने मालवा तथा गुजरात के शासकों से अनेक युद्ध लड़े।

उधर मेवाड़ में घटनाक्रम एक नई मोड़ ले चुका था। राव रणमल मार डाले गए। राव जोधा को भी भागना पड़ा था। लेकिन ई. सन् 1453 तक जोधा पुनः मण्डौर पर काबिज हो गए। अन्त में मेवाड़ियों और राठौड़ों के बीच सन्धि हो गई। राव जोधा सन् 1458 ई. में विधिवत मण्डौर की गद्दी पर आसीन हुए। राणा कुम्भा ने ई. सन् 1458 में नागौर पर फिर चढ़ाई की और नागौर को तहसनहस किया। शमसखाँ (द्वितीय) की मृत्यु हो गई। उसके कोई औलाद नहीं थी अतः उसका चाचा मुजाहिद खाँ ही नागौर की गद्दी पर बैठा। मुजाहिदखाँ डीडवाना, सांभर और नरायना का पहले से ही शासक था। ई. सन् 1467-68 में मुजाहिद खाँ की मृत्यु हो गई। उस समय तक गुजरात का शासक मुहम्मद बेगड़ा हो चुका था। वह भी एक शक्तिशाली शासक हुआ। मुजाहिद खाँ के बाद उसका पुत्र सलाहखाँ नागौर का शासक बना। सलाहखाँ के छोटे भाई जमाल ने राठौड़ दूदा को हराया तथा बागड़ पर अपना अधिकार कर लिया।

ई. सन् 1470 में सलाहखाँ अकस्मात मर गया। फीरोज (द्वितीय) नागौर का शासक बना। उसके समय में खाटू, डीडवाना, सांभर, नरायना, लाडनू नागौर के खानजादों के ही अधिकार में थे। ई. सन् 1482 के खाटू के एक शिलालेख से जाहिर है कि खाटू में उसके दो शासनाधिकारी तैनात थे। उसी वर्ष खानजादों ने लाडनू दुर्ग की मरम्मत करवाई थी। इस सम्बन्ध में लगे एक शिलालेख में गढ़ की उत्तरी दीवार, बुर्ज तथा एक महल के बनवाए जाने का उल्लेख है। उस समय लाडनू में खानजादों का एक प्रशासनाधिकारी तथा फौजदार मलिक इब्राहिम खाँ किशलूखानी तैनात था। डीडवाना में भी ई. सन् 1491 के एक शिलालेख के अनुसार एक गुमास्ता तैनात था। खानजादों की ये नियुक्तियाँ सामरिक दृष्टि से थीं।

फीरोज (द्वितीय) ई. सन् 1498 तक जिन्दा रहा। फिर क्रमशः मुहम्मद खाँ तथा फीरोज खाँ (तृतीय) शासक बने। सरलेख खाँ जोधपुर नरेश राव गांगा का समकालीन था। गांगा के बाद उसका पुत्र राव मालदेव जोधपुर की गद्दी पर बैठे। मालदेव ने अपनी सरहदों को बढ़ाया। ई. सन् 1536 में मालदेव ने खानजादा सरलेख खाँ से नागौर छीन लिया। उसके साथ ही खानजादा वंश का अन्त हो गया।

ई. सन् 1543 में शेरशाह के साथ हुई लड़ाई में मालदेव हार गए। ई. सन् 1556 में वे पुन. नागौर पर काबिज हो गए। राव मालदेव के बाद नागौर मुगल साम्राज्य का अंग बन गया। ई. सन् 1634, 11 दिसम्बर को नागौर की जागीर शाहजहाँ द्वारा मारवाड़ नरेश गजसिंह के ज्येष्ठपुत्र राव अमरसिंह को प्रदान कर दी गई। अमरसिंह को 2500 जात तथा 1500 सवारों का मनसब प्राप्त था। मुगल बादशाह औरंगजेब के समय सारा मारवाड़ खालसे घोषित कर दिया गया। औरंगजेब के शासनकाल तक नागौर पर अमरसिंह के वंशज ही काबिज रहे।

VIII

मुणोत नैणसी

मुणोत नैणसी पहले इतिहासकार थे, जिन्होंने इतिहास के पृष्ठों पर लाडनू का नाम अंकित किया। मुणोत नैणसी लाडनू कस्बे के अस्तित्व को करीब तीन हजार वर्ष पूर्व के अतीत से जोड़ते हैं। यद्यपि उनका लेखन जनश्रुतियों पर आधारित है, परन्तु यह बात तो प्रामाणित हो ही जाती है कि उनके काल में भी लाडनू की एक अति प्राचीन कस्बे के रूप में ख्याति थी। अतः लाडनू के बारे में ऐसी विलक्षण जानकारी देने वाले पुरुष के प्रति लाडनूवासियों का अनुग्रह उत्पन्न होना सहज स्वभाविक है।

मुणोत महतों का उद्भव राठौड़ राजवंश से हुआ। इस परम्परा के बीसवें वंशधर जयमल हुए। जयमल संवत् 1696 में मारवाड़ महाराजा गजसिंह के समय में मारवाड़ राज्य के दीवान नियुक्त हुए। जयमल के पाँच पुत्र थे—नैणसी, सुन्दरसी, आसकरण, नरसिंहदास और जगमाल। इनमें नैणसी सबसे बड़े थे। उनका जन्म संवत् 1667 में हुआ था। महाराजा गजसिंह की संवत् 1695 में आगरा में मृत्यु हो गई। उस समय उनके छोटे पुत्र जसवंतसिंह की उम्र सिर्फ 12 वर्ष थी।

बादशाह शाहजहाँ की जसवन्तसिंह पर बड़ी मेहरबानी थी। बादशाह ने उनके संरक्षक प्रधानमंत्री के रूप में आसोप ठाकुर राजसिंह को नियुक्त किया। राजसिंह कुशल प्रशासक थे। लेकिन जसवन्तसिंह के सिंहासनारूढ़ होने के एक साल बाद ही एक अद्‌भुत घटना घटी। ऐसा हुआ कि किसी कारणवश महाराजा का मानसिक सन्तुलन जाता रहा। लोगों ने प्रचारित किया कि प्रेत-प्रकोप के कारण ऐसा हुआ है अतः किसी बड़े सरदार द्वारा शीशदान देने पर ही इस बाधा से निजात पाई जा सकती है। यद्यपि यह एक अंधविश्वास भरी धारणा थी, फिर भी जन-भावना का सम्मान रखने तथा अपने महाराजा के प्रति असीम प्यार के कारण प्रधानमंत्री राजसिंह ने अपने हाथ से अपना सिर काटकर समर्पित कर दिया।

शाहजहाँ राजा जसवन्तसिंह का बड़ा सम्मान करते थे तथा उन्हें महाराजा की उपाधि दी जो उस समय तक किसी राजा को नहीं मिली थी। शाहजहाँ को वृद्ध जानकर संवत् 1714 में औरंगजेब ने उत्तराधिकार की लड़ाई छेड़ दी। महाराजा जसवन्तसिंह ने शाही सेना का नेतृत्व किया लेकिन कुछ बड़े सैनिक अधिकारी औरंगजेब से मिल गए। अतः सफलता नहीं मिली।

शाहजहाँ को कैद करके औरंगजेब बादशाह बना। लेकिन जसवन्तसिंह को छेड़ने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। उसने जयपुर के राजा मिर्जा जयसिंह को भेजकर जसवन्तसिंह से सुलह कर ली और उन्हें काबुल का सूबेदार बनाकर काबुल भेज दिया।

इन्हीं महाराजा ने मुणोत नैणसी को संवत् 1714 में अपनी रियासत का दीवान बनाया। महाराजा अपने जीवनकाल के अधिकतर भाग में रियासत से बाहर रहे। रियासत का सारा भार नैणसी के हाथों में छोड़कर महाराजा आश्वस्त थे। नैणसी ने भी बड़ी योग्यता से अपने उत्तरदायित्व का वहन किया। रियासत की तरफ से उन्होंने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी तथा जीत हासिल की। नैणसी के शासन से लोग सन्तुष्ट थे।

नैणसी ने प्रजा पर लगी अनेक लागें समाप्त कर दीं। उन्होंने राज्य में संवत् 1720 में जनगणना करवाई, जिसमें मारवाड़ के समस्त गाँवों की एक पूरी रिपोर्ट तैयार की गई। उसमें प्रत्येक गाँव की आमदनी, भूमि का सही नापजोख, साखों का ब्यौरा तथा कूए, तालाब आदि का पूरा विवरण अंकित है। मुंशी देवी प्रसाद उन्हें मारवाड़ का अबुल फजल कहा करते थे। संवत् 1714 से 1723 तक वे पर रहे। संवत् 1723 में महाराजा उनसे किसी कारण नाराज हो गए...

में उन पर तथा उनके भाई सुन्दरजी पर एक-एक लाख रुपये का जुर्माना निश्चित किया।

नैणसी ने जुर्माना देना अपना अपमान समझा। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित द्विपदी प्रसिद्ध हुई, जो आज भी लोगों में कहावत के रूप में चर्चित है—

लाख लखारां नीपजे, बड़ पीपल री साख।
नटियो मूंथो नैणसी, तांबो देण तलाक॥

अर्थात् एक लाख रुपये की बात सुणकर नैणसी ने कहा, "लाख तो लखारों के यहाँ मिलेगी जो बड़-पीपल से पैदा होती है। मैं तो ताम्बे का एक पैसा भी नहीं दूँगा।" जेल में जब दोनों भाइयों को परेशान किया गया तो उन दोनों का मन टूट गया और अपने-अपने पेट में कटार खाकर उन्होंने संवत् 1727 में आत्महत्या कर ली। इस घटना से जसवन्तसिंह के नाम पर बड़ा बट्टा लगा।

नैणसी द्वारा रचित 'मुणोत नैणसी की ख्यात' एक प्रसिद्ध इतिहास-ग्रंथ है। इस ख्यात में संवत् 1300 से नैणसी के समय तक का राजपूताना, काठियावाड़, कच्छ, बुन्देलखण्ड और मध्य भारत के प्रसिद्ध रजवाड़ों एवं ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। नेणसी अच्छे प्रशासक होने के साथ-साथ कवि भी थे।

IX

सन्त गोविन्ददास

इतिहास में मध्य युग के नाम से जाना जाने वाला कालखण्ड मुख्यतः सामन्ती युग ही था। यद्यपि सामन्त निरंकुश थे और आम आदमी के मौलिक अधिकार जैसी कोई मान्यता अस्तित्व में नहीं थी फिर भी उस युग की वे गिनी-चुनी शताब्दियाँ अनेक दृष्टियों से प्रशस्त रहीं। सम्पूर्ण युग में व्याप्त शौर्य का प्रबल ज्वार अपने समय की अनेक कमजोरियों को निगल गया। उस ज्वार के साथ शेष जीवन ऊर्जा भी अनेक रूपों में उद्वेलित होकर बही। लोक-जीवन अपनी धरती से जुड़ा हुआ था जो उसकी प्रेरणा का मूल स्रोत थी। विभिन्न प्रकार की विषमताओं की चार दीवारी से घिरे होने पर भी जीवन का प्रकाश छनछन कर विकरित हो रहा था। कहीं-कहीं इस उद्वेलित ऊर्जा ने चेतना के उतुंग शिखर भी छूए। जांभा, जसनाथ, परसा खाती, धन्ना जाट, सेना

नाई, पीपा माली सजना कसाई आदि के रूप में वह युग चेतना द्रष्टा बनकर प्रेरक बनी तो कहीं धरती का समग्र भावबोध भक्ति गंगा बनकर बहा। मीरां, दादू, सुन्दरदास, रजब, सहजो, दयाबाई, रामदास, रामचरण, दरिया, रतना बाई, करमां बाई, राणाबाई, ज्यानांबाई, नरहरि सुनार आदि संत उसी परिवेश की उपज हैं। युग का वह मौलिक उद्वेलन गोगा, तेजा, पाबू, रामदेव, हरभू आदि लोक-देवताओं के रूप में उर्ज्वसित होकर पूजित हुआ। अनेक दरबारी तथा चारण कवियों ने प्रशस्त काव्य रचनाएँ कर अनमोल साहित्य सृजन किया।

इसी युग के उत्तरार्ध में विक्रम की अठारहवीं सदी के मध्य भाग में लाडनू कस्बे में गोविन्दराम नाम के एक सद्पुरुष का जन्म हुआ। वे जाति से स्वर्णकार थे। उनका जन्म स्थान स्थानीय पचोलियों की पोळ के पास आज भी स्पष्ट चिह्नित है। वे मेड़ता शहर के पास स्थित रेण नाम के गाँव के संबुद्ध सन्त दरिया के गुरु भाई थे। ये दोनों ही सन्त प्रेमदास के शिष्य थे। सन्त गोविन्दराम स्वाभिमानी, सत्यभाषी और निर्भीक स्वभाव के पुरुष थे।

सन्त गोविन्दराम जैन धर्म की श्वेताम्बर परम्परा में 'तेरापंथ' शाखा के प्रवर्तक आचार्य भिक्षु के समकालीन थे। दोनों सन्तों के मिलन का सुयोग तो नहीं बन पाया क्योंकि 'तेरापंथ' उस समय तक अपनी शैशव अवस्था में था तथा लाडनू व उसके पड़ौसी थळी प्रदेश में उसका प्रसार नहीं हो पाया था, फिर भी स्थानकवासी सन्तों का लाडनू में आगमन बराबर जारी था और ओसवाल परिवार पर्याप्त संख्या में लाडनू में आबाद हो चुके थे तथा शान्तिनाथ भगवान का मन्दिर काफी पहले ही अस्तित्व में आ चुका था।

सन्त गोविन्ददास सन्त स्वभाव के होने के साथ-साथ कवि हृदय भी थे। अपने काल विशेष का भाव-बोध उनकी रचनाओं में बड़े सहज रूप में उभरा है। उनकी रचनाओं में उस समय विशेष में व्याप्त जीवन की अनेक विसंगतियों पर भी करारा प्रहार है। यह प्रहार कहीं-कहीं कबीर की तर्ज को छू लेता है। उनकी कुछ द्विपदियाँ रहीम के नीति दोहों के समकक्ष आँकी जा सकती हैं। वे बड़ी सटीक और सारगर्भित हैं। उनकी बहुत कम रचनाएँ मिल पाई हैं। कुछ बानगी के रूप में यहाँ प्रस्तुत हैं—

तकदीरी का तेज है, और जहाँ में पोल।
असल किनारे 'गोमदा', नकल न पावै मोल॥

गुरु के माथे पागड़ी, सिख के माथे सांग।
किण विध सोहे 'गोमदा', रूपा ऊपर रांग॥

कदे क मिलसी टूकड़ा, कदेक मिलसी खीर।
पग मत छोड़ी 'गोमदा', ठाड़ो रहीजे वीर।

नफा वस्तु में है नहीं, नफा भाव में होय।
बिना भाव के 'गोमदा', हाथ न आवै कोय॥

बीस बार बानी कियो, आधो दीनो खोय।
कोरो पीतल 'गोमदा', क्यों सूं कंचन होय॥

सौ कोसां के बीच में, चोर लूट नहीं पाय।
खरी कमाई 'गोमदा', कदे न निरफल जाय॥

पूत खिलायां पार का, कारज सरै ना कोय।
घर में बस्ती 'गोमदा', आप जण्या ही होय॥

जीव मार जंवर करै, खातां करै बखाण।
परतख दीखै 'गोमदा' थाळी मांय मसाण॥

पड्या जख देवै नहीं, मुआं न चाले साथ।
दीयां पाछे 'गोमदा', दो'रा आवै हाथ॥

भेड़ भेख सब एक है, रहे गाँव के गोर।
कदे न देख्यौ 'गोमदा' सौ सिंहा को टोर॥

ज्ञान गरीबी गुरु धरम, सत्य वचन निरदोस।
तू मत छोड़ी 'गोमदा' सरधा, शील सन्तोष॥

निरा निवेगल लोह हुता, जात सुनारां जेम।
कंचन होग्या 'गोमदा' पारस परस्या पेम॥

भाज भाज भेळी करी, खाई न खर्ची ठोट।
मर्यां पाछै गोमदा, हुया फिरै पल्डोट॥

साहित्य की दृष्टि से भी ये रचनाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। सन्त साहित्य के शोधकर्त्ताओं के लिए सन्त गोविन्ददास की रचनाएँ एक अछूता विषय है। सन्त गोविन्ददास का स्वर्गवास माह बदी पंचमी संवत् 1835 में लाडनूं में ही हुआ। उन पर बनी छतरी गावलियों की बाड़ी में आज भी मौजूद है। अब उस पर एक बड़ा भवन बन गया है।

X

उमरकोट की लड़ाई

सिंध प्रान्त का उमरकोट जो अब पाकिस्तान में है, सूमरा जाति के उमर ने बसाया था। यह वही उमरकोट है, जहाँ मुगल बादशाह अकबर का जन्म हुआ था और हुमायूं ने पुत्र जन्म की खुशी में अपने पास बचा हुआ कस्तूरी का टुकड़ा अपने सरदारों में बांटकर कामना की थी कि बालक का यश इस कस्तूरी के समान सर्वत्र फैले। उसकी यह कामना फलीभूत भी हुई।

कर्नल टॉड के अनुसार किसी समय में उमरकोट सोढा परमारों की राजधानी थी। लोकदेवता पाबू राठौड़ की ससुराल भी यही उमरकोट थी। जिस समय उमरकोट का यह विवाद छिड़ा, उस समय वहाँ का शासक मियां गुलामअली खाँ किलोड़ था। ताज लिखी और ताज सावटिया उसके दीवान थे। बीजड़ टालपुरिया उसका फौजदार था। बीजड़ बड़ा महत्त्वाकांक्षी था। उसने बड़ी सम्पति इकट्ठी की तथा करीब पचास हजार सैनिकों का एक दल भी गठित कर लिया। उमरकोट की सत्ता परोक्ष रूप में उसी के हाथ में थी।

बीजड़ इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने मारवाड़ की सीमा पर गढ़ियाँ भी स्थापित कर ली थी। उसका इरादा पोकरण, फलौदी तथा कोटड़ा दबाने का था। इस कारण मारवाड़ के तत्कालीन शासक विजयसिंह जी का चिन्तित होना स्वाभाविक था। महाराजा ने अपने प्रमुख मुसाहिब मुहणोत सवाईराम, सिंघवी भीमराज आदि से सलाह ली। उनकी राय हुई कि बीजड़ को दबाना बहुत जरूरी है। सोजत से सिंघवी खूबचन्द को भी मशविरे के लिए बुलाया गया। सिंघवी खूबचन्द की राय रही कि पहले स्थिति का सही जायजा लिया जाए। यह काम उन्हीं को सौंपा गया। उन्होंने अपने एक विश्वस्त और चतुर कार्यकर्ता भोजक थानजी को सोजत से बुलवाया तथा उनके साथ नोदिया के भाटी प्रतापसिंह को उमरकोट भेजा।

बीजड़ चालाक और वाणी चतुर था। उसने दोनों की बड़ी आवभगत की और अपने को महाराजा का स्वामिभक्त सेवक बतलाया। लेकिन उसके मन का कपट छिपा नहीं रह सका। दोनों ने लौटकर राय दी कि बीजड़ की नीयत साफ नहीं है। इस पर सबकी राय बनी कि बीजड़ का सफाया किया जाना बहुत जरूरी है। यह जिम्मेदारी माण्डणोत हरनाथसिंह तथा पातावत मुहकमसिंह को सौंपी गई।

महाराजा के प्रतिनिधि के रूप में दोनों उमरकोट पहुँचे। महाराजा के गुप्त पत्र पर रायमशविरा करने के बहाने बीजड़ से अलग से मिलने का प्रस्ताव रखा। बीजड़ ने उन्हें अपने पास बुला लिया। अवसर का लाभ उठाकर दोनों ने उसे मार गिराया। वे दोनों भी बारहट जोगीदास आदि कई व्यक्तियों सहित मारे गए। इस कार्य को अंजाम देने वाले सभी व्यक्तियों के वंशजों को महाराज ने भली प्रकार पुरस्कृत किया। यह घटना 5 नवम्बर, 1779 को घटी।

गुलाम अली खाँ इस घटना के पहले ही डेरा गाजी खाँ चला गया था। उसने काबुल के पठानों को सहायतार्थ बुलवाया। उमरकोट जोधपुर महाराजा के हवाले कर दिया। गुलाम अली खाँ के पुत्र गुलाम नबी खाँ ने जोधपुर महाराज से फौज भेजने का अनुरोध किया। मंत्री ताज सावटिया और ताज लिखी ने जोधपुर पहुँचकर उमरकोट के हस्तान्तरण की लिखा-पढ़ी सम्पन्न की। बीजड़ के मारे जाने पर उसके पुत्र अब्दुल्ला उसके भाई फतेहखाँ तथा साले मिर्जा ने महाराज को जताया कि एक बीजड़ के मारने से क्या हुआ हम सब बीजड़ ही बीजड़ हैं। परन्तु वस्तुस्थिति यह थी कि पचास हजार की फौज में अनुशासन बनाए रखना उनमें से एक के भी बूते की बात नहीं थी।

जोधपुर की तरफ से पोकरण, आसोप आदि आठों मिसले तैयार हुई। कसूम्बी के शिवदान सिंह भी पहुँचे। सिंघवी शिवचन्द, बनेचन्द तथा भीनमाल से लोढ़ा साहमल भी अपने दलबल सहित शामिल हो गए। फिर भी पूरी सेना आठ हजार से ज्यादा नहीं बन सकी। सांचोर, भाटकी होती हुई फौज सिंध की तरफ बढ़ी चौबारी में खाइयाँ खोदकर मोर्चा बन्दी की गई। दोनों सेनाओं में सामना हुआ। परन्तु राठौड़ी फौज संख्या में बहुत कम थी। उनके पास गोला-बारूद भी पर्याप्त नहीं था। सिंघवी खूबचन्द ने पीछे हटने में ही समझदारी समझी। पोकरण ठिकाणे के 72 आदमियों में 71 रणखेत रहे। यह लड़ाई 4 फरवरी, 1781 को हुई।

संयोग से काबुल से टोपी वाले पठानों की सेना मदद को पहुँच गई। उन्होंने उमरकोट घेर लिया। टालपुरिए मीठा मेहराण (सिंधु नदी) के उस पार भाग जाने को विवश हुए। वहाँ अब्दुला और मिर्जा अपने पांच सौ सैनिकों के साथ मियां से मिले, जहाँ उन्हें धोखे से मरवा डाला गया। मियां ने उमरकोट विधिवत जोधपुर महाराज को सुपुर्द कर दिया। महाराज ने भी मियां के साथ धर्मभाई का रिश्ता कायम कर उसे यथोचित सम्मान दिया। सेवग थानजी ने उमरकोट पर महाराज का कब्जा स्थापित करवाया। भण्डारी गंगा राम ने बीजड़ द्वारा बनवाई गई सीमा की गढ़ियों को तुड़वा दिया।

जोधपुर महाराज ने खुश होकर पोकरण ठाकुर सवाईसिंह को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया तथा पालकी, सिरेपेच, मोतियों की कण्ठी व तलवार भेंट करके उन्हें सम्मानित किया। कसूम्बी के जोधा शिवदानसिंह को लाडनूं की जागीर मय कुछ अन्य गाँवों के इनायत की। यह सब सिंघवी खूबचन्द की राय से हुआ। अनेक अन्य सरदार भी पुरस्कृत किए गए।

यद्यपि टालपुरिए बड़ी संख्या में मारे गए थे, फिर भी उनकी शक्ति कम नहीं हुई थी। फतेहखाँ की अध्यक्षता में वे फिर संगठित हुए। पठानों के सिंध छोड़ते ही उन्होंने मियां से लड़ाई छेड़ दी। इस लड़ाई में मियां की फौज का नया फौजदार तथा ताज सेवटिया मारे गए। मियां को पुनः डेरा गाजीखाँ की तरफ चला जाना पड़ा।

ऐसी परिस्थिति में महाराज ने उमरकोट की व्यवस्था के लिए सिंघवी भीमराज तथा कुछ अन्य व्यक्तियों को उमरकोट जाने को कहा लेकिन उन्होंने यह कहकर कि जिन्होंने कोट लिया है, उन्हीं को भेजिए—उमरकोट जाने में अपनी असमर्थता जता दी। इस पर सिंघी खूबचन्द को जाने की आज्ञा हुई लेकिन उनके रिश्तेदार सहमत नहीं हुए। तब खूबचन्द के बहन के पुत्र साहमल लोढ़ा भेजे गए।

खबर पाकर टालपुरियों ने उमरकोट घेर लिया। किले में रसद कम थी, फिर भी साहमल ने हिम्मत नहीं हारी और सूझबूझ से काम लिया। यह समाचार जोधपुर पहुँचने पर महाराज को चिन्ता हुई। तब जोधा शिवदानसिंह भारतसिंहोत जिसे सिंघवी खूबचन्द ने लाडनूं का पट्टा दिलवाया था अपने सम्बन्धियों तथा 800 सरदारों के साथ आगे आए और टालपुरियों से सामना करने की इच्छा जताई। महाराज ने अपनी सहमति दे दी।

मेहता लालचन्द बाघरेचा, सिंघवी चैनमल बाघमलोत (कोलिया वाले) पातावत सरदार और सिलेपोश लश्कर के साथ हुए। गिराव में सिंघी बनेचन्द भी शामिल हो गए। टालपुरियों ने दो कोस सामने आकर उनका मार्ग रोका। कसूम्बी के योद्धा जी-जान से लड़े। टालपुरियों के पग छूटने लगे तो उन्होंने अपना रूख पातावतों की तरफ किया। पातावतों ने एक साथ गोलियों की ऐसी झड़ी लगाई कि टालपुरियों को भागने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहा। उमरकोट का घेरा टूट गया। अपने अनेक सरदारों सहित लाडनूं के ठाकुर शिवदानसिंह काम आए। उनके भाई पदमसिंह, जोधा मालमसिंह के पुत्र रणजीतसिंह एवं जोधा जयसिंह, रामसिंह, उम्मेदसिंह आदि को आभूषणों से सम्मानित किया गया तथा उनकी जागीरों में वृद्धि की गई।

यह लड़ाई वि. संवत् 1839 (फरवरी 1783) में हुई। जिस समय उमरकोट पर जोधपुर का अधिकार हुआ, वहां की हालत अच्छी नहीं थी। प्रबन्ध के लिए जोधपुर से धन भेजना पड़ता था। लोढ़ा सालमल तीन वर्ष तक वहां रहे, फिर उनके स्थान पर सिंघवी चौथमल नियुक्त हुए। मियां गुलाम अली खां की डेरा गाजी खां में मृत्यु हो गई। उनके पुत्र कुछ समय तक पोकरण में रहे। उन्हें फलोदी की चूंगी उगाहने का हक तथा ईन्दावड़ गांव की जागीर दी गई जो आजादी प्राप्त होने तक उनके पास रही। इस लड़ाई में जोधपुर के ओसवालों तथा लाडनू के जागीरदार शिवदानसिंह की भूमिका निर्णायक रही।

करीब सौ वर्ष खालसा रहने के बाद कसूम्बी के जोधा शासकों की नई परम्परा का लाडनू कस्बे में शुभारम्भ हुआ। यह परम्परा देश को आजादी मिलने तक कायम रही। करीब 164 वर्ष की इस शासन परम्परा में छः ठाकुर हुए।

उमरकोट की लड़ाई के नतीजों को जाने बिना प्रसंग अधूरा रहेगा अतः विषयान्तर नहीं मानते हुए मैं अपने लेखन को इसी दिशा में आगे बढ़ा रहा हूँ। कसूम्बी गांव के जोधा शासकों की वरीयता में अभिवृद्धि हुई और ठा. शिवदानसिंह को लाडनू जैसा बड़ा ठिकाणा मय कुछ अन्य गांवों के मिल गया। पोकरण ठाकुर सवाईसिंह को मारवाड़ राज का प्रधानमंत्री पद नसीब हो गया। इस पद ने ठा. सवाईसिंह का महत्व सीमा से अधिक बढ़ा दिया जो बाद में मारवाड़ राज के लिए नुक्सान प्रद रहा।

महाराज विजयसिंह की मृत्यु वि. संवत् 1850 (3 जुलाई, 1793) को हो गई। उसके बाद उनके पोते भीमसिंह राजगद्दी पर बैठे। जालोर के शासक ठा. मानसिंह उनके चचेरे भाई थे। महाराज भीमसिंह अपनी राजगद्दी के सम्बन्ध में ठा. मानसिंह से सशंकित थे अतः उन्होंने मानसिंह से छुटकारा पाने की सोचकर जालोर पर अपनी सेना भेज दी। जालोर पर अधिकार कर लिया गया तथा जालोर के किले का घेरा डाल दिया गया। घेरा काफी लम्बा चला ; रसद सामग्री कम पड़ने लगी। मानसिंह हिम्मत हार चुके थे लेकिन नाथ सम्प्रदाय के उनके गुरु देवनाथ ने थोड़ा और धीरज रखने की सलाह दी। संयोग ऐसा हुआ कि उस बीच भीमसिंह की मृत्यु हो गई। भीमसिंह निःसन्तान मरे थे।

जालोर में मारवाड़ की सेना का संचालन सिंघवी इन्दरराज कर रहे थे। उनको इस आशय के समाचार मिले कि महाराज भीमसिंह की राणी भटियाणी जी सगर्भा हैं अतः किले का घेरा यथावत रखा जाए तथा पोकरण ठाकुर के पहुँचने तक आगे के आदेश का इन्तजार किया जाए। सिंघवी इन्दरराज को ठा. सवाईसिंह की नीयत का भरोसा

नहीं था अतः उन्होंने अपनी सूझबूझ से काम लिया और ठा. मानसिंह को सेना के संरक्षण में मारवाड़ की राजगद्दी के उत्तराधिकारी के रूप में जोधपुर किले में ला उपस्थित किया। ठा. सवाईसिंह के द्वारा महाराज भीमसिंह की राणी के सगर्भा होने की बात उठाई जाने पर महाराज मानसिंह ने वचन दिया कि राजकुमार उत्पन्न होने की स्थिति में वे राजगद्दी उन्हें सौंप देंगे।

धोंकलसिंह प्रकरण :

इस घटनाक्रम से पोकरण ठाकुर बौखला उठे। यथासमय उन्होंने अफवाह फैलाई कि स्व. महाराजा भीमसिंह की राणी के पुत्र उत्पन्न हुआ है तथा सुरक्षा की दृष्टि से उसे खेतड़ी भेज दिया गया है। बालक का नाम धौंकलसिंह रखा गया।

महाराजा मान ने सिंहासन पर बैठते ही अपने विरोधियों को कुचल देने की नीति अपनाई तथा अपने सहयोगियों की जागीरों में वृद्धि करके पुरस्कृत किया। जोगी देवनाथ की राय से किले के नागौरी दरवाजे के सिर्फ चार सौ कदम दूरी पर जालन्धर नाथ का मन्दिर बनवाया गया, जिसकी प्रतिष्ठा संवत् 1861 माघ बदी 5 को महामन्दिर के नाम से हुई। महाराजा की अंध श्रद्धा का लाभ उठाकर महामन्दिर के इन नाथों ने जोधपुर में बड़ा उत्पात मचाया।

इसी वर्ष धौंकलसिंह के नाम पर खेतड़ी, झुँझुनूँ और सीकर के शेखावतों को साथ लेकर भाटी छत्तरसिंह तथा तंवर मदनसिंह ने डीडवाना पर अधिकार कर लिया और लूटपाट की। इस पर जोधपुर से मुहणोत ज्ञानचन्द सेना लेकर आए तथा डीडवाना को मुक्त करवाया। ठा. सवाईसिंह ने जोधपुर तथा जयपुर के बीच अनबन का एक नया कारण उत्पन्न कर दिया। उन्होंने अपनी पोती की सगाई जयपुर महाराजा जगतसिंह से कर दी तथा विवाह जयपुर जाकर करने का निश्चय किया। महाराजा मानसिंह ने उन्हें समझाया कि ऐसा करने से मारवाड़ राज का मान घटता है। सवाईसिंह ने इस पर उत्तर दिया कि जयपुर में उनके भाई उम्मेदसिंह रहते हैं अतः अपने घर में शादी करने में कोई हर्ज नहीं। बल्कि मारवाड़ का मान तो तब घटेगा जब उदयपुर की राजकुमारी कृष्णा का टीका जयपुर जाएगा। विदित रहे उदयपुर की राजकुमारी कृष्णा की सगाई जोधपुर महाराजा भीमसिंह से की हुई थी। अतः वह राठौड़ों की माँग थी। महाराजा भीमसिंह के स्वर्ग सिधार जाने पर उदयपुर राणा ने वह सगाई जयपुर महाराजा से कर दी।

महाराजा मानसिंह को यह बात चुभ गई। उन्होंने सेना भेजकर टीके को जयपुर जाने से रुकवा दिया। इस पर जयपुर महाराज जगतसिंह ने जोधपुर से युद्ध करने

ली। मानसिंह भी सम्भल गए उनकी मदद को जसवन्त राव होलकर भी पहुंच गए, लेकिन जयपुर दीवान रायचन्द की मध्यस्थता से यह मुठभेड़ टल गई और जयपुर तथा जोधपुर में कुछ समय के लिए संधि हो गई।

दुर्भाग्य से जोधपुर रियासत के आन्तरिक हालात ठीक नहीं थे। आपसदारों में परस्पर तालमेल नहीं था। महाराजा मानसिंह के दीवान दानमल मुणोत के इशारे पर बख्शी इन्दरराज सिंघवी तथा भण्डारी गंगाराम को कैद कर लिया गया। संवत् 1862 का वर्ष अकाल का वर्ष था। अतः राज्य के हालात बिगड़ने लगे। इस नाजुक समय में ठा. सवाईसिंह ने धौकलसिंह प्रकरण को तूल देकर जयपुर महाराजा जगतसिंह को उकसाया तथा उनसे मारवाड़ पर चढ़ाई करवा दी। बीकानेर महाराजा सूरतसिंह भी जयपुर वालों के साथ हो गए।

महाराजा मानसिंह ने मराठा होलकर तथा पिंडारी अमीर खां का सहयोग लिया। परन्तु जयपुर वालों ने उन दोनों को रिश्वत देकर तटस्थ रहने को सहमत कर लिया। पुष्कर के पास मारवाड़ के गींगोली नामक स्थान पर दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। लाडनूं सहित कई ठिकानेदार ठा. सवाई सिंह के पक्ष में हो गए तथा मारवाड़ के विरुद्ध लड़े। मारवाड़ नरेश के पास सिर्फ कुचामण, नीमाज, आसोप, आहुवा, लोबिया और खेजड़ला के सरदार ही रह गए। मारवाड़ की हार निश्चित देखकर महाराजा मानसिंह जोधपुर लौटने को मजबूर हुए।

जयपुर की विजयी सेना ने मेड़ता, परबतसर, नागौर, पाली तथा सोजत पर अपना अधिकार कर लिया परन्तु ठा. सवाईसिंह तो महाराजा मानसिंह का सर्वनाश करने पर तुला हुआ था। संवत् 1863 की शीतला सप्तमी के दिन जोधपुर घेर लिया गया। केवल किले में ही महाराज मानसिंह का अधिकार रह गया था। उस विपत्ति की घड़ी में उन्हें सिंघवी इन्दरराज की सुधि आई। सिंघवी इन्दरराज तथा भण्डारी गंगाराम जेल से रिहा कर दिए गए।

सिंघवी इन्दरराज ने बाहर आकर बचे-खुचे सरदारों को इकट्ठा किया तथा पिण्डारी अमीर खाँ को अपने पक्ष में मिला लिया। कुचामण के ठा. शिवनाथसिंह को साथ में लेकर जयपुर पर धावा बोल दिया। जयपुर मे सेना बहुत कम रह गई थी अतः जयपुर पर आसानी से कब्जा कर लिया गया तथा शहर को तहस नहस कर दिया। इस नाजुक स्थिति में जयपुर महाराजा जगतसिंह को जोधपुर का घेरा उठाने को मजबूर होना पड़ा। जयपुर सुरक्षित पहुँच पाने के लिए मीर खाँ को एक बड़ी राशि भी देनी पड़ी। इस संघर्ष में जयपुर तथा जोधपुर की प्रजाओं की बड़ी दुर्दशा हुई। जयपुर वालो

ने जोधपुर की स्त्रियों को दो-दो पैसे में बेचा था तो जोधपुर वालों ने जयपुर की महिलाओं को सरे बाजार एक-एक पैसे में नीलाम किया।

अब बारी पोकरण ठाकुर सवाइसिंह की थी जो नागौर पर कब्जा किए बैठे थे। एक चाल चली गई। अमीर खाँ ने सैनिकों के वेतन को लेकर महाराजा मान से रुष्ट होने का स्वांग रचा। ठा. सवाईसिंह ने मौका उपयुक्त जानकर मीर खाँ से सांठ-गांठ करने का मनसूबा जताया। मीरखाँ ने उसे मूण्डवा आकर बातचीत करने का प्रस्ताव रखा। ठाकुर अपने सहयोगियों सहित मूण्डवा पहुँचे। उन्हें एक शामियाने में ठहराया गया। मीरखाँ के साथी मुहम्मद खां ने उनकी अच्छी आवभगत की और मीर खाँ को बुला लाने के बहाने शामियाने से बाहर आ गया। पूर्व योजनानुसार रस्सियाँ काटकर शामियाना गिरा दिया गया तथा बाहर से तोपें दागकर सबको अन्दर ही अन्दर भून दिया गया। मीर खाँ ने उन सबके सिर काटकर महाराजा मान को भेंट किए। यह घटना संवत् 1865 में घटी। नागौर पर पुनः महाराजा मानसिंह का अधिकार हो गया। इसके साथ ही धौंकल सिंह प्रकरण भी हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

XI

ठाकुर श्री शिवदानसिंह (वि. सं. 1838-39)

उमरकोट की लड़ाई में कसूम्बी के जोधाओं ने बड़ी वीरता दिखाई थी। अत: जोधपुर महाराजा विजयसिंह जी ने लाडनू की जागीर कसूम्बी के जोधा शासक ठा. शिवदानसिंह जी को संवत् 1838 में इनायत कर दी। ठा. शिवदानसिंह को संवत् 1839 में उमरकोट दूसरी बार जाना पड़ा। इस बार टालपुरियों द्वारा घिरे हुए उमरकोट के [illegible] के मुसाहिबों और सैनिकों को रसद पहुँचाने का काम था। इस काम में यद्यपि [illegible] को सफलता मिली लेकिन इसकी कीमत बड़ी भारी चुकानी पड़ी। [illegible] बन्धुओं सहित ठा. शिवदानसिंह लड़ाई में काम आए।

शिवदान सुजस :

ठा. शिवदानसिंह वीर और साहसी होने के साथ-साथ [illegible] समकालीन चारण कवि बारहट लालदान ने उनके बारे [illegible] डिंगल में एक काव्य रचना की थी। इस रचना में [illegible] विवरण है। ठा. शिवदानसिंह व अन्य जोधाओं के [illegible] बखाना गया है। एक बानगी प्रस्तुत है—

उमराव शिवो बलबुद्ध अपार।
जोधहरो तेज परांक जोड़॥
अरगंज विजो इण विध अरोड़।
दे पटो लाख लाडणु दीध॥
किंत सिरायता जस कुंवर कीध॥

'शिवदान सुजस' में लाडनूं शहर का भी बड़ा सुन्दर वर्णन है—

थित शहर लाडणु राजथान। अत शहर कोट रचगढ़ अमान॥
आवास ऊंच ओपत अनेक। सब शहर देत शोभा विसेक॥
बाजार हाट बांटा बसोप। इण भांत धान ओपत अनोप॥
हिम मणि जटत सब गृह जोय। पुर अवर बताओ जोड़ कोय॥

सिंघवी कान्हमल :

ठाकुर शिवदानसिंह को लाडणु दिलाने में ओसवाल वंश के सिंघवी मुसाहिबों का पूरा हाथ रहा था। लाडनूं जैसी बड़ी जागीर मिल जाने पर प्रशासन के कामकाज के लिए ठाकुर साहब सिंघवी कानमल को जोधपुर से लाडनूं ले आए। उनको बसने के लिए जमीन (वर्तमान में जिनकूदेवी कन्यापाठशाला के आसपास) दी तथा खेती के लिए पांच सौ बीघा का एक भूखण्ड भी दिया। उनका निवास स्थान सिंघीजी का फलसा कहलाता था।

अलीशाह दरवेश :

लाडनूं में अलीशाह नाम के एक प्रसिद्ध दरवेश हुए। वे ठा. शिवदानसिंह के समकालीन थे। ठा. शिवदानसिंह उनके मुरीदों में से थे तथा फकीर का बड़ा सम्मान रखते थे। दरवेश जाति से कायमखानी थे। उनकी गिनती अपने समय के पहुँचे हुए फकीरों में होती थी। मोहिलों की बड़ी पोळ के ठीक दक्षिण में उनका डेरा था। आज वहाँ एक आलीशान मस्जिद खड़ी है।

बाबा केशवदास :

अलीशाह के समकालीन एक सन्त बाबा केशवदास हुए। वे लाडनूं के दक्षिण पूर्व में करीब सात कोस की दूरी पर स्थित सारड़ी गाँव में रहते थे। बाबा केशवदास भी एक संबुद्ध पुरुष थे। कोई नहीं जानता दोनों में किस तरह पहचान हुई। लेकिन उन्होंने इस

पहचान को नायाब समझकर हमेशा जिन्दा रखा। कहते हैं दोनों में एक-दूसरे से मिलने की इच्छा साथ-साथ उपजती थी। वे अपने-अपने डेरों से एक दूसरे की दिशा में चल पड़ते। मार्ग बीच जहाँ भी मिलन होता ठहर जाते। उनके परस्पर अभिवादन का तरीका यह था कि सन्त बाबा केशवदास अपना मुँह खोल देते। दरवेश अली एक पाँव ऊपर उठा लेते और दूसरे पर खड़े हो जाते। बाबा का तात्पर्य शायद यह होता कि एक सांस ली है, दूसरे की आश नहीं। अली शायद यह कहना चाहते थे, "एक पैर रखा है, दूसरे का एतबार नहीं।" जब दोनों एक-दूसरे के सान्निध्य से सराबोर हो जाते तो अपने-अपने डेरों को लौट पड़ते। न बाबा केशवदास ने अली का डेरा देखा, न ही अली ने बाबा का बसेरा देखा। उनके सम्बन्ध में जन-मानस में एक दोहा प्रचलित हो गया—

सन्त बिराजे सारड़ी, बाबा केशवदास।
अली बिराजे लाडनू, सदा सुरंगो बास॥

क़ाज़ी महम्मद :

क़ाज़ी महम्मद भी इसी जमाने की उपज थे। नाम से जाहिर होता है कि वे काजी घराने में जन्मे थे। उनके बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। उनके द्वारा रची गई निर्गुणी वाणियों और भजनों में उनके नाम की छाप है, यही उनका परिचय है। उनकी रचनाओं का सूफी अन्दाज मन को मोह लेता है। उनकी एक रचना बतौर बानगी प्रस्तुत है—

इण तो आंगणिए हे सखी म्हें खेलण आया हे—
कई खेले कई खेलसी कई खेल सिधाया हे—
पांच सहेली मिली सयानी अजब गजब सींया चोला हे—
मैं तो दीवानी हरि नाम की साहिब मेरा मौला हे—
रतन कूआं मुख सांकड़ा ज्यांरी नेजू झूठी हे—
नैण हमारा यूँ झूरै जैसे गागर फूटी हे—
आया परवाना श्याम का उत्तर क्या लिखणा हे—
काजी महम्मद यूँ कहे जब खुद ही मिलणा हे—

जमाना सूफियाना महक से सराबोर था। कस्बे में जातिगत, साम्प्रदायिक व धार्मिक सहिष्णुता व्याप्त थी। कट्टरता की नोंकें नहीं उभरी थीं। साम्प्रदायिक आधार पर राजनैतिक लाभ बटोरने की प्रवृत्ति का जन्म ही नहीं हुआ था। प्रत्येक समुदाय अपनी सीमाएँ पहचानता था तथा आधारभूत नैतिकता का स्वभावतः ही पालन



ठा. शिवदानसिंह जोधा (केसरीसिंहोत)
(सौजन्य : क्षेत्रीय विधायक श्री मनोहरसिंह)



ठाकुर शिवदानसिंह की स्मृति में बनी छतरी
(दाहिनीं तरफ ठाकुर विजयसिंह पर बनी छतरी है)

XII

ठाकुर श्री पदमसिंह (वि. सं. 1839-61)

दक्खिणियों के साथ हुई खिरोड़ की लड़ाई में कसूम्बी के जोधा शासक भारतसिंह काम आए थे। संवत् 1835 में फिरवासी गाँव का पहला लिखित पट्टा उनके पुत्र शिवदानसिंह जी के नाम जारी हुआ। उमरकोट में बहादुरी दिखाने के उपलक्ष में शिवदानसिंह जी को लाडनू कस्बे का पट्टा संवत् 1838 में दिया गया। संवत् 1839 में शिवदानसिंह जी दूसरी बार उमरकोट गए। वे यहाँ काम आए। तब लाडनू के ताजीमी अधिकार शिवदानसिंहजी के छोटे भाई पदमसिंहजी को प्राप्त हुए।

ठाकुर पदमसिंह के नाम नया पट्टा संवत् 1839 की जेठ सुदी 6 को लिखा गया। कुलपट्टा 20,000 रु. आमदनी के गाँवों का था। 10,000 रु. के गाँव ठाकुर शिवदानसिंहजी के नाम पहले चढ़े हुए थे। वे इस प्रकार थे—कस्बा लाडनू, खरतावास, कसूम्बी, अलीपुरा, फिरवासी। 10,000 रु. के खालसे के नए गाँव और जोड़ दिए गए। उनके नाम—सीलणवाद, नोखा (मारवाड़) व रोटु थे।

ठाकुर पदमसिंह जी के नाम से जारी पट्टे की बिगत इस प्रकार है—

20,000) पट्टो रंग पदमसिंह शिवदानोत रै नावैं इनायत
1839 रो उनालथा नागोर रा गांव

10,000) आगे शिवदानसिंह रै नांव सूं
4000) कसबो लाडनू नै खरतावास
3000) गांव कसुम्बी नै अलीपुरा
3000) गांव फरवासी
10,000)

10,000) गाँव खालसे रा इनायत
7000) गांव सीलणवाद, नोखो
3000) गांव रोट्र
10000)

[illegible]) गाँव रो पट्टो सनद जेठ सुदी 6

ठाकुर पदमसिंह जी ने जब लाडनू का प्रशासन सम्भाला तो स्थिति बड़ी विकट थी। अलिखित परम्पराओं का लोग मन चाहे तरीके से उल्लंघन करने लगे थे। ठा. केसरीसिंह जी के बाद कस्बे में स्थाई अधिकार जैसी निश्चिन्तता नहीं बन पाई थी। कामदार, कानूनगो व अहलकारों के भरोसे ही राज्य का काम चलता था। उत्तरदायित्व की भावना का नितान्त अभाव था। अतः प्रशासन में शिथिलता आना स्वाभाविक था।

ठाकुर पदमसिंहजी ने अपनी परेशानी जोधपुर महाराजा के सामने रखी। इस सम्बन्ध में जो पत्र जोधपुर महाराजा श्री विजयसिंह जी के सामने पेश हुआ उसका सार इस प्रकार था—कि लाडनू के भोमियों ने जमीन ज्यादा दबा रखी है। डोलियों वाले भी अपनी सीमाओं का उल्लंघन कर रहे हैं। विशेष सुविधा भोगी महाजन कौमें भी अपनी सुविधाओं का नाजायज फायदा उठा रही हैं। बेठ, बेगार देने में कतिपय आसामी आनाकानी कर रहे हैं, आदि-आदि—

महाराजा जोधपुर से जो समाधान आया, वह इस प्रकार था—सील दरबार की। सरूप श्री नागौर कोटायत मा॥ श्री शिवचन्द जी मा. कपूरचन्द जी जोग जोधपुर मेड़तिया दरवाजा बारला डेरा था॥ श्री दीवाण लिखावंत जौहार बंची ज्यो॥ अठे रा समाचार श्री जी रै तेज प्रताप सूं भला छः॥ थांरा सदा भला चइजे॥ पदमसिंह शिवदानोत खांप जोधा केसरीसिंहोत पटै गाँव लाडणु तिणा अरज कराई सूं इण मुजब हुकम हुया है—

लाडणु रा माजना (महाजन) रै जीमण हुवै करे चाकरां रा कांसा भाणा लागै है सूं दूजा माजन (महाजन) तो दीयां जावै न सेजावत नहीं देवै छ। सो सेजावत सदाबंद दिया गया हुवै जिण माफक दिराया दीज्यो॥ लाडणु भोमिया मोहिल है तिण हेटे जमी आगे थी जिण सिवाय हमै (अब) नवीं दाबी है न आगे चाकरी करता जितरा आदमी सूं हमै (अब) चाकरी नहीं करे है न तिसालो देता सूँ हमै (अब) नहीं देवे है॥ सूं सदाबंद माफक उणा रै हेटे जमी राखणी न सिवाय दाबी हुवै सो छुड़ा देणी न आगे चाकरी करता जितरा आदमियां सूं हमै (अब) चाकरी किया करे न आगे तिसालो देता जिण माफक हमें (अब) भी दिरायो जावणो॥ कचेड़ी सूं आदमी भेज न जमी नपाय दीज्यो।

लाडणु रा सीलावट बेठ बेगार काडतां न पाट पीड बेचतां तिण रो दाण चुकाय देता सूं आगे सदाबंद देता हुवै जिण माफक हमें (अब) ही दाण दिराया कीज्यो॥ गांव सीलणवाद री जमी जाटां नीचे तो घणी न करसण थोड़ो करै सूं करसण करै जिण माफक जमी वाणे हेटे राखणी न सिवाय जमी पड़ी रहे सूँ जागीरदारां ने सुंपाय देणी सूं दूजा न देय न हासल कराय न कचेड़ी सूं आदमी मेल न जमीन नपाय दीज्यो। डोलियां जमीन इजाफे दाब ली है सूं सदाबंद सिवाय जमी इजाफे दाबी हुवै सूं छुड़ाय दीज्यो।



[illegible]

ठा. पदमसिंह के नाम जोधपुर महाराजा विजयसिंह द्वारा लिखे गए मूल परवाने का चित्र

इण माफक कीज्यो। श्री हुजूर रो हुकम छः। संवत् 1845 रा माह सुदी 13, नकल लीवी श्री हुजूर रे दफ्तर। सनद री नकल दफ्तर में उतराय न सूंप दीजो। सूं बाबत सिंघी खूबचन्द जी

ठाकुर पदमसिंह जी सूझबूझ वाले प्रशासक थे। उन्होंने स्थिति को सम्भाल लिया। मारवाड़ रियासत में यह समय शान्तिपूर्ण नहीं कहा जा सकता था। चारों तरफ षड्यन्त्र और परस्पर अविश्वास का बोलबाला था। मराठों का आतंक भी रियासत पर छाया हुआ था। लेकिन लाडनू ठिकाणा जोधपुर केन्द्र से काफी दूर था। ऐसी परिस्थितियों में जोधपुर राजघराने की कलह से ठिकाणा बचा रहा। नतीजन जोधपुर महाराजा के प्रति स्वामिभक्ति का भाव भी ठिकाणे में यथावत कायम रहा। ठाकुर पदमसिंह ने 18 वर्ष राज किया। संवत् 1858 में वे स्वर्ग सिधारे।

XIII

ठाकुर श्री मंगलसिंह (वि. सं. 1861-1900)

संवत् 1860 में ठाकुर मंगलसिंहजी लाडनू की गद्दी पर बैठे। ठाकुर मंगलसिंहजी शरीर से हृष्टपुष्ट, रोबदार और हौसले वाले व्यक्ति थे। उनके समय में जोधपुर पर महाराजा मानसिंह का राज था। महाराजा मानसिंह का समय मारवाड़ इतिहास का एक अशान्त काल माना जाता है। मराठे और अनेक नवाब जब चाहे अपनी सेनाएं लेकर चौथ वसूल करने पहुँच जाते थे, सम्पूर्ण मारवाड़ पर धाड़वियों और डकैतों का आतंक छाया हुआ था। ऐसे में ठाकुर मंगलसिंह ने लाडनू की स्थित को बड़ी मजबूती से सम्भाला। ठाकुर साहब का इतना दबदबा था कि कोई भी धाड़वी लाडनू की तरफ नजर उठाने का साहस नहीं कर सका। लाडनू जैसे छोटे कस्बे के लिए यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात थी।

डूंगजी जवाहरजी :

उस समय के प्रसिद्ध धाड़वियों में शेखावाटी के डूंगरजी और जवाहरजी का नाम प्रमुख था। दोनों सगे भाई थे। इन भाइयों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उन्होंने प्रचलित डाकू नैतिकता का पूरा पालन किया। उन्होंने कभी ब्राह्मण या स्त्री को हाथ नहीं लगाया तथा लूट का धन गरीबों की सहायता में खर्च किया। मौका पाकर अंग्रेजों ने डूंगजी को पकड़कर आगरे के किले की जेल में डाल दिया था। जवाहरजी ने

अपने बहादुर साथी करणीया मीणा और लोटिया जाट की मदद से अपने बड़े भाई को आगरा की जेल से छुड़ाया। कुछ दिन बाद दोनों भाई अंग्रेजों द्वारा एक साथ पकड़ लिए गए। शेखावाटी और मारवाड़ के उनके सम्बन्धी जमींदार दल बांधकर आगरा पहुँचे और ताजियों की कतल की रात के मौके का फायदा उठाकर दोनों भाइयों को छुड़ा लाए।

उसके बाद दोनों भाइयों ने नसीराबाद छावनी से अंग्रेजों के खजाने को लूटा। जवाहरजी बीकानेर महाराजा रतनसिंह जी की शरण में चले गए तथा डूंगजी जोधपुर महाराजा तखतसिंह जी की शरण में आए। महाराजा तखतसिंह ने संवत् 1904 की काती सुदी 5 को उन्हें अंग्रेजों के सुपुर्द कर दिया। अंग्रेजों ने डूंगजी को कुछ समय बाद जोधपुर दरबार को लौटा दिया। युरोप की नाइट परम्परा की तर्ज पर ये धाड़वी अपने डकैती के धंधे को डकैती नहीं मानकर गरीब और जरूरतमन्द जनता की सेवा में किया जाने वाला साहसिक कार्य (adventure) मानते थे। उनके विरुद गायकों ने उनके सम्बन्ध में लोकगीतों की भी रचना की तथा राजस्थान के लोक वाद्य रावणहत्थे पर गाँव-गाँव व ढाणी-ढाणी गा-गाकर प्रचारित किया।

नवाब मुख्तारदौला का घेरा, साक्षी एक बही की :

वि. संवत् 1866 (ई. सन् 1809) में बाछे नवाब मुख्तारदौला ने अपनी फौज सहित लाडनूं कस्बे के पूर्व दिशा में स्थित पाबोलाव नामक तालाब पर अपना डेरा डाला। नवाब का मकसद धन इकट्ठा करना था, अन्यथा वह कस्बा लूटने के लिए तत्पर था। ऐसी परिस्थितियाँ उस जमाने में यदा-कदा बन जाना आम बात थी। इनसे निजात पाने के लिए सूझबूझ से ही काम लेना पड़ता था। अतः इस आफत से छुटकारा पाने के लिए लाडनूं कस्बे से रुपयों की आम अदायगी की गई थी, जिसका पूरा ब्यौरा उस समय की एक बही से प्राप्त हुआ। यह बही कबाड़ी सामान का धंधा करने वाले स्थानीय श्री रहीमबख्श जी लीलघर के पास थी। स्थानीय गढ़ से खरीदे गए पुराने कागजों के साथ उन्हें वह बही प्राप्त हुई थी।

लाडनूं के इस घेरे का तो कोई विशेष ऐतिहासिक महत्त्व नहीं है लेकिन वह बही जरूर अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। उपरोक्त अवसर पर जातिगत आधार पर प्रत्येक परिवार से जो रकम वसूल की गई थी, उसकी सम्पूर्ण सूची उस बही में अंकित है। उससे न केवल कस्बे की माली हालत का पता चलता है बल्कि उस समय के कस्बे का स्वरूप भी निर्धारित करने में सहयोग मिलता है।

म्होल बड़ो बास (मोहिलों का बड़ा बास) व स्हारिया बास (शहरिया बास) का एक विशेष दर्जा था। उन दोनों बासों से उगाही गई रकम का हवाला अन्य गाँव, जैसे- गोपालपुरा, बीदासर, पुरा, आसोटा आदि गाँवों की तरह अलग से दिया गया है। अर्थात् इन दोनों मोहल्लों का रुतवा अन्य गाँवों के समकक्ष था। उस समय वर्तमान पट्टियों की तर्ज पर कस्बा बस नहीं पाया था। कस्बा मौहल्लों में बँटा हुआ था, जो इस प्रकार थे– सरावगी, दूगड़, सोजावत, सिंघी, अगरवाल, तेली तथा जाट जातियों के आधार पर बासों के नाम थे।

सूची में चालीस तरह की विभिन्न जातियों के नामों का उल्लेख है, यथा–ओसवाल, सरावगी, अग्रवाल, माहेश्वरी, ब्राह्मण, जाट, कुम्हार, मोची, सिकलीगर, हिन्दू छींपा, तुर्का छींपा, तेली, पीन्दारा, धोवी, चोपदार, बोपारी, लुहार, जुलाहा, सवणीगर (मेड़तिया), खटीक, माली, खाती, चारण, गूजर, भाट, स्वामी, सेवग, काजी, सुनार, नाई, सांखला, राइका, सीलावट (नागौरी), मीरासी, सांई, डाकोत, लीलगर, बलाई आदि। उस समय का लाडनू वर्तमान का एक छोटा संस्करण सा ही प्रतीत होता है। सर्वाधिक संख्या उस समय भी ओसवाल परिवारों की थी। दूसरा स्थान सरावगियों का था। दोनों परिवारों में क्रमशः 51 और 41 परिवारों का उल्लेख है।

ओसवालों की प्रमुख जातियाँ उस समय इस प्रकार थीं–सेजावत, सिंघी, दूगड़, मूंथा, कठोतिया, रांका, बैंगाणी, भंसाली, सुराणा, चोरड़िया, बांगा, कोठारी, घोड़ावत, बैद, गोलछा, सेठिया, नाहर, कोचर, गिड़िया, बोहरा आदि। ऐसा लगता है भूतोड़िया और पगारिया बाद में आकर बसे। सरावगियों में सेठी, पाण्ड्या, गंगवाल, बगड़ा, पाटणी, मूंथा, काशलीवाल आदि नामो का उल्लेख है। कस्बे में माहेश्वरी परिवारों की ये जातियाँ थीं–करवा, लाहोटी, मंत्री, मूंधड़ा, नागौरी भैय्या आदि।

ओसवाल सेजावतों के नौ परिवारों का बही में उल्लेख है। आज वे सभी चोरड़िया जाति के नाम से जाने जाते हैं। अलबत्ता मोहल्ला आज भी उसी पुराने नाम से पहचाना जाता है। ब्राह्मणों में पारीकों की प्रधानता थी।

बही मे लाडनू ठिकाणे के नाम के साथ सूची में मोहिलों का बड़ा बास, शहरिया बास, आसोटापुरा, खानपुर, मरांगड़ा, डाबड़ी, दुजार, नाटास, गोपालपुरा, बीदासर और खरबूजी रा कोट के नाम शामिल हैं। गोपालपुरा, बीदासर और खरबूजी रा कोट यद्यपि बीकानेर रियासत के अंग थे लेकिन संवत् 1791 (ई. सन् 1734) में उपरोक्त

स्थानों पर नागौर के शासक बख्तसिंहजी ने अधिकार कर लिया था। अतः कुछ समय के लिए इन स्थानों के प्रशासन का भार लाडनू के पास आ गया था।

उपरोक्त नामों की सूची में खरबूजी रा कोट उस समय साण्डवा जागीरदार के अधिकार में था। बीकानेर महाराजा ने इसे अपने अधिकार में लेकर यहाँ अपने नाम से एक नए शहर की स्थापना की। नाटास का अस्तित्व समाप्त हो गया है, उसके स्थान पर ठाकुर मंगलसिंहजी के नाम से मंगलपुरा गाँव आबाद हुआ। इसके कुछ समय बाद ही जोधपुर महाराजा जसवन्तसिंह जी (द्वितीय) ने जसवन्तगढ़ नाम का सरहद पर नया कस्बा बसाया जो लाडनू से चार किलोमीटर पूर्व में स्थित है।

खरबूजी रा कोट के नाम से जानी जाने वाली बस्ती में उस समय खीची, बीदावत, सेठी, दूगड़, खाती, सेवग और नाई आदि चन्द जातियों के घर ही आबाद थे। गोपालपुरा में उस समय बैद, बोथरा, दूगड़ आदि ओसवाल जातियाँ भी आबाद थीं। अब वहाँ एक भी ओसवाल परिवार नहीं है।

बही में मन्दिर के पुजारी, सेजावत तथा सिंघी जाति के नामों के साथ 'जी' का प्रयोग किया गया है, जो इनके विशेष सम्मान का द्योतक है। अन्य गाँवों के निवासियों के लिए भी लाडनू उस समय भी बसने के लिए एक उपयुक्त स्थान माना जाता था। अनेक परिवारों के प्रसंग में डेह, परावा, पालड़ी, बीचावा, बीदासर, नागौर से आकर बसने के संकेत हैं। वर्तमान लाडनू उस समय अपनी जड़ें जमा चुका था।

चन्दा बहुत भारी रूप में उगाहा गया था। कुल राशि करीब एक लाख इकट्ठा करने का लक्ष्य था। माहेश्वरी परिवार के किसी लिछमणदास ने साढ़े चार हजार रुपये दिए थे। सरावगी मौहल्ले के रायचन्द सेठी ने चार हजार रुपये चढ़ाए थे। दो रुपये से कम किसी ने नहीं दिया था। एक प्रसंग में लाडनू से डीडवाना का ऊँट भाड़ा दो पावली तथा मेड़ता के पास स्थित पादूं का ऊँट भाड़ा तीन रुपया अंकित है।

ऐसा भी प्रतीत होता है कि रुपया उगाहने में जागीरदार की तरफ से कठोरता नहीं बरती गई थी। कहना चाहिए विशेष उदारता से ही काम लिया गया था। कारण कि इस घटना के नौ वर्ष बाद भी जो बकाया आसामियों की सूची बनी वह भी बहुत लम्बी थी। मुसलमानों में हिन्दू नामकरण की पद्धति तब तक जारी थी। सुख-दुःख में इस कस्बे के लोग बिना किसी जाति भेदभाव के शामिल रहे हैं—ऐसा बिना किसी शंका के प्रतिपादित किया जा सकता है।

रौबीले ठाकुर मंगलसिंह जी के कारण लाडनू कस्बा सदैव धाड़वियों से बचा रहा। किसी भी प्रकार की कोई भी डकैती उनके कार्यकाल में इस कस्बे में नहीं हुई। यही कारण है कि इस कस्बे का विकास शीघ्र हुआ। नए बसने वाले सुरक्षा को पहले देखते हैं। ठाकुर मंगलसिंह जी का शासनकाल चालीस वर्ष रहा। यह काफी लम्बा कार्यकाल था। उनके छोटे भाई चन्द्रसेन जी भी काफी रोबदाब वाले व्यक्ति थे। उन्होंने तलहटी में अपने नाम से चांद बाजार बसाया। वे जोधपुर महाराजा के भी काफी नजदीकी सम्पर्क में थे। ठा. मंगलसिंह जी के कोई सन्तान नहीं थी अतः ठा. बादरसिंह जी गोद आए।

XIV

ठाकुर श्री बहादुरसिंह (वि. सं. 1900-44)

ठा. मंगलसिंहजी के कोई संतान नहीं थी। उन्होंने अपने छोटे भाई चन्द्रसेन जी के पुत्र बादरसिंह (बहादुरसिंह) को गोद लिया। ठाकुर बहादुरसिंह जी संवत् 1900 (ई. सन् 1843) में लाडनू ठिकाणे की गद्दी पर बैठे। उनका शासनकाल जोधपुर महाराजा तख्तसिंहजी के कार्यकाल के समानान्तर चला। ठाकुर बहादुरसिंहजी का राज्यकाल घटना प्रधान रहा। वे हौसले वाले और सूझबूझ के धनी थे। उनका शासनकाल अनेक दृष्टियों से लाडनू के इतिहास में महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

पूर्ववर्ती ठाकुर मंगलसिंहजी का रोबदाब उन्हें विरासत में मिला था। इसका नतीजा यह रहा कि क्षेत्र के धाड़वी लाडनू में प्रवेश करने का साहस नहीं कर सके। उनके शासनकाल की सबसे बड़ी घटना थी लाडनू में कालों की फौज का आगमन। सन् 1857 का सैनिक विद्रोह देश के इतिहास में प्रसिद्ध है। अंग्रेजों ने इसे गदर का नाम दिया था। देशवासियों ने इसे स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम की पहचान दी।

जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह जी के जिद्दी व निरंकुश स्वभाव के कारण मारवाड़ रियासत के कुछ वरिष्ठ जमींदार उनके विरोधी बन गए थे। आहुवा, आसोप, गुलर और आळणियावास के ठाकुर उनमें प्रमुख थे। इन असन्तुष्ट जमींदारों ने एक संघ बना लिया था, जिनके मुखिया आहुवा के कुशालसिंह चाम्पावत थे। लाडनू और गोराऊ आदि ठिकाणे महाराजा के पक्षधरों में थे।

काळों की फौज :

संयोगवश अंग्रेजों के विरूद्ध सन् 1857 का विद्रोह छिड़ गया। ताप्ती नदी के उत्तर में हर जगह अंग्रेजों के विरूद्ध सैनिक विद्रोह भड़क उठा। नीमच छावनी के सैनिक जयपुर रियासत में जगह-जगह फैल गए। गोरी फौजें उनका पीछा करती रहीं। अगस्त महिने में नसीराबाद और देवली के रिसालों ने भी विद्रोह का बिगुल बजा दिया। अजमेर के अंग्रेज अधिकारियों ने जोधपुर महाराजा से सैनिक सहयोग मंगवाया। गोराऊ ठाकुर भैरूसिंह पाँच सौ सैनिकों के साथ अजमेर पहुँचा। बागियों के साथ हुई लड़ाई में इस टुकड़ी के अनेक सैनिक काम आए।

विद्रोही सैनिक एरनपुरा पहुँचे। एरनपुरा में अंग्रेजों का बड़ा रिसाला था जो जोधपुर लीजियन कहलाता था। इसका सारा खर्च जोधपुर सरकार देती थी। एरनपुरा छावनी के सैनिक भी बागियों के साथ हो गए। इस सैनिक टुकड़ी ने गोढवाड़ में बड़ा उत्पात मचाया। अनेक अंग्रेज अफसरों को मार दिया गया। गोराऊ ठाकुर भैरूंसिंह के नेतृत्व में मारवाड़ की सैनिक टुकड़ी को आदेश हुआ कि वह एरनपुरा पहुँचे। इस टुकड़ी में लाडनू ठिकाणे के सैनिक भी थे। इस सैनिक दस्ते ने अनेक अंग्रेज परिवारों की रक्षा की और उन्हें सशकुल जोधपुर पहुँचाया, जहाँ उन्हें बड़ी हिफाजत से रखा गया।

उपरोक्त विद्रोही रिसाले का दिल्ली से सम्पर्क हो गया। उसने शेखावाटी, नारनोल होकर दिल्ली पहुँचने का मानस बनाया। रास्ते में आहुवा ठाकुर कुशालसिंह ने उन्हें अपने किले में ससम्मान स्थान दिया। उसी बीच आसोप ठाकुर शिवसिंह, गूलर ठाकुर बिशनसिंह और आलणियावास के ठाकुर अजीतसिंह भी अपने सैनिकों सहित आहुवा पहुँच गए। जोधपुर महाराजा तख्तसिंजी के लिए बड़ी विकट स्थिति बन गई। इस संघर्ष में महाराजा तख्तसिंह का अंग्रेजी सरकार को पूरा सहयोग था।

महाराजा तख्तसिंह ने स्थिति का सामना करने का निश्चय किया। अंग्रेज अफसर हीथकोट के नेतृत्व में जोधपुर से एक सैनिक दल ने आहुवा के पास भींटोरा नामक स्थान पर डेरा दिया। इस सैनिक दल में पंवार अमरसिंह, लोढा राव राजमल, मेहता विजयमल, मेहता छत्तरसाल, सिंघवी कुशलराज तथा जोधपुर किले के किलेदार अनाड़सिंह थे। एरनपुरा से गोराऊ ठाकुर भैरोसिंह भी अपने

स्रोत:—मारवाड़ राज्य का इतिहास, लेखक—श्री जगदीशसिंह गहलोत (प्रारम्भिक अंश)

सैनिकों के साथ भींटोरा पहुँचे गए। 8 सितम्बर, 1857 को लड़ाई हुई। किलेदा अनाड़सिंह और राव राजमल जी लड़ाई में काम आए। गोराऊ ठाकुर भैरूसिंह को भ गोली लगी। वे घायल हो गए। राज्य की तोपें और युद्ध सामग्री विद्रोहियों के हाथ प गई।

अजमेर से जनरल लॉरेंस स्वयं एक बड़ी सेना लेकर आहुवा पहुँचे। इस बीच जोधपु के पोलिटीकल एजेण्ट कैप्टन मौंक, जनरल लॉरेंस से मिलने युद्ध क्षेत्र की ओर रवान हुए। दुर्भाग्य से बिगुल की एक आवाज से गुमराह होकर वे दुश्मन के केम्प में चले गए वहाँ उन्हें मार दिया गया तथा उनका सिर काटकर आहुवा किले के सामने एक खेजड़ के दरखत से लटका दिया गया। दूसरे दिन जब भूल का अहसास हुआ तो उनकी ससम्मान अन्त्येष्टी कर दी गई।

विद्रोही सैनिकों को दिल्ली पहुँचना था। अक्टूबर महिने में उन सैनिकों ने आहुवा का किला छोड़ दिया। आहुवा ठाकुर को अपने भाग्य-भरोसे रहना पड़ा। महाराजा तख्तसिंह जी भी यही चाहते थे कि ये विद्रोही सैनिक मारवाड़ की जमीन को छोड़कर चले जाएँ। जोधपुर महाराजा ने एक सैनिक टुकड़ी कप्तान नाहरसिंह तंवर और कुशलराज सिंघी के नेतृत्व में बागियों के साथ इस दृष्टिकोण से भेजी कि ये बागी सैनिक मारवाड़ में किसी तरह का कोई उत्पात नहीं कर बैठें। बागी सैनिकों ने गूलर ठाकुर को मार्गदर्शन के लिए अपने साथ लिया। गूलर ठाकुर इस क्षेत्र के भूगोल से पूरी तरह परिचित थे। गूलर लाडनूं से करीब दस कोस की दूरी पर दक्षिण-पश्चिम दिशा में स्थित है। यही टुकड़ी लाडनूं पहुँची। लाडनूं पहुँचने का सबसे बड़ा मकसद यह था कि लाडनूं एक प्रसिद्ध सेठाणा कस्बा था अतः यहाँ से उन्हें कुछ आर्थिक सहयोग प्राप्त होने की आशा थी।

विद्रोही सैनिकों की यह टुकड़ी लाडनूं के इतिहास के साथ कालों की फौज के नाम से जुड़ गई। इन सैनिकों को मजबूरी इधर ले आई थी। सैनिक अपनी उपस्थिति भी गुप्त बनाए रखना चाहते थे। पीछे से मारवाड़ की फौज की दाब थी। वे लूटेरे हरगिज नहीं थे। वे शहर को लूटना नहीं चाहते थे। लेकिन हकीकत यह थी कि उन्हें अपने व घोड़ों के गुजारे के लिए पैसे की जरूरत थी।

इस बागी रिसाले ने अपना डेरा राव तालाब के पायतण पर डाला था। रिसाले के मुख्य नायक का डेरा राव कूएँ के पास स्थित जोधों की छतरियाँ थीं। ठाकुर साहब ने कस्बे के महाजनों से मिलकर कुछ देकर बला टालने का मानस बना लिया था। कहते

हैं उन्होंने सुलह का प्रस्ताव लेकर दो आदमी — एक काजी तथा एक दरोगा (जेतमाल) जाति के व्यक्ति को भेजा था। फौज के मुखिया ने बतौर सावधानी उन दोनों को अपने डेरे में ही रख लिया और वह स्वयं उनके द्वारा रखे गए प्रस्ताव का जायजा लेने गढ़ की तरफ रवाना हुआ।

तब तक गोराऊ ठाकुर भैरोसिंह जी लाडनू गढ़ में पहुँच गए थे। जब वे घोड़े पर सवार होकर राव तालाब के पास से गुजर रहे थे तो उनके तेवर देखकर उस स्थान पर डेरा डाले पड़ी सैनिक टुकड़ी ने अनुमान लगा लिया था कि अब ले-देकर बात बैठने वाली नहीं।

बागी फौज का मुखिया जो गढ़ की तरफ रवाना हुआ था, वह स्थानीय गढ़ से कुछ दूर पर ही था कि उसके कानों में एक तोप के दगने की आवाज पड़ी। वह सशंकित होकर वापस अपने डेरे लौट आया। उसे वहम हो गया कि यह सुलह का प्रस्ताव नहीं उसके विरूद्ध धोखे की साजिश है। उसने क्रुद्ध होकर सुलह का प्रस्ताव लेकर आए दोनों व्यक्तियों को वहाँ पड़े एक बड़े लोहे के कड़ाह के नीचे दबवा दिया। अब स्थिति स्पष्ट हो गई कि संघर्ष होना है।

गोराऊ ठाकुर साहब को जानकारी थी कि मारवाड़ की सेना इन बागियों का पीछा कर रही है अत: डरने की जरूरत नहीं थी। लेड़ी ठाकुर भी गढ़ में पहुँच गए थे। कुछ सीमा तक मोर्चा-बन्दी भी की गई थी। गढ़ के आत्मविश्वास का सबसे बड़ा सहारा यह था कि गढ़ में तोपें थीं। बागियों के पास किसी तरह का तोपखाना नहीं था। कस्बे के निवासियों को गढ़ में आने की अनुमति दे दी गई। अधिकतर बस्ती गढ़ में इकट्ठी हो गई थी। स्त्री, पुरुष, बाल-बच्चों से गढ़ का अहाता भर गया था। गढ़ के दरवाजे बन्द कर लिए गए। सब आतंकित थे। न जाने कब क्या हो जाए।

उधर फौज के मुखिया ने कस्बा लूटने की छूट दे दी। सैनिकों ने सूने घरों को लूटा। उन्हें लाडनू के गढ़ से कुछ लेना-देना नहीं था। राजपुरोहित परिवार की सूंजा बाई ने विशेष साहस का परिचय दिया। लूटपाट कर रहे सैनिकों पर उसने अपनी बन्दूक से गोलियाँ चलाई। कहते हैं उसकी बन्दूक की गोली से फौज का कोई अधिकारी भी आहत हुआ। निश्चित मानिए सैनिक फसाद से बचना चाहते थे लेकिन परिस्थिति ऐसी बन गई कि उसे टाला नहीं जा सका। सैनिक जानते थे कि उनका पीछा भी हो रहा है अत: यह जगह छोड़ना उनके लिए लाजमी हो गया था। वे चुपचाप शेखावाटी में खिसक गए।

कहते हैं फौज के मुखिया को इस शहर की तीन चीज बहुत पसंद आई। खातियों की बाड़, राव कूए की नाळ और जोधा शासकों की छतरियाँ। उसने यह भी कहा बताते हैं कि यह कूआ उसके साथ उसके देश चल सका होता तो वह इसकी कीमत उसकी नाळ में समा सकने वाले रुपयों से चुका देता। उसके सैकड़ों घोड़ों की प्यास इसी कूए ने बुझाई थी। खाती परिवारों ने अपने घरों के चारों ओर जो बाड़ छाप रखी थी, वह इतनी सुघड़ थी कि अन्दर खड़ा आदमी बाहर नहीं दिखाई दे सकता था। छत्तरियाँ तो कला का बेजोड़ नमूना थी हीं।

कस्बे में धन माल का काफी नुकसान हुआ। इस संघर्ष में चली गोलियों के निशान अनेक घरों की दीवारों पर यत्र-तत्र शहर में कुछ वर्ष पहले तक देखे जा सकते थे। इस घटना के बाद शहर में बनी अनेक हवेलियाँ किलेनुमा बनी। उनमें बाहरी दीवारों पर बन्दूक दागने के मोखे रखे गए। ऐसी हवेलियाँ शहर में आज भी मौजूद हैं। इस संघर्ष में कुछ लोग काम भी आए।

कोठारी तनसुखदासजी इसी लड़ाई में काम आए। उनकी स्मृति में गढ़ के सामने वर्तमान सब्जी-मण्डी के मध्य स्थल पर एक चबूतरा बना। चबूतरा अब भी है लेकिन उसका आकार छोटा कर दिया गया है। सुलह का प्रस्ताव लेकर जाने वाले काजी तथा दरोगा भी कड़ाह नीचे दबे रह जाने से दम घुटकर मर गए। दरोगा जाति के व्यक्ति पर चबूतरा बना, जो वर्तमान सुखसदन नामक इमारत के सामने स्थित था। जब सुखसदन बना तो उसे हटा दिया गया। कालूसिंह नाम के एक राजपूत भी काम आए जिनका चबूतरा व देवली लोहड़ियाँ शमसान में आज भी मौजूद हैं। लोकागच्छ की आम्नाय शाखा के यति उदयभाण जी भी बलि चढ़ गए। इस काली फौज की घटना की स्मृति में एक देवली गढ़ के प्रवेशद्वार के बाईं तरफ के चबूतरे पर स्थापित की गई थी। कुछ वर्ष पहले तक वह वहाँ थी।

सेनाएँ चाहे देशी हो कि विदेशी — आम आदमी के लिए वे आतंक का ही कारण बनती हैं। जिधर से गुजरती हैं, धन-जन का नुकसान करती जाती हैं। फिर स्वतन्त्र रूप से गुजरने वाले ये लश्कर तो अति आपदपूर्ण बन जाते हैं। उनको अपनी गुजर-बसर के लिए भी तो धन की आवश्यकता पड़ जाती है।

सन् 1857 का यह संघर्ष निःसन्देह अंग्रेजों की तानाशाही और शोषण के विरुद्ध संघर्ष था लेकिन दुर्भाग्य से वह व्यवस्थित नहीं रह पाया अतः असफल रहा। यह महँगी

शुरुआत आगे चलकर स्वतन्त्रता सैनानियों का मनोबल बढ़ाने में सहायक बनी। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई तांत्या टोपे, मंगल पाण्डे आदि नाम तो उनके लिए स्वतन्त्रता का प्रतीक बन गए थे। कालों की फौज की दहशत बहुत समय तक लाडनूवासियों की स्मृति में छाई रही।

ठाकुर बहादुरसिंह का कार्यकाल अनेक धार्मिक घटनाओं से भी जुड़ा हुआ है। सेवग चौक स्थित भगवान शान्तिनाथ श्वेताम्बर जैन मन्दिर का जीर्णोद्धार उनके कार्यकाल में सम्पन्न हुआ। रामस्नेही सम्प्रदाय (खेड़ापा शाखा) का रामद्वारा भी उनके समय में अस्तित्व में आया। इस सम्प्रदाय के सन्त मोतीराम जी सबसे पहले लाडनू आए। वे खेड़ापा के पास रुदिया नामक गाँव के एक माहेश्वरी परिवार में संवत् 1825 की कार्तिक सुदी 11 को जन्मे थे। मोतीराम जी की गिनती खेड़ापा शाखा के संबुद्ध सन्तों में होती है। उनकी वाणियाँ एक हस्तलिखित ग्रंथ में संग्रहित हैं। वह ग्रंथ बड़े रामद्वारे में आज भी सुरक्षित है। मोतीराम जी कोलायत इलाके के सीहाणा गाँव चले गए, वहीं उनका समाधिस्थल है।

लाडनू का बड़ा रामद्वारा :

मोतीरामजी के शिष्य भक्तिरामजी हुए। भक्तिरामजी के शिष्य सायबरामजी हुए। सायबरामजी लाडनू आ गए। उन्होंने संवत् 1922 माह बदी 12 को लाडनू में रामद्वारे की स्थापना की। ठा. बहादुरसिंह जी के नाम के साथ उपरोक्त घटना का उल्लेख ऊपर वर्णित हस्तलिखित ग्रंथ में है। सायबरामजी के शिष्य जगजीवनरामजी हुए। उनके शिष्य केशवदास जी हुए। केशवदासजी तेरापंथ जैन सम्प्रदाय के आचार्य कालूगणी के समकालीन थे। वे रामकथा बड़े रोचक ढंग से बांचते थे। केशवदासजी के शिष्य श्रीरामजी हुए। श्रीरामजी स्वभाव के सीधे-सादे सरल पुरुष थे।

श्रीरामजी के शिष्य वर्तमान में श्री रामनारायण जी महाराज हैं। श्री रामनारायणजी सीधे सरल स्वभाव के व्यक्ति हैं। वे आयुर्वेद पद्धति के ज्ञाता भी हैं और कथा वाचन के साथ-साथ औषधोपचार भी करते हैं। उनके अनुज वैद्य कृष्णानन्द ने भी इस क्षेत्र में अच्छी लोकप्रियता हासिल की थी। यह रामद्वारा जहाँ स्थित है, वहाँ पहले कुम्हारों का मौहल्ला था। यह रामद्वारा ठीक कुम्हारों के आँवे (न्यावड़े) पर स्थित है। इससे यह जाहिर होता है कि उस समय तक कुम्हारों ने वहाँ पर बर्तन पकाना बन्द कर दिया था और वे शहर के उत्तर-पूर्वी भाग में स्थानान्तरित होना शुरु हो गए थे।

रामद्वारा (सन्त रामचरणदासजी शाहपुरा की परम्परा में)

महाराज मनसुखदास ने लाडनू में दक्षिण दरवाजे (राव गेट) के भीतर सत्यनारायण के मन्दिर के सामने इस रामद्वारे की स्थापना की। म. मनसुखदास लाडनू के ही रहने वाले पारीक ब्राह्मण थे। बचपन में वे गाएँ चराते थे। एक दिन इनकी स्नेहमयी भौजाई ने कूएँ में गिरकर आत्महत्या कर ली। उनके सिर से एकमात्र स्नेह का साया उठ गया। वे घर नहीं आए, सीधे नागौर चले गए और वहाँ महाराज सुखरामदास से दीक्षा ग्रहण कर ली। म. सुखरामदास के परमधाम सिधारने पर वे नागौर रामद्वारे के प्रधान बने। कुछ दिन बाद अपना यह पद अपने गुरु भाई लालदास को सम्भलाकर लाडनू आ गए। उस वक्त लाडनू ठिकाणे की गद्दी पर ठा. बहादुरसिंह भी विराजित थे।

स्वामी मनसुखदास वि. संवत् 1934 भादवा बदी 12 को परमधाम सिधारे। इनके बाद महाराज विलासीराम इस रामद्वारे की गद्दी पर बैठे। म. विलासी रामजी पूरे त्यागी सन्त पुरुष थे। वे धातु के पात्र का उपयोग नहीं करते थे। संवत् 1957 में म. विलासीराम ने लीला विस्तार किया। उनके शिष्य लज्जाराम ज्यादा दिन लाडनू नहीं रहे। वे अपने गुरुभाई महाराज मेवाराम को गद्दी सौंपकर अन्यत्र चले गए। म. मेवाराम जी नागौर जिले के ही छापड़ा गाँव के 'खाती' परिवार में जन्मे थे तथा जन्म से ही नेत्र ज्योति-विहीन थे।

इनकी माँ ने एक बार कहा था कि तू यदि राम के नाम का सहारा ले तो तेरा उद्धार हो जाएगा। माँ की बात का शिशु हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। बचपन से ही 'राम-रटन' उनकी जीवन-संगिनी बन गई। लाडनू की जनता ने भी उनको बहुत सम्मान दिया। श्री सूरदास महाराज को भजनों से बहुत प्रेम था। नियमित रूप से प्रातः चार बजे वे उठ जाते थे और अपनी मस्ती में भजन गाना शुरु कर देते थे। हाथ में इकतारा लिए हुए, पैरों की धमक के साथ मधुर स्वर में जब वे भजन गाने लगते थे तो राह चलते पैर थम जाते थे। रामद्वारे में नियमित रूप से श्रवण, संकीर्तन तथा वाणी पाठ का क्रम जारी रहा। संवत् 2000 पोष सुदी 11 को आपका शरीर शान्त हुआ।

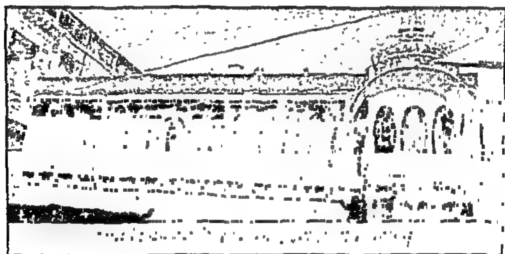
स्वामी रामनिवास :

श्री सूरदासजी महाराज के शिष्य स्वामी रामनिवास हैं। इन्होंने पुराने रामद्वारे के स्थान पर सं. 2012 में बड़ा सत्संग भवन बनवाकर एक ट्रस्ट-मण्डल को सौंप दिया है। सादा जीवन, निष्कपट व्यवहार, प्रभावशाली वाणी, सुमधुर कण्ठ, समझाने की

अद्‌भुत शैली, स्नेहिल स्वभाव वाले इस सन्यासी ने अनायास ही लाडनूँ शहर में स्त्री-पुरुषों का मन मोह लिया। स्थानीय गौशाला को सुव्यवस्थित, सुदृढ़ और आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में प्रयत्नों का श्रेय भी स्वामीजी को ही जाता है। सन्यस्त जीवन की तटस्थता का निर्वाह करते हुए जनहित के कार्यों को प्रेरित तथा सम्पादित करना स्वामीजी की जीवनशैली का एक अनूठा पहलू है।

जागीरदार घराने द्वारा निर्मित मन्दिर :

ठाकुर बहादुरसिंह के राज्यकाल में शहर में चार प्रसिद्ध मन्दिर भी बने। ठकुराणी तंवरजी ने सत्यनारायण भगवान का मन्दिर बनवाया जो रामद्वारा (शाहपुरा शाखा)



के ठीक सामने स्थित है। माजी भटियाणी जी ने संवत् 1916 में राव दरवाजे के अन्दर ठीक सामने मुरली मनोहर जी का मन्दिर बनवाया। स्थानीय बाजार में झण्डा चौक स्थित जानकी बल्लभजी तथा मोचियों के पुराने मौहल्ले में स्थित मन्दिर भी उसी काल में बने। ये चारों मन्दिर लाडनू जागीरदार घराने की देन हैं।

तब तक मारवाड़ राज्य की शासन व्यवस्था में भी आमूल परिवर्तन शुरु हो गए थे। रियासत पर अंग्रेजों ने अपना प्रभाव पूरी तरह जमा लिया था। महाराजा की एकात्मक सत्ता कानून के राज्य का रूप लेने लगी थी। आधुनिक सुधारों का दौर शुरु हो चुका था। लाडनू ठिकाणे में प्रशासन के कार्यों में कोठारी परिवार का वर्चस्व स्थापित हो गया था। कुल मिलाकर ठाकुर बहादुरसिंह का शासन युक्ति-युक्त रहा। कस्बा बहुरूपेण विकसित होने लगा।

ठाकुर बहादुरसिंह ने चवालीस (44) वर्ष राज्य किया। उनका स्वर्गवास संवत् 1944 में हुआ। वे निःसन्तान थे अतः उन्हीं के रिश्ते के ठाकुर अणदसिंह उनकी गोद आए। उस समय तक महाराजा जसवन्तसिंह (द्वितीय) जोधपुर की राजगद्दी पर आसीन हो चुके थे।

XV

ठाकुर श्री अणदसिंह (वि. सं. 1944-1971)

ठाकुर अणदसिंह सरल स्वभाव के सहृदय व्यक्ति थे। उनके राज्यकाल में कस्बे में सर्वत्र सद्भाव की वृद्धि हुई। जनता के साथ किसी भी तरह का आतंकपूर्ण रवैया उन्होंने कभी अख्तियार नहीं किया। लाडनू का आम नागरिक उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखता था। वे कस्बे की महाजन बिरादरी से सलाह मशविरा करते रहते थे। उनसे अच्छा मेलजोल रखते थे। आवश्यकतावश उनसे ऋण भी लेते थे। लेकिन अपनी जनता के साथ उन्होंने कभी जोर जबरदस्ती नहीं की।

उनकी ठकुराणी भटियाणी जी एक धार्मिक स्वभाव की महिला थीं। पूजा-पाठ, देव-दर्शन उनके नित्य के नियम थे। लाडनू-सुजानगढ़ मार्ग पर उन्होंने एक प्याऊ की स्थापना करवाई थी। उसमें पीने के पानी के साथ-साथ रात-वासे ठहरने की भी सुविधा थी। ऊँट, बैलगाड़ी या घोड़ों आदि के रखने का स्थान भी था। उन्होंने कुम्हारों के वर्तमान मौहल्ले में ठाकुरजी का एक मन्दिर भी बनवाकर ठिकाणे के राजव्यास को दिया था। इस राजव्यास परम्परा के श्री गणेशजी वर्तमान में इस मन्दिर की पूजा-पाठ व्यवस्था सम्भाल रहे हैं।

ठाकुर अणदसिंहजी के शासनकाल में वि. संवत् 1956 का भयंकर अकाल पड़ा। उस समय तक रियासत में रेल की सुविधा उपलब्ध नहीं हो पाई थी। वर्तमान आवागमन के साधनों का भी नितान्त अभाव था। ऐसी स्थिति में हजारों लोग इस अकाल वर्ष में काल कलवित हुए। उस समय के प्रसिद्ध कवि उमरदान लालस ने उस अकाल का बड़े कारुणिक शब्दों में उल्लेख किया है—

माणस मरुधरिया माणक सम मूंगा।
कोड़ी कोड़ी रा करिया श्रम सूंगा॥

डाढ़ी मूछ्यांळा डळियां में डुळिया।
रळियां जायोड़ा गळियां में रुळिया॥
आफत मोटी न खोटी पुळ आई।
रोटी रोटी नै रैयत सुबकाई॥

उस समय तक जोधपुर में महाराजा सरदारसिंह राजगद्दी पर आसीन हो चुके थे। उन्होंने अंग्रेज सरकार से ऋण लेकर अपनी प्रजा की सहायता की। ठिकाणे की तरफ से भी अनेक राहत कार्य सम्पन्न हुए। शहर के महाजन भी सहयोग में पीछे नहीं हटे। उस अकाल की दहशत बहुत काल तक लोगों की स्मृति में छाई रही। अनेक परिवार उस अकाल में टूटे और बिखर गए।

ठाकुर अणदसिंह जी ने सत्ताइस (27) वर्ष तक राज्य किया। वे भी नि:सन्तान रहे। उनके बाद उनके छोटे भाई विजयसिंह जी संवत् 1973 में लाडनूं की गद्दी पर बैठे।

ठाकुर अणदसिंहजी के कार्यकाल में कुछ जनोपयोगी कार्य भी सम्पन्न हुए। उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

कबूतरों की सराय :

इसकी स्थापना संवत् 1970 (ई. सन् 1913) में हुई थी। इसका निर्माण स्व. बालमुकुन्द जी अग्रवाल के पुत्र बालचन्द की धर्मपत्नी ने करवाया था। इसमें करीब 200 कबूतरों के आवास की एकल कक्षीय सुविधा है। इसके अतिरिक्त 20 फीट×20 फीट भूमि पर एक गुम्बददार छप्पर बना हुआ है। इसमें सैकड़ों कबूतर रैन बसेरा लेते हैं। कबूतरों के चुग्गे की भी नियमित रूप से पूर्ति की जाती है।

बोझ राहत स्तम्भ :

कस्बे के चारों ओर सभी दिशाओं में कमोबेश करीब पाँच किलो मीटर तक कस्बे की कृषि भूमि का फैलाव है। इन सुदूर खेतों से कृषक महिलाओं का पैदल ही आना जाना होता था। घास-फूस का गट्ठर, जलावन की लकड़ी तथा कृषि उपज सम्बन्धी कई तरह का सामान उन्हें सिर पर ही ढोना पड़ता था। कभी-कभी गोद में बच्चा रहता था। उस स्थिति में रास्ते में बिना विश्राम लिए यह दूरी पार करना बड़ा कठिन काम था। रास्ते में रुक भी लिया जाए तो बोझ को पुन: उठा पाना भी सहज काम नहीं था। श्री लक्ष्मीनारायणजी अग्रवाल ने कस्बे की सभी दिशाओं में सभी मार्गों पर चार-चार फीट की ऊँचाई के स्तम्भ चुनाव दिए ताकि सिर का बोझ आसानी से उन पर उतारा जा सके अ, सिर पर सरलता से लादा जा सके। यह बड़ी मौलिक और अनमोल सू...

XVI

ठाकुर श्री विजयसिंह (वि. सं. 1973-1985)

ठाकुर विजयसिंह जी के चरित्र में राजपूती तेवर की प्रधानता थी। उनमें उतावलेपन की भी आदत थी। फिर भी पास-पड़ोस के डकैत उनका भय मानते थे। ठा. विजयसिंह के कार्यकाल में शेखावाटी के धाड़वी भूरजी बलजी का आतंक पूरे क्षेत्र में छाया हुआ था। लाडनूं का सौभाग्य रहा कि यहाँ के करीब सभी जमीदारों ने कस्बे की सुरक्षा का सदैव विशेष ध्यान रखा। ठाकुर विजयसिंहजी को भी बर्दाश्त नहीं था कि कोई बाहरी व्यक्ति इस कस्बे में आतंक का कारण बने। यही कारण था कि इस कस्बे में गुण्डा-गर्दी नहीं पनप सकी। ठाकुर साहब का अक्षरज्ञान सिर्फ 'सही छः' लिखने तक ही सीमित था। लेकिन उनकी सूझ-बूझ और सामान्य ज्ञान में किसी तरह की कमी नहीं थी। महाजन कौम से उन्होंने निकट का सम्बन्ध बनाए रखा। इसका नतीजा जनता के पक्ष में रहा। शासन युक्तियुक्त रहा। आपके गद्दी आरोहण के समय प्रथम विश्वयुद्ध अपनी तीव्र गति पर था।

ठाकुर विजयसिंह जी ने उम्र कम पाई। वे सिर्फ बारह वर्ष ही शासन कर पाए। उनके कामदार अब्बास अली बड़े कार्यकुशल व्यक्ति थे। वे बाड़ी (धोलपुर) के रहने वाले थे तथा ठिकाणे में मीर साहब के नाम से जाने जाते थे। वे नेक दिल और इन्साफप्रिय आदमी थे। उन्होंने लाडनूं ठिकाणे की बड़ी वफादारी से सेवा की। उन्होंने ठिकाणे के ठाकुर पर भी प्रभावी नियन्त्रण रखा, जिससे वे अपनी सीमाओं का कभी अतिक्रमण नहीं कर पाए। निःसन्देह जनता को न्याय मिला।

ठाकुर विजयसिंह ने एक नियम बड़ा सूझ-बूझ भरा जारी किया था। शहर से सटे हुए खेतों के मालिकों को हिदायत दी गई कि वे ठिकाणे द्वारा निर्धारित क्रम के अनुसार बारी-बारी से अपने खेतों की जोत नहीं करेंगे। उन खेतों पर गाँव के बछड़े-बछड़ियों के चरने की व्यवस्था रखी जाती थी। वयस्क पशु तो ग्वालों की देखरेख में दूरस्थ जंगलों या तालाबों के पायातणों पर चरने चले जाते थे। छोटे बछड़े-बछड़ियाँ ज्यादा दूर जा नहीं पाते थे और ज्यादा लम्बे समय तक टिके रहना भी उनके लिए कठिन होता था अतः यह व्यवस्था उनके लिए सुविधाजनक थी।

लाडनूं वर्णन नामक पुस्तक :

सन् 1922 में उस समय के एक प्रबुद्ध और विद्वान नागरिक [illegible] . शर्मा ने लाडनूं

वर्णन नाम से एक पुस्तक लिखी। वह इस कस्बे के किसी लेखक की पहली प्रकाशित पुस्तक थी। पुस्तक में कस्बे का उस समय का आँखों देखा हाल वर्णित है। इस पुस्तक में कस्बे में हिन्दी भाषा के अध्ययन, कस्बे की बसावट, शासकीय व व्यवसायिक रूप रेखा, सामाजिक परिवेश तथा कस्बे के शैक्षिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट संकेत हैं।

पुस्तक से यह निष्कर्ष भली-भाँति निकाला जा सकता है कि बीसवीं सदी के तीसरे दशक में इस शहर में हिन्दी भाषा के शिक्षण की समुचित व्यवस्था थी। स्वयं लेखक ने अपनी कविता में साहित्यिक हिन्दी शब्दों का प्रयोग किया है तथा व्याकरण व मात्राओं आदि का उत्तम ज्ञान रखने का प्रमाण दिया है। पुस्तक में लाडनू शहर तथा यहाँ के शासक श्री विजयसिंह जी के सम्बन्ध में इस प्रकार उल्लेख हैं—

शहर लाडनू शुभ शोभित मनुज सुघड़ सुजान जी।
सब लोग यहाँ सुखिया बसे कोई नहीं कंगाल जी॥

लावणी :—ठाकुर साहब श्री विजयसिंह जी प्रतिपाल करें..........
क्षत्री इष्ट रखे सूरज को कोट बुर्ज को रखे जोर।
तलवार ताजी जीते बाजी वश में करले अरि को टोर॥

पुस्तक के आधार पर यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि ठाकुर मंगलसिंहजी के समय का लाडनू ठाकुर विजयसिंह तक करीब तीन गुणा आकार ले चुका था। कस्बे की चारों दिशाओं में चार दरवाजे थे। कस्बा एक मोटी सफील से घिरा हुआ था। कस्बे का पूर्वी दरवाजा वर्तमान नगरपालिका भवन के पूर्व में कुछ दूरी पर ही था। कस्बे का पश्चिमी दरवाजा मोदियों के घर से कुछ आगे बेगवाणियों की हवेली से सटा हुआ था। उत्तरी दरवाजा श्री श्रीचन्दजी मूलचन्दजी बैद के घर से सटा हुआ था। एकमात्र दक्षिण दरवाजा जो राव दरवाजे के नाम से जाना जाता है, आज दिन तक बचा हुआ है।

पुस्तक में पट्टियों की गिनती पहली से लेकर छठीं तक की गई है। आधी पट्टी का नामकरण नहीं हो पाया था। सातवीं पट्टी भी अपना आकार नहीं ले पाई थी। रामदेवजी का मन्दिर अस्तित्व में आ चुका था। पश्चिमी दिशा का मीठा कुआ अकेला लगता था। यद्यपि उसके आसपास जाट, लुहार, कायमखानी आदि आबाद हो चुके थे लेकिन बस्ती छितरी थी। इनाणिया जाट अपना महत्त्व बना चुके थे। मगरा उजाड़ था। मोहिल

बड़ी पोळ तक ही सीमित थे। बड़ा बास विकसित नहीं हो पाया था। गढ़ के चारों ओर की आबादी में दरोगा, ढोली, काजी और भगतों के परिवार आबाद थे।

कुल मिलाकर उस समय के लाडनू का फैलाव वर्तमान लाडनू शहर के एक तिहाई क्षेत्रफल से अधिक नहीं था। आबादी पन्द्रह हजार से बाहर नहीं थी। यह वह जमाना था, जब सम्पन्न हो रहे परिवारों के लिए छोटे गाँवों में जीवन असुरक्षित होता जा रहा था। हर समय डकैतों का भय बना रहता था। अतः अपेक्षाकृत सुरक्षित बड़े कस्बों की तरफ उनका निष्क्रमण प्रारम्भ हुआ। फलस्वरूप उन पर आश्रित वृतिपेशा परिवारों को भी आजीविका की कमी महसूस होने लगी। वाणिक परिवारों ने सुरक्षा की खातिर बड़े कस्बों की शरण ली जबकि वृतिपेशा परिवार आजीविका की तलाश में शहरों की ओर आए। सिर्फ बैंगाणी परिवार अपवाद था। यह जयपुर (नगर) से लाडनू (कस्बे) में आया।

यही कारण था कि लाडनू में भी बहुत से परिवार अपने उन मूल स्थानों के नाम से जाने जाते थे, जहाँ से वे आए थे। जैसे बम्बू, सोनेली या साण्डवा के बैद, बींचावा के पगारिया, सुनारी के जाजू, मेणसर तथा जसरासर के पाण्ड्या आदि। लालगढ़ तय डे आदि के साथ भी अनेक सरावगी परिवारों के नाम जुड़े हुए थे। ढढेरू, पालास, ओंडीट आदि गाँवों के साथ कुछ ब्राह्मण परिवार जुड़े हुए थे। जबकि लूणसर से आए सुनार परिवार लूणसरिया कहलाए। परिवारों के आगमन के साथ एक तथ्य यह भी जुड़ा हुआ था कि समझदार जमीदार अच्छे सेठ-साहूकारों, किसानों तथा हुनरबाजों को अपनी जमीदारी में बसने की सुविधाएँ देते थे तथा उनकी सुरक्षा की जिम्मेवारी लेते थे।

लाडनू वर्णन नामक पुस्तक के आधार पर जातिगत विशेषताएँ :

पुस्तक में जातिगत विशेषताओं तथा कमजोरियों को भी कवि ने तटस्थभाव से उजागर करने का प्रयत्न किया है। उदाहरण प्रस्तुत है—

मोयल : नामी है इस शहर के बड़ी ... के बीर।
दुरजन को दण्ड देते हैं, ...

सरावगी : ... सप ...
... मूल ...

ओसवाल : ओसवाल कहलाने वालों सुनो मेरी एक बात।
करो परस्पर मेळ और चलो सब एक साथ॥

अग्रवाल : (किला) अगरवाल आगे बसे किला नाम प्रसिद्ध।
दीन अबै कोई नहीं घर माहीं अति रिद्ध॥

पंचोळी : पंचोळी यशवान, राज मांही आदर अति।
हरे अरि का मान मित्रों को दे आनन्द मति॥

सैय्यद : असली मुसलमान सैय्यद यहाँ आगे बसे।
शेख, मुगल, पठान आदर से कहते इन्हें॥

पगारिया : पगारिया शोभा यहाँ पाई गाँव है बीचावा भाई।
सरल हैं सब ही नर नारी हेलियाँ इनकी शुभकारी॥

बैंगानी : बैंगानियों की कीर्तिका है नहीं कोई पार।
धनवान हैं अरु धीर हैं जगत बीच उदार॥

पारीक : पूर्वजों के मुख से हमने सुनी बात जी।
इससे पुरानी लाडनू में नहीं कोई जात जी॥

दादू पंथी : आगे दादूपंथी साद कई यहाँ पर मिटे फसाद।

नायक : खारियाँ नायक बनाते रात-दिन पाबूजी गाते।
गाँवों में ठगते फिरे नाना भेष बनाय॥

बम्बू वाले बैद : बसे बैद बम्बू के यहाँ गुणी चतुर सब नर-नारी।
रखे कीमती पास दवाएँ देते माँगी उपकारी॥

नाना किस्म की पुस्तकें इनके यहाँ तैयार हैं।
जो कोई जावे देखन को उसे नहीं इन्कार है॥

गंगवाल : जाति है गंगवाल महतो की पदवी मिली।
महता वंश महान शोभा कही जावे नहीं॥

आठ दशक पूर्व की कस्बे की शिक्षा व्यवस्था :

मोडिया लिपि :

वणिक वर्ग में मोडिया लिपि का प्रचलन था। यह एक सांकेतिक लिपि थी। इसमें मात्राओं का प्रयोग नहीं होता था। प्रत्येक मोहल्ले में कोई-न-कोई बुजुर्ग ऐसे मिल जाते थे, जो शाम के समय गली के बालकों को इकट्ठा करके जबानी हिसाब हल करवाने का अभ्यास करवाते थे।

कस्बे में उस काल खण्ड में प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा की सुविधा थी। दूसरी पट्टी में एक ओसवाल स्कूल चलता था, जिसमें हिन्दी, अंग्रेजी तथा गणित की चार कक्षा तक की पढ़ाई की व्यवस्था थी। उसमें चार अध्यापक थे। स्कूल के अनिश्चित आर्थिक आधार की तरफ लेखक ने संकेत किया है। सरावगियों के मोहल्ले में भी उपरोक्त स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था थी। यह सरावगी सभा की देखरेख में चलती थी। सभा के पास पर्याप्त कोष था। जीवण स्कूल भी अस्तित्व में आ चुकी थी, उसका संचालन बैंगानी परिवार करता था।

यही जीवण स्कूल आगे चलकर जीवण विद्यालय के नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसके प्रधानाध्यापक श्री सदासुखजी कोठारी थे। स्व. कोठारी जी एक आदर्श शिक्षक होने के साथ-साथ एक कुशल प्रशासक भी थे। स्व. जौहरीमलजी भंसाली तथा महालचन्दजी महाराजा उनके सहयोगी अध्यापक थे। इन सबके अतिरिक्त एकल अध्यापक वाली महाजनी पाठशालाओं की परम्परा भी चली आ रही थी। श्री गणेशरामजी, नन्दलालजी, हीरालालजी, कृष्णचन्द्रजी प्यार जी महाराज के नाम उल्लेखनीय थे। श्री रहीमबख्शजी अंग्रेजी के अध्यापकों में प्रसिद्ध थे।

श्री ओसवाल हितकारिणी सभा तब तक गठित हो चुकी थी। स्वैच्छिक संस्थाओ की श्रेणी में यह पहला कदम था। इस सभा का एक पुस्तकालय भी अस्तित्व में आ चुका था। सभा के तत्त्वावधान में खादी बनवाने की व्यवस्था का भी शुभारम्भ हो गया था। इसका सीधा-सा तात्पर्य है कि राष्ट्रीयता की भावधारा का कस्बे में प्रवेश हो चुका था। इसके अलावा बम्बूवाले बैदों के पास कानूनी तथा अन्य उपयोगी पुस्तकों का अपना निजी संग्रह था, जो अवलोकनार्थ सबको सुलभ था। बड़े जैन मन्दिर तथा जती आनन्दीलालजी के पास भी जैन धर्म से सम्बन्धित ग्रंथों का संग्रह था।

चिकित्सा-सफाई व्यवस्था :

कस्बे में प्राथमिक उपचार तथा छूत की बीमारियों के इलाज के लिए घरेलू चिकित्सा विधियों का ही एकमात्र सहारा था। कस्बे में जतियों के पाँच उपासरे थे। इन उपासरों में आयुर्वेद चिकित्सोपचार की कमोबेश सुविधा थी। जती आनन्दीलालजी तथा भैरूदानजी ने इस पेशे से काफी धन तथा यश कमाया था। कतिपय श्रेष्ठि परिवार भी निःशुल्क औषधियाँ देते थे, जिनमें श्री रिधकरणजी बोरड़, श्री खींवराजजी फूलफगर तथा बम्बूवाले बैदों के यहाँ यह सुविधा उपलब्ध थी। श्री रतनलालजी पांड्या भी निःशुल्क औषधि वितरण करते थे। श्री रामरतनजी वैद्य के रूप में जाने जाते थे। श्री बिहारालीलजी तथा विभूति भूषण डॉक्टरों के रूप में लोकप्रिय थे।

घरों में शौच स्थल रखने की प्रथा कम थी। महिलाओं के लिए कस्बे में चार सामूहिक शौच स्थल थे। वे इस प्रकार थे—मावलियों की बाड़ी में, पहली पट्टी में जहाँ इस समय ओसवाल सभा स्थित है, चौथी पट्टी में जहाँ ओसवाल अतिथि भवन बना हुआ है तथा एक सरावगियों के मोहल्ले में था। मावलियों की बाड़ी वाला शौच स्थल अभी तक यथावत है। गाँव सफाई का कोई विशेष प्रावधान नहीं था। परम्परा यह थी कि भाम्बी लोग इस काम को अंजाम देते थे।

जल स्रोत :

पानी का स्रोत कूएँ तथा तालाब थे। कस्बे की पूर्व दिशा में इन्दर सागर कूआँ बन चुका था। यह शहर का पहला कूआ था जो बिजली से चलता था तथा बिजली बनाने के लिए जनरेटर का उपयोग लिया जाता था। यह व्यवस्था श्री इन्दरचन्दजी बैंगानी परिवार की तरफ से थी। इसके अतिरिक्त राव कूआँ, सिद्धों का कूआ, गाँवाई कूआ तथा मीठड़िया कूआ भी थे। ये कूएँ बैलों से चलते थे। पीने के पानी के लिए सिर्फ दुर्जनसर तालाब का ही उपयोग होता था।

कवि ने दुर्जनसर तालाब के पनघट का वर्णन बड़े साहित्यिक शब्दों में किया है—

दुर्जनसर जावे पणिहारी,
कुम्भ ले मिट्टी का आवे, कलश बहु पीतल का लावे।
देख मुख इन्दु छिप जावे,
मन्द चाल को देख के गणपति हो हैरान,
सुन वाणी विस्मित हुई
कोकिल करे निदान-कौन है मधुर बेन वारी—

सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा :

शहर सारिणी या नगरभोज उस जमाने के लोगों की सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा रहती थी। यह एक तरह का कीर्तिचक्र प्रवर्तन था। इसके पीछे आधारभूत विचार यह था कि शहर के समस्त नर-नारी शहर-सारिणी आयोजित करने वाले परिवार की मेजमानी स्वीकार करें। यह उस परिवार के लिए बड़े गौरव का अवसर होता था। उस कालांश में शहर में ऐसे चार आयोजन हुए। उपरोक्त पुस्तिका से एक आकर्षक निष्कर्ष यह भी निकलता है कि कस्बे के आबादी वाले हर महत्त्वपूर्ण नुक्कड़ पर हलवाई की दुकान थी तथा कस्बे की कोई गली या चौराहा नहीं था, जहाँ सुनार की दुकान न हो। तलहटी में उनकी संख्या सर्वाधिक थी। इसका सीधा-सा अर्थ यह हुआ कि कस्बे के लोगों को मिठाई तथा गहनों का शौक था। यह बात इस कस्बे के सम्पन्न होने का महत्त्वपूर्ण संकेत हैं।

उस समय का लाडनू व्यवसाय का कोई बड़ा केन्द्र नहीं प्रतीत होता है। कस्बे में एक साधारण से बाजार की सुविधा थी। दैनिक उपयोग की सभी वस्तुएँ यहाँ उपलब्ध हो जाती थीं। यथा कपड़ा, धान, मिठाण, औषधियों में काम आने वाली वस्तुएँ तथा मणिहारी का दैनिक उपयोग का सामान आदि। सेजावतों के मोहल्ले में सब्जी तथा मणिहारी सामान के विक्रय की अस्थाई व्यवसाय थी। कोई बड़ा उद्योग भी कस्बे में उस समय तक नहीं पनप पाया था। शक्ति के किसी भी आधुनिक साधन का कस्बे में प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। तब तक साइकिल भी कस्बे में नहीं आ पाई थी।

रेल व डाक व्यवस्था :

तब तक लाडनूँ कस्बा रेल की मुख्य लाईन से नहीं जुड़ पाया था। जसवंतगढ़ से एक टुकड़ा लाडनूँ आता था। गार्ड ही एकमात्र उसका सर्वेसर्वा था। कस्बे में डाक की अति सामान्य सुविधा थी। एक बाबू वाला डाक घर था। तार की सुविधा नहीं पहुँच पाई थी। रेड़ियो का पदार्पण भी नहीं हुआ था। एक छोटे से पुलिस थाने की व्यवस्था थी, जिसमें दो कर्मचारी तैनात थे। जिस कालखण्ड का उपरोक्त पुस्तिका में वर्णन है, संयोगवश वह इतिहास का बड़ा महत्त्वपूर्ण कालखण्ड है। अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय दोनों ही दृष्टियों से इस कालांश की अद्भुत महत्ता है। देश की आजादी के लिए जन्मे राष्ट्रव्यापी संघर्ष के तीव्रतर होने का समय भी यही था।

स्वर्णयुग :

प्रथम महायुद्ध के दौरान दबा हुआ विश्व का व्यावसायिक सामर्थ्य एक साथ अपनी

सीमाएँ लांघने लगा था। युरोप में औद्योगिक क्रांति अपनी युवावस्था में प्रवेश कर चुकी थी। कलकत्ता पाट के निर्यात का बड़ा केन्द्र बन गया था। कपड़ा, मशीनरी तथा उपभोक्ता वस्तुओं के आयात की बाढ़ सी आ गई थी। सौभाग्य की बात थी कि सम्पूर्ण मारवाड़ी व्यावसायिक सामर्थ्य के समकक्ष इस कस्बे की व्यावसायिक प्रतिभा भी इस अन्तर्राष्ट्रीय धारा में बखूबी जुड़ गई थी। कस्बे की घरेलू सुरक्षा सब दृष्टियों से सुनिश्चित थी तथा तत्कालीन स्थानीय प्रशासन युक्तियुक्त था। फलस्वरूप कस्बे की सम्पन्नता बढ़ी। इस कालखण्ड को कस्बे का स्वर्णयुग कहा जाए तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सम्पन्नता के साथ-साथ इस युग में शहर में कुछ चरित्र की उभरे तथा कुछ ऐसे कीर्तिमान स्थापित हुए, जिनकी छवियाँ जन-मानस के स्मृति कोष में आज भी सुरक्षित हैं। कुछ के नाम इस प्रकार गिनाये जा सकते हैं–

श्री मूलचन्दजी सिंघी :

आभिजात्य वर्ग में जन्मे श्री मूलचन्दजी सिंघी अभिजातीय मानसिकता के बोझ से सर्वथा मुक्त थे। हृदय में बह रही भक्तिभाव की निर्मल सरिता ने उनके व्यक्तित्व को एक अद्‌भुत दिव्यता प्रदान कर दी थी। सरल मन और सहज उदारता की वे प्रतिमूर्ति ही थे। इन गुणों ने उन्हें अपने समय का इस शहर का सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्ति बना दिया था। शहर की रामानन्द गौशाला की स्थापना का श्रेय उन्हीं को जाता है।

लच्छो जी इनाणियाँ :

जाट स्वभाव की अतियों से सर्वथा मुक्त जाट चरित्र के मोहक तत्त्वों की मुखर अभिव्यक्ति थे लच्छा इनाणियाँ। कर्मठता, उदारता, व्यवहार कुशलता, निर्भीकता तथा हौसले का अद्भुत मिश्रण था उनके चरित्र में। श्रमशील किसान की सादगी, सरलता और स्वाभिमान के प्रतीक पुरुष थे वे। उनके देहावसान पर शहर भोज का आयोजन किया गया था तथा जिले की समस्त जाट पट्टियाँ आमंत्रित थीं।

जीवणमल जी बैंगाणी :

एक सुघड़ व्यक्तित्व के धनी थे। सूझबूझ तथा समय पर सही निर्णय लेने की उनमें अद्‌भुत क्षमता थी। पटसन व्यवसाय के एक सामान्य दलाल की हैसियत से वे उस व्यवसाय के शिखर पर पहुँच गए थे। पटसन व्यवसाय पर उनकी पकड़ इतनी मजबूत हो गई थी कि यह कहा जाता था कि पाट के आज के भाव सामने हैं, कल की बैंगानी जीवनमल जाने। सदाशयी बैंगाणी परिवार के वे अग्र पुरुष थे। वे जयपुर नगर से लाडनूं आए थे।

स्वर साधिका चन्द्री :

चन्द्री रामावत शालीनता की एक बेजोड़ मिशाल थी। उसका मधुर और बुलन्द स्वर ईश्वरीय देन था। जैसा स्वर पाया था, वैसा का वैसा न केवल जीवन पर्यन्त बनाए रखा बल्कि अपनी सतत् साधना से उसमें उत्तरोत्तर निखार पैदा किया। न जाने कितनी महफिलों में उसने अपने स्वर से जान डाली थी। वह इस कस्बे के व्यक्तित्व का एक मोहक अंग थी।

धर्मगुरुओं के निर्देशानुसार जब विवाह आदि मांगलिक आयोजनों पर शहर के प्रमुख सम्प्रदायों ने महफिल लगवाना बन्द कर दिया था, तब उसने श्रेष्ठि वर्ग को जो संकेत दिया था, वह इस प्रकार था -- ''महाजनों! भले ही आप हमें मत बुलाओ। लेकिन हम देवदासियाँ सर्वसुहागण हैं। हमारे शकुन माने जाते हैं। हमारा पगफेरा मंगलदाई है। लेकिन हमारे स्थान पर आपने यह जो नौटंकी का आयोजन शुरु किया है, वह न केवल अभद्र है बल्कि अशुभ लाने वाला है।''

श्री सुखदेव जी गंगवाल :

कतार में ऊँट लादने वाला एक साधारण आदमी इस शहर का सर्वाधिक सम्पन्न व्यक्ति बन गया -- यह तथ्य श्री सुखदेवजी गंगवाल (महत्ता) के अथक परिश्रम और सतत् लगन से घड़े गए चरित्र का सर्वाधिक आकर्षक पहलू है। लाडनू के नए जैन मन्दिर का निर्माण इनके परिवार की ही देन है। इस मन्दिर ने जाने-अनजाने इस शहर की सुन्दरता और शालीनता को एक बहुत बड़ा आयाम दिया है।

श्री सुभान जी सीलावट :

रतनगढ़ में जन्मे और सुजानगढ़ में बसे श्री सुभानजी ने अपने जीवन का सर्वोत्तम समय लाडनू शहर को संवारने में समर्पित किया। बैंगानियों की सभी हवेलियाँ उन्हीं की देखरेख में बनी। इनके अतिरिक्त सेठगणपतरायजी सेठी तथा शोभाचन्दजी भूतोड़िया की हवेलियों का निर्माण भी उन्हीं की सूझबूझ की देन हैं। तत्कालीन राजपुताने में उनके जोड़ का कोई दूसरा कारीगर नही था। अंग्रेजी, फारसी तथा राजस्थानी स्थापत्य का अद्भुत सामंजस्य था उनके मस्तिष्क में। सन्तुलन को परखने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। लाडनू कस्बे में प्रवेश करने वाले हर अजनबी को कितना लुभाया है उनकी बनाई गई हवेलियों ने, इसका ठीक से अन्दाज लगा पाना बहुत कठिन है।

श्री महालचन्दजी बोरड़ :

सम्पन्नता खुशियाँ लाती हैं तथा खुशियाँ बाँटने से बढ़ती हैं। अपने पिताश्री मुल्तानमलजी बोरड़ के मृत्युभोज पर पूरे शहर को न्योतने का आयोजन कर श्री महालचन्दजी बोरड़ ने उपरोक्त कथ्य को चरितार्थ किया था। शहर में ऐसा प्रयास पहली बार हुआ था। सीमित साधनों के उस जमाने में ऐसे आयोजनों को सफल कर देना उच्च श्रेणी के प्रबन्ध कौशल का उदाहरण था। शहर के प्रत्येक वैश्य परिवार को (चार जात – ओसवाल, सरावगी, माहेश्वरी और अग्रवाल) पीतल की एक-एक परात बांटी गई थी। एक आकर्षक कीर्तिमान था।

श्रीमती सूजां :

श्री इन्दरचन्दजी बैंगानी की बेटी सूजां (सुरज बाई) उदारता और निश्छल स्त्रियोचित दर्प की आदर्श मिशाल थी। बोरड़ परिवार द्वारा शहर भोज के रूप में उछाली गई चुनौती उसने बड़े आत्मविश्वास से स्वीकार की थी। अपनी दादी-सा के अठाई (आठ दिन के उपवास) की सफल परिणति पर उसने शहरसारिणी का आयोजन किया। इन्दचन्दजी स्वयं उस अवसर पर कलकत्ता से लाडनू नहीं पहुँच पाए थे। उनको अपनी कार्यकुशल बेटी पर पूरा भरोसा था। सूजां ने उस वृहद् आयोजन को सफल बनाकर उनके विश्वास को सार्थक साबित किया। सूजां के प्रति शहर के आम आदमी का ममत्व भाव स्थापित हो गया था।

संवत् 1974 की महामारी :

उस वर्ष मारवाड़ में अतिवृष्टि हुई थी। प्लेग का प्रकोप भी भयंकर रूप से फैला था। लोगों ने शहर छोड़कर बाहर टीबों पर शरण ली थी। कहते हैं हाथ भर खोदने पर जमीन से पानी निकल आता था। बाहर जाकर बसे परिवारों की सुरक्षा की ठिकाने की तरफ से अच्छी व्यवस्था की गई थी।

इस प्रसंग में अपनी बात पूरी करने से पहले मैं अपना अनुग्रह प्रासंगिक पुस्तक के लेखक श्री छगनलालजी शर्मा के प्रति श्रद्धाभाव से व्यक्त करना चाहूँगा। शहर के व्यक्तित्व को जिस निश्छल भाव से उन्होंने चित्रित किया है, वह अति प्रशंसनीय प्रयास है। ऐसा प्रतीत होता है कि कस्बा अपनी समग्रता में लेखक के मानस पटल पर फैला पड़ा है। लेखक की संवेदनशील दृष्टि कस्बे की हर गली, नुक्कड़ और चौराहे पर पसरी प्रतीत होती है। निःसन्देह संवेदनशीलता का यह विस्तार तत्कालीन कस्बे के निवासियों में विद्यमान परस्पर संवाद की एक सुन्दर व्यवस्था का ही प्रति

एक-दूसरे से मिलते रहना, एक-दूसरे के सुख-दुःख में साझीदार बने रहना तथा आत्मीयता से बातचीत करना उस जमाने के लोगों का संस्कारगत स्वभाव था।

ठा. विजयसिंह जी के तीन ठुकराणियां थी। पहली शेखावतजी, दूसरी देवड़ीजी तथा तीसरी भटियाणी जी। ठा. विजयसिंह जी निःसन्तान रहे।

XVII

ठाकुर श्री बालसिंह (वि. सं. 1985-2012)

ठाकुर बालसिंहजी संवत् 1985 तद्नुसार ई. सन् 1928 में लाडनू की गद्दी पर बैठे। वे अति शान्त और सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके कार्यकाल में कस्बे में परस्पर कौमी सद्भाव बना रहा। ठाकुर साहब का कार्यकाल आधुनिक सुधारों का भी कार्यकाल माना जाता है। रेल, डाक व तार विभाग की सेवाओं तथा आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं का इसी काल-खण्ड में कस्बे में समावेश हुआ। शिक्षण संस्थाएँ क्रमोन्नत हुई। शहर में नगरपालिका की स्थापना हुई। सामाजिक और राजनैतिक चेतना भी प्रखरत्तर बनी। समय के साथ कस्बा आगे बढ़ने लगा।

संयोग से ठाकुर साहब बालसिंहजी का कार्यकाल देश की आजादी के संघर्ष का भी चरम उत्कर्ष काल था लेकिन लाडनू ठिकाणे की तरफ से ऐसा कोई कदम नहीं उठाया गया था जो जन-भावना के प्रतिकूल हो। ठाकुर साहब ने बेगार जैसी प्रथा का भी बड़ी सूझ-बूझ से उपयोग किया। यही कारण था कि शासक घराना किसी तरह के प्रतिकूल जन-आक्रोश से बचा रह पाया।

मारवाड़ के तत्कालीन महाराजा श्री उम्मेदसिंहजी के साथ भी ठाकुर साहब के अच्छे सम्बन्ध थे। महाराजा उम्मेदसिंहजी स्वयं भी उदारचेता शासक थे। वे जानते थे कि आजादी के लिए उपजा यह संघर्ष समय की आवाज है। इसका सामना करना किसी भी रूप में समझदारी नहीं। आँधियाँ मात्र पत्थर फेंकने से नहीं रूकती। फिर भी अंग्रेजों के प्रति वफादारी के लिए राजपूताने के प्रायः सभी राजघराने वचनबद्ध थे। जोधपुर राज के साथ लाडनू ठिकाणे ने भी इस विश्वास को बखूबी निभाया।

अंग्रेजी राज और देशी रियासतें :

प्रायः सभी देशी रियासतों के शासन अंग्रेजी ताज के अधीन थे। इन रियासतों की गतिविधियों पर अंग्रेजी राज अपने पोलिटिकल एजेण्ट, रेजीडेण्ट, ए.जी.जी. तथा रीजेंसी कौंसिल के माध्यम से अपना नियंत्रण रखता था। स्वतंत्रता की इस कीमत पर राजा लोग अपनी रियासत में सुरक्षित थे। यद्यपि वे अपने अधिकारों का उपयोग शासन व्यवस्था के लिए निर्धारित संवैधानिक ढाँचे में ही कर सकते थे लेकिन अपने निजी सुख व एशो-आराम के लिए वे पूर्ण स्वतंत्र थे।

देशी रियासतों की करीब 80 प्रतिशत जनता जागीरदारों के आधीन थी। ये जागीरदार अपने कोष की पूर्ति के लिए मनमाने तरीके अपना लेते थे। आम नागरिक के पास मौलिक अधिकार जैसी कोई चीज नहीं थी। अनेक संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भी कभी-कभी इन शासकों का अहम निरंकुशता की सीमा तक पहुँच जाता था। मारवाड़ रियासत में उदार शासकों की भी कमी नहीं थी। सौभाग्य से लाडनू कस्बे को उदार शासकों की ही परम्परा मिली।

अंग्रेजों के सान्निध्य का एक बड़ा लाभ अन्य रियासतों के साथ मारवाड़ रियासत को भी मिला। रियासत में कानूनी राज की दिशा में अच्छी प्रगति हुई। मारवाड़ के शासकों का विलायत आना-जाना प्रारम्भ हो गया था। दोनों महायुद्धों में मारवाड़ की सैनिक टुकड़ियों ने भी अंग्रेजों की तरफ से भाग लिया था। अनेक आयोजनों पर सर प्रताप कई बार इंग्लैण्ड की यात्रा कर चुके थे। उनके साथ मारवाड़ के कतिपय जागीरदारों को भी यह सुयोग मिला।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के साथ आधुनिक राजनैतिक विचारधाराओं से भी रियासती जनमानस परिचित हुआ। कस्बे का एक बड़ा व्यापारी वर्ग बंगाल तथा आसाम तक पहुँचने लगा। आधुनिक युरोप की हवा अंग्रेजों के साथ बंगाल के बड़े नगर कलकत्ता तक पहुँचती, वहाँ से प्रवासी मारवाड़ी अपने साथ अपने-अपने रियासती अंचलों तक ले आते। परिवर्तन का एक माहौल पूरे मारवाड़ पर छाने लगा।

लाडनू की भौगोलिक स्थिति भी महत्त्वपूर्ण है। यह कस्बा मारवाड़, थळी प्रदेश और शेखावाटी के उस बिन्दु पर स्थित है, जहाँ तीनों अंचल एक-दूसरे से मिलते हैं। नतीजन मारवाड़ की आदर्शोन्मुख दृष्टि, थळी प्रदेश की सजकता और शेखा... व्यावसायिक प्रतिभा की अनमोल थाती अनायास ही कस्बे को विरासत में



महाराजाधिराज

श्री उम्मेदसिंह जी



लाडनूं ठाकुर श्री बालसिंह जी

इन सबका प्रत्यक्ष प्रभाव यह पड़ा कि वैचारिक क्रान्ति की एक प्रबल लहर यहाँ बहने लगी। आधुनिक परिवर्तनों की एक सहज ललक कस्बे में उत्पन्न हुई। ठाकुर बालसिंह जी का कार्यकाल इन सब परिवर्तनों का साक्षी बना। इस विकास क्रम की एक संक्षिप्त-सी रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत है—

एक उपयोगी संस्था का जन्म :

श्री मूलचन्द जी सिंघी की प्रेरणा से लाडनू में संवत् 1985 की बसन्त पंचमी (ई. सन् 1929) को श्री रामआनन्द गौशाला की स्थापना हुई। ठा. बालसिंह जी ने संवत् 1986 की पोष कृष्णा 12 को लाडनू शहर के दक्षिण पार्श्व में 1,49,101 वर्ग गज जमीन दान में देकर इस संस्था को एक स्थाई आधार थमा दिया। वर्तमान में यहाँ करीब एक हजार गाएँ संरक्षित व पोषित हैं। शहर में गो दूध की आपूर्ति का यह एक अच्छा माध्यम है। यह शहर की आदर्शत्तम संस्थाओं में से एक है।

रेल व समुचित डाक तार सुविधाओं का समावेश :

ईसा की बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशक में मेड़ता, डेगाना-रतनगढ़ रेल लाईन का काम शुरु हो चुका था। दुर्भाग्य से इस योजना में लाडनू कस्बा शुमार नहीं हो पाया था। जसवंतगढ़ से एक छोटा टुकड़ा अलग से लाडनू आता था। ठा. बालसिंहजी के जोधपुर महाराजा श्री उम्मेदसिंहजी से अच्छे सम्बन्ध थे। अतः उनके राज्यकाल (ई. सन् 1932) में इस भूल को सुधार दिया गया तथा उसे लाडनू होकर जसवंतगढ़ कर दिया गया। रेल लाईन से सीधे जुड़ जाने के बाद लाडनू का विकास द्रुतगति से होने लगा। कस्बे में डाक तार सेवाओं की समुचित व्यवस्था भी इसी कालखण्ड में उपलब्ध हुई।

युग का आर्थिक तानाबाना :

कस्बे में सभी आय वर्ग के लोग निवास करते रहे हैं। अधिकांश स्थानीय आबादी कृषि, घरेलू उद्योगों, मजदूरी व धान, ऊन आदि के व्यवसायों से जुड़ी हुई थी। नौकरी तथा वृत्तिपेशा लोगों की भी यहाँ काफी संख्या थी। अकाल के समय किसान पशुओं को लेकर मालवा या सिंध चले जाते थे। खाती, सुनार, लुहार कामगार लोग काम की तलाश में दक्षिण में महाराष्ट्र की सीमाओं को लांघ जाते। नौकरी की खोज में ज्यादातर लोग पूर्व (बंगाल, आसाम) की तरफ गए। नौकरी

थी। पत्र-व्यवहार में देवनागरी का ही एक रूप प्रचलन में था। महाजन वर्ग हिसाब-किताब और पत्र व्यवहार में सांकेतिक लिपि (मोडिया) का उपयोग करते थे। देश के महानगरों में कस्बे की महाजन कोमों ने व्यवसाय में अच्छा धन कमाया। कस्बा सम्पन्न बनता गया।

सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश :

कस्बे की सुरक्षा सुनिश्चित थी। जागीरदारी शासन भी आतंक रहित था। मीठा पानी सुलभ था। कस्बा रेल से जुड़ गया था अतः कस्बे का विकास शीघ्र गति से होने लगा। दूर-दराज के गाँवों से भी लोग यहाँ आकर बसने लगे। महाजन परिवार बड़ी संख्या में यहाँ आकर बसे। इन सबके साथ वृत्तिपेशा जातियाँ भी यहाँ आई। अनेक ब्राह्मण परिवार भी यहाँ बसने को आकर्षित हुए। नतीजन कस्बे का फैलाव दिन-ब-दिन विस्तार पाता गया।

महाजनों ने अपने आवास के लिए जाली-झरोखों वाले बड़े-बड़े भवन बनवाए। वह लम्बी बारातों और शान-शौकत का युग था। शानदार बनौरियाँ, बड़े जीमनवार बड़प्पन का मानदण्ड था। अम्बा बाड़ियाँ, रथ, घोड़े तथा ऊँटों पर चाँदी के हौदे बारात बनौरियों की शोभा बढ़ाते थे। बड़े घरों में विवाह आदि अवसरों पर बादाम या मिश्री बाँटने का रिवाज था। पूरे शहर को भोजन पर आमंत्रित करना एक बड़ी महत्त्वाकांक्षी बात थी। शहर-सारिणी का दर्जा गाँव भोज से भी बड़ा माना जाता था। इस आयोजन में चारों दिशाएँ आमंत्रित होती थी। कोई भी आओ और भोजन कर जावो। गाँव के जमीदार को अपने घर आमंत्रित करने का अर्थ होता था उसके मातहत सभी गाँवों के वासियों को भोजन का न्यौता देना। ऐसे आयोजन भी इस शहर ने देखे। विवाह, शादी या खुशी के अन्य अवसरों पर महफिलों का आयोजन होता था। चन्द्री उस जमाने की लोकप्रिय महफिल गायिका थी। बीकानेर व जोधपुर से भी गायिकाएँ बुलाई जाती थीं। बीकानेर की अल्लाजिलाई बाई तथा जोधपुर की गौरी उस जमाने की लोकप्रिय गायिकाएँ थी। मांढ राग में 'केसरिया बालम' की तर्ज पर जब वे आलाप उठाती तो एक अद्‌भुत समा बंध जाता था। जीवन में रंग था, रस था और सर्वोपरि था जीने का उत्साह।

मारवाड़ी खयालों के मंचन ने भी लोकरंजन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। शेखावाटी अंचल के नानू तथा दूल्हा राणा के खयाल भी अनेक बार इस

शहर में मंचित हुए। ढलती रात में जब दूल्हा राणा लम्बी टेर छेड़ता तो मीलों के फासले झंकृत हो उठते थे। शहर में रामलीला के मंचन की भी परम्परा थी। जैन आख्यान मैनासुन्दरी का मंचन भी बड़े जैन मन्दिर के पास सरावगियों के मौहल्ले में अनेक बार हुआ। रावण हत्ये की धुन पर डूँगजी-जवारजी गाते-गाते भोपे भोपियाँ झूम उठते थे। पाबू जी की फड़ वाचन तथा निहाल दे का कथा वाचन भी आल्हादकारी आयोजनों में से थे। लोक कथाकारों ने महाभारत तथा रामायण की कथाओं को एक अद्‌भुत लोक छटा से मण्डित कर दिया था। इन सबसे जीवन उद्‌बोधित होता था।

लोकगीत और नृत्य :

व्रत, तीज, त्यौहार हमारे सांस्कृतिक जीवन के सबल आधार हैं। होली की मस्ती जीवन को एक स्वस्थ अंगड़ाई का अहसास करा जाती है। दीपमालिका के दीप प्रतिवर्ष प्रकाश की एक नई रेखा खींच जाते हैं। ईद दिलों को जोड़ने का एक अद्‌भुत रसायन है। गणगौर पूजन का पखवाड़ा माहौल को उत्साह से भर देता है और कार्तिक मास सम्पूर्ण वातावरण को कृष्णमय कर देता है।

लोकगीत सिर्फ गाने का आनन्द है। यह आनन्द जब पारम्परिक आस्थाओं के साथ लयबद्ध हो जाता है तो युगों-युगों तक उसके रस की धारा बहती रहती है। लोकसंगीत के रस में एक समग्रता है। हृदय के अनेक सूक्ष्म सूत्रों से उसे जीवन्तता मिलती रहती है।

हमारी संस्कृति में कृषि संस्कारों की प्रधानता रही है। दीपावली के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा होती है। गोवर्धन पूजा हमारी पशुपालकता का प्रतीक है। होली के दूसरे दिन खेत पूजा होती है। प्रतीकात्मक खेतों में बाजरी आदि धानों की बुआई की जाती है। ''सीवां कोसा सूं आई बादळी, आय भिजोयो म्हारो लहरियो ओ राज'' धुनों में रचे गए ये गीत हमारी जन-संस्कृति के प्राण हैं। पूरा सावण मास रस भरे गीतों से गूंज उठता था। ब्यालू के बाद प्रायः हर मोहल्ले में किसी निर्धारित स्थान पर महिलाओ का मजमा जमता था। आधी रात ढ़ले तक गीतों का दौर चलता रहता था। भादों के मध्य तक वर्षा गीतों और तीज के गीतों की झड़ी लगी रहती थी। होली, शीतला, गणगौर—गीतों बिना कोई त्यौहार नहीं था।

रातीजगे के गीतों का अपना अलग संसार था। जैतलदे, राणा काछबा, लखी बंणजारा, बणजारी आदि गीत सब कुछ प्रांजल बना देते थे। मन जब किसी तनाव से बोझिल हो जाता था तो महिलाएँ पींपली,कुरजां, सपना जैसे गीत गाने बैठ जाती थीं। घूमर, गोरड़ी राजस्थानी लोक-नृत्य की विधाएँ हैं। घूमर में एक झरने का-सा प्रवाह है। गोरड़ी में वर्षा की बूँदों की रिमझिम। गीत और नृत्य में शिरकत करने की ललक रहती थी। प्रत्येक व्यक्ति सांस्कृतिक मंच का क्रियाशील अंग था।

नगरपालिका की स्थापना :

कस्बे में ओसवाल हितकारिणी सभा की स्थापना ई. सन् 1919 में हो गई थी। शहर में ओसवाल समाज के कुछ उत्साही युवकों का एक दल बहुत सक्रिय था। उनके कार्यकलापों में राजनैतिक चेतना थी, सामाजिक पुनरुत्थान का भाव था, साहित्यिक रुझान था। अध्ययन के प्रतिप्रेम था। शहर के अभाव अभियोगों के प्रति सजगता थी। शहर में नगरपालिका की स्थापना का स्वर वहीं से उठा। इस दिशा में किए गए श्री चम्पालालजी फूलफगर के प्रयत्नों को विशेष सराहना मिली। ई. सन् 1933 में मारवाड़ म्युनिसीपल एक्ट के तहत कस्बे में नगरपालिका की स्थापना हो गई। इसके प्रथम अध्यक्ष ठाकुर बालसिंह जी मनोनीत हुए। शहर में सामूहिक सफाई का विचार उसी कालखण्ड की देन है। दूसरी बार श्री ठाकुर साहब ने कस्बे के लोकप्रिय नेता श्री सुखदेव (दीपंकर) शर्मा को कस्बे की नगरपालिका का अध्यक्ष मनोनीत किया।

आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं का शुभारम्भ :

गत सदी के चौथे दशक में कस्बे में आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं का समावेश हो गया। सेठ गणपतरायजी सरावगी के आर्थिक सहयोग से शहर का पहला आधुनिक अस्पताल बना। इसके प्रथम चिकित्सक डॉ. देवीसिंह थे जो वर्तमान लाडनू तहसील के जेसलाण गाँव के रहने वाले थे। धीरे-धीरे इसी अस्पताल में शल्य चिकित्सा की सुविधाओं का विकास हुआ। श्री गणपतरायजी ने अपने जीवनकाल में अपनी निजी देखरेख में राज्य सरकार की मोबाइल शल्य चिकित्सा इकाई के अनेक शिविर शहर में आयोजित किए। कुछ ही समय बाद श्री सुखदेव महिला अस्पताल भी अस्तित्व में आ गया। इन दोनों ही अस्पतालों का उद्घाटन जोधपुर महाराजा उम्मेदसिंहजी के हाथों सम्पन्न हुआ।

एरोड्रोम :

उस समय तक जोधपुर में हवाई जहाज का पदार्पण हो चुका था। लाडनू शहर की पश्चिम दिशा में मगरे की पक्की जमीन पर एक एरोड्रोम बना। महाराजा उम्मेदसिंहजी लाडनू की अपनी प्रथम यात्रा में हवाई जहाज से ही पधारे थे। शंकु के आकार का एक संकेत चिह्न वहाँ लगा रहता था। दूसरे महायुद्ध के दौरान उसे इसलिए हटा दिया गया कि कोई दुश्मन का जहाज उसका गलत अर्थ न लगा ले।

शिक्षा प्रसार :

शहर की प्राथमिक स्तर की तीन प्रमुख स्कूलें—ओसवाल स्कूल, महावीर जैन स्कूल तथा जीवन स्कूल क्रमशः मिडिल स्तर तक क्रमोन्नत होकर आजादी मिलने तक हाई स्कूलें बन चुकी थीं। बालिका शिक्षा में भी गति हुई। श्री पूनमचन्दजी भूतोड़िया के आर्थिक सहयोग से श्री सूरजमल बालिका विद्यालय की स्थापना हुई। कालान्तर में श्री गणपतरायजी के आर्थिक सहयोग से श्रीमती केसरदेवी राजकीय कन्या विद्यालय तथा श्री फूलचन्दजी पाण्ड्या के आर्थिक सौजन्य से श्रीमती जिनकूदेवी कन्या पाठशाला अस्तित्व में आई। महिला शिक्षा के प्रसार में यह एक क्रान्तिकारी कदम था। बैंगाणी कॉलेज की स्थापना उच्च शिक्षा के लिए वरदान साबित हुई।

स्वास्थ्य सुधार सेवाओं का समावेश, ओसवाल स्वास्थ्य सदन :

कस्बे में स्वास्थ्य सदन की स्थापना का विचार ओसवाल हितकारिणी सभा की देन था। इसकी स्थापना ई. सन् 1934 में हुई थी। इसका पहला प्रदर्शन गिरधारीमलजी बैद के नोहरे में ई. सन् 1935 में सम्पन्न हुआ। इसके वार्षिक अधिवेशन कस्बे के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना माने जाते थे। लोग बेसब्री से उन कार्यक्रमों का इन्तजार करते थे। श्री दौलतराम बोथरा, सुमेरमल बोरड़, मोहनलाल गोलछा आदि जब अपने कसरती शरीरों का प्रदर्शन करते थे तो क्लासिकल पहलवानों की याद ताजा हो जाती थी।

उस समय के ओसवाल हितकारिणी सभा के प्रभावशाली कार्यकर्त्ताओं के रूप में गिरधारीमलजी बोथरा, गिरधारीमलजी बैद, जसवन्तमलजी बोरड़, धनपतरायजी बोथरा, धनराजजी बैद, श्रीचन्दजी बैद, रिधकरणजी भंसाली, पूनमचन्दजी गोलछा आदि के नाम प्रमुखता से स्मरण किए जाते हैं। उपरोक्त व्यायामशाला की स्थापना मे समय के युवा कार्यकर्त्ता श्री अमीचन्द बरमेचा का योगदान सर्वोपरि रहा। वे

कलकत्ता के व्यायाम शिक्षक श्री मोनी रॉय से प्रशिक्षित होकर आए थे। संयोग से बंगाल के ही एक कुशल व्यायाम शिक्षक श्री अमूल्य रतन बनर्जी की सेवाएँ इस संस्था को मिल गई। श्री बनर्जी अपनी माताजी के साथ लाडनूं में रहे। कहते हैं वे बंगाल के किसी क्रांतिकारी दल से सम्बन्ध रखते थे तथा लाडनूं में भूमिगत रूप से रहे।

महावीर हीरोज :

इस संस्था की स्थापना सन् 1936 में हुई थी। इसकी स्थापना में महावीर स्कूल के तत्कालीन प्रधानाध्यापक आदित्य नारायणजी की प्रेरणा सर्वोपरि रही। इसके संस्थापक सदस्यों के रूप में सर्वश्री निहालचन्द झंवर, रामकुमार मूंधड़ा, भंवरलाल पाण्ड्या, रामेश्वर कन्दोई, जयचन्दलाल पाटणी, सोहनलाल बड़जात्या, चम्पालाल मच्छी और जेठमल शर्मा के नाम गिनाए जाते हैं। आगे चलकर श्री महालचन्द पाटणी इसके कार्यकलापों से जुड़ गए। उस समय कस्बे में खेल-कूद के सम्बन्ध में एक उत्साहवर्धक माहौल था। उस भाव-भूमि में जन्मी संस्था महावीर हीरोज के प्रारम्भिक उद्देश्यों में खेल प्रेम की भावना की प्रधानता होना स्वाभाविक था। कालान्तर में अन्य सामाजिक गतिविधियाँ भी इसकी कार्यसूची में जुड़ गई।

ए.पी. कोक्स :

मिस्टर कॉक्स तत्कालीन मारवाड़ रियासत के शिक्षा विभाग के निर्देशक थे। शारीरिक शिक्षा को उन्होंने पाठ्यक्रम में जोड़ दिया था। बालचर आन्दोलन के वे इस रियासत में जनक थे। विद्यार्थियों और शिक्षकों की देशभ्रमण की यात्राओं को वे बहुत प्रोत्साहित करते थे तथा स्वयं उनमें शरीक होते थे।

लाडनूं की शिक्षण संस्थाओं के निरीक्षण हेतु वे अनेक बार यहाँ आए। उनका रेलगाड़ी में विशेष सेलून जुड़ता था। सन् 1942 में भी वे लाडनूं आए। अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होने का भाव सर्वत्र प्रबल हो रहा था। छात्रों ने पत्थर फेंक कर उनकी सेलून के कांच तोड़ दिए थे। उन्होंने कुछ भी बुरा नहीं माना। किसी तरह की राजनैतिक दुर्भावना उनमें बिल्कुल नहीं थी, न ही उन्हें अपनी गोरी चमड़ी का गुमान था। छात्रों के साथ वे उनके दोस्त की तरह घुल-मिल जाते थे। देश आजाद होने के बाद वे न्यूजीलैण्ड चले गए।

राष्ट्रीय चेतना का विकास :

अंग्रेजों ने सन् 1857 की क्रान्ति को बेरहमी से कुचल कर गदर घोषित कर दिया

था। दिल्ली में मुगल साम्राज्य का अन्त हो चुका था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज भी समाप्त कर दिया गया। भारत की शासन व्यवस्था सीधी अंग्रेज संसद के आधीन हो गई थी। महारानी विक्टोरिया साम्राज्ञी बनी। यद्यपि धार्मिक स्वतन्त्रता का वादा किया गया था परन्तु सत्ता पर अपनी पकड़ अंग्रेजी सरकार ने मजबूत कर ली थी।

अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार बढ़ने लगा। आवागमन तथा संचार साधन धीरे-धीरे विकसित होने लगे। विशेष रूप से सैनिक छावनियों तक यह विकास तीव्र गति से हुआ। विकास की दिशा यद्यपि इस उद्देश्य तक ही सीमित रही कि भारत जैसे विशाल उपनिवेष को पूरी तरह नियन्त्रण में कैसे रखा जा सके फिर भी आम आदमी को इन सुविधाओं का लाभ मिला। नतीजन सामाजिक तथा राजनैतिक चेतना विकास का दायरा बढ़ने लगा। सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। अंग्रेजी राज से मुक्त होने का विचार प्रबलत्तर होने लगा।

दक्षिण अफ्रीका में एक अहिंसक सत्याग्रही के रूप में सफलता प्राप्त करने पर भारत के राष्ट्रीय मंच पर गाँधी का अवतरण हुआ। तब से कॉंग्रेस का अधिकांशतः नेतृत्व उन्हीं के हाथ में रहा। जलियावाला बाग के क्रूर काण्ड ने सारे देश को आन्दोलित कर दिया था। 1927 में साइमन कमीशन का विरोध राष्ट्रव्यापी हड़ताल से किया गया। 1930 में नमक सत्याग्रह ने देश की राजनैतिक चेतना को एक नई गति दी। उसी वर्ष रावी तट पर लाहौर में हुए कॉंग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति के ध्येय की घोषणा उस समय के प्रखरत्तम नेता जवाहरलाल नेहरू ने की।

सन् 1942 में 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आन्दोलन ने अंग्रेजी शासन को झकझोर दिया। इन सभी आन्दोलनों का कठोरता और निर्दयता से दमन किया गया। नेताओं और स्वतन्त्रता सैनानियों को वर्षों तक कारावास का दण्ड भुगतान पड़ा। दूसरे महायुद्ध की समाप्ति (1945) के बाद परिवर्तित अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के दबाव, व्यापक जन आक्रोश तथा भारतीय सैनिकों के सम्भावित विद्रोह की आशंका से अंग्रेज भारत छोड़ने की दिशा में सोचने को मजबूर हुए।

देश के स्वतन्त्रता संग्राम में लाडनू की भूमिका :

मारवाड़ की हैसियत एक देशी रियासत के समान थी। इसकी राजधानी जोधपुर थी। लाडनू इस रियासत का एक जाना-माना कस्बा तथा जागीर थी। आजादी के संघर्ष

काल में जोधपुर के श्री जयनारायण व्यास एक लोकप्रिय नेता के रूप में उभरे। सन् 1938 में श्री व्यास के नेतृत्व में मारवाड़ लोक परिषद् की स्थापना हुई। इस राजनैतिक संगठन की शाखाएँ पूरी रियासत में गठित की गई। इसी क्रम में लाडनू में भी लोक-परिषद् की शाखा स्थापित हुई। इसके प्रारम्भिक सदस्यों की सूची में सर्वश्री चैनदास स्वामी, पं. छगन पारीक, महालचन्द बोथरा, तोलाराम नाई, रसूल मोहम्मद लीलघर, झूमरमल बड़जात्या, चम्पालाल फूलफगर, जोधराज बैद, जौहरीमल भंसाली, मानमल सिंघी, मोहनलाल गोलछा और सूरजमल मूंथा (गंगवाल) थे।

श्री जयनारायण व्यास सन् 1934-35 से ही लाडनू आने जाने लग गए थे। यहाँ के कार्यकर्त्ताओं की लगन तथा मनोबल ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। अपनी राजनैतिक गतिविधियों को संचालित रखने के लिए उन्हें लाडनू से आर्थिक सहयोग भी मिलता था। यहाँ के विचार शील लोग नए विचारों को ग्रहण करने को सदैव तत्पर रहते थे।

लोक-परिषद् का प्रथम अधिवेशन लाडनू में :

सन् 1939 में मारवाड़ लोक-परिषद् का प्रथम वृहद् अधिवेशन लाडनू में सम्पन्न हुआ। यह अधिवेशन राष्ट्रीय काँग्रेस स्तर का था। इसमें श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, ठक्कर बापा, चोइथराम गिडवाणी आदि राष्ट्रीय स्तर के नेताओं के साथ मारवाड़ के लोकप्रिय नेता श्री जयनारायण व्यास, मथुरादास माथुर, सुमनेश जोशी, रणछोड़दास गट्टाणी आदि भी पधारे।

लाडनू के अग्रणी कार्यकर्ता श्री चैनदास स्वामी इस अधिवेशन के सभापति बने। श्री झूमरमल बड़जात्या इसके स्वागताध्यक्ष थे। शहर के सभी सम्पन्न लोगों ने खुलकर आर्थिक सहयोग दिया। श्री गट्टाणी जी मारवाड़ लोक-परिषद् के अध्यक्ष चुने गए। स्वयं सेवक दल का नेतृत्व युवा नेता मथुरादास माथुर के हाथ में था। इस अधिवेशन की सफलता से राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं का मनोबल बहुत बढ़ गया।

उत्तरदायी शासन की माँग :

इसी क्रम में 25 मई, 1942 से उत्तरदायी शासन की माँग को लेकर जोधपुर में आन्दोलन शुरु किया गया। रियासत के प्रमुख क्षेत्रों तथा कस्बों से सत्याग्रहियों के जत्थे जोधपुर पहुँचे। लाडनू के जत्थे में स्वामी चैनदास, मानमल सिंघी, चौ. गणेशाराम पट्टीदार (खानपुर), चुनीलाल शर्मा (निम्बी जोधां), चौ. ऊमाराम (रोडू), रतनलाल

सोनी (लाडनू), भंवरलाल हरिजन (लाडनूं) शामिल थे। इस आन्दोलन के तीसरे डिक्टेटर स्वामी चैन्दास नियुक्त हुए। निषेधाज्ञा भंग करने के आरोप में इन सत्याग्रहियों को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया।

स्वामी चैनदास :

लाडनू कस्बे और इसके आस-पास के क्षेत्र में राजनैतिक चेतना विकास में स्वामी चैनदास की भूमकिा चिर स्मरणीय रहेगी। स्वामी चैनदास का जन्म लोसल कस्बे के एक निर्धन किसान परिवार में हुआ था। वे जन्म से ही शारीरिक दृष्टि से विकलांग (कुबड़े) थे। मजबूरी में माता-पिता ने बालक को लाडनू के सत्यनारायण मन्दिर में पलने हेतु छोड़ दिया। बालक ने काम चलाऊ शिक्षा के साथ आयुर्वेद का भी सामान्य-ज्ञान हासिल कर लिया।

भिक्षा के रूखे-सूखे टुकड़े खाकर पलने वाला यह विकलांग बालक एक क्रान्तिकारी पुरुष के रूप में उभरा। लोक-परिषद् के राजनैतिक मंच के सहारे उसने रियासती राज से लोहा लिया। स्वामी चैनदास में संगठन की अद्‌भुत क्षमता थी। फलस्वरूप वे एक संघर्षशील सेनानी तथा कुशल नेता के रूप में शहर के राजनैतिक मंच पर प्रतिष्ठित हुए। गाँवों में भी जन-चेतना और विचार क्रान्ति के अग्रदूत बने। ऐसा निष्ठावान तथा निडर नेता मिलना किसी भी कस्बे के लिए गौरव की बात है।

ओसवाल सभा :

लाडनू के सामाजिक चेतना विकास में ओसवाल समाज की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण रही। यह लाडनू कस्बे का सर्वाधिक जागरूक और संगठित समाज रहा है। कुछ उत्साही ओसवाल नवयुवकों के हाथ ओसवाल हितकारिणी सभा की असहमति में उठे। उन्होंने ओसवाल सभा के रूप में एक नया संगठन (ई. सन् 1939) में गठित किया। यह अपनी अग्रसर संस्था के प्रति कोई विद्रोह नहीं था। हर विकास प्रक्रिया में इस तरह के कदम उठना स्वाभाविक है।

सन् 1939 में 'ओसवाल सभा' की पहली बैठक बच्छू भवन में लाडनू के तत्कालीन कामदार श्री अवधबिहारी की अध्यक्षता में हुई। उसी वर्ष सावण सुदी तीज को इसकी दूसरी बैठक मोहनलाल जीवणमल दूगड़ की महफिल में हुई। इस सभा के कन्वीनर धनराज कठोतिया (बी.कॉम.) थे। इसके सभापति महालचन्द भूतोड़िया, मंत्री क्रमशः भंवरलाल बैद, अमीचन्द बरमेचा तथा नथमल कठोतिया निर्वाचित हुए। कोषाध्यक्ष

श्री दौलतराम पगारिया चुने गए। अन्य कार्यकर्त्ताओं में सदासुख कोठारी, जौहरीमल भंसाली, पूसराज भूतोड़िया, मेघराज नाहटा, माणकचन्द बोकड़िया आदि थे।

इस संगठन ने लाडनूं के चहुँमुखी विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जीवण विद्यालय, जौहरी पुस्तकालय, जौहरी शिल्पशाला, यंग फ्रैण्ड्स एसोशिएसन आदि संस्थाओं की स्थापना का श्रेय इसी सभा को जाता है। कालान्तर में ओसवाल हितकारिणी सभा का विलय ओसवाल सभा के इस वृहत फैलाव में हो गया। पहली पट्टी में इसका निजी भवन है, जहाँ एक पुस्तकालय व वाचनालय का संचालन हो रहा है।

जीवण विद्यालय :

ओसवाल सभा की पहली गतिविधि जीवण विद्यालय के रूप में सामने आई। जीवण विद्यालय की स्थापना संवत् 1997 (ई. सन् 1940) बैशाख सुदी 3 (अक्षय तृतीया) को हुई। इस विद्यालय की भूमिका जौहरीमल भंसाली ने तैयार की थी। इसका पाठ्यक्रम सिर्फ व्यावहारिक और जीवनोपयोगी शिक्षा तक ही सीमित रखा गया। हिन्दी, अंग्रेजी, महाजनी, सामान्य ज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान के विषय पाठ्यक्रम में शामिल थे। खेलकूद तथा साप्ताहिक भाषण सभाओं का भी प्रावधान रखा गया। श्री सदासुख कोठारी इसके प्रथम प्रधानाध्यापक बने। श्री जौहरीमल भंसाली व मालचन्दजी महाराज क्रमशः अंग्रेजी और महाजनी पढ़ाते थे। सुमेरमल बोकड़िया, पूनमचन्द बोकड़िया, खींवराज सुराना, कन्हैयालाल कोचर आदि छात्र इसकी अग्रणी पंक्ति में थे। श्री खींवराज सुराणा व कन्हैयालाल कोचर इस शहर के पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने विलायत की यात्रा की।

वाणिज्य विषय के शिक्षण की एक उपयोगी योजना :

उपरोक्त क्रम में ही श्री जीवन दरबार कोमर्सियल स्कूल की स्थापना हुई। मारवाड़ शिक्षा विभाग द्वारा संचालित वाणिज्य विषय की यह एक उपयोगी योजना थी जिसमें तीन वर्ष का डिप्लोमा पाठ्यक्रम रखा गया। क्रमशः जूनियर, सीनीयर और हायर। इसकी जूनियर कक्षा में प्रवेश पाने के लिए मारवाड़ शिक्षा विभाग की मिडिल की परीक्षा पास करना जरूरी था। उपरोक्त तीनों डिप्लोमा प्राप्त कर लेने वाले छात्र का स्तर वाणिज्य विषय में स्नातक स्तर का हो जाता था। यह योजना भी बहुत लोकप्रिय हुई। सम्पूर्ण राजपूताने में यह अपनी तरह की पहली योजना थी। स्कूल का छात्रावास बाहरी छात्रों से भरा रहता था। जोधपुर, मेड़ता, नागौर, मोलासर, डीडवाना आदि स्थानों से छात्र लाडनूं अध्ययन के लिए आने लगे। श्री मूलराजजी व्यास इसके प्रधानाध्यापक थे। वे बड़े समर्पित और लोकप्रिय शिक्षक थे। इस विद्यालय के अनेक

छात्र बहुत सफल रहे। खाटू के श्री बनवारीलाल जोशी ई. सन् 1946 से 49 तक यहाँ शिक्षारत रहे। शिक्षण समाप्ति के बाद वे पुलिस विभाग में उच्च पद पर आसीन हुए। ब्रिटेन में भारत हाई कमीशन में मुख्य सुरक्षा अधिकारी के पद पर रहे। भूतपूर्व प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी के सुरक्षा दस्ते के वे मुखिया रहे। स्व. इन्दिरा गाँधी के विश्वास पात्र अधिकारियों में उनकी गिनती होती थी। राज्य के खुफिया विभाग के महानिरीक्षक पद से वे सेवानिवृत्त हुए। राज्य के मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष बने। वर्तमान में वे दिल्ली के लेफ्टीनेट गवर्नर हैं। श्री जोशी के अतिरिक्त लेड़ी के श्री हरिप्रसाद गाड़ोदिया, देवीलाल सारड़ा, जसवंतगढ़ के श्री मांगीलाल सोमाणी, सीताराम लाहोटी, मोलासर के श्री जुगलकिशोर सोमाणी, डीडवाना के श्री पंसारी व जिले के प्रसिद्ध पूर्व पुलिस अधिकारी श्री समन्दरसिंह राठौड़ ने भी इस विद्यालय से शिक्षा पाई।

जौहरी पुस्तकालय :

इस पुस्तकालय की स्थापना भी उस काल खण्ड की एक महत्ती घटना थी। इस पुस्तकालय में बड़ी उपयोगी पुस्तकों का संग्रह था। इसका एक वाचनालय भी था, जिसमें उस समय की सभी प्रमुख पत्रिकाएँ—विशाल भारत, Modern Review, माधुरी, आजकल तथा सभी प्रमुख दैनिक समाचार पत्र—The Hindustan Times, हिन्दुस्तान, विश्वमित्र आदि नियमित रूप से आते थे। इसका अर्थ भार श्री सागरमलजी बैंगानी वहन करते थे। पहले यह वाचनालय जीवंण विद्यालय भवन में रहा। फिर इसे स्थानीय टाउन हॉल जहाँ वर्तमान में यू.को. बैंक का कार्यालय है, में स्थानान्तरित कर दिया गया। ओसवाल सभा का निजी भवन बन जाने पर इस पुस्तकालय को वहाँ स्थानान्तरित कर दिया गया।

ओसवाल हितकारिणी सभा का भी अपना एक पुस्तकालय था, जिसमें प्राचीन ग्रंथों का अच्छा संग्रह था। बम्बू वाले बैदों के पास भी कानूनी पुस्तकों का अच्छा संग्रह था, जो सबके लिए सुलभ था।

जौहरी शिल्पशाला :

इसके संचालन का अर्थभार भी श्री सागरमलजी बैंगानी ने संभाल रखा था। इस संस्था की स्थापना ई. सन् 1941 में हुई थी। हरियाणा के गाँधीवादी विचारों वाले मास्टर काशीराम की सेवाओं का इस संस्थान को मिलना एक अच्छा सुयोग था। वे निष्ठावान कार्यकर्ता थे। उन्होंने कस्बे के सैकड़ों लोगों को खादी निर्माण

के धन्धे में पारंगत कर दिया था। वे सदैव के लिए इस कस्बे के होकर रहे। इस संस्था में सभी प्रकार का खादी का कपड़ा, कलात्मक गलीचे, दरी तथा निवार बनाने की उत्तम व्यवस्था थी। उत्पादन और प्रशिक्षण साथ-साथ चलते थे। कपड़े के देशव्यापी अभाव के समय इस संस्था ने कस्बे की कपड़े की आपूर्ति में अच्छा योगदान दिया। यह वह जमाना था, जब खादी पहनना अंग्रेजी राज के विरोध का पर्याय माना जाता था।

यंग फ्रेण्ड्स एशोसिएशन :

कस्बे में फुटबाल खेल को लोकप्रिय बनाने का श्रेय एकमात्र इसी संस्था को जाता है। कस्बे में प्रतिवर्ष राजपूताना स्तर की फुटबाल टुर्नामेण्ट्स भी यह संस्था आयोजित करती थी। यह सिलसिला सन् 1946 तक चला। वर्तमान नगरपालिका भवन के पूर्व में स्थित विस्तृत भू-खण्ड पर इस संस्था का खेल मैदान था। उस मैदान का नाम ही एशोसियेशन ग्राउण्ड पड़ गया था। वहाँ एक पक्का टेनिस कोर्ट भी था, जहाँ टेनिस खेलने की भी सुविधा थी। इसकी गतिविधियों का सारा अर्थ भार सागरमलजी बैंगाणी ने सम्भाल रखा था। सदासुखजी कोठारी इसके सचिव थे।

इस प्रसंग में ठाकुर हरिसिंहजी की सेवाएँ कभी भूलाई नहीं जा सकती। ठाकुर हरिसिंह फुटबाल खेल के प्रति समर्पित थे। वे न केवल एक कुशल रेफ्री थे बल्कि प्रशिक्षक की हैसियत भी रखते थे। शाम को प्रतिदिन नियमित रूप से फुटबाल का खेल आयोजित होता था। लाडनू की फुटबाल टीम पूरे राजस्थान में विख्यात हो गई थी। अजमेर में होने वाली अनेक राष्ट्र स्तर की प्रतियोगिताओं में भी इसने भाग लिया और विजयी रही। पूनमचन्द बैंगाणी, जेठमल शर्मा, खींवराज पाण्ड्या, गफूर मोची, बजरंगलाल अग्रवाल, जीतमल जांगिड़, अल्लाउद्दीन सोलंकी, अनोपचन्द माथुर आदि की गिनती शहर के अच्छे खिलाड़ियों में आती थी। हंसराजजी कठोतिया की गिनती राजस्थान के माने हुए गोलकीपरों में होती थी।

एशोसिएशन ग्राउण्ड अनेक सामाजिक और राजनैतिक आयोजनों का भी स्थल बना। कस्बे में किसी भी तरह का बड़ा प्रदर्शन, सभा सम्मेलन इसी मैदान में होता था। कुछ माघ महोत्सव भी यहाँ सम्पन्न हुए। शहर में मूक और बोलती सिनेमा के पहली बार प्रदर्शन इसी मैदान में हुए। ये प्रदर्शन बैंगाणी परिवारों ने अपने पारिवारिक विवाह शादी उत्सवों पर करवाए थे। इन्हें देखने सारा शहर उमड़ पड़ता था।

संवत् 1996 का अकाल :

यह अकाल भयावह था। संवत् 1994 और 95 भी अकाल वर्ष ही थे। पशुधन के भूखों मरने की नौबत आ गई थी। जोधपुर महाराजा उम्मेदसिंहजी ने इस अकाल से राहत पाने के लिए बड़े महत्त्वपूर्ण कदम उठाए। सिंध प्रान्त से घास मंगवाने की व्यवस्था की गई। रेलों के सहारे पूरे मारवाड़ में उसके वितरण की समुचित व्यवस्था थी। ढ़ाई मन घास का लोहे के तारों से बंधा हुआ गट्ठर दस आने (वर्तमान के 72 पैसे के तुल्य) में उपलब्ध करवाया गया। मालवे से जवार की कड़ब मंगवाई गई। रेल की उपयोगिता इसी अकाल के समय लोगों ने पहचानी।

लोग मालवे गए :

अकाल के वर्ष में अपने पशुओं को लेकर मारवाड़ के किसान मालवे की तरफ प्रस्थान कर जाते थे। संवत् 1996 में डॉ. रामबिहारी टण्डन अपने कुछ सहयोगियों के साथ लाडनूं क्षेत्र से भी गायों के एक बड़े दल को लेकर मालवे गए थे।

जन-कल्याण सप्ताह :

ओसवाल सभा के तत्त्वावधान में ई. सन् 1941 में 7 जून से 14 जून तक जन-कल्याण सप्ताह के नाम से एक बड़ा अनूठा आयोजन सम्पन्न हुआ। गत शताब्दी (बीसवीं) का इस कस्बे के प्रसंग में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आयोजन था। कस्बे की जन-चेतना विकास का यह एक अनुपम संकल्प था। इसके उद्‌घाटन समारोह के अध्यक्ष ठाकुर बालसिंहजी थे। उन्हीं के हाथों इसका उद्‌घाटन हुआ तथा उद्‌घाटन भाषण भी उन्होंने ही दिया। इस कार्यक्रम के स्वागताध्यक्ष श्री गिरधारीमलजी बैद थे। उनके भाषण के स्वर थे – ''हमारे वैभव की दीवारें मजदूर और किसानों के श्रम की बूँदों पर खड़ी हैं।'' एक श्रेष्ठि वर्ग का कोई व्यक्ति ऐसे विचार व्यक्त करे तो उसे क्रान्तिकारी ही माना जाएगा।

यह सम्मेलन जातीय संकीर्णता से सर्वथा मुक्त था। कस्बे के सभी सम्प्रदाय के लोगों ने बिना किसी भेदभाव के इसमें भाग लिया था। जनता का उत्साह देखते ही बनता था। मारवाड़ सरकार के जन-कल्याण महकमे से इस आयोजन को आर्थिक सहयोग भी मिला था। यद्यपि इसे राजनीति से दूर रखा गया था लेकिन समय के माहौल से उसे अछूता रखना सम्भव नहीं हो सका। गुलामी से मुक्ति के स्वर रह-रह कर गूँज उठते थे। 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा तो आम जनता का नारा बना हुआ था।

मारवाड़ सरकार के स्वास्थ्य विभाग ने भी इसमें शिरकत की थी। एक विशेष रेलगाड़ी प्रदर्शनी के रूप में सुसज्जित होकर जोधपुर से आई थी। स्वच्छ जीवन पद्धति की एक झाँकी चित्रों तथा मॉडल्स के माध्यम से प्रस्तुत की गई थी। महामारियों तथा छूत के रोगों से बचने के लिए जानकारी देने हेतु उसमें एक पूरा विभाग था। दूसरे महायुद्ध में काम में लिए जा रहे आयुधों और बमों की जानकारी नमूनों के माध्यम से देने का प्रयत्न किया गया था। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के विक्रय की भी उसमें व्यवस्था थी। सात दिन तक अलग-अलग कार्यक्रम सम्पन्न हुए। कार्यक्रम का मुख्य पाण्डाल पहली पट्टी स्थित साधों के ठिकाने के पीछे ठीक पूर्व में स्थित नोहरा में था, जिसके एक भाग में बड़े-बड़े कक्षों वाली इमारत बनी हुई थी तथा उसका शेष भाग एक बड़े मैदान के रूप में खुला था। जीवण विद्यालय उस नोहरे में ही स्थित था। बीकानेर, जोधपुर, चूरू, फतेहपुर, उदयपुर आदि स्थानों के प्रसिद्ध विद्वान मनीषियों ने इसमें भाग लिया था।

दिनांक 9-6-1941 को जोधपुर के प्रोफेसर अमृतलाल माथुर के सभापतित्व में साहित्यिक सम्मेलन हुआ था, जिसमें मारवाड़ साहित्य संघ की स्थापना हुई थी। पं. विद्याधर शास्त्री जैसे ख्यातिप्राप्त विद्वान् उसमें शरीक थे। उसी दिन रात को कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। जसवन्त महाविद्यालय के प्रो. सोमनाथ गुप्ता ने उसकी अध्यक्षता की थी। जोधपुर के श्री सुमनेश जोशी, गणपतिचन्द्र भण्डारी, चूरू के भरत व्यास, चूरू के श्री मेघराज (मुकुल), लाडनूं के श्री अक्षयचन्द्र शर्मा, पं. छगन महाराज, मेघराज नाहटा, शंकरलाल पारीक, अजन्ताकुमार जैन, मधुकर मिश्र, सुजानगढ़ के श्री कन्हैयालाल सेठिया आदि कवियों ने इसमें शिरकत की थी। रात की डेढ़ बजे तक कार्यक्रम चला। पूरे कार्यक्रम तक पाण्डाल श्रोताओं से भरा रहा।

दिनांक 10-6-1941 को समाज-सुधार सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसकी अध्यक्षता फतेहपुर वासी सेठ सोहनलालजी दूगड़ ने की थी। श्री सोहनलालजी उसी दिन से लाडनूं के सामाजिक जीवन से घनिष्ठता से जुड़ गए। अधिवेशन में सबसे पहले महाराज श्री उम्मेदसिंहजी का मारवाड़ की जनता के नाम सन्देश पढ़कर सुनाया गया। उस समय द्वितीय महायुद्ध चल रहा था। सन्देश में महाराजा ने नवगठित राष्ट्रीय युद्ध मोर्चे के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए जनता से अपील की थी कि युद्ध काल में शान्ति बनाए रखना बहुत जरूरी है। अफवाहों से बचा जाए तथा मित्र राष्ट्रों को सहयोग दिया जाए। अध्यक्ष श्री सोहनलालजी के भाषण का सार यह था– "धरती पर मनुष्य का आविर्भाव महान उद्देश्य पूरित है अतः अंधधारणाओं और मान्यताओं से बचकर चलना ही सार्थक चलना है।" अगले दिन लोकगीत और संगीत सम्मेलन आयोजित हुआ।

ढोलक की ताल पर हरिभाई किंकर के लोकगीतों ने समा बाँध दिया था। प्रसिद्ध संगीतकार जयचन्द शर्मा ने भी इसमें शिरकत की। स्थानीय शास्त्रीय गायक हनुमानमल बैंगाणी ने भी शास्त्रीय संगीत में अच्छी प्रस्तुति दी।

दिनांक 11-6 व 12-6 को क्रमशः शिशु-सम्मेलन तथा महिला-सम्मेलन सम्पन्न हुए। महिला सम्मेलन की अध्यक्षता श्री बुद्धमलजी भूतोड़िया की धर्मपत्नी ने की थी। यह पहला अवसर था कि एक बड़ी संख्या में महिलाएं उपस्थित हुईं। श्रीमती भंवरी बाई, रामकुंवरी फूलफगर, विजयकुमारी, मुन्नी कुमारी तथा श्रीमती महारानी देवी टण्डन के भाषण बड़े प्रभावशाली रहे। दहेजप्रथा, बालविवाह तथा पर्दाप्रथा जैसी कुरीतियों का खुलकर विरोध हुआ।

दिनांक 13-6-41 को पशु प्रदर्शनी रखी गई। दिनांक 14-6-41 को सम्पन्न हुए समापन समारोह में स्वस्थ शिशुओं तथा अच्छी नस्ल के पशुओं को पुरुस्कार वितरण किए गए। पशु प्रदर्शनी में निर्णायक के रूप में मारवाड़ पशु-कल्याण विभाग के निर्देशक श्री बी.बी. जोशी भी आए थे। सम्मेलन में एक प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। शहर से सम्बन्ध रखने वाली अनेक दुर्लभ व ऐतिहासिक वस्तुओं और स्थानीय कलाकारों की कृतियों का उसमें प्रदर्शन किया गया था। प्रतिदिन संध्या के समय दिखाई जाने वाली प्रचारात्मक फिल्मों ने भी नागरिकों का अच्छा मनोरंजन किया। मेजिक लंटर्न के चित्रों के साथ श्री सुमनेश जोशी की स्वास्थ्य सम्बन्धी समीक्षाएँ भी बहुत लोकप्रिय हुईं। जोधपुरी लहजे में सुमनेश की वाणी बड़ी आकर्षक लगती थी।

लगातार सात दिनों तक पो फटते ही शहर में प्रभात फेरियों का दौर शुरु हो जाता था। दोपहर में छात्रों के जुलूस शहर के माहौल को उत्साहवर्धक बना देते थे।

झण्डा ऊँचा रहे हमारा..........

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा.........

आदि गीतों के साथ अनेक प्रयाण गीतों से वातावरण गूँजायमान रहता था।

देश के जवान चल हिन्दू मुसलमान चल/एक साथ देश के लिए कदम बढ़ाता चल/
विश्व के जो काफिले तुझसे पीछे थे चले/आगे वे गए निकल/हिन्द के जवान चल...

अजमेर से निकलने वाले 'मीरां' मासिक पत्र का जून अंक इस कार्यक्रम की समीक्षा को ही समर्पित था। जिन-जिन लोगों को उस जन-कल्याणकारी समारोह से गुजरने का सौभाग्य प्राप्त हुआ वे उसकी सुखद अनुभूतियों को कभी भूल नहीं पाए थे।

हिन्दी विद्यालय व श्री अक्षयचन्द्र शर्मा :

सर्वश्री बुद्धमल भूतोड़िया, गणेशमल बैद, सागरमल बैंगाणी, सोहनलाल बैद, अमृतलाल अग्रवाल, आत्माराम अग्रवाल, महालचन्द बोथरा आदि गणमान्य नागरिकों के सहयोग से सन् 1942 में कस्बे में हिन्दी विद्यालय की स्थापना हुई। कस्बे के जन-चेतना विकास में इस संस्था का योगदान अति महत्त्वपूर्ण रहा। इस विद्यालय की स्थापना और इसके त्वरित विकास के पीछे एकमात्र प्रेरक-बिन्दु इस विद्यालय के प्रधानाध्यापक पं. अक्षयचन्द्र शर्मा थे। खादी का सफेद कुर्ता, घुटनों से कुछ नीचे तक की धोती और सिर पर गाँधी टोपी पहने हुए पण्डित जी भारतीय ग्राम्य संस्कृति की सात्विक प्रतिमा लगते थे। चिंतन की आग में तपा हुआ चेहरा, गुरु गम्भीर वाणी और अध्ययनशील आँखों से पण्डित जी के समर्पित व्यक्तित्व की गरिमा झलकती थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शर्माजी बीकानेर चले गए। वहाँ के साहित्य जगत में भी उन्होंने अपना एक अच्छा स्थान बनाया। उसके बाद वे कलकत्ता गए। कलकत्ता में उनके साहित्यिक विकास को अच्छा आयाम मिला। वे अनेक साहित्यिक संस्थाओं से जुड़े तथा देश के मूर्धन्य साहित्यकारों से मिलने का उनको सुयोग मिला। बिड़ला परिवार के सौजन्य से उन्हें विलायत की यात्रा करने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ। अन्त में वे बीकानेर आकर बस गए। वहाँ उनका देहावसान हुआ। शहर के साहित्य जगत को शर्माजी की बहुत बड़ी देन है।

विद्यालय में पंजाब विश्वविद्यालय की हिन्दी रत्न, प्रभाकर तथा प्रयाग की साहित्य रत्न के शिक्षण की समुचित व्यवस्था थी। इस कस्बे के सैकड़ों युवकों में साहित्य के प्रति अभिरुचि तथा नव-जागरण के प्रति चेतना उत्पन्न करने का श्रेय हिन्दी विद्यालय को ही जाता है। विद्यालय की अनेकानेक गतिविधियों से एक ऐसे वातावरण की सृष्टि हुई, जिससे छात्र और अन्य नागरिक अनायास ही देश व समाज सेवा और अन्य रचनात्मक कामों में गतिशील हुए। सर्वश्री पूमनचन्द शर्मा, गणेश बैद, दीपंकर शर्मा, जेठमल शर्मा, हरिराम शर्मा, श्रीमन्तकुमार व्यास, शंकरलाल पारीक, नवरत्न स्वर्णकार, मेघराज नाहटा, मेघराज खटेड़ (मुकुल), चन्दनमल भूतोड़िया, मदनलाल भूतोड़िया, बच्छराज खटेड़, महालचन्द पाटणी, गंगाधर वर्मा, पूनमचन्द भाटी आदि अनेक चर्चित नाम हैं, जिन्होंने हिन्दी विद्यालय से शिक्षा और संस्कार ग्रहण किए।

समकालीन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम :

दूसरा विश्वयुद्ध ई. सन् 1945 में समाप्त हुआ। धुरी राष्ट्र जर्मनी, जापान और इटली पराजित हुए। इंग्लैण्ड सहित मित्र राष्ट्र विजयी रहे। जर्मनी का विभाजन हुआ। जापान भयंकर रूप से आहत हुआ। इटली की फौजी ताकत समूल नष्ट हो गई। देश में आजादी का स्वर प्रखरतर होने लगा। परिवर्तित परिस्थितियों के दबाव और व्यापक जन आक्रोश के वशीभूत अंग्रेजों को भारत छोड़ने का मानस बनाना पड़ा लेकिन वे बुरी तरह बौखला गए। अंग्रेजों की शह पर मुस्लिम लीग ने अलग मुस्लिम राज्य की माँग उठाई।

1946 में भारत में अन्तरिम देशी सरकार गठित हुई। देश में जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे भड़के। अंग्रेजी प्रशासन ने दंगों को दबाने में शिथिलता बरती। 15 अगस्त, 1947 आजादी का दिन मुकर्रर हुआ। देश आजाद हुआ लेकिन विभाजित होकर। फिर जगह-जगह हिन्दू मुसलमान दंगों का दौर चला। पाकिस्तानी हिस्सों से हिन्दुओं को अपने स्थान छोड़ने को मजबूर होना पड़ा। सिंध के शरणार्थियों से भरी हुई अनेक रेलगाड़ियाँ लाडनू कस्बे से होकर भी गुजरीं। वातावरण काफी गरमा गया था। लाडनू के स्थानीय प्रशासन ने सूझ-बूझ से काम लिया। किसी भी बाहरी व्यक्ति के शहर-प्रवेश करने पर पाबन्दी लगा दी गई थी। लाडनू के मुस्लिम नागरिकों को भरोसा दिलवाया गया कि यह धरती हमारे साझे की है। वे स्थान नहीं छोड़ें। नतीजन यह शहर साम्प्रदायिक दंगों की आग से बच गया।

डाबड़ा हत्याकाण्ड :

13 मार्च, 1947 को नागौर जिले के डाबड़ा गाँव में एक किसान सम्मेलन आयोजित हुआ। सम्मेलन का उद्देश्य बदली हुई परिस्थितयों में किसानों की भूमिका पर विचार करना था। यह स्पष्ट था कि देश के आजाद होते ही जागीरदारी प्रथा समाप्त कर दी जाएगी। क्षेत्र के अनेक जागीरदार बौखला उठे थे। कुछ तो उनमें विवेक भी खो बैठे। सम्मेलन में शरीक होने के लिए आए लोगों पर पास-पड़ोस के जागीरदारों और उनके आदमियों के एक दल ने सशस्त्र आक्रमण कर दिया। उस काण्ड में पाँच आदमी मारे गए। उनमें से तीन व्यक्ति लाडनू क्षेत्र के थे। निम्बी जोधां के पं. चुन्नीलाल शर्मा, लाडनू के चौधरी रूगाराम व रामूराम। लाडनू के एक अन्य किसान सूबेदार किसनाराम ने अपनी आँखें इस हादसे में खो दी। भू-दान पदयात्रा के दौरान विनोबा भावे भी डाबड़ा गाँव आए थे। उस समय भी लाडनू के कार्यकर्ताओं का एक दल डाबड़ा गया था।

कस्बे का प्रथम स्वतन्त्रता दिवस समारोह :

बड़ा उल्लासवर्द्धक माहौल था। 13 और 14 अगस्त को शहर में अच्छी वर्षा हुई थी। पास-पड़ोस के सभी तालाब पानी से लबालब भरे थे। जमीन से सौंधी-सौंधी गंध उठ रही थी। 15 अगस्त, 1947 को सूर्योदय के समय आसमान में बादल नहीं थे। सिर्फ क्षितिज पर कुछ मत्स आकार के बादल दृष्टिगोचर हो रहे थे। निःसन्देह एक सोने-सा चममकता हुआ सूरज उगा था। स्वतन्त्रता दिवस का यह पहला आयोजन स्थानीय दक्षिण दरवाजे के बाहर उस नोहरे में हुआ था, जहाँ आज जैन भवन की इमारत स्थित है। शहर के गणमान्य नागरिक उपस्थित थे। तिरंगा झण्डा फहराया गया। झण्डा गायन के बाद श्री महालचन्दजी बोथरा का गीत 'सोने रो सूरज उगियो, खुशियाँ खूब मनाओ जी' वातावरण में गूँज उठा। किसी ने कविताएँ पढ़ी, किसी ने भाषण दिया। महिलाएँ भी काफी संख्या में उपस्थित थीं। फिर सभा एक जुलूस के रूप में नगर परिक्रमा को निकल गई। जुलूस के आगे-आगे घोड़े पर सवार श्री कन्हैयालाल बोथरा के हाथ में तिरंगा झण्डा शान से फहरा रहा था........

मारवाड़ रियासत का भारत संघ में विलय :

ब्रिटिश संसद में पारित भारत की आजादी सम्बन्धी कानून में यह प्रावधान रखा गया था कि देशी रियासतें अपने बारे में निर्णय लेने के लिए स्वतन्त्र हैं। वे चाहें तो भारत या पाकिस्तान में से किसी एक के साथ जुड़ सकती हैं या स्वतन्त्र भी रह सकती हैं। मारवाड़ के तत्कालीन महाराजा हनुमन्तसिंहजी ने अपनी रियासत का भारत संघ में विलय करना स्वीकार किया। नतीजन मारवाड़ के साथ लाडनू कस्बा भी भारत जैसे वृहद् राष्ट्र का अंग बन गया।

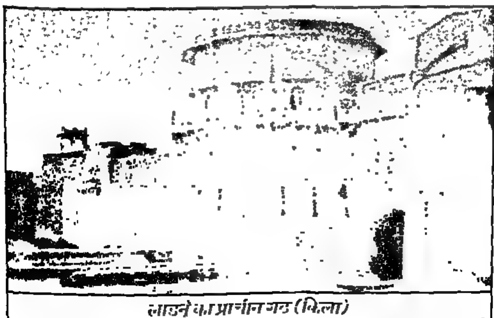
सन् 1948 : काँग्रेस का जयपुर अधिवेशन :

स्वतन्तत्रा प्राप्ति के बाद काँग्रेस का पहला अधिवेशन सन् 1948 में जयपुर में हुआ। पटाभिसीतारामैया काँग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। पं. जवाहरलाल नेहरू, शेख अब्दुल्ला, मौलाना अबुलकलाम आजाद, सरदार पटेल सहित काँग्रेस के प्रमुख नेताओं ने अधिवेशन में शिरकत की थी। इस अधिवेशन में लाडनू के सेवादल जत्थे ने भी भाग लिया था। इस जत्थे में पन्द्रह स्वयंसेवक थे। जत्थे के नेता स्व. मोहनलाल दीक्षित थे। अधिवेशन में आए प्रदेश के समस्त सेवादल जत्थों की सम्मिलित परेड का संचालन श्री शिवकरण छंगाणी ने किया था। श्री छंगाणी लाडनू की जीवन दरबार कॉमर्सियल

जोधा शासकों की स्मृति में बनी छतरियाँ (प्रसंगवश) :

ये छतरियाँ राव दरवाजे के बाहर जोधा शासकों के श्मशान स्थल पर बनी हुई हैं। ये राजपूत स्थापत्य के सुन्दर नमूने हैं। ठा. शिवदानसिंह जी की स्मृति में बनी छतरी भव्य और सुन्दर है। इसमें एक शिलालेख भी लगा हुआ है। जो परिशिष्ट संख्या III के पृष्ठ 409 पर उद्धृत है। यह छतरी एक बड़े चबूतरे पर बनी हुई है। इस छतरी के उत्तर में एक बीस स्तम्भ वाली बड़ी छतरी ठा. मंगलसिंह की स्मृति में बनी हुई है। ठा. पद्मसिंह की छतरी इस अहाते में प्रवेश करने पर दाएँ हाथ की तरफ बनी हुई है। यह छतरी भी बीस स्तम्भ वाली है। इनके अतिरिक्त ठा. अणदसिंह व विजयसिंह पर भी छतरियाँ बनी हुई हैं। ये कला के सुन्दर नमूने हैं। सभी छतरियों में चरण चिह्न अंकित हैं तथा उनसे सम्बन्धित संक्षिप्त लेख भी हैं। ठा. पद्मसिंह की छतरी क्षतिग्रस्त होने लगी है लेकिन इसके कमानीदार छज्जों की मरम्मत करने वाले कारीगर अब उपलब्ध नहीं हैं।

इसी प्रांगण में किसी जमाने में खाकी जी की बगीची हुआ करती थी। खाकी साधुओं की इस परम्परा में कुछ पहुँचे हुए संत भी हुए। अब उस स्थान पर खण्डेलवाल ब्राह्मणों का सार्वजनिक भवन बना हुआ है। इस अहाते के कुछ भाग पर किराएदार भी काबिज हो गए हैं।



लाडनूं का प्राचीन गढ़ (किला)

स्कूल में हिन्दी शिक्षक के रूप में सेवारत थे। लाडनू के जत्थे का प्रशिक्षण भी उन्हीं की देखरेख में हुआ था। ठाकुर बालसिंहजी भी इस अधिवेशन में शामिल हुए थे।

1948 : शहर में बिजली कम्पनी की स्थापना :

लाडनू बिजली कम्पनी की स्थापना सन् 1948 में हो गई थी। निजी क्षेत्र में सार्वजनिक बिजली वितरण के लिए बनी राजस्थान की यह एकमात्र कम्पनी थी। इसका एकसौ हॉर्स पावर का बड़ा इंजिन डेनमार्क की एक कम्पनी का बना हुआ था। उसे संस्थापित करने उसी देश का एक इंजीनियर आया था। वह यहाँ करीब पन्द्रह दिन तक रहा। यह सारी योजना श्री सदासुखजी कोठारी की देखरेख में बनी तथा इसका अर्थभार श्री सागरमलजी बैंगाणी ने वहन किया। लाडनू के उद्योगों के चहुँमुखी विकास खासतौर से औद्योगिक विकास में इस कम्पनी ने बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रथम आम चुनाव :

26 जनवरी, 1950 में भारत का संविधान लागू हुआ और भारत एक प्रजातांत्रिक गणराज्य के रूप में विश्व मंच पर प्रतिष्ठित हुआ। संविधान के तहत देश के पहले आमचुनाव 1952 में घोषित हुए। यद्यपि इस क्षेत्र के एक ओजस्वी काँग्रेसी कार्यकर्त्ता के रूप में श्रीदीपंकर शर्मा उभर चुके थे, यहाँ की विधायक सीट काँग्रेस की तरफ से उन्हीं को मिलनी सुनिश्चित थी लेकिन रियासत के तेजस्वी नेता मथुरादास माथुर के अनुरोध पर श्रीदीपंकर ने अपना हक उनके पक्ष में छोड़ दिया। लाडनू विधानसभा क्षेत्र से पहले विधायक काँग्रेस के श्री मथुरादास माथुर चुने गए। श्री दीपंकर को लाडनू शहर के मेयर पद से संतोष करना पड़ा।

राज्य में जागीरदारी प्रथा की समाप्ति :

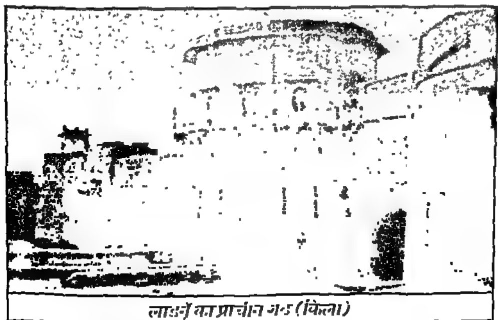
राज्य की निर्वाचित विधायिका ने राज्य में जागीरदारी प्रथा को समाप्त कर दिया। दिनांक 10-8-1954 को लाडनू ठाकुर साहब श्री बालसिंह ने अपने जागीरदारी अख्तियारात राज्य सरकार को सुपुर्द कर दिए। उन्होंने कुल सत्ताईस वर्ष राज किया। वे लाडनू की जोधा शासकों की कल्लौत परम्परा के अन्तिम शासक थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे एक शान्तिप्रिय शासक थे। शहर के सभी सांस्कृतिक और धार्मिक आयोजनों में वे नियमपूर्वक भाग लेते थे। कस्बे के महाजन वर्ग के साथ उनके सम्बन्ध काफी निकटता के रहे।

000 000

जोधा शासकों की स्मृति में बनी छतरियाँ (प्रसंगवश) :

ये छतरियाँ राव दरवाजे के बाहर जोधा शासकों के श्मशान स्थल पर बनी हुई हैं। ये राजपूत स्थापत्य के सुन्दर नमूने हैं। ठा. शिवदानसिंह जी की स्मृति में बनी छतरी भव्य और सुन्दर है। इसमें एक शिलालेख भी लगा हुआ है। जो परिशिष्ट संख्या III के पृष्ठ 409 पर उद्धृत है। यह छतरी एक बड़े चबूतरे पर बनी हुई है। इस छतरी के उत्तर में एक बीस स्तम्भ वाली बड़ी छतरी ठा. मंगलसिंह की स्मृति में बनी हुई है। ठा. पद्मसिंह की छतरी इस अहाते में प्रवेश करने पर दाएँ हाथ की तरफ बनी हुई है। यह छतरी भी बीस स्तम्भ वाली है। इनके अतिरिक्त ठा. अणदसिंह व विजयसिंह पर भी छतरियाँ बनी हुई हैं। ये कला के सुन्दर नमूने हैं। सभी छतरियों में चरण चिह्न अंकित हैं तथा उनसे सम्बन्धित संक्षिप्त लेख भी हैं। ठा. पद्मसिंह की छतरी क्षतिग्रस्त होने लगी है लेकिन इसके कमानीदार छज्जों की मरम्मत करने वाले कारीगर अब उपलब्ध नहीं हैं।

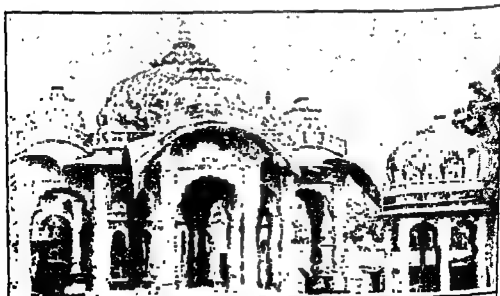
इसी प्रांगण में किसी जमाने में खाकी जी की बगीची हुआ करती थी। खाकी साधुओं की इस परम्परा में कुछ पहुँचे हुए संत भी हुए। अब उस स्थान पर खण्डेलवाल ब्राह्मणों का सार्वजनिक भवन बना हुआ है। इस अहाते के कुछ भाग पर किराएदार भी काबिज हो गए हैं।



लाडनूं का प्राचीन गढ़ (किला)



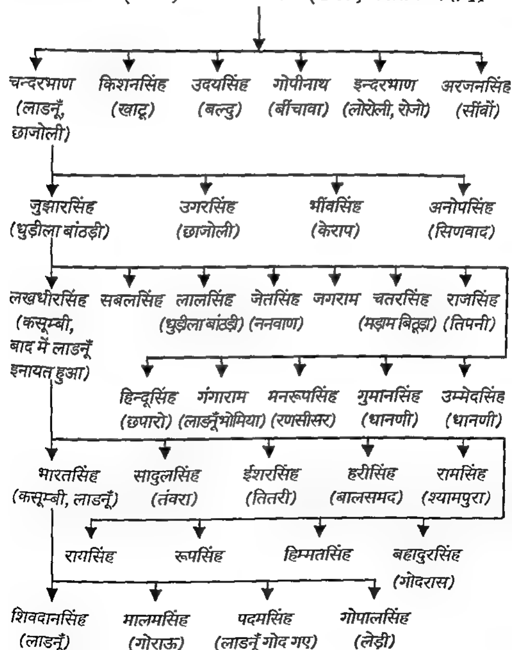
राजपूत स्थापत्य (पुराने गढ़ की रावटियाँ)

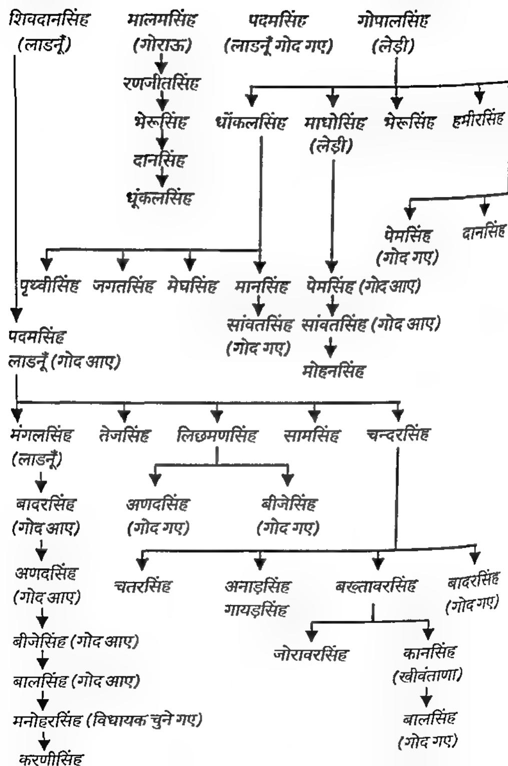


राजपूत स्थापत्य (छतरियाँ)

XVIII

लाडनूँ जागीरदार राव केसरीसिंह राठौड़–जोधा (कल्लौत)–वंशवृक्ष




शिवदानसिंह (लाडनूँ)
मालमसिंह (गोराऊ)
रणजीतसिंह
भेरूसिंह
दानसिंह
धूंकलसिंह
पदमसिंह (लाडनूँ गोद गए)
गोपालसिंह (लेड़ी)
धोंकलसिंह
माधोसिंह (लेड़ी)
भेरूसिंह
हमीरसिंह
पेमसिंह (गोद गए)
दानसिंह
पृथ्वीसिंह
जगतसिंह
मेघसिंह
मानसिंह
सांवतसिंह (गोद गए)
पेमसिंह (गोद आए)
सांवतसिंह (गोद आए)
मोहनसिंह
पदमसिंह लाडनूँ (गोद आए)
मंगलसिंह (लाडनूँ)
तेजसिंह
लिछमणसिंह
सामसिंह
चन्दरसिंह
बादरसिंह (गोद आए)
अणदसिंह (गोद गए)
बीजेसिंह (गोद गए)
अणदसिंह (गोद आए)
चतरसिंह
अनाड़सिंह गायड़सिंह
बख्तावरसिंह
बादरसिंह (गोद गए)
बीजेसिंह (गोद आए)
जोरावरसिंह
कानसिंह (खीवंताणा)
बालसिंह (गोद आए)
बालसिंह (गोद गए)
मनोहरसिंह (विधायक चुने गए)
करणीसिंह

XIX

राठौड़ राजवंश : एक समीक्षा

राठौड़ों का मारवाड़ में आगमन :

ईसा की तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मारवाड़ नाम तो उपज गया था लेकिन उसका कोई स्पष्ट राजनैतिक स्वरूप नहीं उभर पाया था। कहीं परमार काबिज थे तो कहीं पड़िहार। सिरोही और सांचोर देवड़ा और सोनगरों के अधिकार में थे। जालौर पर चौहान पैर जमाए बैठे थे। सांभर और अजमेर तुर्कों के आधीन थे। मेर, मीणा और भील आदि आदिवासी भी कम शक्तिशाली नहीं थे। ऐसी स्थिति में राठौड़ सीहा मारवाड़ आए। उस समय पाली के पालीवाल ब्राह्मण अति धनाढ्य थे। वे आदिवासियों से त्रस्त थे। उन्होंने राव सीहा से गुहार की कि वे उनकी रक्षा का भार संभाल लें। सीहा ने उनकी रक्षा के साथ-साथ अपने नए राज्य की स्थापना का सपना भी संजोया।

शीघ्र ही उन्होंने पाली के आस-पास के क्षेत्रों में अपना अधिकार जमा लिया। सीहा के पुत्र आसथान ने गुहिलों से खेड़ का बड़ा परगना छीन लिया।

गोहिल गल हथिलेह, खेड़ धरा खांगा मुहें।
आसो अपणायेह, गल भरियो बल गंजियो॥

राठौड़ों ने पड़िहार, पंवार, भाटी चौहान, आदिवासियों और तुर्कों के साथ अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं। उनकी प्रारम्भिक दस पीढ़ियाँ इसी काम में बीतीं। इन शासकों का औसत राज्यकाल दस वर्षों से अधिक नहीं रहा।

ईडर पर अधिकार :

खेड़ पर अधिकार कर लेने के बाद राठौड़ों का दबदबा काफी दूर तक फैल गया था। उसी समय गुजरात के ईडर प्रान्त पर कोली सम्प्रदाय का राजा सांवलिया सांड राज्य करता था। वह अपने एक नागर ब्राह्मण मंत्री की रूपवती कन्या पर मोहित हो गया। मंत्री ने अपनी व्यथा आसथान के सामने रखी और सहयोग माँगा। विवाह के दिन राव आसथान, उनके छोटे भाई सोनग और कुछ राठौड़ सरदार मंत्री के घर में छुप गए। कोली राजा बारात सजाकर आया। सभी बाराती जब शराब में धुत हो गए तो राठौड़ बाहर निकल आए और सब कोलियों को मौत के घाट उतार दिया। कोली राजा ने मरते समय सोनग के ललाट पर तिलक कर ईडर उन्हें दे दिया। सोनग की सन्तान

ईडरिया राठौड़ कहलाई और मारवाड़ के राठौड़ों से उनका निकट का सम्बन्ध बना रहा।

राठौड़ों का पालना मालाणी :

आसथान के पुत्र राव रायमल ने परमारों से महेवा छीन लिया। लूणी नदी के किनारे-किनारे राड़धड़ा, खेड़ आदि मिल जाने से राठौड़ों के अधिकार में एक बड़ा भू-भाग आ गया। यहाँ राठौड़ खूब फले-फूले। यही क्षेत्र दसवें शासक मल्लीनाथ के नाम पर मालाणी कहलाया। मालाणी एक पशु बाहुल क्षेत्र है। यहाँ की गायों और घोड़ों की नस्लें प्रसिद्ध हैं। यहाँ के अधिकतर निवासी खेतों और ढाणियों में निवास करते हैं। इनको अपनी जमीन से बड़ा प्यार रहा।

इस सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक प्रवाद का उल्लेख समीचीन रहेगा। राड़धड़े की एक राठौड़ राजकुमारी सिरोही के शासक सुरताण देवड़ा को (वि. संवत् 1628-1667) ब्याही गई थी। एक बार जब वह अपने पीहर से ससुराल आबू लौटी तो सुरताण ने व्यंग्य कसा—

चम्पा माणो गिरि चढ़ो, अम्बा भखो अवल्ल।
अर्बुद सूं अळगा रहे, बांको कौन हवल्ल॥

अर्थात् आबू जैसी आनन्ददाई जगह को छोड़कर जो चले जाते हैं, उनका हाल बेहाल हो जाता है (जैसा तुम्हारा हो गया है)।

राजकुमारी भी विदुषी थी। उसको अपने पति का व्यंग्य चोट कर गया, उसने झट उत्तर थमा दिया—

जव खाणो भखणो जहर, पाळो चलणो पंथ।
आबू ऊपर बैसणो, भलो सरायो कंथ॥

अर्थात् हे प्रतिदेव! जहाँ जौ की रोटी खानी पड़ती है, लोग अफीम जैसे जहर के आदी हैं, पैदल चलना पड़ता है—उस आबू की बड़ाई का तो कोई आधार ही नहीं है। फिर अपने पीहर प्रदेश की प्रशंसा में यह दोहा कहा—

धर ढांगी आलम धणी, परबल लूणी पास।
लिखियो जिण नै लाभसी, राड़धड़ा रो वास॥

जिस धरती पर ढांगी नाम का रेत का टीबा हो (जहाँ की रज में पले घोड़े विश्व प्रसिद्ध हैं), 'आलम जी' कुलदेव की छत्र-छाया हो, पास में लूणी नदी बहती हो -- ऐसा राड़धड़ा तो तकदीर वालों को ही नसीब होता है।

राठौड़ों का राज्य विस्तार :

दसवें शासक मल्लीनाथ के छोटे भाई वीरम महत्त्वाकांक्षी थे। वे थळी प्रदेश में चले गए। यद्यपि वहाँ वे जोहियों द्वारा मार डाले गए लेकिन उनके पुत्र चूण्डा किसी तरह मण्डौवर पर अधिकार करने में सफल हो गए। चूण्डा बड़ी सूझबूझ वाले योद्धा थे। उन्होंने नागौर, डीडवाना, सांभर आदि पर भी अपना अधिकार कायम कर लिया। कहावत प्रसिद्ध हुई--

माला रा मढ़े नै वीरम रा गढ़े।

अर्थात् मल्लीनाथ की सन्तान झोंपड़ियों तक ही सीमित रही जबकि वीरम की गढ़ों और किलों पर राज करने लगी।

राठौड़ों का वंश विस्तार :

रावचूण्डा के पुत्र रणमल भी इतिहास प्रसिद्ध हुए। उनके चौबीस पुत्र थे। रणमल के पुत्र जोधा के 14 (चौदह) पुत्र हुए। जोधा के एक भाई चाम्पा थे। उनकी सन्तान चाम्पावत कहलाई। उनके ही एक अन्य भाई अखैराज के पुत्र मेहराज हुए। मेहराज के कूंपा हुए। कूंपा से कूंपावत शाखा चली। जोधा के पुत्र दूदा और कर्मसी थे। जिनसे मेड़तिया और कर्मसोत शाखाएँ चली। जोधा के पुत्र बीका ने बीकानेर नाम से एक नई रियासत की ही स्थापना कर ली। जोधा के पोत्र उदा से उदावत शाखा चली। राव मालदेव तक यह सिलसिला चला। राठौड़ राजवंश के ये सामन्त मारवाड़ राज्य के स्तम्भ माने जाते थे।

मालाणी का उपविभाजन व उसकी हैसियत :

कालान्तर में मालाणी इलाका भी टुकड़ों में बंट गया। जसोल, बाड़मेर, सिन्दरी आदि। बाड़मेर भी चोहटन, सेतरावा, बैसाला सैणी आदि में विभाजित हो गया। जोधपुर से मालाणी पहले अस्तित्व में आया था -- इस आधार पर मालाणी के राठौड़ अपने आपको राठौड़ वंश का अग्रसर मानते थे। लेकिन हकीकत में जोधपुर के राठौड़ अधिक शक्तिशाली हो गए और उन्हीं से मारवाड़ की पहचान उभरी। अत: मालाणी के राठौड़ों को अपने हिस्सेदारी सम्बन्धी विवादों को निपटाने के लिए जोधपुर राज की आधीनता मानने पर विवश होना पड़ा। वे जोधपुर के शासकों को लगान भी देने लगे। जोधपुर

राज पर किसी तरह की आफत आने पर सैनिक सहयोग भी देते थे। राजतिलक य अन्य पारिवारिक अवसरों पर शरीक भी होते थे।

मारवाड़ के अन्य राजवंश :

राठौड़ों के अलावा मारवाड़ में अन्य राजवंश भी कायम थे। जैसे—भाटी, चौहान, तंवर, इन्दा (पड़िहार) आदि। राठौड़ों के शक्तिशाली बन जाने पर इन राजवंशों ने राठौड़ों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। अपने महाराजा को वे फौजबल और खिचड़ी लाग के रूप में नियमित लगान देते थे। एक श्रेणी घुम्मकड़ सरदारों की भी थी जो काम की तलाश में घूमते रहते थे। एक अन्य वर्ग गनायतों का था जो वैवाहिक सम्बन्धों से राठौड़ों से जुड़ा हुआ था। लेकिन वस्तु-स्थिति यह थी कि मारवाड़ में अधिकतर संख्या उन राठौड़ सरदारों की ही थी, जिन्होंने अपने भुजबल से राज्य कायम किए थे। इस आधार पर वे अपने आपको अपनी जमीन का राजा ही मानते थे। अतः राठौड़ों की केन्द्रीय सत्ता का कोई सबल विश्वसनीय आधार नहीं था।

राठौड़ों की केन्द्रीय सत्ता और राठौड़ सामन्त :

राठौड़ों के केन्द्र की कमजोरी के अनेक कारण थे। एक कारण यह भी था कि मारवाड़ की रियासत का उत्तराधिकार ज्येष्ठ पुत्र को ही प्राप्त हो—इस नियम का कड़ाई से पालन नहीं होता था। सामन्तों को इस बात की चिन्ता नहीं रहती थी कि राज्य का सही उत्तराधिकारी कौन है ? उन्हें इस बात में ज्यादा लाभ दिखता था कि कोई राजकुमार सत्ता हथियाने में उनका कितना सहयोग लेता है। सामन्त इस भाव से भी आवेशित थे कि मारवाड़ का राज राठौड़ों की सम्मलित विरासत है।

महाराजा मानसिंह के राज्यकाल में पदच्युत किए गए सरदारों ने अंग्रेज पोलिटिकल एजेन्ट को जो प्रार्थना-पत्र लिखा था, उसकी भाषा इस प्रकार थी—

''महाराजा और हम एक ही वंश के उत्तराधिकारी हैं। अगर महाराजा हमारी सेवाएँ लेते हैं तो वे हमारे स्वामी हैं, अन्यथा हम उनके भाई हैं।''

''महाराजा और उनके पुरखों ने पीढ़ियों तक मारवाड़ पर राज किया है। हमारे पुरखों ने उन्हें सहयोग दिया है। जो कुछ भी हासिल हुआ है, वह हमारे सम्मिलित प्रयासों का ही फल है।'' इस भाषा का सीधा-सा अर्थ है कि परम्परा के अनुसार जोधपुर महाराजा कोई भी महत्त्वपूर्ण निर्णय उन सरदारों की राय के बिना नहीं ले सकते थे।

मारवाड़ के राठौड़ सरदारों के पक्ष में एक महत्त्वपूर्ण आधार और था कि मारवाड़ की सेना का प्रमुख आधार सरदारों से प्राप्त होने वाला सैनिक सहयोग था। इसी बल पर सम्पूर्ण राज्य की सुरक्षा निर्भर करती थी। बाहरी धरती पर किसी आक्रमण अभियान को क्रियान्वित करना या नहीं करना—सरदारों के सहयोग पर निर्भर करता था। उत्तराधिकार के मामलों में भी सरदारों ने कई बार अपनी मनमरजी से काम लिया। राव सूजा की मृत्यु पर राज्य के सरदार सूजा की इच्छा के अनुरूप उनके पोते वीरम को सिंहासन पर बैठाने को इकट्ठा हुए। भोजन को लेकर एक छोटी-सी बात पर वे असन्तुष्ट हो गए और वीरम के स्थान पर उनके सौतेले छोटे भाई गांगा को राजगद्दी सौंप दी गई। तब से कहावत प्रचलित हुई—रिड़मलां थापिया तिके राजा। राव मालदेव तक यह स्थिति रही। राव मालदेव जोधपुर की राठौड़ परम्परा में एक शक्तिशाली शासक हुए। उन्होंने अपने बलबूते पर एक मजबूत सेना संगठित की। नतीजा यह हुआ कि उनके सजातीय सामन्त सशंकित हो गए। शेरशाह के साथ युद्ध का मुख्य कारण यही बना जिसमें हुई हारसे मालदेव को भारी नुकसान उठाना पड़ा।

मुगलों की आधीनता :

मालदेव के पुत्र उदयसिंह से राठौड़ राजवंश में एक नए युग की शुरुआत हुई। उदयसिंह ने मुगल सम्राट अकबर की आधीनता स्वीकार कर ली और मुगल राजपरिवार से वैवाहिक रिश्ते भी कामय कर लिए। यद्यपि इस स्थिति से राजपूती शौर्य का युग तो समाप्त हो गया लेकिन सम्भावनाओं के द्वार भी खुल गए। मुगलों की शक्ति पीठ पर रहने से उदयसिंह के हौसले बुलंद रहे। मालवा के एक बड़े भाग की सूबेदारी उदयसिंह को मिल गई। अजमेर पर भी अधिकार प्राप्त हो गया। युद्धों की लूट से मारवाड़ का आर्थिक आधार भी मजबूत बना रहा। उदयसिंह अपने आधीन सामन्तों को दबाए रखने में सफल रहे।

उदयसिंह के उत्तराधिकारी सवाई राजा सूरसिंह के समय में उनके प्रमुख सलाहकार गोविन्दसिंह भाटी ने प्रशासन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। राठौड़ राजवंश में भाईचारे के सिद्धान्त को समाप्त कर दिया गया और मुगलों की तर्ज पर स्वामी सेवक के रिश्ते को कामय किया गया। विवाह-शादी या गमी के अवसरों पर सामन्तों की स्त्रियों का राजघराने में मिलने आने का रिवाज भी बन्द कर दिया गया। प्रशासन में अनेक नए पदों का समावेश किया गया, यथा—दीवान, बख्शी, हाकिम, दफ्तरी, दारोगा आदि। पारिवारिक शिष्टाचार भी नियमबद्ध कर दिया गया।

एक नई परिस्थिति का जन्म :

महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम) की काबुल में मृत्यु हो गई। महाराजा अजीत अपने पिता की मृत्यु के बाद जन्मे। उनका तो सारा अस्तित्व की सामन्तों पर निर्भर हो गया। बादशाह औरंगजेब का आतंक उन्हें पूरे तीस वर्ष तक झेलना पड़ा। अगर मारवाड़ के सामन्तों का सहयोग उन्हें नहीं मिला होता तो उनका कहीं ठौर ठिकाना ही नहीं रहता। देवयोग से औरंगजेब की मृत्यु हो गई। सरदारों के सहयोग से अजीतसिंह मारवाड़ के अधिपति बन सके। इस विपत्ति की घड़ी में सहयोगी रहे सामन्तों ने बड़ी मात्रा में पुरस्कार पाए। मारवाड़ के सामन्त एक बार फिर शक्तिशाली बन गए।

महाराजा अजीतसिंह एक योग्य शासक थे लेकिन तब तक मुगल साम्राज्य का पतन शुरु हो गया था। मुगलों की तर्ज पर मारवाड़ में भी गृह-कलह शुरु हो गई। षड्यन्त्र और खून-खराबे बेहिचक होने लगे। अजीतसिंह स्वयं इन षड्यन्त्रों का शिकार हुए। महाराजा अजीत की मृत्यु के समय उनके पुत्र अभयसिंह दिल्ली में थे। वहीं उनकी ताज पुर्सी हुई। उसी समय आमेर से उन्हें विवाह का प्रस्ताव मिला। अपने सामन्तों की इच्छा के विपरीत वे पहले जोधपुर नहीं जाकर आमेर अपना विवाह रचाने चले गए। इतनी-सी बात पर सामन्त नाराज हो गए। कुछ ने राजगद्दी के लिए उनके भाई आनन्दसिंह और रायसिंह को उकसाया।

रियासत पतन के संकेत :

जब तक मुगल शक्तिशाली रहे, मारवाड़ के राठौड़ शासक भी उस स्थिति से लाभान्वित होते रहे। मुगल साम्राज्य के विस्तार के साथ विजित प्रदेशों की सूबेदारियाँ उन्हें या उनकी सन्तानों को मिलती रही। युद्धों की लूट का भी लाभ मिला। मुगल साम्राज्य के कमजोर पड़ जाने पर ये संभावनाएँ समाप्त हो गईं। राठौड़ों का वंश बढ़ता गया अतः उनके लिए जमीन कम पड़ने लगी। नतीजन उनकी सारी शक्ति परस्पर छीना-झपटी में लग गई। राजपूताने की रियासतों के परस्पर लड़ने की नौबत आ गई। राजा अभयसिंह ने बीकानेर पर हमला बोल दिया। जयपुर वाले मारवाड़ पर चढ़ आए। यह अशान्ति की स्थिति करीब आधी शताब्दी तक रही।

अराजकता का माहौल :

रियासतों की इस कमजोर स्थिति में मराठों और अफगान सरदारों की बन आई। अभयसिंह के बाद रामसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठे। रामसिंह न केवल अविवेकी थे

बल्कि उनकी संगत भी बड़े ओछे लोगों की थी। नतीजन बड़े सामन्तों की अवहेलना हुई। वे नागौर के अधिपति अभयसिंह के छोटे भाई बख्तसिंह के पक्षधर बन गए और रामसिंह को अपदस्त कर दिया। रामसिंह को मेड़तिया खांप का सहारा था तथा उन्होंने मराठों का सहयोग लिया और जोधपुर की गद्दी के लिए संघर्ष जारी रखा। दुर्भाग्य से बख्तसिंह एक वर्ष ही जी पाए।

यह गृह कलह महाराजा विजयसिंह को विरासत में मिली। महाराजा विजयसिंह पर मारवाड़ के सामन्तों का दबाव हमेशा बना रहा। महाराजा को एकमात्र सहारा अपने सौतेले भाई जग्गू धाभाई का था। जग्गू ने महाराजा के मनोबल को डिगने नहीं दिया। इन हालात में जग्गू, महाराजा के गुरु आत्माराम और जायल के गोरधन खीची के सुझाव पर वैतनिक सिपाहियों की एक फौज खड़ी की गई। उसमें पूर्विए, सिंधी, कुछ राजपूत और रोहिला थे। लेकिन उससे भी कोई समाधान नहीं निकला। चारों तरफ अविश्वास और अराजकता का माहौल गहराने लगा।

महाराजा के आध्यात्मिक गुरु आत्माराम की मृत्यु पर विरोधी सामन्तों को समाप्त करने का एक कायरतापूर्ण षड्यन्त्र रचा गया। गुरु की अन्तिम विदाई में सिर्फ सामन्तों को ही किले में प्रवेश की इजाजत दी गई। जग्गू धाभई के इशारे पर राज्य के सिपाहियों ने पोकरण के चाम्पावत देवीसिंह, रास के केसरीसिंह, आसोप के कूंपावत छत्तरसिंह और नीमाज के दौलतसिंह उदावत को गिरफ्तार करके किले की कालकोठरी में डाल दिया। बाद में दौलतसिंह को नाबालिग समझकर छोड़ दिया गया। शेष की मृत्यु काल कोठरी में ही हुई। कुछ समय के लिए राहत मिली।

हालात बिगड़ने का एक नया कारण और उपस्थित हो गया। महाराजा विजयसिंह गुलाबराय नाम की एक जाट सुन्दरी के मोह में फंस गए। गुलाबराय ने राज्य के कामों में भी हस्तक्षेप शुरु कर दिया। सामन्तों में फिर रोष भड़का, जिसकी परिणति गुलाबराय की हत्या में हुई। लेकिन फिर भी शान्ति स्थापित नहीं हो पाई। उत्तराधिकार की लड़ाई महाराजा विजयसिंह के जीवनकाल में ही शुरु हो गई थी। अन्त में संवत् 1850 (ई. सन् 1793) में उनका देहावसान हो गया।

महाराजा विजयसिंह की मृत्यु के बाद भीमसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठे। वे भी इस कलह से उबर नहीं पाए। उन्होंने अपने सभी सम्भावित विरोधियों, खासतौर से अपने भाई-भतीजों को मरवा डाला। वे जालौर के मानसिंह से भी भयभीत थे। अतः

सेनापति इन्दरराज सिंघवी की अध्यक्षता में एक सेना जालौर भेजी गई और जालौर के किले को घेर लिया गया। घेरा लम्बा चला। इस बीच महाराजा भीम की मृत्यु हो गई। महाराजा भीम निःसन्तान मरे थे अतः सिंघवी इन्दरराज को मारवाड़ की राजगद्दी का मसला उलझता हुआ नजर आया। उन्होंने बड़ी सूझबूझ से काम लिया और सेना तथा कुछ विश्वासपात्र सरदारों के सहयोग से जालौर के राजा मान को ही मारवाड़ की गद्दी पर बैटा दिया।

इससे पोकरण ठाकुर सवाईसिंह नाराज हो गए। सवाईसिंह और राजा मान के बीच लम्बा संघर्ष चला। कर्नल टॉड के शब्दों में राजा मान की गर्दन पर सवाईसिंह की तलवार सवाईसिंह की हत्या तक लटकी रही।

अंग्रेजों की पराधीनता :

मारवाड़ के इतिहास में यह काल बड़ा अनर्थकारी रहा। मराठों और पिण्डारियों का आतंक पूरे राज्य पर छाया हुआ था। हकीकत में पिण्डारी सरदार अमीर खाँ की मदद से ही मारवाड़ मानसिंह के अधिकार में रह पाई थी। मराठों और पिण्डारियों का मकसद सिर्फ पैसा बटोरना था। मारवाड़ का खजाना खाली हो गया। नाजायज करों और लागों के बोझ से रियासत की जनता त्रस्त हो गई। स्थानीय डाकुओं का आतंक भी बढ़ गया। प्रजा चारों ओर से दुःखी हो गई। राजा मान अपने सामन्तों के साथ तालमेल बैठा पाने में असफल रहे। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सहयोग के अतिरिक्त कोई अन्य चारा नहीं रहा। ई. सन् 1818 में अंग्रेजों के साथ सन्धि हुई।

महाराजा मान की एक कमजोरी और थी। वे नाथ सम्प्रदाय के अति भक्त थे। मारवाड़ की गद्दी का असली मालिक वे नाथों को ही मानते थे। इन नाथों ने मारवाड़ में बडा उपद्रव मचाया। राज्य में कानून और व्यवस्था नाम की कोई चीज ही नहीं रही। रियासत के आन्तरिक मामलों में अंग्रेजों द्वारा हस्तक्षेप नहीं करने की सन्धि की शर्त का राजा मान ने नाजायज फायदा उठाया। इस ओट में अनेक बार उन्होंने अंग्रेज अधिकारियों के आदेशों की अवहेलना की। नतीजन हालात और बिगड़े। आखिरकार मजबूर होकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सैनिक हस्तक्षेप करना पड़ा। सितम्बर, 1839 को जोधपुर के किले पर अंग्रेजी फौज का अधिकार हो गया।

मारवाड़ में कानून के राज का शुभारम्भ :

:हाराजा मान को अंग्रेजों के साथ एक समझौते पर सहमत होना पड़ा। राज्य में

शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के खातिर एक मंत्री परिषद् का गठित किया जाना तय हुआ। इस परिषद् में कुछ योग्य सामन्त तथा राज्य की प्रशासनिक सेवा के अनुभवी अधिकारी थे। इस समिति ने नवम्बर, 1839 में वे नियम गठित किए, जिनके आधार पर मारवाड़ रियासत का शासन चलना था। यह एक क्रान्तिकारी निर्णय था। यह रियासत में कानून के शासन की शुरुआत थी। इस लम्बे दस्तावेज में 48 धाराएँ थीं, जो शासन सम्बन्धी प्रत्येक पहलू को छूती थी।

महाराज मान की अध्यक्षता में जो समिति बनी। उसने कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये—

1. राज्य के आय व्यय को नियमों के दायरे में लाया गया।

2. हिंसक वारदातों के लिए सजा के प्रावधान बनाए गए। अपराधियों को शरण देने वालों के विरुद्ध नियम बने।

3. जोधपुर शहर की सुरक्षा व व्यवस्था में सुधार किए गए।

4. जालोर और गोढवाड़ क्षेत्र में भील, मीणा, बावरी आदि जातियों के द्वारा की जाने वाली लूटपाट को ध्यान में रखते हुए उस क्षेत्र के जमींदारों को कुछ अतिरिक्त जिम्मेवारियाँ सौंपी गई तथा उन्हें उत्तरदाई बनाया गया।

5. सामन्तों के जमीन सम्बन्धी विवादों को हल करने की दिशा में—इस काम के लिए मुकर्रर पंचों द्वारा जाँच के बाद जमींदारों को लिखित सनदें देने की व्यवस्था की गई।

6. राज्य के आर्थिक हालात सुधारे गए। अंग्रेजों के सभी बकाया कर्ज चुका दिए गए।

7. प्रत्येक परगने में एक लोअर कोर्ट स्थापित होना तय हुआ तथा जोधपुर में अपर कोर्ट की स्थापना हुई।

8. राज्य की सेना का आधुनिकरण करने की योजना बनी।

पाँच महीने बाद 29 फरवरी, 1940 को जोधपुर पुनः महाराजा मान के सुपुर्द कर दिया गया। करीब दो वर्ष तक सब कुछ ठीक-ठाक चला। रियासत में डकैती की कोई बडी घटना नहीं घटी। व्यापार को फलने-फूलने का अवसर मिला। मराठों और पिण्डारियों को खतरनाक तत्त्व मानते हुए उन्हें राष्ट्रीय स्तर पर पहले ही दबा दिया गया था। अंग्रेजों का हस्तक्षेप राज्य के सुशासन के रूप में फलित होता प्रतीत हुआ। लेकिन हालात ने पुनः पुराना मोड़ लेना शुरु कर दिया। नाथों का हस्तक्षेप फिर गहराने लगा। अंग्रेज कप्तान लुडलो ने सैनिक बल से नाथों को गिरफ्तार करके अजमेर बुला लिया।

इस पर राजा मान रूठ गए। वे साधु बनकर अन्यत्र चले गए। अंग्रेज पोलिटिकल एजेण्ट ने महाराजा को चेतावनी दी कि यदि वे जोधपुर नहीं लौटते हैं तो जोधपुर की गद्दी किसी अन्य को दे दी जाएगी। 23 दिन बाद महाराजा जोधपुर लौट आए। पोलिटिकल एजेण्ट ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी नामजद करने को कहा। उन्होंने ईडर के तख्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। 4 सितम्बर, 1843 को महाराजा मान का देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु के साथ ही मारवाड़ पर एकात्मक शासन की परम्परा का अन्त हो गया।

महाराजा मान के चरित्र में अनेक विपरीत गुणों का समावेश था। वे एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। अंग्रेजों के साथ हुई सन्धि की शर्तों को उन्होंने अनेक बार नकारा लेकिन अंग्रेज उनको हटाने का साहस नहीं कर पाए। महाराजा मान इतिहास के ज्ञाता होने के साथ-साथ अच्छे विद्वान थे। दुर्भाग्य से नाथों के प्रति उनकी भक्ति अन्ध श्रद्धा तक पहुँच गई थी। कर्नल टॉड के शब्दों में इन सब गुणों और कमजोरियों के बावजूद वे स्वभाव से बड़े निर्दयी थे। वे एक चीते की तरह चालाक और खूंखार थे, साथ-साथ अपने इन भावों को छुपाए रखने में माहिर थे।

अन्तर्विरोधों का राज :

महाराजा मान के बाद महाराजा तख्तसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठे। रियासत के सामन्तों ने आशा की थी कि पूर्व महाराजा की अतियों से निजात मिलेगी लेकिन उनके हाथ निराशा ही लगी। गुजराती परिवेश में पले तख्तसिंह मारवाड़ के राजघराने की परम्पराओं से अनभिज्ञ थे। वे कुछ लालची प्रकृति के व्यक्ति थे। मारवाड़ के सामन्तों को दबाए रखने की नीयत से उन्होंने काफी कठोर रुख अपनाए रखा। अनेक तरह की नई लागें लगा दीं। प्रचलित लागों को बढ़ा दिया। लाग नहीं देने की स्थिति में जागीरदारों के विरुद्ध कठोर कदम उठाए गए। उन्होंने राज्य के महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर गुजराती अहलकारों को प्राथमिकता दी। बड़े सामन्तों और उनमें दूरियाँ अधिक बढ़ गईं।

महाराजा के प्रमुख विरोधियों में पोकरण, आहुवा, रास, नीमाज के ठाकुर थे। कुछ जमींदार उनके सहयोगी भी थे। उनमें भादराजूण, कुचामण, देसूरी ठाकुर के कामदार तथा लाडनू ठाकुर मंगलसिंह के छोटे भाई चन्द्रसेन आदि मुख्य थे। गोराऊ ठाकुर घराने का भी उन्हें सहयोग था। यद्यपि सन् 1857 की क्रान्ति में महाराजा ने अंग्रेजों का पूरा सहयोग किया था लेकिन रियासत के प्रशासनिक हालात सुधारने में उन्हें विशेष [illegible]ा नहीं मिली।

महाराजा जिद्दी स्वभाव के व्यक्ति थे। अंग्रेज अधिकारियों की राय की भी वे अवहेलना कर जाते थे। अपने आधीन जमींदारों की बात सुनने का तो प्रश्न ही कहाँ था। उनको गलत गुमान हो गया था कि सन्धि की शर्तों के अनुसार अंग्रेज अधिकारी तो उन्हें हर विपदा की घड़ी में सैनिक सहयोग करेंगे ही। नतीजन प्रशासन में स्वेच्छाचार बढ़ गया। वैधानिकता जैसी किसी चीज का अभी तक जन्म नहीं हो पाया था। इन परिस्थितियों में राज्य की शान्ति, व्यवस्था और प्रगति खतरे में पड़ गए।

अंग्रेजों की देशी रियासतों में हस्तक्षेप नहीं करने की नीति भी स्पष्ट नहीं थी। अंग्रेजी अधिकारियों को भय बना रहता था कि छोटी-छोटी बातों में हस्तक्षेप करने से स्वयं उनके देश ब्रिटेन में उनकी आलोचना होगी। अतः सही समय पर कोई कठोर कदम उठाने से वे हिचकते थे। वे चाहते थे कि हालात ज्यादा बिगड़ें तभी उनके हस्तक्षेप करने का औचित्य दिख पाएगा।

फिर भी एक व्यक्ति के शासन के स्थान पर कानून के शासन की दिशा में कुछ प्रगति हुई। रियासत के सामन्त जो पहले बात-बात पर कानून अपने हाथ में ले लेते थे— ब्रिटिश सरकार के भय से अब वे ऐसा करने से हिचकने लगे। उन्होंने शान्तिपूर्ण वैधानिक रास्तों का अनुसरण ही ठीक समझा। महाराजा तख्तसिंह को बाध्य किया गया कि वे शासन की बागडोर अपने ज्येष्ठ पुत्र जसवन्तसिंह को सम्भला दें। इस बीच एक झमेला और खड़ा हो गया। तख्तसिंह के छोटे पुत्र जोरावरसिंह ने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और कुछ सिरफिरे सरदारों के सहयोग से नागौर पर अधिकार जमा लिया। महाराजा किसी तरह बिना किसी खून खराबे के उसे दबा पाए। जोरावर सिंह के विरूद्ध इस अभियान में लाडनू ठिकाणे ने महाराजा का साथ दिया था। अन्त में महाराजा ने सत्ता अपने बड़े पुत्र जसवन्तसिंह (द्वितीय) को सौंप दी।

महाराजा तख्तसिंह पुराने ढ़ंग के राजपूत थे। उनको शराब और शिकार का बड़ा शौक था। उनके रनवास में तीस राणियाँ थीं। दस पड़दायतें तथा ग्यारह डावड़ियाँ थीं। फिर भी महाराजा के राज्यकाल में स्थाई महत्व के काम भी हुए—

1. राजपूताना मालवा रेलवे की रेल लाईन के लिए उन्होंने मुफ्त में जमीन दी।

2. मारवाड़ में सबसे पहले अंग्रेजी स्कूल और छापाखाना उन्हीं के समय में प्रारम्भ हुए।

3. आधुनिक इलाज का अस्पताल भी सबसे पहले उन्हीं के समय में वि.सं. 1910 (ई. सन् 1853) में खोला गया।

4. कश्मीरी विद्वानों का आगमन भी सबसे पहले उन्हीं के समय में हुआ। रियासत के बन्दोबस्त में इन कश्मीरी पण्डितों का अच्छा योगदान रहा।

5. महाराजा तख्तसिंह जी के शासनकाल में कुछ सामाजिक सुधार भी बड़े महत्त्व के हुए। यथा – राजपूतों के विवाह आदि अवसरों पर चारणों को दिए जाने वाले त्याग की राशि की सीमाएँ निश्चित कर दी गईं। राजपूत परिवारों में कन्या को जन्मते ही मार डालने की घृणित प्रथा प्रचलित थी। उसके विरोध में जगह-जगह शिलालेख स्थापित किए गये और प्रचारित किया गया कि ऐसा करने वालों को कठोर दण्ड दिए जायेंगे।

इसके समान ही एक महत्त्वपूर्ण काम और हुआ, वह यह था कि किसी भी महाराजा या ठाकुर की मृत्यु पर सती होने की प्रथा को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया गया। साधुओं द्वारा जीवित समाधि लेने की प्रथा भी बन्द कर दी गई।

प्रसंगवश :

सतीत्व के हिन्दू आदर्श ने एक अमानवीय प्रथा का रूप ले लिया था। राठौड़ राजघराने में भी यह प्रथा पूरे जोर-शोर से प्रचलित थी। महाराजा अजीतसिंह जी की मृत्यु पर कुल 84 प्राणियों ने आग में जलकर अपने प्राणों की आहुति दी थी, जिनमें उनकी छः रानियाँ तथा विभिन्न वर्गों की 51 दासियाँ शामिल थी। कहते हैं कुछ बन्दर व मोर भी चिता में जल मरे थे।

महाराजा अभयसिंह जी का देहावसान अजमेर में हुआ। उनका दाह-संस्कार पुष्कर में किया गया। उनके साथ उनकी दो खवास तथा 11 परदायतें सती हुईं। जोधपुर में उनकी छः रानियाँ तथा 14 परदायतें सती हुईं। जिस राजा के साथ जितने अधिक प्राणी अपने प्राणों की आहुति देते उतना ही उस राजा के यश का फैलाव माना जाता था।

कानून का राज और महाराजा जसवन्तसिंह (द्वितीय) :

महाराजा जसवन्तसिंह (द्वितीय) एक योग्य शासक साबित हुए। तब तक मारवाड़ के महाराजा और सामन्तों के पारस्परिक सम्बन्ध कानून की सीमा में आ चुके थे। प्रशासन पर अंग्रेजों की पकड़ पूरी तरह कायम हो चुकी थी। महाराजा ने अंग्रेजों की मातहती का पूरा सम्मान रखा। नतीजन महाराजा का रूतबा भी अंग्रेजों की नजरों में बढ़ गया। उन्हें जे.सी.एम.आई. की उपाधि प्रदान की गई। दिल्ली दरबार में उनकी तोपों की

सलामी सतरह से बढ़ाकर इक्कीस कर दी गई। महाराजा जसवन्तसिंह ने अन्य रियासतों से भी अपने सम्बन्ध सुधारे। उदयपुर महाराणा सज्जनसिंह से 150 वर्षों बाद मुलाकात की पहल कर सहृदयता का एक अच्छा परिचय दिया।

रियासत में आधुनिक सुधारों की गति तेज हुई। पहली रेल लाइन सांभर से नावां होते हुए कुचामण तक बिछाई गई। वह 1875 में चालू हो गई। ई. सन् 1881 में मेड़ता रोड़ होते हुए नागौर से बीकानेर रेल मार्ग का काम शुरु हुआ। ई. सन् 1891 में उसे बीकानेर की सीमा तक पहुँचा दिया गया। जनवरी 1905 में मेड़ता रोड़, डेगाना, रतनगढ़ रेल लाईन काम काम शुरु हुआ जो हिसार तक पहुँच गया।

जोधपुर शहर के आसपास के पहाड़ों की जड़ों में पक्के नालों को बनवाकर आबपाशी की सुन्दर व्यवस्था की, जिससे थोड़ी वर्षा का पानी भी तालाबों तक पहुँचने लगा। शहर की गन्दगी को ढोने के लिए कंजरवेंसी ट्राम वे ई. सन् 1896 में चालू की। पूरे देश में यह अपनी तरह की एकमात्र व्यवस्था थी। पी.डब्ल्यू.डी. महकमा बना। रेलवे वर्कशॉप, बालसमन्द झील, कचहरियाँ तथा कुछ बड़े महल भी उनके समय में बने। आधुनिक डाक तार की सुविधा भी उन्हीं के कार्यकाल की देन है।

बड़े सरदारों को दीवानी और फौजदारी अख्तीयारात दिए गए। अंग्रेज सरकार की सहायता के लिए इम्पिरियल सर्विस लेंसर्स नाम से दो रिसाले कामय किए जो बाद में सरदार रिसाले के नाम से प्रसिद्ध हुए। अनेक बांध बने, कूए खुदे। मारवाड़ की मरुभूमि में चारों तरफ बाग-बगीचे नजर आने लगे। उन्होंने अपने छोटे भाई सर-प्रताप को अपना प्रमुख सलाहकारऔर राज्य का मुख्यमंत्री बनाया। खास रुक्का भेजकर उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती को जोधपुर बुलवाया और उनके निर्देशन में अनेक सुधारों को अंजाम दिया। हिन्दी शिक्षा का प्रचार किया।

ई. सन् 1887 में महारानी विक्टोरिया के राज्याभिषेक की स्वर्ण-जयन्ति पर शरीक होने के लिए सरप्रताप को उन्होंने लंदन भेजा। महाराजा ने अपने तमाम मुसद्दियों और अहलकारों को हिदायत दी कि वे मोटा कपड़ा जैसा कि मारवाड़ का आम आदमी पहनता है, पहने। तेईस वर्ष राज करने के बाद सिर्फ 53 वर्ष की अल्पायु में इस लोकप्रिय महाराजा का स्वर्गवास हो गया। महाराजा ने अपने नाम से दो शहर बसाए — भीनमाल परगने में जसवन्तपुरा तथा लाडनूं के पूर्व में बीकानेर रियासत की सीमा पर जसवन्तगढ़।

महाराजा सरदारसिंह :

जसवन्तसिंह (द्वितीय) के बाद महाराजा सरदारसिंह जोधपुर की राजगद्दी पर बैठे। उस समय उनकी उम्र सिर्फ सोलह वर्ष की थी। अतः उनके सहयोग के लिए सर प्रताप की अध्यक्षता में रीजेंसी कौंसिल बनी। सन् 1896 में अपने स्व. पिता जसवन्तसिंहजी के नाम पर उन्होंने राज्य की पहली महिला चिकित्सोपचार की अस्पताल बनवाई। उसी वर्ष 'एलगिन राजपूत स्कूल' की स्थापना हुई, जो आगे चलकर चोपासनी राजपूत हाई-स्कूल के नाम से प्रसिद्ध हुई।

महाराजा सरदारसिंह जी ने अफगानिस्तान, दक्षिण अफ्रीका और चीन के युद्धों में भाग लिया। ईडर नरेश की निःसन्तान मृत्यु हो जाने पर सर प्रताप ई. सन् 1902 में अपनी पुरानी रियासत ईडर चले गए, जहाँ वे राजसिंहासन पर आसीन हुए। वि.संवत् 1956 में मारवाड़ में भयंकर अकाल पड़ा। महाराजा सरदारसिंह ने अनेक प्रकार से अकाल पीड़ित जनता की सेवा की। अंग्रेज सरकार से 30 लाख रुपया उधार लेकर कुल 36 लाख रुपये अकाल पीड़ितों की सहायतार्थ खर्च किए।

उन्होंने युरोप के देशों की यात्रा की। उनके राज्य काल में जोधपुर में हुई कुछ साम्प्रदायिक घटनाओं का भी उन्होंने बड़ी समझदारी से समाधान किया था। महाराजा सरल स्वभाव और मधुर भाषी थे। जोधपुर रेलवे का प्रसार पश्चिम में हैदराबाद सिंध तक और उत्तर में भटिण्डा तथा उत्तर-पूर्व में हिसार तक हो गया। जोधपुर का सरदार मारकेट और घण्टाघर भी उन्हीं के राज्यकाल की देन है। जोधपुर म्युजियम भी उन्हीं के कार्यकाल में बना।

महाराजा सुमेरसिंह :

महाराजा सरदारसिंह के बाद उनके पुत्र सुमेरसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठे। राजसिंहासन के समय उनकी उम्र सिर्फ 14 (चौदह) साल थी। उनके मार्गदर्शन के लिए फिर रीजेंसी कौंसिल स्थापित हुई। सर प्रताप को ईडर से इस कौंसिल की अध्यक्षता के लिए बुलाया गया। ई. सन् 1914 में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। ब्रिटेन को भी इस युद्ध में भाग लेना पड़ा। उस समय महाराजा की उम्र सिर्फ 16 (सोलह) साल थी, फिर भी वे सरदार रसाले के साथ युद्ध के अग्रिम मोर्चे पर फ्रांस गए। 9 मास तक वे युद्ध भूमि पर रहे।

महाराजा ने हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए भी अच्छा आर्थिक सहयोग दिया। ई. सन् 18 में राज्य में प्लेग का प्रकोप हुआ। राज्य की तरफ से चिकित्सोपचार की पूरी

व्यवस्था की गई, फिर भी हजारों लोग कालकलवित हो गए। लाडनूं शहर में भी इस बीमारी का बड़ा आतंक फैला। उसके साथ ही इंफ्ल्यूएजां फैला। इस बीमारी की चपेट में महाराजा स्वयं आ गए। उस समय आपकी उम्र सिर्फ 21 साल की थी। आपने सिरोही राज्य की सीमा पर सुमेरपुर नाम से एक शहर बसाया। युद्धकाल में आपने 35 लाख रुपये की आर्थिक सहायता अंग्रेज सरकार को दी तथा राज्य के धनी-मानी लोगों से भी सहयोग दिलवाया। जोधपुर सुमेर लाइब्रेरी भी आपके कार्यकाल की ही देन है।

महाराजा उम्मेद सिंह :

महाराजा उम्मेदसिंहजी 15 साल की उम्र में जोधपुर की राजगद्दी पर बैठे। राज्य में तीसरी बार लगातार रीजेंसी कौंसिल स्थापित हुई। बालिग होने पर महाराजा ने रीजेंसी कौंसिल को ही स्टेट कौंसिल का रूप दे दिया और उसके मार्गदर्शन में ही राज्य का काम देखने लगे। महाराजा उम्मेदसिंह भले और सुहृदय स्वभाव के व्यक्ति थे। आपने मिश्र की यात्रा तो बचपन में ही कर ली थी। सन् 1925 में आपने सपरिवार विलायत की यात्रा की। इस यात्रा में आपके साथ मारवाड़ की प्रसिद्ध पोलो टीम भी गई, जिसमें वहाँ अनेक कीर्तिमान कायम किए।

आपके शासनकाल में राज्य पुलिस के सहयोग से अनेक डाकुओं का सफाया किया गया, जिनमें धाड़वी मंगलदास साध और डाकू मीरखाँ प्रमुख थे। संवत् 1996 में राज्य में भयंकर अकाल पड़ा। उस अकाल में महाराजा ने बड़े मनोयोग से मारवाड़ की जनता की सेवा की। पशुधन को बचाने के लिए सिंध तथा मालवा से घास मंगवाने की व्यवस्था की गई। पहली बार जनता ने रेल की उपयोगिता को पहचाना। महाराजा उम्मेदसिंह जी के राज्यकाल में शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, बिजली तथा सड़क निर्माण आदि सभी क्षेत्रों में रियासत ने प्रगति की।

व्यक्तिगत जीवन भी आपका बड़ा अनुकरणीय रहा। आप शराब, तम्बाकू, अफीम आदि दुर्व्यसनों से मुक्त रहे। आप जोधपुर के पहले महाराजा थे, जिन्होंने एक पत्नी धर्म का निर्वाह किया। महाराजा उम्मेदसिंहजी के लाडनूं ठिकाणे से बड़े गहरे सम्बन्ध रहे। आप दो बार लाडनूं पधारे। पहली बार आप सेठ गणपतराय सरावगी अस्पताल का उद्घाटन करने तथा दूसरी बार सेठ सुखदेव महिला अस्पताल के उद्घाटन हेतु आप लाडनूं आए। जोधपुर का प्रसिद्ध छित्तर पैलेस आपके ही शासन काल में बना। इसके निर्माण में लाडनूं के राजगीरों का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा। महाराजा ने उन्हें पुरस्कृत

भी किया। 19 जून, 1947 को इस लोकप्रिय महाराजा का स्वर्गवास हो गया। अफसोस देश की आजादी का वे जश्न नहीं मना सके। महाराजा उम्मेदसिंहजी के उत्तराधिकारी उनके पुत्र हनुमन्तसिंह जी हुए। उनके समय में भारत आजाद हुआ। अन्य रियासतों की तरह मारवाड़ रियासत का विलय भी राजस्थान राज्य में हो गया। हनुमन्तसिंह जी के पुत्र गजसिंहजी हैं। गजसिंह ने अपनी शिक्षा विलायत में पाई। आप देश की सर्वोच्च संसद राज्यसभा के राजस्थान राज्य की तरफ से सदस्य भी चुने जा चुके हैं। इस प्रकार एक राजवंश अपने यशस्वी जीवनकाल को सम्पन्न कर अपने गौरवपूर्ण इतिहास पृष्ठ अंकति कर गया।

राठौड़ शौर्यवान थे। राठौड़ वंश ने अनेक उतार चढ़ाव देखे। सामन्तों के जेहन में उभरा हुआ रियासत का संघीय स्वरूप और जोधपुर के शासकों के मन में जमा हुआ सत्ता का एकात्मक रूप—दोनों में संघर्ष चलता रहा। फिर भी परम्पराएँ इतनी प्राणवान थी कि जाने-अनजाने उनका सम्मान बरकरार रहा। समाधान निकलते गए और यात्रा चलती गई। करीब सात सौ वर्ष की एक दीर्घ यात्रा इस वंश ने सम्पन्न की। सांस्कृतिक दृष्टि से भी इस वंश का योगदान कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है। यह भी एक सुखद संयोग है कि राजपूताने की राजपूत परम्परा में कुल 36 (छत्तीस) वंश प्रमुख माने जाते हैं और मारवाड़ के राठौड़ राजवंश में कुल 36 शासक हुए।

हूँ बलिहारी राणियाँ, जाया वंश छत्तीस।
सेर सलूणो चून ले, शीश करे बख्शीस॥

XX

राठौड़ों के वरियता क्रम में लाडनू

मारवाड़ की शासन व्यवस्था के मुख्य रूप से तीन अंग थे—1. राजवी, 2. वंश परम्परा से निर्धारित सरदार या ठाकुर, 3. राज्य के प्रशासनिक अधिकारी या सेवाकर्मी (मुसद्दी)। राज परिवार से सम्बन्धित व्यक्ति 'राजवी' कहलाते थे, यथा—स्वयं राजा, राजा के छोटे भाई, पुत्र आदि। राज्य के सरदार चार श्रेणियों में विभक्त थे। यह वर्गीकरण उनके वरीयता क्रम के अनुसार था। सबसे वरिष्ठ वर्ग सिरायतों का था। महाराज तख्तसिंह जी के समय में बारह सिरायत थे। वे इस प्रकार थे—

स्थान	*खांप*
पोकरण, आहुवा	*चाम्पावत*
आसोप, कंटालिया	*कूम्पावत*
रीयां, आलनियावास	*मेड़तिया*
रायपुर, नीमाज, आगेवा, रास	*उदावत*
भादराजूण, खेरवा	*जोधा*

सिरायत दोहरी ताजीम के हकदार थे। जब कभी किसी विशेष उत्सव पर या परम्परागत त्यौहारों के मौके पर दरबार का आयोजन होता था तो दरबार में किसी सरदार के आगमन पर महाराज का अपने स्थान पर उठकर उसे सम्मान देना 'ताजीम' कहलाता था। सिर्फ आगमन पर उठना इकेवरी ताजीम कहलाता था। सरदार के प्रस्थान पर फिर उठना दोहरी ताजीम कहलाता था।

सभी सिरायत 'हाथ के कुर्ब' के भी अधिकारी थे। 'दरबार' के अवसर पर जब किसी सरदार का आगमन होता तो महाराज अपने स्थान पर उठते (ताजीम)। सरदार अपनी तलवार महाराजा के सम्मुख रखकर उनके वस्त्र का एक सिरा छूता। महाराजा उसके कंधे पर हाथ रखकर उसके सम्मान का प्रत्युत्तर देते (बांह पसाव) तथा फिर वह हाथ अपने सीने पर रखते—यह रिवाज 'हाथ का कुर्ब' कहलाता था।

'दरबार' के आयोजन पर कुछ सिरायत महाराज के दाहिनी तरफ बैठते थे, कुछ बाईं तरफ। दाहिनी तरफ बैठने वालों में राव जोधा के भाइयों के वंशज थे। बाईं तरफ उनके छोटे पुत्रों के वंशज बैठते थे। दाहिनी तरफ वालों को जीवणी मिसल तथा बाईं तरफ वालों को डाई मिसल के नाम से पहचाना जाता था। जीवणी मिसलों में चांपावत तथा कूंपावत खांप के सरदार थे तथा डाई मिसल में मेड़तिया, उदावत और जोधा थे। जीवणी मिसल में पोकरण, आहुवा और आसोप ठिकाणे थे, जबकि डाई मिसल में रीयां, रायपुर, रास, नीमाज और खेरवा थे। शेष बचे सिरायत आगेवा, कंटालिया, अलनियावास और भादराजूण-जीवणा या डाया जैसा भी उनका स्थान निर्धारित रहा हो—पहली सीट के हकदार तभी होते थे जबकि उनके वरिष्ठों में से कोई भी उपस्थित न हो। अन्यथा रिवाज यह था कि जो सरदार पहले आता वह पहली सीट पर बैठता था।

दूसरा वर्ग उन सरदारों का था, जिनको 'हाथ का कुर्ब' सम्मान प्रदान किया हुआ था। इस वर्ग में अन्य ठिकानेदार, गनायत तथा ऐसे अधिकारी शामिल थे, जिनको यह

सम्मान किसी विशिष्ट सेवा के उपलक्ष में दिया गया होता था। इसमें भी इकेवरी और दोहरी ताजीम का विभाजन था। तीसरी श्रेणी उन सरदारों की थी, जिनको सिर्फ 'बाँह पसाव' का ही सम्मान प्राप्त था। इस सम्मान में भी इकेवरी और दोहरी ताजीम का विभाजन था। चौथा वर्ग सिर्फ इकेवरी ताजीम का हकदार था। ऐसे सरदारों से नजराना या निछावल महाराजा सिर्फ खड़ी स्थिति में ही लेते थे। शेष ताजीमों से बैठी स्थिति में लेते थे। सारी व्यवस्था परम्परागत थी। सभी वर्ग परम्पराओं का पालन सहज भाव से करते थे।

पोकरण ठाकुर को प्रधान का पद हासिल था। वह सब सरदारों का कार्यकारी मुखिया होता था। महाराजा से किसी तरह की फरियाद प्रधान के माध्यम से ही सम्भव थी। प्रशासन के सभी क्षेत्रों में उसका दबदबा था। किसी विशेष उत्सव पर जब महाराजा की हाथी की सवारी निकलती तो खवास का स्थान पोकरण ठाकुर का होता था। वह महाराज पर मोरछल डुलाता था।

नए महाराजा के राजगद्दी पर बैठने के अवसर पर राजतिलक का अधिकार बगड़ी के ठाकुर का था। वह अपनी अंगुली चीरकर खून निकालते तथा उससे महाराजा का राजतिलक करते थे। उस समय विशेष के लिए वे बगड़ी के ठाकुर नहीं होते थे। वे महाराजा को उद्बोधित करके कहते— 'जोधपुर आपको मुबारक हो'। बदले में महाराजा उच्चारित करते 'बगड़ी आपको मुबारक हो'। मुन्याड़ ठिकाणे के चारण जागीरदार राजघराने के विवाह-शादी के अवसरों पर या राजतिलक के मौके पर आशीर्वाद देने की रस्म अदा करते थे। बदले में उनको राजघराने की ओर से हाथी सिरोपाव मिलता था।

राजघराने में किसी विवाह के अवसर पर, मांगलिक या राजकीय उत्सवों या अन्य आवश्यक मौकों पर समस्त सिरायत निमन्त्रित होते थे। उनको जिस पत्र के जरिये सन्देश भेजा जाता था, उसको 'खास रुका' कहते थे। उसका एक नमूना नीचे दिया जा रहा है—

"ठाकुरां..................सुं म्हारो जुहार बंचावसी तथा लाट साहब बहादुर को अठै आवणो होसी सो आछो जुलूस सूं ता. 27 ओक्टोबर सन हाल में बंचते रुसताब हाजर होज्यो संवत् 1965 रा मिलती आसोज सुदी छठ" ***Sd. Sardar Singh***

मारवाड़ की ताजीमो की बिगत :

उदावत 16, करनोत 4, करमसोत 2, कूंपावत 11, चाम्पावत 13, जोधा 14, महला 1,

पातावत 1, घवरेचा 1, बाला 4, मेड़तिया 52, उड़ 1, कुल 130; गनायतों में कुल 22 ठिकाणे थे। जोधा खांप के ठिकाणे इस प्रकार थे—भादराजूण, खेरवो, लाडणु, गोराऊ, लेड़ी, दुगोली, लाटोती, बालो, नीम्बी, बावरो, भंवरी, पाडपुरो, सीवों, पाटोदी।

जोधा खांप में लाडनूँ का स्थान :

जोधों में लाडनू का स्थान काफी सम्मानजनक था। यह कस्बा सेठाणा कहलाता था। लाडनू ठिकाणे की आबादी मारवाड़ में जोधपुर को छोड़कर सबसे अधिक थी। लेकिन वरीयता-क्रम में जोधा खांप में भादराजूण का स्थान प्रथम था। खेरवा की गिनती भी सिरायतों में होती थी। जोधपुर के महाराजाओं का लाडनूँ ठिकाणे को विशेष स्नेह प्राप्त था। ठिकाणे को पालकी सिरोपाव के सम्मान के साथ-साथ नगारानिशान, छड़ी आदि सम्पूर्ण लवाजमें का भी अधिकार था। ठिकाणे को दोहरी ताजीम का अख्तियार हासिल था।

वर्ष भर में छः अवसरों पर महाराजा द्वारा दरबार लगाने की प्रथा थी। आखातीज, रक्षाबंधन, दशहरा, दीवाली, होली और महाराजा का जन्म-दिन। आखातीज और रक्षाबंधन को छोड़कर बाकी चारों अवसरों पर सामूहिक भोजन का रिवाज था। प्रमुख ठिकानेदार नियमिति रूप से दरबार में शामिल होते थे। साथ-साथ साल के भाग विशेष में उन्हें राजधानी में महाराजा की हाजरी में भी रहना पड़ता था। निर्धारित अवधि की समाप्ति पर ठाकुर इस बात की सूचना महाराजा को देते थे। महाराजा समुचित रूप से उन्हें सीख, सिरोपाव से सम्मानित करके भेजते थे। विशेष सेवाओं के लिए भी सरदारों को सम्मानित करने की प्रथा थी। इन सम्मानों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया था।

हाथी सिरोपाव, पालकी सिरोपाव, घोड़ा सिरोपाव—इन सम्मानों का रुपयों में मूल्यांकन इस प्रकार था—

***हाथी सिरोपाव**—हाथी 500, दुशाला 75, कंठी 85, दुपटो 30, खींपखांप 8, सिरेपेच 65, पेचो 11, फुलकारी 6, कुल—720।*

***पालकी सिरोपाव**—पालकी 300, दुशाला-40, कंठी-50, दुपटो-20, खींपखांप-6, सिरेपेच 45, पेचो-7, फुलकारी-4, कुल—472।*

***घोड़ा सिरोपाव**—घोड़ा-150, दुपटो-15, दुशालो-30, मदील-7, कंठी-30, खींपखांप-4, फुलकारी-4, कुल—240।*

सरदारों को उनकी विशेष सेवाओं के उपलक्ष में लवाजमा भी महाराज की तरफ से बख्शा जाता था। लवाजमे में निम्न चीजें शुमार होती थी। चंवर, बल्लमदार, घोटाबरदार, चांदी की छड़ी, छांवरी, नगारा निशाण, सुथरी आदि।

किसी भी ठिकाणेदार की मृत्यु के बाद उस ठिकाणे की सनद के नवीनीकरण का प्रावधान था। नई सनद प्राप्त करने के लिए पूर्व ठाकुर के उत्तराधिकारी को कुछ राशि महाराजा को चुकानी पड़ती थी। इस सम्बन्ध में कोई नियम नहीं था। इस प्रथा को हुक्मनामा कहते थे। कभी-कभी हुक्मनामे की राशि उस ठिकाणे की निर्धारित रेख के चार या पाँच गुने तक पहुँच जाती थी। महाराजा अपनी मन मरजी से हुक्मनामे की राशि निर्धारित करते थे। इस अनियमितता के कारण आगे चलकर सरदारों में बड़ा असन्तोष उपजा। ई. सन् 1869 में राज्य के पेलिटिकल एजेण्ट कर्नल ब्रूक ने इसे नियमबद्ध किया।

किसी भी जागीरदार द्वारा अपने हलके में किसी नए गढ़ के निर्माण या पुराने गढ़ की बुर्ज आदि की मरम्मत के लिए महाराजा से पूर्व अनुमति लेनी होती थी। कुछ ठिकाणों को टकसाल के भी अधिकार थे। जोधपुर के किले में दिन में चार बार बड़ा नगारा बजाने की प्रथा थी। राज्य में किसी बड़े जमींदार की मौत हो जाने पर एक बार का नगारा बजाना निलम्बित कर दिया जाता था। उस दिन नगारा सिर्फ तीन बार ही बजता था।

ठिकाणेदारों के पास पट्टासुद गाँवों के अतिरिक्त भी कुछ गाँव महाराजा द्वारा इनायत किए हुए होते थे। इन्हें बढ़ारा कहते थे। कई जमींदार भोमियों के रूप में माने जाते थे। इस श्रेणी में अधिकतर वे जमींदार होते थे जो राठौड़ों के राज्य से पहले उस जमीन के मालिक थे। इस श्रेणी में ज्यादातर सांचोर के चौहान, मालानी के ठाकुर या लाडनू के मोहिल आते थे। उनको अपनी जमीनों के लिए रेख नहीं देनी पड़ती थी, फिर भी थोडी बहुत लाग फौजबल या खिचड़ी लाग के रूप में उन्हें चुकानी पड़ती थी। भोमियों को जमीनों के पट्टे नहीं दिए जाते थे। वंशानुगत ही उनका यह अधिकार निश्चित होता था। मौके-बे-मौके भोमियों को अन्य सेवाएँ भी देनी पड़ती थीं। जैसे डाकुओं का पीछा करना, गाँवों की रक्षा करना, सरकारी खजाने की हिफाजत करना आदि उनके अतिरिक्त दायित्व थे।

खेतिहर जमीनों की उपज पर एक निर्धारित दर से लगान वसूलने का अधिकार सम्बन्धित जागीरदार को प्राप्त था। उसका एक निर्धारित भाग जागीरदार अपने महाराजा को रेख के रूप में अदा करता था। चाकरी के रूप में ठाकुर जमींदार अपने महाराज को किसी बाहरी खतरे या किसी अन्य स्थान पर चढ़ाई किए जाने के अवसर पर सैनिक सहयोग भी देता था। सम्पूर्ण मारवाड़ में करीब 1/5 भाग खालसे के गाँवो का था। ये गाँव महाराजा के सीधे नियन्त्रण में रहते थे। महाराजा की तरफ से खालसे के गाँव या गाँवों के समूह पर एक हाकिम तैनात रहता था जो शासकीय दायित्वों को अन्जाम देता था।

चारणों को दान में दी जाने वाली जमीनों को सांसण कहते थे। ब्राह्मणों, नाथों और मन्दिरों के निमित भी भूमिदान करने की प्रथा थी। इन जमीनों को डोलियाँ कहा जाता था। ऐसी जमीनों पर किसी तरह का लगान नहीं लगता था, न ही ये जमीनें जब्त की जा सकती थीं। अगर ऐसी जमीनों पर जमींदार किसी बहाने अतिक्रमण करने की सोचता तो चारण या ब्राह्मण धरने (सत्याग्रह) का सहारा लेते। ऐसे धरने जमींदार के सिर पर एक बड़ा कलंक माने जाते थे।

मारवाड़ का राज्य पूरे राठौड़ वंश की थाती माना जाता था। महाराजा सम्पूर्ण राठौड़ वंश के एक प्रतिनिधि के रूप में माने जाते थे। सभी छोटे-बड़े राठौड़ सरदार इस भाव से आवेष्ठित थे। मारवाड़ की जमीन क़े प्रति उन्हें जोड़े रखने का यह एक पवित्र सूत्र था। यह सूत्र जमीन की रक्षा के लिए प्रत्येक राठौड़ को अपने प्राणों की बलि देने की प्रेरणा देता था। राठौड़ों का मानना था कि अगर महाराजा उनके इस भाव को स्वीकृति देते हैं और सम्माजनक रूप से उनकी सेवाओं को स्वीकार करते हैं तो महाराजा उनके मुखिया हैं, अन्यथा उनमें और महाराज में कोई अन्तर नहीं।

राठौड़ों के अलावा भी राज्य में कुछ अन्य सरदार भी थे, जो गनायत की श्रेणी में आते थे। इनके साथ महाराज का भाईचारे का सम्बन्ध नहीं रहता था। उनके साथ या तो वैवाहिक सम्बन्ध रहता था या कर्त्तव्य, आज्ञाकारिता या कृतज्ञता जैसे उद्दात भावों पर ही ये सम्बन्ध टिके रहते थे। इन सरदारों में भाटी, कछवाहा, हाडा, देवड़ा, जाड़ेजा, सीसोदिया तंवर आदि थे। परस्पर बने इन पवित्र रिश्तों को कायम रखने में लोग ज्यादा विश्वास रखते थे। जान-बूझकर इन रिश्तों को कोई तोड़ना नहीं चाहता था। यह भाव ही स्थाइत्व का मुख्य आधार था।

अध्याय – 4

I

विकास के बढ़ते चरण

यद्यपि अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति पाना राष्ट्रव्यापी ध्येय बन गया था, उस ध्येय से यह कस्बा बखूबी जुड़ा भी लेकिन प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों की गुलामी के दुष्परिणामों का अनुभव इस कस्बे को कम ही रहा। स्थानीय जागीरदारों का शासन आतंकभरा नहीं था। रियासती स्तर पर भी निरंकुशता का अभाव ही था। कहना चाहिए अंग्रेजों के संरक्षण में ही रियासत में 'कानून के राज' की दिशा में गति हुई। अधिकतर रियासती शासक आदर्शवादी और उदार बने रहे। कस्बे का बड़ा आर्थिक स्रोत बंगाल आसाम का व्यवसाय था। अंग्रेज सन्तुलित और विश्वसनीय व्यवसायिक बुद्धि के लोग थे। कलकत्ता के अंग्रेज व्यापारियों और उद्योगपतियों से लाडनू के व्यापारियों के मधुर सम्बन्ध थे।

यद्यपि इस विशाल देश में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए अंग्रेज पूरे सचेष्ट थे परन्तु इस देश की चहुँमुखी उन्नति के प्रति उनकी प्रतिबद्धता नहीं के बराबर थी। इस देश के उत्तरोत्तर विकास की उनके पास कोई कार्य योजना नहीं थी। भारत उनके लिए लाभ देने वाला एक उपयोगी उपनिवेश मात्र था। अतः अंग्रेजों के शासन से मुक्त होना जरूरी हो गया था। तथ्य यह भी है कि उनके द्वारा स्थापित शान्ति और व्यवस्था में ही उनसे आजाद होने का विधायी विचार उपजा था।

आजादी एक बड़ी घटना थी अतः इतिहास की धारा पर उसका प्रभाव पड़ना जरूरी था। आम आदमी की शासन में भागीदारी सुनिश्चित हुई। उसके कार्यकलापों में 'राजनीति' का एक नया क्षेत्र जुड़ गया। आगे बढ़ने का हौसला कुछ और बुलन्द हुआ। अन्दाज बदले। गति के कदम तीव्रतर हुए। लाडनू कस्बे ने भी आजादी के इस मुक्त आकाश में उड़ान भरना शुरु किया। विकास के नए कीर्तिमान स्थापित हुए।

नया जैन मन्दिर :

सन् 1952 : बैसाख शुक्ला त्रयोदशी को इस भव्य प्रतिष्ठान का शिलान्यास हुआ। सुखदेव आश्रम के नाम से जाना जाने वाला यह संस्थान कस्बे के कला वैभव का एक



अद्‌भुत नमूना है। संगमर्मर में निर्मित यह विशाल मन्दिर दिगम्बर जैन समुदाय के प्रसिद्ध तीर्थों में शुमार हो गया है। हजारों की संख्या में जैन तीर्थयात्री प्रतिवर्ष यहाँ आते हैं। इसके निर्माण का श्रेय सेठ श्री सुखदेव गंगवाल के पुत्रों को है। इस मन्दिर का योजना विन्यास अति सुन्दर है। इस अनुपम स्थापत्य के निर्माण की अवधारणा भी अपने आप में अति श्रेयस्कर बात है।

प्रांगण में भगवान् बाहुबली की सौम्य प्रतिमा, मान स्तम्भ, मन्दिर के गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर दोनों तरफ स्थापित इटालियन संगमर्मर में बने सिंहों का एक जोड़ा, गर्भगृह में स्थापित सप्त धातु में बनी भगवान आदिनाथ की मनोहारी प्रतिमा तथा सैंकड़ों अन्य प्रतिमाएँ अतिदर्शनीय हैं। भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा के सामने स्थापित तोरणद्वार भी कला का बेजोड़ नमूना है। इन सब के अतिरिक्त सभागार तथा मनमोहक उद्यान इसके परिसर की सुन्दरता में अभिवृद्धि करते हैं। यह मन्दिर कस्बे के व्यक्तित्व का एक आभामय वलय है।

लाडनू नागरिक परिषद्—कलकत्ता

कलकत्ता में प्रवास कर रहे लाडनू शहर के नागरिकों के मन में एक विचार उभरा कि अपने मूल कस्बे के विकास में भी उन्हें सहयोग करना चाहिए। फलस्वरूप गत शताब्दी के सातवें दशक के प्रारम्भिक वर्षों में कलकत्ता महानगर में लाडनू नागरिक परिषद् का जन्म हुआ। उसके प्रथम अध्यक्ष श्री सोहनलाल दूगड़ निर्वाचित हुए। प्रारम्भिक सदस्यों में सर्वश्री भीकमचन्द सेठिया, मेघराज नाहटा, पूसराज भूतोड़िया, गणेशमल

बैद, सरवा बोरड़, रायचन्द फूलफगर, रायचन्द सुराणा, हनुमानमल वर्मा, हनुमानमल बैंगाणी, रिधकरण बोथरा आदि थे।

यद्यपि श्री सोहनलाल दूगड़ फतेहपुर के निवासी थे लेकिन वे अपने आपको लाडनू का ही नागरिक मानते थे। लाडनू उन्हें बहुत प्रिय था। कुछ समय उपरान्त लाडनू नगरपालिका ने उनका नागरिक अभिनन्दन किया और उन्हें लाडनू शहर की मानद नागरिकता प्रदान की। उपरोक्त परिषद् ने कस्बे के विकास की अनेक योजनाओं में बहुमूल्य योगदान दिया। यथा—लाडनू का खेल स्टेडियम, जलदाय योजना, सुजला महाविद्यालय, नगरपालिका भवन आदि। इस संस्थान से प्रेरणा लेकर राजस्थान के अन्य कस्बों व शहरों के नाम से देश के महानगरों में संगठन स्थापित हुए। मुम्बई, सूरत, दिल्ली में भी लाडनूँ नागरिक परिषदें गठित हुईं।

कालान्तर में कलकत्ता में राजस्थान नागरिक परिषद् की स्थापना के पीछे भी यही प्रेरणा रही। इन संगठनों के माध्यम से प्रवासी राजस्थानियों का महानगरों में परस्पर संवाद बना रहता है। साथ-साथ प्रत्येक संगठन अपने-अपने क्षेत्र की विकास योजनाओं में सहभागी बनता है।

महाविद्यालय (सुजला) :

शिक्षा के क्षेत्र में यह एक महत्त्वाकांक्षी योजना थी जो गत शताब्दी के छठे दशक के मध्य में सम्पन्न हुई। इसके निर्माण में लाडनू नागरिक परिषद् कलकत्ता का प्रयास बहुत प्रभावी रहा। क्षेत्र के विधायक मथुरादास माथुर का सहयोग तो सर्वोपरि था ही। कला, वाणिज्य और विज्ञान—तीनों संकायों में स्नातक स्तर के अध्ययन की योजना बनी। आज महाविद्यालय स्नातकोत्तर स्तर का है। इसके शुभारम्भ के समय एक बड़ा आयोजन जसवंतगढ़ रेलवे स्टेशन के पास एक खुले मैदान में रखा गया। विशाल पाण्डाल में सुजानगढ़, लाडनू और जसवंतगढ़ के नागरिक बड़ी संख्या में एकत्रित हुए।

राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया, वित्तमंत्री मथुरादास माथुर, लाडनू नागरिक परिषद्, कलकत्ता के अध्यक्ष श्री सोहनलाल दूगड़ लाडनू नगरपालिका के अध्यक्ष श्री दीपंकर शर्मा आदि अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति समारोह में उपस्थित थे। समारोह की अध्यक्षता श्री नथमलजी सेठी ने की थी। कार्यवाही का संयोजन सेठ सोहनलालजी दूगड़ ने किया था। 'विज्ञान महाविद्यालय' लाडनू के [illegible] श्री हनुमानमलजी बैंगाणी के आर्थिक सहयोग से बना। उसका नाम

श्री मोतीलाल बैंगाणी राजकीय विज्ञान महाविद्यालय रखा गया। सुजानगढ़ के श्री ज्ञानीराम हरकचन्द ने वाणिज्य और कला संकाय का अर्थभार वहन किया।

मुख्य भवन जहाँ बने हैं वह भूमि यद्यपि जसवंतगढ़ क्षेत्र में है लेकिन लाडनूं व सुजानगढ़ से समान दूरी पर स्थित हैं। इस महाविद्यालय के केम्पस का नाम सुजला रखा गया। ऐसा स्थान जहाँ ज्ञान रूपी स्वच्छ जल की त्रिवेणी बहती हो। संयोग से इस योजना में सहभागी तीनों कस्बों के प्रथम अक्षरों को मिलाने से यही नाम उभरता है।

खेलकूद स्टेडियम :

इस योजना के लिए जमीन श्री हनुमानमल बैंगाणी ने दी थी। भवन निर्माण का व्यय सेठ श्री सोहनलाल दूगड़ ने वहन किया था। शहर के सेवाभावी डॉक्टर सुनीलरंजन गुहारॉय की स्मृति में इस खेल मैदान का नाम सुनीलरंजन गुहारॉय स्टेडियम रखा गया। इसके निर्माण के समय भी नगरपालिका के अध्यक्ष श्री दीपंकर शर्मा ही थे। श्री दूगड़जी दीपंकरजी का बड़ा सम्मान रखते थे तथा उन पर पूरा भरोसा करते थे।

सन् 1963 : पेयजल आपूर्ति योजना :

यह योजना सेठ श्री सुखदेव जी गंगवाल के पुत्र श्री तोलारामजी की स्मृति में गंगवाल परिवार के आर्थिक सहयोग से बनी। इस योजना के पूरा हो जाने पर कस्बे की पेयजल की समस्या का समुचित समाधान हो गया। महिलाओं द्वारा दूर-दूर के कूओं से अपने सिरों पर पानी ढोने की प्रथा का हमेशा के लिए अन्त हो गया। साथ-साथ ग्रामीण संस्कृति का एक सुन्दर प्रतीक पनघट भी अतीत की वस्तु बन गया। इस योजना के क्रियान्वयन में भी तत्कालीन नगर मेयर श्री दीपंकर शर्मा की भूमिका स्मरणीय रही। लाडनूँ नागरिक परिषद कलकत्ता के प्रयास सर्वोपरि थे ही।

अधिवेशन, सम्मेलन तथा सामाजिक आयोजन :

पिछली सदी के छठे दशक में आयोजित धर्मक्रान्ति सम्मेलन भी नए विचार जगाने वाला एक क्रांतिकारी प्रयास था। श्री गणेशमल बैद जैसे युवा और उत्साही विचारक उभरकर सामने आए। प्रबुद्ध ओर सुलझे हुए विचारों के धनी श्री भंवरमल सिंघी आयोजन के प्रमुख वक्ता थे। कस्बे का पर्दा निवारण सम्मेलन भी कस्बे में पुनर्जागरण की उद्घोषणा के अनेक स्वरों में से एक स्वर था। महिलाओं में व्याप्त पर्दे की अमानवीय रूढ़ि को तोड़ने की दिशा में सर्वप्रथम घोषणा श्री बुधमलजी भूतोड़िया की धर्मपत्नी श्रीमती मांगीदेवी ने की थी। इस घटना से रूढ़िवादी मन बौखला उठे

थे। श्री जोधराज जी बैद के विचारों की यह पहली विजय थी। आज पर्दे के बिना चलना महिलाओं के लिए एक सहज स्वभाव बन गया है, तब यह बड़ा साहस भरा निर्णय था।

युवक परिषद :

सन् 1966 में युवक परिषद नाम की यह संस्था लाडनू में गठित हुई। इसका एकमात्र उद्देश्य कस्बे की युवाशक्ति को कस्बे के नवनिर्माण में सहभागी बनाना था। इसका कार्यक्षेत्र काफी व्यापक रहा। शैक्षणिक, सांस्कृतिक और सामाजिक क्षेत्रों में इस संस्था ने कुछ कीर्तिमान भी स्थापित किए। इसके द्वारा कस्बे में रोगनिदान केन्द्र की स्थापना एक अच्छी शुरुआत थी। अन्तर्स्कूलीय सांस्कृतिक प्रतियोगिताएँ भी इसने अपने प्रारम्भिक वर्षों में आयोजित कीं, जो बड़ी लोकप्रिय रहीं। अनेक निर्धन छात्र इससे लाभान्वित हुए। 'मंगलम' प्रसूति तथा अस्पताल की महत्त्वाकांक्षी योजना के क्रियान्वयन मे भी यह संस्था सफल रही। इस योजना में तत्कालीन राज्यपाल श्री ओ.पी. मेहरा तथा नागौर जिलाधीश श्री एस.सी. राजन की प्रेरणा व प्रोत्साहन भी सराहनीय रहे।

युवक सम्मेलन व कवि सम्मेलन :

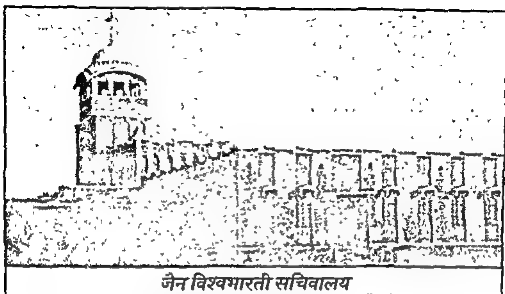
सन् 1972 : युवक परिषद के तत्त्वावधान में कस्बे में युवक सम्मेलन आयोजित हुआ। बीकानेर के प्रसिद्ध विचारक श्री छगन मोहता तथा युवा साहित्यकार श्री हरीश भादाणी इस अधिवेशन के प्रमुख वक्ता थे। श्री अक्षयचन्द्र शर्मा भी बीकानेर से लाडनू पधारे।

श्री सिद्धराज ढढ्ढा जैसे विचारक मनीषियों के विचारों से भी यह शहर अनेक बार लाभान्वित हुआ। विचार क्रान्ति की दिशा में कवि सम्मेलनों की भी सार्थक भूमिका रही। अनेक बार प्रदेश तथा राष्ट्र स्तर के कवियों का इस कस्बे में आने का सुयोग बना। बड़े अद्भुत आयोजन थे। हौसला था। आगे बढ़ने का रुझान था।

जैन विश्व भारती व विश्वविद्यालय :

सन् 1970 : जैन विश्वभारती, लाडनू जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय का देश भर में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्थान है। इसके प्रेरणा पुरुष इसी सम्प्रदाय के नवम आचार्य श्री तुलसी थे। इसके दार्शनिक आधार के प्रमुख शिल्पी वर्तमान आचार्य श्री महाप्रज्ञ रहे हैं। साध्वी प्रमुखा कनक प्रभाजी का श्रम, साधना व तपस्या भी इसकी अभिवृद्धि में अति प्रभावी रहे। एक सम्प्रदाय विशेष का उपक्रम होने पर भी इसका आलोक चहुँदिश फैल रहा है तथा समाज के हर सामान्य आदमी तक पहुँच रहा है।

इस संस्थान में एक मान्य विश्वविद्यालय भी अवस्थित है। इस विश्वविद्यालय में प्राच्य विद्याओं, भाषाओं, विश्वशान्ति तथा जैन धर्ममूलक आदर्शों के अध्ययन,



जैन विश्वभारती सचिवालय

अध्यापन तथा शोध की समुचित व्यवस्था है। इस ज्ञानभूमि से अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान तथा जीवन विज्ञान जैसे रचनाधर्मी विचार उपजे।

इसके ग्रंथागार में करीब पैंतीस हजार बहुमूल्य पुस्तकों का संग्रह है। इसके साथ-साथ करीब पाँच हजार हस्तलिखित ग्रंथ भी इसमें संग्रहीत हैं। जैन धर्म सम्बन्धी अध्ययन, लेखन तथा प्रकाशन की यहाँ पूरी व्यवस्था है। प्रतिवर्ष अनेक जिज्ञासु विदेशी भी अध्ययनार्थ तथा अवलोकनार्थ यहाँ आते रहते हैं। यहाँ अतिथियों, स्थाई कर्मचारियों, अधिकारियों तथा प्रध्यापकों के आवास की समुचित व्यवस्था है।

जैन विश्वभारती परिसर में बना संग्रहालय भी एक महत्त्वपूर्ण संस्थान है। इसमें साधु-साध्वियों द्वारा बनाई गई कलात्मक वस्तुओं का अद्‌भुत संग्रह है। तुलसी आध्यात्म नीडम् में योग साधना की समुचित व्यवस्था है। वहाँ ध्यान सम्बन्धी शिविर समय-समय पर आयोजित होते रहते हैं।

अनेकान्त इण्टरनेशनल विभाग के माध्यम से यह संस्थान अनेक अन्तर्राष्ट्रीय विश्व विद्यालयों एवं शैक्षणिक संगठनों से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखता है। ऑक्सफोर्ड (लंदन), हार्वड (अमेरिका), इयूकेन (स्वीट्जरलैण्ड) विश्व विद्यालयों में समय-समय पर समणियों के सहयोग से कार्यशालाएँ आयोजित की जा चुकी हैं। यह संस्था अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का एक अनूठा संस्थान बन गया है।

देश-विदेश के कोन-कोने से विभिन्न आचार-विचार, परिधान, रहन-सहन और संस्कारों के लोग यहाँ आते रहते हैं। देश-विदेश की संस्कृतियों का संगम-

यह संस्थान। ऐसा सुअवसर किसी भी कस्बे या शहर के लिए एक दुर्लभ उपलब्धि है। जाने-अनजाने यह सुयोग इस कस्बे को कितना कुछ दे जाता है, उसका मूल्यांकन कर पाना सहज में सम्भव नहीं।

परिवहन, संचार व अन्य आधुनिक सुविधाएँ :

लाडनू शहर दिल्ली-जोधपुर रेलमार्ग का एक महत्त्वपूर्ण स्टेशन है। डेगाना से बीकानेर, रतनगढ़, सादुलपुर व रेवाड़ी को कुल आठ रेलगाड़ियाँ आती जाती हैं। प्रदेश के सभी बड़े नगरों के लिए यहाँ से सीधी बस सुविधा उपलब्ध है। करीब 100 बसें प्रतिदिन आवागमन करती हैं। देश के बड़े नगरों, यथा—दिल्ली, अहमदाबाद, सूरत तथा हरिद्वार से यह शहर सीधी बस सेवा से जुड़ा हुआ है। अधिकतर घर टेलीफोन सुविधा से जुड़ गए हैं। फैक्स तथा इण्टरनेट सुविधा भी शहर में उपलब्ध है। शहर में करीब 70 प्रतिशत परिवार रसोई गैस का उपयोग करने लगे हैं। अधिकतर घरों में रंगीन टी.वी. हैं। शहर कम्प्यूटर शिक्षण का भी अच्छा केन्द्र है। सभी बैंकों में कम्प्यूटर सुविधा उपलब्ध है। बड़े संस्थानों और निजी घरों में भी इसका प्रसार बढ़ रहा है। ओफसेट छापाखानों की संख्या भी काफी बढ़ी है।

समाचार पत्र और पत्रकारिता :

गत शताब्दी के पाँचवे व छठे दशकों में दिल्ली से निकलने वाला 'हिन्दुस्तान' दैनिक पत्र काफी लोकप्रिय था। फिर 'नवभारत टाइम्स' की लोकप्रियता बढ़ी। अंग्रेजी का दैनिक अखबार 'दी हिन्दुस्तान टाइम्स' भी काफी लोग पढ़ते थे। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' की बिक्री भी बढ़ी। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' व धर्मयुग (पाक्षिक) भी लोकप्रिय हुए। अंग्रेजी का 'इलस्ट्रेटेड वीकली' भी अच्छा बिकने लगा था। सातवें दशक में 'दिनमान' पत्रिका की लोकप्रियता बढ़ी। पिछले दशकों में अंग्रेजी (दैनिक) पत्रों के पढ़ने का रुझान कम हुआ है। इसका एक कारण दिल्ली से रेलमार्ग की सीधी सुविधा का अभाव भी है। प्रादेशिक दैनिक पत्रों की बिक्री बढ़ी है।

शहर के एकमात्र वाचनालय में पाठकों की संख्या पर्याप्त रहती है। उसमें करीब पचास पत्र-पत्रिकाएँ व समाचार-पत्र नियमित आते हैं। कुछ प्रादेशिक दैनिक पत्रों के संवाददाता भी इस शहर में नियुक्त हैं। यहाँ से प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्र भारतीय समाज, मरु-सन्देश, ग्रामीण डाक संदेश हैं, जो विगत कुछ वर्षों से नियमित निकलते रहे हैं। विश्वभारती संस्थान से निकलने वाली पत्रिकाओं का अपना अलग क्षेत्र है। -दृष्टि', 'प्रेक्षाध्यान' की गिनती भी नियमित निकलने वाले पत्रों में शुमार है।

सांस्कृतिक मेले, उत्सव व पूजा आयोजन :

लाडनूं का 'गणगौर' का मेला एक अनपुम सांस्कृतिक आयोजन है। कभी इस अवसर पर ऊँट-घोड़ों तथा बेलियों (रथों) की दौड़ होती थी। लाडनूं के ठाकुर जमींदार स्वयं इसमें शिरकत करते थे। कभी घोड़े पर तथा कभी पालकी पर वे आते थे। शीतला का मेला भी एक लोकप्रिय मेला है। सावण की तीज पर 'दुरजनसर' तालाब पर एक आकर्षक मेला भरता है। अब इसका उत्साह कुछ शिथिल सा पड़ रहा है। गत वर्षों में कुछ नए मेले, उत्सव तथा पूजा-आयोजन भी शहर के जीवन से जुड़े हैं; यथा—दशहरा मेला, झूला महोत्सव, महाराष्ट्र व बंगाल की तर्ज पर क्रमशः गणेश व दुर्गा पूजा, दिवाली के अवसर पर महादीपोत्सव, श्रावण मास पर शिव पूजा के निमित कावड़ यात्रा, अमरनाथ के सदृश बर्फ के शिवलिंग की स्थापना आदि।

धर्मशाला तथा अतिथि भवन :

रेलवे स्टेशन पर सिंघीजी की धर्मशाला (अब इसका नवीनकीरण हो गया है तथा उस स्थान पर एक आलीशान सार्वजनिक भवन बन गया है।), रावगेट पर हरकचन्द राधाकिशन किला धर्मशाला। इनके अतिरिक्त ओसवाल पंचायती भवन, ओसवाल अतिथि भवन, भैया धर्मशाला, अग्रवाल भवन, बद्री भवन, रामचन्द्र किला भवन, पन्नालाल फोगला भवन, बगड़ा भवन, विश्वकर्मा भवन, प्रजापति भवन, जैन भवन, गोविन्ददास स्मृति भवन, माहेश्वरी भवन, जोगड़ भवन, जुहारमल रोड़ा भवन, खाण्डल विप्र भवन, पारीक भवन, दाधीच भवन, मेढ़ क्षत्रिय स्वर्णकार भवन, रिधकरण बोथरा भवन, भंवरलाल लूंकड़ स्मृति भवन, रामेश्वर किला भवन, चावण्डा मन्दिर भवन, कायमखानियों का पंचायत भवन, मेड़तिया सिलावट मदरसा भवन, मोहिलों का पंचायत भवन, सुखजी ठेकेदार की धर्मशाल आदि प्रमुख सार्वजनिक भवन हैं।

आर्य समाज :

इस शहर में आर्य समाज का इतिहास इस पूरी सदी को ही घेर लेता है। नव-जागरण में इस संस्था ने अहम भूमिका निभाई। आजादी के लिए लड़ने वाले अनेक कार्यकर्ता आर्य समाज की ही देन थे। इस संस्था का निजी भवन राव-दरवाजे के ठीक बाहर थोड़ी दूर पर स्थित है। इसके पुराने कार्यकर्त्ताओं की एक लम्बी सूची है, जिसमें स्व. सिरहमल आर्य, मोतीलाल स्वर्णकार, चुन्नीलाल आर्य सोहनलाल बैद (जौहरी), आदि के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं।

स्वैच्छिक सामाजिक संगठन :

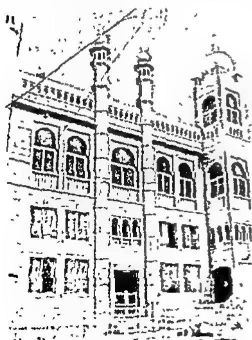
ओसवाल हितकारिणी सभा, महावीर हीरोज, यंग-फ्रेण्ड एशोसिएशन, ओसवाल सभा, युवक परिषद्, अंजुमन फैज-ए-आम, फ्रेंण्ड्स सोसाइटी, अंकुर, विवेक भारती, युवा

जागृति मंच नामों से जाने जाने वाले अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन इस शहर में पैदा हुए। ओसवाल हितकारिणी सभा ओसवाल सभा में विलीन हो गई। यंग फ्रेण्ड एशोसिएशन का अस्तित्व समाप्त हो गया है। ओसवाल सभा का नाम इन सबके अग्रसरों में गिना जाएगा। एक सम्प्रदाय विशेष का संगठन होते हुए भी इस सभा ने वृहद् जनहित के काम सम्पन्न किए।

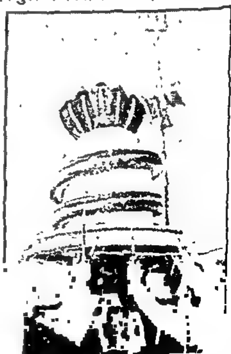
अंकुर ने साहित्यिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में दिशा देने का एक सुन्दर प्रयास किया था। युवक परिषद् ने भी अपने मंच से अन्तर्स्कूलीय सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं की शुरुआत की थी। 'मंगलम' अस्पताल की महत्ती योजना भी इसने मनोयोग से सम्पन्न की। फ्रेण्ड्स सोसाइटी ने शहर की प्रकाश व्यवस्था, निःशुल्क नेत्र चिकित्सा शिविर आदि लाभकारी योजनाएँ हाथ में ली थी। अंजुमन-फेज-ए आम ने शहर में साम्प्रायिक सद्भाव प्रसारण में साहसपूर्ण भूमिका निभाई। पता नहीं अब सुस्ती क्यों आ रही है। नेतृत्व का अभाव और राजनैतिक दलों की नकारात्मक उछल-कूद इस शहर की समस्त रचनात्मक प्रतिभा को निगल रहे हैं।

स्थापत्य के क्षेत्र में कुछ नए निर्माण :

स्थानीय दोनों ईदगाहों पर विशाल और सुन्दर बुलन्द दरवाजे बन गए हैं। कस्बे के



मस्जिद, मोहिलों का बड़ा बास



बड़ा बास नामक मोहल्ले में स्थित अलीशाह के तकिए पर अब एक आलीशान मस्जिद बन गई है। इस मस्जिद के निर्माण में उस मोहल्ले की मोहिल तथा कायमखानी— दोनों कौमों ने सहभागिता निभाई है। इस मस्जिद के इन्तजाम में भी दोनों कौमें शरीक हैं।

इस अवधि में कस्बे में दो शिवालय बने। अनेक मन्दिर भी बने। स्थानीय पटावरी परिवार के सहयोग से रेलवे स्टेशन के सामने हनुमानजी का नया मन्दिर बना। पहली पट्टी मोहल्ले में भैयों की बगीची में भी बड़े आकर्षक निर्माण हुए हैं। करंट बालाजी के नाम से भी एक अच्छा पिकनिक स्थल विकसित हुआ। इसकी व्यवस्था श्री शिवलाल किल्ला देखते हैं। जैन विश्वभारती प्रांगण में विश्वविद्यालय के भवन बने। अनेक निजी भवन भी कला के सुन्दर नमूने हैं। अनेक नए उत्साही राजगीर भी प्रकाश में आए। यथा—स्व. सुभानजी, श्री बख्शु सखी मोहम्मद, जिक्रू आदि। यद्यपि ये राजगीर पढ़े-लिखे बहुत कम हैं लेकिन अनुभव ने उनको मांज दिया है। कस्बे के नव-निर्माण में ये अच्छा योगदान दे रहे हैं।

आर्थिक उन्नति के बढ़ते चरण :

आजादी के बाद कस्बे के आर्थिक विकास का एक नया दौर शुरु हुआ। पहले लोग आमदनी की तलाश में सिर्फ बंगाल और आसाम ही जाते थे। फिर बम्बई, बंगलौर, हैदराबाद, मद्रास और शेष दक्षिण भारत की तरफ उनके पैर बढ़े। अब यह दायरा अन्तर्राष्ट्रीय जगत तक फैल गया है। आज हजारों की संख्या में इस कस्बे के लोग अरब देशों में हैं। कुछ ने वहाँ अपने निजी प्रतिष्ठान भी स्थापित कर लिए हैं। अब लोग जापान, कोरिया, ऑस्ट्रेलिया, इटली और जर्मनी तक भी पहुँचने लगे हैं। कुछ विशेष प्रतिभा सम्पन्न लोग संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में भी अपनी पहचान बनाने में सफल हुए हैं। करोड़ों रुपयों की विदेशी मुद्रा इस कस्बे में प्रतिवर्ष पहुँच रही है।

औद्योगिक प्रगति में कस्बे का मौलिक योगदान :

शहर का पहला उद्योग :

स्व. लादूराम सोनी (मेढ़) ने इस शहर में पहला उद्योग सोने-चाँदी के तारपात बनाने की मशीनों का लगाया था। यह एक साहस भरा कदम था। उस समय शहर में किसी तरह का कोई शक्तिस्रोत भी उपलब्ध नही था। सारा काम हाथ से होता था। लेद मशीन (खराद) भी मानव श्रम से चलाई जाती थी। बेलनों की टेम्परिंग का काम भी कारीगर सधे अंदाज से करते थे। इस कारखाने में उत्पादित मशीनें लोकप्रिय भी बहुत हुईं।

स्व. खूबचन्द बरमेचा का नाम भी शहर के अग्रणी उद्योगकर्त्ताओं में गिना जाएगा। आधुनिक मशीनों के सहयोग से चांदी के बर्तन बनाने का बड़ा उद्योग शहर में सर्वप्रथम उन्होंने स्थापित किया था। फिर लोहे की चदरों के कलकत्ता शैली के ट्रंक (संदूक) बनाने का भी उद्योग उन्होंने प्रारम्भ किया। सन् 1948 में बर्फ बनाने का बड़ा कारखाना स्थापित हो चुका था।

दूसरा महायुद्ध समाप्त हो चुका था। युद्ध में काम आए हवाई जहाज के हजारों टायर जोधपुर कबाड़ी बाजार में आए। उनमें से कुछ टायर श्री जोधराजजी बैद लाडनू लाए। उनका उपयोग उन्होंने अपनी नई स्थापित बर्फ फैक्ट्री की आइसक्रीम बेचने की हाथ-गाड़ियों में किया। फिर उनका उपयोग स्थानीय भैंसा-गाड़ियों में किया गया। नतीजा आशाजनक रहा। विचार आगे बढ़ा कि क्यों न इनका उपयोग सभी तरह के पशुचालित वाहनों में किया जाए। यह बड़ा क्रान्तिकारी विचार था, शीघ्र ही पूरे राजस्थान में फैल गया।

इस विचार के विकास में लाडनू के प्रथम इंजिनियर श्री मोहनलाल कुचेरिया का भी योगदान महत्त्वपूर्ण रहा। श्री कुचेरिया ने जोधपुर में आइस फैक्ट्री बैठाली थी तथा वहीं बस गए थे। श्री जोधराज उनसे सलाह मशविरा करते रहते थे। इस व्यापार में पहला कदम श्री रामनिवास अग्रवाल ने बढ़ाया। कालान्तर में इस धन्धे में एक समस्या उभर आई। रबर टायर तो उपलब्ध हो जाते थे लेकिन उस अनुपात में उनमें लगने वाली व्हील-रीम उपलब्ध नहीं हो पाती थी।

इस क्रम में श्री सदासुखजी कोठारी ने लोहे के व्हील-रीम बनाने की एक फैक्ट्री लगाई लेकिन उनके व्हील-रीमों का उत्पादन एक निश्चित आकार तक ही सम्भव हो पाया। वांछित चौड़े आकार में उत्पादन देने में वह अक्षम रही। इस दिशा में अन्तिम समाधान दिया श्री नथमलजी जांगिड़ ने। उन्होंने एक ऐसी पद्धति इजाद की, जिससे सब तरह की व्हील-रीम सरलता से बनाना सम्भव हो गया। इस पद्धति में हब का प्रावधान भी इनबिल्ट था। इसके निर्माण में काम में आने वाला यांत्रिक ढाँचा भी उन्होंने ही इजाद किया। आज सारे राजस्थान में इसी पद्धति का उपयोग हो रहा है।

हवाई जहाज के पुराने बड़े टायरों को रीट्रीड करने का धंधा भी काफी चला। इसका प्रारम्भ श्री कन्हैयालाल जांगिड़ ने किया। इस विचार से प्रेरित होकर बहुराष्ट्रीय कम्पनी डनलप ने भी ऊँट चालित गाडों के लिए बड़े आकार (1700-16) डकोटा विमान के टायरों के सदृश टायर निकाले। आज स्थिति यह है कि हवाई जहाज के

टायरों की जगह बसों के पुराने टायर गोल करके काम में लिए जाते हैं। बसों के टायर प्रचुर संख्या में सहज ही उपलबध हो जाते हैं। इन रबर टायरों से पशु-वाहनों की भार ढोने की क्षमता पहले की तुलना में करीब दस गुणी बढ़ गई है। बोझ ढुलाई का काम पशुओं के लिए अपेक्षाकृत काफी सुगम भी हो गया है।

पुराने टायरों के इस उद्योग के साथ पशु चालित गाड़ियाँ बनाने का धंधा भी शहर में पनपा। इन वाहनों में काम आने वाले चमड़े के सामान का भी बाजार बना। साथ-साथ पानी की टंकियों के निर्माण का भी उद्योग तेजी पकड़ता गया। बाहर से आने वाले खरीददारों के कारण शहर का होटल उद्योग भी विकसित हुआ। आज स्थिति यह है कि यहाँ के व्यापारियों ने बना-बनाया पूरा छकड़ा और अन्य सामान प्रदेश के विभिन्न पशु-मेलों में लेजा-लेजाकर बेचना शुरु कर दिया है। माल की गुणवत्ता पर भी ध्यान नहीं दिया गया। नतीजन यह उद्योग शहर में कमजोर पड़ता जा रहा है। उद्योग के कमजोर पड़ने का एक कारण यह भी है कि पशु चालित वाहनों की प्रतिस्पर्धा में ट्रैक्टर व अन्य डीजल चालित यांत्रिक वाहन आ गए हैं।

वस्त्रों का रंगाई-छपाई उद्योग :

गत पाँच दशकों में इस उद्योग ने इस शहर में अच्छी साख हासिल कर ली है। शहर के सैकड़ों परिवार इस धंधे से जुड़े हुए हैं। महिलाएँ भी इसमें सहयोगी हैं। शहर का यह एक महत्त्वपूर्ण घरेलू उद्योग है। इस धन्धे के अग्रसरों में लाल मोहम्मद भाटी (छींपा) उर्फ लाला मोडी का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। स्व. लाल मोहम्मद अद्‌भुत प्रतिभा के धनी थे। रंग विन्यास ओर डिजाइन के तालमेल को परखने और निखारने की अद्‌भुत दृष्टि तथा कौशल पाया था उन्होंने। चूनड़ी, लहरिया, पोमचा आदि परम्परागत विधाओं को उन्होंने नए आयाम दिए। उनके द्वारा सज्जित प्रिंट की डिजाइनें देश में दूर-दूर तक लोकप्रिय हुईं।

यह सब कोई एक दिन का चमत्कार नहीं था। यह उनके वर्षो के अनुभव, श्रम और उनकी सौन्दर्य बोध की जन्मजात क्षमता का फल था। उन्होंने सदैव उत्तम गुणों वाले रंगों का ही उपयोग किया तथा उनकी छटा को निखारने की मौलिक विधियाँ विकसित की। आधुनिक फैशन के भाव बोध से भी वे कभी विलग नहीं रहे। परम्परा को नए रूपों में सजाया। यही राज था उनकी सफलता का।

लाडनू का रसगुल्ला उद्योग :

एक जमाना था जब इस शहर के मालजी माळी की दुकान के रसगुल्ले चारों ओर

प्रसिद्ध थे। उनके रसगुल्लों की विशेषता यह थी कि उनका स्पंज बहुत निखरे दर्जे का था। स्वादिष्ट भी बहुत था। यह बात प्रसिद्ध हो गई थी कि ऐसे रसगुल्ले या तो कलकत्ता में बनते हैं या फिर लाडनू में। लोकप्रियता में लाडनू के रसगुल्लों ने पूर्व स्थापित बीकानेर आदि केन्द्रों को पीछे धकेल दिया।

इस तरह के रसगुल्ले बनाने की विधि का विकास श्री मालचन्दजी माली की वर्षो की मेहनत और सूझबूझ का फल था। उनसे यह विद्या उनके उत्तरगामी हलवाइयों, यथा— श्री रामेश्वर, जसकरण आदि ने सीखी और लाडनू इस उत्पादन में अग्रणी पंक्ति में आ गया।

उपरोक्त तीनों प्रतिभा पुरुषों—श्री नथमल जांगिड, लाला मोडी तथा मालजी माळी को स्थानीय युवक परिषद् द्वारा कस्बे को उनकी मौलिक देन के लिए पुरस्कृत भी किया गया।

ऊन मिल की स्थापना :

गत सदी के सातवें दशक में इस शहर में ऊन मिल की स्थापना हुई। यह राजस्थान सरकार का उपक्रम था। इस क्षेत्र में चौखला नश्ल की भेड़ें प्रचुरता में पाई जाती हैं। उनकी ऊन अच्छे गुणों वाली होती है, जो देश में सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस मिल की स्थापना के पीछे मूल विचार यह था कि इस ऊन का उपयोग इसी क्षेत्र में हो तथा इस क्षेत्र के नागरिकों को रोजगार मिले। लेकिन व्यवहारिक आधार पर ताल-मेल के अभाव में यह ऊन मिल सफल नहीं हो सकी।

औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र :

कालान्तर में इसी सुजला केम्पस के दक्षिणी छोर पर 65 नं. राष्ट्रीय राजमार्ग पर, जसवंतगढ़ कस्बे के प्रसिद्ध तापड़िया परिवार के आर्थिक सौजन्य से इस संस्थान की स्थापना हुई। विभिन्न प्रकार के आधुनिक उद्यमों के तकनीकी प्रशिक्षण की यहाँ समुचित व्यवस्था है। इस क्षेत्र की एक बड़ी आवश्यकता का समाधान इस संस्थान ने कर दिया है।

संगमर्मर टाइल उद्योग :

लाडनू कस्बे के पड़ोस में पश्चिम दिशा में एक विशेष प्रकार का चूने का पत्थर निकलता है, जो संगमर्मर की जाति का है। उसकी विशेषता यह है कि उसमें तहर-तरह के रंगों की छटाएँ हैं। सबसे पहले स्व. गिरधारीमल अग्रवाल के मस्तिष्क में उससे टाइल बनाने का विचार पनपा। आज इन टाइल्स ने संगमर्मर की दुनिया में अपनी मौलिक पहचान बना ली है।

बीते दशकों के कुछ अन्य उद्योग :

टर्बाइन पम्प निर्माण में भी कस्बे के कदम आगे बढ़े हैं। टर्बाइन पम्प का सिद्धान्त यद्यपि नया नहीं है, पर यह उद्योग काफी जटिल है अतः कस्बे में इसका निर्माण शुरू करना एक साहस भरा कदम था। इसका श्रेय श्री नेमीचन्द जांगिड (मिस्त्री) को जाता है। श्री नेमीचन्द श्री सदासुख कोठारी के वर्षों तक सहयोगी रहे।

कृषि यंत्रों के विकास में कुछ मौलिक सुधारों का श्रेय स्थानीय मदन इंजिनियरिंग को जाता है, जिसके संस्थापक स्व. मदनलाल जांगिड थे। आज सभी छोटे-बड़े उद्यमों में बिजली चालित उपकरणों का उपयोग बढ़ रहा है। लकड़ी का काम करने वाली सभी कार्यशालाओं में बिजली चलित उपकरण लग गए हैं। स्थानीय इमारती पत्थर की खुदाई और चिराई मशीनों से होने लगी है।

बीती शताब्दी के शहर के कुशल मिस्त्री :

स्व.मालजी (जांगिड़) मिस्त्री, रामाकिशन जांगिड व सखी मोहम्मद सिलावट (सोलंकी) के नाम इस शहर के कुशल मिस्त्रियों की सूची में शामिल हैं। रामाकिशन जांगिड के समान प्रतिभाशाली मिस्त्री सदियों में एक-आध ही जन्मता है। किसी भी प्रकार की मशीन का मात्र मॉडल समझा देने पर वे उस तरह की मशीन बना देते थे। हवाई जहाज के रबर टायरों को रीट्रीड करने की मशीन का निर्माण पहले-पहल उन्होंने ही किया था। श्री सखीमोहम्मद भीति चित्रों के चित्रण में माहिर थे। मालजी मिस्त्री की मशीन सम्बन्धी जानकारी का दायरा बहुत विस्तृत था। लोग मशीन सम्बन्धी पेचीदे मसलों में उनसे राय लेते थे।

व्यवसायिक विकास के क्षेत्र में :

देश की बड़ी मोटर निर्माण कम्पनियों के शो-रूम, बड़ी टायर कम्पनियो के बिक्री केन्द्र इस शहर में स्थापित हो गए हैं। सब तरह की मोटर साइकिलें यहाँ महानगरीय मूल्यों पर उपलब्ध हैं। कस्बे के होटल उद्योग में भी कुछ नए आयाम जुड़े हैं। सब तरह के सैकड़ों वाहन किराए पर कस्बे में हर वक्त उपलब्ध रहते हैं। यह शहर 65 नम्बर राष्ट्रीय हाइवे से जुड़ गया है।

कृषि विकास :

कस्बे की दक्षिण-पश्चिम दिशा में करीब दस किलोमीटर की परिधि में लगभग 200 बिजली चालित नलकूप चल रहे हैं। सब तरह की सब्जी, यथा—गोबी, गाजर, मूली,

लोकी, ककड़ी, बैंगन, तरबूज, प्याज, लहसुन, मिर्च, धनिया आदि की खेती होती है। कपास, सरसों, मूँगफली, जीरा, मेथी आदि व्यावसायिक फसलों का उत्पादन भी बहुत बढ़ा है। इस प्रगति में अग्रसर होने का श्रेय विश्व बैंक द्वारा प्रसारित नलकूपों की क्लस्टर योजना को जाता है। मात्र तीस हजार रुपये के आसान किश्तों पर दिए जाने वाले ऋण से पम्प सहित कूए सुसज्जित कर किसानों को दिए गए। लाडनूं क्षेत्र में इस योजना का समावेश करवाने में श्री दीपंकर शर्मा की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। उसके बाद अपने-अपने खेतों में किसानों द्वारा कुए खुदवाने की होड़ सी लग गई। श्री खींवराज पाण्ड्या इस योजना का लाभ उठाने वाले पहले व्यक्तियों में से थे।

बाकलिया भेड़ प्रजनन केन्द्र :

लाडनूँ के ठीक दक्षिण में करीब 6 मील की दूरी पर बाकलिया ग्राम में इस केन्द्र की स्थापना हुई। यह भी राज्य सरकार का एक उपक्रम है। इसके पीछे विचार यह था कि क्षेत्र की भेड़ों की नश्ल सुधारी जाए। इसके लिए विदेशों से अच्छी नश्ल के मेढ़े मँगवाए गए। यद्यपि यह केन्द्र आज भी चालू है लेकिन इसके नतीजे उतने आशाजनक नहीं निकले, जितने की आशा की गई थी।

लाडनू शहर के नव उद्योगपति :

प्रदेश व देश के महानगरों में शहर की नई पीढ़ी के उद्योगपतियों ने अच्छा स्थान बनाया है। कलकत्ता, मुम्बई, हैदराबाद, मद्रास, अहमदाबाद, दिल्ली व जयपुर आदि में इनके औद्योगिक प्रतिष्ठान हैं। बिजली के सभी प्रकार के तार, केबल, ट्रांसफोर्मर के निर्माण, विभिन्न प्रकार की धातु के तारों की जालियाँ, रसायनिक उद्योग, मेटल शीट परफोरेशन, औषधि निर्माण आदि क्षेत्रो में यहाँ के उद्योगपति अपना स्थान बनाने में सफल हुए हैं। नव उद्योगपतियों के कुछ नाम इस प्रकार हैं—सर्वश्री पूनमचन्द सेठी, शिवनारायण मूंधड़ा, गोविन्दलाल मूंधड़ा, रतनलाल सेठी, भागचन्द कासलीवाल, धनकुमार पाटणी, बच्छराज दूगड़, कमलसिंह बैद, कमलसिंह बोरड़, छत्तरसिंह गोलछा, बाबूलाल फूलफगर, खींवराज सुराना, धनपत मोदी, पूनमचन्द बोकड़िया, चुनीलाल प्रजापत आदि।

प्रतिभा पुरुष :

सुरेशपाल सेठी :

भारत में व्यापार प्रबन्धन में विशिष्ट योग्यता के साथ अपना अध्ययन समाप्त कर श्री सेठी संयुक्त राज्य अमेरिका चले गए, फिर कनाडा। वर्तमान में वे कनाडा के टोरंटो

विश्वविद्यालय में व्यापार प्रबन्धन विभाग की ऑपरेशंस मेनेजमेंट शाखा के प्राध्यापक तथा निर्माण शोध प्रयोगशाला के निर्देशक हैं। सन् 1994 में श्री सेठी कनाडा की रोयल सोसाइटी के फेलो चुने गए। यह सम्मान विज्ञता और विद्वता के क्षेत्र में मिलने वाला कनाडा देश का सर्वोच्च सम्मान है। उपरोक्त अवसर पर प्रेषित नामांकन पत्र का आशय इस प्रकार था—

"सुरेश सेठी—ओपरेशंस रिसर्च/ओपरेशंस मेनेजमेंट के क्षेत्र में किए गए कार्यों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय जगत में पहचाने जाते हैं। उत्पादन, वित्त तथा विनिमयन क्षेत्रों की कतिपय समस्याओं के समाधान में निरत 'ऑप्टीमल कण्ट्रोल थ्यॉरी' के विकास तथा उपयोग में उन्होंने अग्रणी भूमिका निभाई है। गतिशील विकल्पना के निर्णय और भविष्वाणी विषयक क्षितिजों को विस्तृत करने में उनका योगदान आधारभूत रहा है।

स्टोकेस्टिक निर्माण पद्धतियों में वंशानुगत नियंत्रण के सम्बन्ध में उनकी हाल ही की शोध इस दिशा में एक मार्ग बदल देने वाली घटना है। विश्व की प्रमुख शैक्षणिक पत्रिकाओं में उनके 120 से भी अधिक प्रपत्र और लेख प्रकाशित हो चुके हैं। विश्व के सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों से समय-समय पर व्याख्यानों के लिए श्री सेठी को निमंत्रण प्राप्त होते रहते हैं।

बाबूलाल पाटनी :

भारत में ई. सन् 1956 में एल.एल.बी. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर श्री पाटनी कानून के विशेष अध्ययन हेतु इंग्लैण्ड चले गए। वहाँ उन्होंने बार-एट-लॉ की डिग्री प्राप्त की और देश लौटकर कलकत्ता उच्च न्यायालय में उन्होंने वकालत शुरु कर दी। सन् 1986 तक एक सफल बैरिस्टर के रूप में प्रेक्टिस करते हुए उन्होंने बड़े-बड़े सिविल और क्रिमिनल केसों की पैरवी की, जिनमें अनेकों केस रिपोर्टेड हुए। उसके बाद वे कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बना दिए गए। 5-1-87 से 4-5-96 तक वे इस पद पर रहे। उनके अनेक फैसले कानून की किताबों में छपे तथा उनकी मिसालें दी जाती हैं।

डॉ. धर्मचन्द जैन :

आप स्व. जौहरीमलजी भंसाली के पुत्र हैं। एम.एससी., पी-एच.डी., भूतपूर्व विभागाध्यक्ष रसायनशास्त्र—श्री डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर, उपआचार्य—श्री डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर (सेवानिवृत्त)। आप आदर्शनिष्ठ शिक्षक के साथ-साथ एक प्रखर चिन्तक भी हैं। दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुओं के निर्माण में रसायन

शास्त्र के व्यावहारिक उपयोग के बारे में आप निरन्तर सोचते रहे तथा छात्रों को इस दिशा में मार्गदर्शन भी दिया। एक होमियोपैथिक चिकित्सक के रूप में जन-सेवा में भी आप निरन्तर लगे रहते हैं।

श्री मालचन्द बरड़िया :

एम.एससी., पी-एच.डी. (इण्डियन एग्रीकलचर इंस्टीट्यूट, दिल्ली) स्वर्णपदक विजेता। चीनी मिलों के संचालन का विशेष अनुभव। इस उद्योग की विशेष जानकारी हेतु अमेरिका, जर्मनी, जापान, कोरिया, फिनलैण्ड आदि देशों की यात्राएँ की। सम्प्रति-दोराला मिल्स में उप-महाप्रबन्धक ; फेडनेशन ऑफ इण्डिया चेम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री के सदस्य।

निर्मला बरड़िया :

एम.एससी., पी-एच.डी. (इण्डियन एग्रीकल्चर रिसर्च इंस्टीट्यूट, दिल्ली) स्वर्णपदक विजेता, सम्प्रति -- टाटा एनर्जी रिसर्च इंस्टीट्यूट में सेवारत।

सुयश बोरड़ :

शहर के प्रबुद्ध विचारक श्री सखा बोरड़ के आप सुपुत्र हैं, उम्र : 40 वर्ष।

शिक्षा : -- एस.सी.ए., व्यापार प्रबन्धन में स्नातकोतर योग्यता प्राप्त, इसी विषय की अनेक विशिष्ट शाखाओं में विशेष अध्ययन।

उपलब्धियाँ : -- कॉन्फेडरेशन ऑफ इण्डियन इण्डस्ट्रीज (सी.आई.आई.) की पूर्वी क्षेत्र की स्वास्थ्य सम्बन्धी कोर कमिटी के अध्यक्ष : स्वास्थ्य रक्षण, वित्त नियंत्रण व मेटेरियल मैनेजमेंट सम्बन्धी विषयों पर वक्तृताएँ व प्रपत्र प्रकाशित : देश के अनेक बड़े चिकित्सा संस्थानों के निर्देशक तथा सलाहकार : केन्द्रिय वाणिज्य मंत्रालय के प्रतिनिधि रूप में दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों की विदेश यात्रा।

सम्प्रति : -- बी. एम. बिड़ला हृदय रक्षण व शोध संस्थान, कलकत्ता के मुख्य वित्त-नियंत्रक।

इन सबके अतिरिक्त नलिनी कठोतिया, एल.एल.एम., आर.ए.एस., श्री मांगीलाल खीची, आर.ए.एस. (उप जिलाधीश), ए.के. अग्रवाल, आर.जे.एस., सिविल जज : प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट, डॉ. सुमन भाटी, एम.डी., श्रीमती सुशीला खुटेटा, एम.एस. (गायनिकोलोजी व ओबस्ट्रेटिक्स), शिक्षा के राज्य स्तरीय सम्मान से सम्मानित श्रीमती कंचन शर्मा, एम.ए., एम.एड., दिलीपकुमार पाटनी, सी.ए. परीक्षा

में विशेष योग्यता प्राप्त तथा स्वर्ण पदक विजेता, श्री भंवरलाल भोजक (सेवानिवृत्त अधीक्षक अभियंता, राजस्थान राज्य विद्युत विभाग, अशोक वर्मा, अधीक्षक अभियन्ता, डॉ. अवन्ति कुमार सेठी, पी-एच.डी., यू.एस.ए. में प्राध्यापक, श्री छत्तर कुचेरिया (संयुक्त राज्य अमेरिका में महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पद पर सेवारत) के नाम भी कस्बे की प्रतिभा सूची में शामिल हैं। डॉ. पृथ्वीराज कुचेरिया एफ.आर.सी.एस. (लंदन) हैं। श्रीमती किरण सेठी एक उदीयमान उद्योग संस्थापिका हैं।

श्री सत्तार खाँ :

बी.एस.सी., एल.एल.बी., आर.ए.एस., उपजिलाधीश स्तर के राज्य सेवा के बड़े उत्साही अधिकारी हैं। अपनी कार्यकुशलता के लिए गणतंत्र-दिवस (2003) पर चूरू जिला स्तर पर सम्मानित हो चुके हैं।

श्री राजेन्द्र कुमार सोनी :

बी.ई. (इलेक्ट्रोनिक्स); आई.टी.एस.
भारतीय सेवा स्तर के लाडनू के पहले व्यक्ति
सम्प्रति : भारतीय केन्द्रीय सेवा में डी.जी.एम. — मेहसाना (गुजरात)

श्री राजूदान चारण उर्फ राजेश विद्रोही :

संघर्षशील व्यक्तित्व के धनी श्री चारण डाक विभाग के एक साधारण कर्मचारी की हैसियत रखते हुए भी जहाँ-जहाँ स्थानान्तरित होकर गए—अपनी संस्था 'अंकुर' के माध्यम से एक ऐसे साहित्यिक वातावरण को सृजित करने में सफल रहे, जिसमें उस क्षेत्र की रचना-धर्मिता प्रस्फुटित होने का सुअवसर पा सकी। मसलन सर्वश्री जे.पी. शर्मा, केसरीमल प्रजापत, शंकर आकाश, पुरुषोत्तम विश्वकर्मा, आलोक खटेड़, वेद आर्य आदि इसी परिवेश की उपज हैं।

बीते दशकों के कुछ अग्रणी पुरुष :

श्री सागरमल बैंगाणी :

ऐसा सहृदय श्रेष्ठि पुरुष किसी भी शहर को बड़े सौभाग्य से मिलता है। शहर की प्रत्येक विपत्ति में उन्होंने शहर की यथोचित मदद की। संवत् 1996 के भीषण अकाल में अनाज वितरण की समुचित व्यवस्था कर उन्होंने अभावग्रस्त लोगों की महती सेवा की। पर उपकार उनका सहज स्वभाव रहा। जौहरी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,

जौहरी पुस्तकालय, जौहरी शिल्पशाला, यंग फ्रेण्ड एशोसिशएशन की राजपूताना प्रांतीय स्तर की फुटबॉल प्रतियोगिताओं के आयोजन, बैंगाणी बैंक की स्थापना, लाडनू बिजली कम्पनी की स्थापना में आपका महत्ती योगदान रहा। श्री बैंगाणी भाव प्रवण व्यक्ति थे। अफसोस उनकी सेवाओं का सही मूल्यांकन नहीं हो पाया। ऐसे श्रेष्ठि पुरुष सौ वर्षों में एक जन्म जाए तो भी शहर को अपना सौभाग्य मानना चाहिए।

श्री दीपंकर शर्मा :

लाडनू शहर के विकास का एक सुन्दर चित्र उनके मन में तैरता रहता था। लाडनू को एक आधुनिक, साफ, स्वच्छ और आदर्श शहर बनाने का एक सपना उन्होंने संजोया। इस सपने को पूरा करने में वे जीवनभर लगे रहे। उनके द्वारा उठाए गए नव-निर्माण के आधारभूत कदमों पर ही शहर का विकास आगे बढ़ा। वे तीन बार शहर के मेयर चुने गए। पंचायत समिति के प्रधान तथा क्षेत्र के विधायक भी एक-एक अवधि के लिए चुने गए। पद उनके लिए अलंकरण नहीं था, काम करने का अवसर था। अर्थाभाव में भी वे विकास की गाड़ी को आगे बढ़ाते गए। वे एक समर्पित और प्रतिबद्ध कार्यकर्त्ता थे। नेतृत्व की क्षमता उनमें जन्मजात थी।

श्री जोधराज बैद :

गत शताब्दी के पाँचवे दशक में ओसवाल समाज के कुछ उत्साही युवकों का एक दल बहुत सक्रिय था। उन युवकों ने कुछ साहस भरे कदम उठाए। लीक से हटकर उन्होंने कुछ बातें कही। खर्चीले रीति-रिवाजों से बचा जाए, पर्दा-प्रथा समाप्त हो, स्वच्छता और सफाई जीवन का संस्कार बने, बालिकाओं को पढ़ाया जाए, शिक्षा का प्रसार हो आदि-आदि। श्री जोधराज जी इन सबके अग्रसर थे। श्री बैद में नए विचारों को ग्रहण करने की क्षमता अद्वितीय थी। रूढ़िगत जीवन से उन्हें परहेज था। श्री जोधराज जी से प्रेरणा लेने वालों में सर्वश्री महालचन्द बोथरा, पूनमचन्द भूतोड़िया, बुद्धमल भूतोड़िया आदि के नाम प्रमुखता से गिनाए जा सकते हैं।

श्री सदासुख कोठारी :

श्री कोठारी अनुशासनप्रिय और कठोर प्रशासक थे। अपने सार्वजनिक जीवन की शुरुवात उन्होंने जीवण विद्यालय के प्रधानाध्यापक पद से की। वे एक आदर्श शिक्षक थे। उनके सभी शिष्य अपने जीवन में सफल रहे। अपने विद्यार्थियों की सफलता से उनको बड़ा सन्तोष होता था। राजस्थान के शिक्षा जगत में बहुउद्देश्यीय शिक्षण के विचार का समावेश होते ही श्री कोठारी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने श्री सागरमल बैंगाणी

को इस योजना का शहर में शुभारम्भ करने को राजी किया। लाडनू बिजली कम्पनी का प्रबन्ध भार भी उन्होंने बड़ी कुशलता से वहन किया। राजपुताना फुटबाल प्रतियोगिताओं के सफल संचालन का श्रेय उन्हीं को जाता है। लाडनू के सबसे पहले बैंक बैंगाणी बैंक के वे सर्वप्रथम मैनेजर बने।

अलबत्ता श्री कोठारी अकेले नहीं थे। उनके साथ उनके समान विचार वाले साथियों का एक पूरा दल था। सर्वश्री भंवरलाल बैद, जौहरीमल भंसाली, नथमल कठोतिया, पूसराज भूतोड़िया, मेघराज नाहटा, हँसराज कठोतिया आदि उनके सहयोगियों में थे। वे एक समर्पित दृष्टा थे।

श्री मूलचन्द बड़जात्या :

समाज के माने हुए शीर्ष पुरुषों में उनकी गिनती होती थी। सभी समुदायों में उनका समान आदर था। अहंकार और दिखावे जैसी कोई बात उन्हें छू तक नहीं गई थी। अनेक जनोपयोगी कामों में उन्होंने भाग लिया। सन् 1934 में प्रसिद्ध जैन तीर्थ सम्मेद शिखर पर हुए अखिल भारतवर्षीय सरावगी महासभा के 14वें अधिवेशन के आप अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उस अवसर पर दिए गए आपके अध्यक्षीय भाषण का सार यह था—"सेवा, सहयोग और सद्भाव के अभाव में सामुदायिक उन्नति की बात सोचना ठीक वैसा ही है, जैसा कि आंकिक आधार के बिना मात्र बिन्दियों से किसी संख्या के बनाने की इच्छा करना। हमारी आर्थिक उन्नति का आधार नौकरी कभी नहीं बन सकती, चाहे वह कितनी ही बड़ी हो। व्यवसाय और उद्योग ही हमारी सम्पन्नता की एकमात्र सम्भावना है।"

सेठ गणपतराय सेठी :

धन का सदुपयोगकरना एक सूझबूझ तथा परिश्रम साध्य काम है। श्री सेठी इस काम में बड़े महिर थे। उन्होंने वणिक वृत्ति को सार्थक समाजोन्मुख दिशा दी। कस्बे में सर्वप्रथम आधुनिक चिकित्सा पद्धति का अस्पताल निर्माण करवाने का श्रेय उन्हीं को जाता है। प्रसूति की आधुनिक सुविधाओं को उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से उन्होंने श्रीमती केसरदेवी महिला अस्पताल का निर्माण करवाया। श्रीमती केसरदेवी बालिका विद्यालय की स्थापना करवाकर बालिकाओं के शिक्षण को नया विस्तार दिया। उनका कार्य उपरोक्त जनहितकारी कामों की स्थापना तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि उन्होंने सेठ गणपतराय सरावगती चैरिटेबल ट्रस्ट की स्थापना कर उनके सुव्यवस्थित संचालन को भी सुनिश्चित कर दिया।

सेठ गजराज गंगवाल :

कला, सौन्दर्य तथा जनहित के आधीन धन को रखने वाला व्यक्ति 'धनपति' होता है। धनपति होना एक पुरुषार्थ है। श्री गजराज जी सही अर्थों में 'धनपति' थे। उनकी दूरदृष्टि की तो कोई थाह नहीं थी। उनके जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काम लाडनूं में नए जैन मन्दिर का निर्माण था। इस मन्दिर ने लाडनूं को दिगम्बर जैन समाज का एक तीर्थ ही बना दिया है। महिलाओं के लिए आधुनिक चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करवाने की दृष्टि से सुखदेव जनाना अस्पताल का निर्माण गंगवाल परिवार ने सन् 1940 में ही करवा दिया था। आजकल यह अस्पताल आँखों के अस्पताल में तब्दील कर दिया गया है।

सेठ फूलचन्द पांड्या :

सेठ श्री फूलचन्दजी पांड्या ने अपने धन का उपयोग शिक्षा तथा चिकित्सा के क्षेत्र में किया। श्रीमती जिनकूदेवी बालिका विद्यालय की स्थापना उन्होंने तब की थी जब शहर में इस तरह की सुविधा की एक बड़ी कमी महसूस की जा रही थी। सेठ रिद्धकरण आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना करके उन्होंने शहर की एक बड़ी कमी को पूरा किया। श्री फूलचन्द पाण्ड्या सौम्यता और सन्तुलित बुद्धि के प्रतीक पुरुष थे।

सेठ हनुमानमल बैंगाणी :

इस शहर का सौभाग्य है कि एक अच्छे होमियोपैथिक अस्पताल की सुविधा इस शताब्दी के पाँचवे दकश के प्रारम्भ में ही उसे प्राप्त हो गई थी। इसका श्रेय सेठ हनुमानमल बैंगाणी को जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में श्री मोतीलाल बैंगाणी विज्ञान महाविद्यालय की स्थापना श्री बैंगाणी जी की इस क्षेत्र को अनुपम देन है। श्री सुनील रंजन गुहाराय स्टेडियम के लिए एक विशाल भू-खण्ड का दान देकर उन्होंने स्टेडियम की स्थापना का आधार खड़ा कर दिया था। 'मंगलम' अस्पताल के निर्माण में उनका योगदान कभी भूलाया नहीं जा सकता है। जैन विश्वभारती को तो उन्होंने अनेकों प्रकार से लाभान्वित किया।

शहर के मानद् नागरिक :

सेठ सोहनलाल दूगड़ :

सेठजी का स्पष्ट और साफ-सुथरा व्यक्तित्व हरेक को प्रभावित कर जाता था। उन्होंने जो दिया, सहजभाव से दिया। नाम के साथ दानवीर शब्द जोड़ना उनके कद को छोटा करना है। महत्त्व उनके द्वारा दी गई राशि का नहीं है, उनकी उदार मानसिकता का है। ऐसी संवेदनशील मानसिकता के लोग विरले होते हैं। पैसा परहित में बाँटने के लिए

होता है, यह उनकी दृष्टि थी। उन्होंने उसको बहुत बाँटा। इस शहर में भी बाँटा। एक बार उन्होंने आचार्य रजनीश को कहा था, "मैं बहुत गरीब हूँ। पैसे के अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी देने को नहीं है।" कितनी अच्छी परिभाषा दी उन्होंने गरीबी को।

डॉ. सुनील रंजन गुहाराय :

गत शताब्दी के चौथे दशक के अन्तिम वर्षों में वे लाडनूं आ गए थे। वे बंगाल के नोआखाली इलाके के जमीदार घराने से सम्बन्ध रखते थे। नोआखाली अब बंगलादेश में है। गरीब किसानों के प्रति जमीदार घरानों द्वारा अपनाए जा रहे अन्यायपूर्ण रवैये से उनका बाल मन बड़ा व्यथित रहता था। अतः अपने जमीदारी अख्तियारात छोड़ने का निर्णय उन्होंने अपनी किशोरावस्था में ले लिया था।

एक होम्योपेथ डॉक्टर के रूप में वे राजस्थान के इस कस्बे के जनजीवन से जुड़े। ऐसा संवेदनशील डॉक्टर मिलना किसी भी शहर के लिए सौभाग्य की बात है। सेठ मोतीलाल बैंगानी होमियो हॉस्पिटल में वे करीब बीस वर्ष तक सेवारत रहे। शहर के खेल जगत में भी उनकी देन बहुमूल्य रही। फुटबाल के अच्छे खिलाड़ी होने के साथ साथ वे अव्वल दर्जे के रेफ्री भी थे। उनके असामयिक निधन पर सारा शहर दुःखी हो गया था।

शहरकाजी स्व. हजरत मुहम्मद अली :

आप ईस्वी सन् 1913 में लाडनूं के शहरकाजी मुकर्रर हुए। काजी साहब खुले दिल-दिमाग के व्यक्ति थे। वे शहर में कौमी एकता के पुख्ता सबूत थे। आजादी के वक्त बंटवारे के समय आपने पूरजोर कोशिश की थी कि शहर का कोई मुसलमान देश छोड़कर पाकिस्तान नहीं जाए। वक्त के उस बिगड़े माहौल में शहर में शांति और अमन बनाए रखने में आपका बड़ा योगदान रहा। किसी जमाने में स्थानीय रेल्वे स्टेशन से शहर तक आने वाला रास्ता बहुत तंग और धूल भरा था। काजी साहब ने अपनी पुस्तैनी जमीन का एक बड़ा हिस्सा दान देकर उसे चौड़ा बनवाया। आज यह आम रास्ता, जिसके दोनों ओर बड़े-बड़े दरखत लगे हुए हैं, शहर की रौनक बढ़ा रहा है।

क्षुल्लक श्री सिद्धसागर :

आप स्थानीय प्रसिद्ध व्यापारी स्व. मांगीलाल जैन अग्रवाल के ज्येष्ठ पुत्र तथा शहर के रबर टायरों के अग्रणी व्यापारी श्री रामनिवास के अग्रज थे। 'जीवन खोकर धन कमाने का अर्थ ही क्या है? जो व्यक्ति दूसरों के खातिर धन खर्च करेगा, वही उसे बचा पाएगा। उन्होंने जनकल्याण को ही पुण्य का पर्यायवाची माना। तीर की तरह उनके

सेठ गजराज गंगवाल :

कला, सौन्दर्य तथा जनहित के आधीन धन को रखने वाला व्यक्ति 'धनपति' होता है। धनपति होना एक पुरुषार्थ है। श्री गजराज जी सही अर्थों में 'धनपति' थे। उनकी दूरदृष्टि की तो कोई थाह नहीं थी। उनके जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काम लाडनू में नए जैन मन्दिर का निर्माण था। इस मन्दिर ने लाडनू को दिगम्बर जैन समाज का एक तीर्थ ही बना दिया है। महिलाओं के लिए आधुनिक चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करवाने की दृष्टि से सुखदेव जनाना अस्पताल का निर्माण गंगवाल परिवार ने सन् 1940 में ही करवा दिया था। आजकल यह अस्पताल आँखों के अस्पताल में तब्दील कर दिया गया है।

सेठ फूलचन्द पांड्या :

सेठ श्री फूलचन्दजी पांड्या ने अपने धन का उपयोग शिक्षा तथा चिकित्सा के क्षेत्र में किया। श्रीमती जिनकूदेवी बालिका विद्यालय की स्थापना उन्होंने तब की थी जब शहर में इस तरह की सुविधा की एक बड़ी कमी महसूस की जा रही थी। सेठ रिद्धकरण आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना करके उन्होंने शहर की एक बड़ी कमी को पूरा किया। श्री फूलचन्द पाण्ड्या सौम्यता और सन्तुलित बुद्धि के प्रतीक पुरुष थे।

सेठ हनुमानमल बैंगाणी :

इस शहर का सौभाग्य है कि एक अच्छे होमियोपैथिक अस्पताल की सुविधा इस शताब्दी के पाँचवे दकश के प्रारम्भ में ही उसे प्राप्त हो गई थी। इसका श्रेय सेठ हनुमानमल बैंगाणी को जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में श्री मोतीलाल बैंगाणी विज्ञान महाविद्यालय की स्थापना श्री बैंगाणी जी की इस क्षेत्र को अनुपम देन है। श्री सुनील रंजन गुहाराय स्टेडियम के लिए एक विशाल भू-खण्ड का दान देकर उन्होंने स्टेडियम की स्थापना का आधार खड़ा कर दिया था। 'मंगलम' अस्पताल के निर्माण में उनका योगदान कभी भूलाया नही जा सकता है। जैन विश्वभारती को तो उन्होंने अनेकों प्रकार से लाभान्वित किया।

शहर के मानद् नागरिक :

सेठ सोहनलाल दूगड़ :

सेठजी का स्पष्ट और साफ-सुथरा व्यक्तित्व हरेक को प्रभावित कर जाता था। उन्होंने
, सहजभाव से दिया। नाम के साथ दानवीर शब्द जोड़ना उनके कद को छोटा
है। महत्त्व उनके द्वारा दी गई राशि का नहीं है, उनकी उदार मानसिकता का है।
संवेदनशील मानसिकता के लोग विरले होते हैं। पैसा परहित में बाँटने के लिए

होता है, यह उनकी दृष्टि थी। उन्होंने उसको बहुत बाँटा। इस शहर में भी बाँटा। एक बार उन्होंने आचार्य रजनीश को कहा था, "मैं बहुत गरीब हूँ। पैसे के अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी देने को नहीं है।" कितनी अच्छी परिभाषा दी उन्होंने गरीबी को।

डॉ. सुनील रंजन गुहाराय :

गत शताब्दी के चौथे दशक के अन्तिम वर्षों में वे लाडनू आ गए थे। वे बंगाल के नोआखाली इलाके के जमीदार घराने से सम्बन्ध रखते थे। नोआखाली अब बंगलादेश में है। गरीब किसानों के प्रति जमीदार घरानों द्वारा अपनाए जा रहे अन्यायपूर्ण रवैये से उनका बाल मन बड़ा व्यथित रहता था। अतः अपने जमीदारी अख्तियारात छोड़ने का निर्णय उन्होंने अपनी किशोरावस्था में ले लिया था।

एक होम्योपेथ डॉक्टर के रूप में वे राजस्थान के इस कस्बे के जनजीवन से जुड़े। ऐसा संवेदनशील डॉक्टर मिलना किसी भी शहर के लिए सौभाग्य की बात है। सेठ मोतीलाल बैंगानी होमियो हॉस्पिटल में वे करीब बीस वर्ष तक सेवारत रहे। शहर के खेल जगत में भी उनकी देन बहुमूल्य रही। फुटबाल के अच्छे खिलाड़ी होने के साथ साथ वे अव्वल दर्जे के रेफ्री भी थे। उनके असामयिक निधन पर सारा शहर दुःखी हो गया था।

शहरकाजी स्व. हजरत मुहम्मद अली :

आप ईस्वी सन् 1913 में लाडनूं के शहरकाजी मुकर्रर हुए। काजी साहब खुले दिल-दिमाग के व्यक्ति थे। वे शहर में कौमी एकता के पुख्ता सबूत थे। आजादी के वक्त बंटवारे के समय आपने पूरजोर कोशिश की थी कि शहर का कोई मुसलमान देश छोड़कर पाकिस्तान नहीं जाए। वक्त के उस बिगड़े माहौल में शहर में शांति और अमन बनाए रखने में आपका बड़ा योगदान रहा। किसी जमाने में स्थानीय रेल्वे स्टेशन से शहर तक आने वाला रास्ता बहुत तंग और धूल भरा था। काजी साहब ने अपनी पुस्तैनी जमीन का एक बड़ा हिस्सा दान देकर उसे चौड़ा बनवाया। आज यह आम रास्ता, जिसके दोनों ओर बड़े-बड़े दरखत लगे हुए हैं, शहर की रौनक बढ़ा रहा है।

छुल्लक श्री सिद्धसागर :

आप स्थानीय प्रसिद्ध व्यापारी स्व. मांगीलाल जैन अग्रवाल के ज्येष्ठ पुत्र तथा शहर के रबर टायरों के अग्रणी व्यापारी श्री रामनिवास के अग्रज थे। 'जीवन खोकर धन कमाने का अर्थ ही क्या है ? जो व्यक्ति दूसरों के खातिर धन खर्च करेगा, वही उसे बचा पाएगा। उन्होंने जनकल्याण को ही पुण्य का पर्यायवाची माना। तीर की तरह उनके

(स्व.) मूलचन्दजी बैद बहुमुखी प्रतिभा और स्वच्छ छवि के आदर्श सामाजिक कार्यकर्त्ता थे।

(स्व.) परसराम अग्रवाल जैसा मस्तमौजी स्वभाव बहुत कम लोगों को नसीब होता है। अभावों में भी खुशमिजाज रहना उनके चरित्र की खास पहचान थी। निःसंदेश वे इस शहर के व्यक्तित्व के एक आकर्षक अंग थे।

(स्व.) भंवरलालजी लूंकड़ व रूपमचन्दजी चोरड़िया ने कतिपय स्थानीय शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था में अच्छा योगदान दिया। प्रामाणिकता का प्रतिकात्मक नाम था (स्व.) धनराजजी बैद।

(स्व.) मोहनलाल दीक्षित एक क्रियाशील नागरिक होने के साथ-साथ नगरपालिका कानून के अच्छे ज्ञाता थे। (स्व.) माणकचन्द गंगवाल (मुण्डी) एक लगनशील कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने स्वेच्छा से अनेक जनोपयोगी कार्यों को अंजाम दिया।

(स्व.) नवरत्न शर्मा (स्वर्णकार) हिन्दी भाषा के श्रेष्ठ कवियों में अपना स्थान बना सके। वे एक प्रबुद्ध विचारक होने के साथ-साथ ओजस्वी वक्ता भी थे। (स्व.) नथमल सेठी ने स्थानीय बड़े जैन मन्दिर का इतिहास संकलित करवाकर एक उपयोगी कार्य सम्पन्न किया।

(स्व.) सैय्यद अब्दुल लतीफ : सियासी सूझ-बूझ रखने वाले वे एक नेक-दिल कार्यकर्त्ता थे। लतीफ साहब बड़े सन्तुलित स्वभाव के इन्सान थे तथा शहर के नायब मेयर के पद पर आसीन रहे। अपने वक्त के शहर के अनेक महत्त्वपूर्ण फैसलों में वे शामिल रहे।

रक्षा सेवाओं में कस्बे का योगदान :

सूबेदार कज्जू खाँ :

उन्नीसवीं सदी के नौवें दशक में लाडनू की कायमखानी मार्शल कौम में जन्मे श्री कज्जूखाँ सामान्य शिक्षा प्राप्त करके ब्रिटिश भारतीय सेना में भरती हो गए। अपनी लगन और मेहनत से वे सूबेदार के पद पर पहुँच गए थे। प्रथम विश्वयुद्ध (सन् 1914-1919) में ब्रिटिश भारतीय सेना के सिपाही के रूप में वे अनेक विदेशी मोर्चों पर लड़े तथा सभी जगह अपने शौर्य का अच्छा प्रदर्शन किया। फलस्वरूप अनेक सेवा पदकों से वे सम्मानित हुए। दूसरे विश्वयुद्ध (1939 से 1945) में उनकी सेवाएँ फिर माँगी गईं। इस बार एक सिपाही के रूप में नहीं, एक भरती अधिकारी के रूप में। श्री कज्जूखाँ ने

हृदय से निकले शब्द व्यर्थ नहीं गए। उनके अनुयायियों ने करोड़ों की सम्पदा जन-कल्याण के कार्यों में खर्च कर दी।

इनका योगदान भी बहुमूल्य रहा :

(स्व.) पूनमचन्द भूतोड़िया ने इस शहर में सर्वप्रथम बालिका विद्यालय की स्थापना कर एक क्रांतिकारी कदम उठाया था।

(स्व.) श्रीमती हुलासीदेवी भूतोड़िया एक प्रबुद्ध विचारों की महिला थी। बाल वैधव्य की असहनीय त्रासदी को सजगता से भोगते हुए उन्होंने अपने मन को सदैव सकारात्मक भावों से ओतप्रोत रखा तथा सामाजिक सेवा कामों में अग्रणी भूमिका निभाई।

(स्व.) श्री सोहनलाल बैद (जौहरी) का जीवन सादगी, सरलता और सहजता का प्रतिरूप था। आर्य समाजी विचारधारा के वाहक श्री सोहनलालजी की कथनी और करणी में कभी अन्तर नहीं रहा। स्थानीय गौशाला के शैशवकाल में मंत्री के रूप में संस्था को अपना बहुमूल्य सहयोग देकर उसे स्वावलम्बी बनाया। ऐसे सुहृदय नागरिक किसी भी शहर के लिए गौरव की बात होते हैं।

(स्व.) श्री भोमराज चूड़ीवाल एक सज्जन पुरुष होने के साथ-साथ एक आदर्श कवि भी थे। उनकी राष्ट्रगीत के रूप में एक रचना देश की राष्ट्रगीत चयन समिति ने विचारार्थ स्वीकार की थी। इस शहर के लिए यह एक विशेष गौरव की बात थी।

(स्व.) श्री हनुमानमल बैंगानी (सुपुत्र स्व. इन्दरचन्द) का नाम एक शास्त्रीय संगीतज्ञ के रूप में प्रसिद्ध था। देश के जाने-माने संगीतकार स्व. ओंकार महाराज को लाडनूँ लाने तथा उनका लाडनूँ में कार्यक्रम आयोजित करवाने का श्रेय उन्हीं को जाता है।

(स्व.) शोभाचन्द अग्रवाल व मांगीलाल पाण्ड्या शहर के आदर्श व्यापारी थे। श्री पाण्डया की धार्मिक प्रवृत्ति बहुत प्रखर थी। इस कारण वे अपने समाज द्वारा भी अभिनन्दित हुए।

(स्व.) बजरंगलाल अग्रवाल एक निर्भिक व्यक्तित्व के धनी थे। स्थानीय व्यापारियों में उनका दर्जा ठीक उसी प्रकार लगता था, जैसे – किसी स्कूल में हैडमास्टर का होता है। उन्होंने 25 वर्षों तक स्थानीय गौशाला में मंत्री के रूप में भी सेवाएँ दीं।

(स्व.) महालचन्द बोथरा सर्वोदयी विचारधारा से जुड़े हुए शहर के अग्रणी कार्यकर्त्ताओं में से थे। उनका आदर्शोन्मुख जीवन अनेक रूपों में प्रेरणादायी रहा। वे अच्छे कवि भी थे। कई समाज सुधार कार्यक्रमों में उन्होंने अग्रणी भूमिका निभाई।

(स्व.) मूलचन्दजी बैद बहुमुखी प्रतिभा और स्वच्छ छवि के आदर्श सामाजिक कार्यकर्त्ता थे।

(स्व.) परसराम अग्रवाल जैसा मस्तमौजी स्वभाव बहुत कम लोगों को नसीब होता है। अभावों में भी खुशमिजाज रहना उनके चरित्र की खास पहचान थी। नि:संदेश वे इस शहर के व्यक्तित्व के एक आकर्षक अंग थे।

(स्व.) भंवरलालजी लूंकड़ व रूपमचन्दजी चोरड़िया ने कतिपय स्थानीय शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था में अच्छा योगदान दिया। प्रामाणिकता का प्रतिकात्मक नाम था (स्व.) धनराजजी बैद।

(स्व.) मोहनलाल दीक्षित एक क्रियाशील नागरिक होने के साथ-साथ नगरपालिका कानून के अच्छे ज्ञाता थे। (स्व.) माणकचन्द गंगवाल (मुण्डी) एक लगनशील कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने स्वेच्छा से अनेक जनोपयोगी कार्यों को अंजाम दिया।

(स्व.) नवरत्न शर्मा (स्वर्णकार) हिन्दी भाषा के श्रेष्ठ कवियों में अपना स्थान बना सके। वे एक प्रबुद्ध विचारक होने के साथ-साथ ओजस्वी वक्ता भी थे। (स्व.) नथमल सेठी ने स्थानीय बड़े जैन मन्दिर का इतिहास संकलित करवाकर एक उपयोगी कार्य सम्पन्न किया।

(स्व.) सैय्यद अब्दुल लतीफ : सियासी सूझ-बूझ रखने वाले वे एक नेक-दिल कार्यकर्त्ता थे। लतीफ साहब बड़े सन्तुलित स्वभाव के इन्सान थे तथा शहर के नायब मेयर के पद पर आसीन रहे। अपने वक्त के शहर के अनेक महत्त्वपूर्ण फैसलों में वे शामिल रहे।

रक्षा सेवाओं में कस्बे का योगदान :

सूबेदार कज्जू खाँ :

उन्नीसवीं सदी के नौवें दशक में लाडनू की कायमखानी मार्शल कौम में जन्मे श्री कज्जूखाँ सामान्य शिक्षा प्राप्त करके ब्रिटिश भारतीय सेना में भरती हो गए। अपनी लगन और मेहनत से वे सूबेदार के पद पर पहुँच गए थे। प्रथम विश्वयुद्ध (सन् 1914-1919) में ब्रिटिश भारतीय सेना के सिपाही के रूप में वे अनेक विदेशी मोर्चों पर लड़े तथा सभी जगह अपने शौर्य का अच्छा प्रदर्शन किया। फलस्वरूप अनेक सेवा पदकों से वे सम्मानित हुए। दूसरे विश्वयुद्ध (1939 से 1945) में उनकी सेवाएँ फिर माँगी गई। इस बार एक सिपाही के रूप में नहीं, एक भरती अधिकारी के रूप में। श्री कज्जूखाँ ने

पुनः अपनी सेवाएँ सहर्ष दी। युद्ध की समाप्ति पर सैन्य विभागाध्यक्ष द्वारा उनकी सेवाओं के लिए फिर प्रशस्ति पत्र प्रदान किए गए।

रसलदार बख्शु खाँ ओ.बी.आई. : लाडनू के एक साधारण कायमखानी किसान परिवार में जन्म लिया। सरदार रसाला जोधपुर में भरती हुए। कार्यकुशलता और ईमानदारी के बलबूते पर रसलदार के पद पर पहुँचे। प्रथम महायुद्ध में शिरकत की। ऑर्डर ऑफ ब्रिटिश इण्डिया के स्वर्णपदक से सम्मानित हुए। पाँच साल तक जोधपुर महाराजा उम्मेदसिंह जी के अंगरक्षक रहे। छितर पैलेस के उद्घाटन पर गार्ड ऑफ आनर परेड की कमाण्ड सम्भाली। आपके पुत्र अलीमखाँ एक आदर्श शिक्षक रह चुके हैं। आपके पौत्र उमराव खाँ भी भारतीय सेना में सूबेदार के पद पर हैं तथा अपने वीरोचित कार्मों के लिए पुरस्कृत हो चुके हैं।

सुरंजन गुहारॉय : आप स्व. डॉ. सुहास रंजन के सुपुत्र हैं। भारतीय सेना की इंजीनियरिंग कोर में लेफ्टीनेट कर्नल हैं। इस पद पर पहुँचने वाले वे लाडनू के पहले व्यक्ति हैं।

देश की रक्षा सेवाओं में इस कस्बे के योगदान की एक यशस्वी परम्परा रही है। देश की सीमाओं की रक्षा करते हुए इस कस्बे के अनेक लाडले सपूत शहीद हुए हैं। इस कस्बे और तहसील के सैकड़ों युवक आज भी सेना के विभिन्न ओहदों पर तैनात हैं। कैप्टेन हिम्मत खाँ, कैप्टेन हस्कर खाँ, कैप्टेन आलमअली, मैजर दिनेश माथुर, कैप्टेन जाब्दी खाँ आदि इसी परम्परा के सेवानिवृत्त सैन्य अधिकारी रह चुके हैं।

वे नागरिक, जो शतायु हैं :

श्री पूनमचन्द बैद :

अपनी आयु के 103 वर्ष पूरे कर चुके हैं। शरीर व मन से अभी भी पूरी तरह स्वस्थ हैं। स्मृति में शिथिलता नहीं आई है। उन्होंने लाडनू जमीदार घराने की तीन पीढ़ियाँ देखी। संवत् 1977 (ई. सन् 1920) के बाजार भाव वे इस प्रकार बताते हैं— बाजरी एक रुपये की 22 सेर, गेहूँ 16 सेर, तेल (तिली) पांच सेर तथा घी सवा सेर। 12 ई.×6 ई. के गर्डर का भाव 2रु. प्रतिफुट, लाडनू की 8 फीट की पत्थर की पट्टी एक रुपये की तीन। मजदूरी दो टका (एक आना) प्रतिदिन, कारीगर—चार आना रोज। (कुछ ही समय पहले श्री बैद का देहावसान हो गया है।)

श्री डालमचन्द भोजक भी सौ वर्ष की आयु पूरी कर चुके हैं। वे बताते हैं कि जब शहर के महाजन कलकत्ता के लिए विदा होते थे तो यहाँ से ऊँट पर सवार होकर सांभर

पहुँचते थे। वहाँ से रेल पकड़ते थे। शहर छोड़ते समय उमरशाह पीर की दरगाह पर नारियल चढ़ाते थे।

शहर के नए पुराने कवि :

स्व. लिछमणदास, छगन महाराज, सुजानमल खाती, भोमराज चूड़ीवाल, मेघराज नाहटा, मेघराज मुकुल, धनराज कोचर, पूनमचन्द शर्मा, नवरत्न स्वर्णकार, मोहनलाल दीक्षित, तेजकरण बैंगाणी, सर्वश्री राजेश 'विद्रोही', हेमराज भूतोड़िया, बंशीधर शर्मा, गुरुमुखराय शर्मा, श्रीमन्तकुमार व्यास, सैय्यद अब्दुल खालिक 'तनवीर', रामकुमार तिवाड़ी, केसरीमल प्रजापत, मांगीलाल भूतोड़िया, श्रीमती किरण भूतोड़िया, यासीन अख्तर, सम्पत पगारिया आदि।

शहर के ख्यातिप्राप्त लेखक व उनका लेखन :

श्री अक्षयचन्द शर्मा : मातृ देवो भव, बंगीय दृष्टि में राजस्थान, चिन्तन, मनन

श्री नवरत्न शर्मा : आस्था के बोल, बहती रेता।

श्री शंकरलाल पारीक : आदर्श की पगडंडियाँ, कार्लमार्क्स, मनवृन्दावन, जीवन निर्झर आदि (लगभग डेढ़ सौ पुस्तकें)।

श्री श्रीमन्त कुमार व्यास : मीरा (महाकाव्य), झांझर, कैकई आदि।

श्री सखा बोरड़ : कितना महँगा धर्म, देहरी के दीप, यात्रा एक यति की.........

श्री कन्हैयालाल फूलफगर : 'दिनकर के पत्र', शेषनिःशेष, महाप्रज्ञ का रचना संसार, दिनकर स्मृति ग्रंथ, आदमी की तलाश आदि।

श्री छगन महाराज : लाडनू वर्णन (ई. सन् 1923 में प्रकाशित)

श्री माँगीलाल भूतोड़िया : शेष-अशेष (स्मृति ग्रंथ), इतिहास की अमरबेल ओसवाल व अन्य इतिहास पुस्तकें।

श्री श्याम मोहन श्रोत्रिय : बल्लभ काव्य विभा, अन्तर्दाह, यादों की छुहन, गीताम्बरा।

श्री सुरेशपाल सेठी : व्यापार प्रबन्धन के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

पं. परमानन्द शर्मा (नन्द) : ज्योतिष सम्बन्धी अनेक पुस्तकों के लेखक।

श्री रामनारायण सोनी : मेढ़ क्षत्रिय स्वर्णकार समाज का इतिहास।

श्री तेजकरण बोथरा : विदग्ध विदार (काव्य-संग्रह)।

शहर के प्रसिद्ध शिक्षक :

कुछ नागरिक जनों ने आदर्श शिक्षक के रूप में भी अच्छा नाम अर्जित किया। स्व. गणेशराम महाराज, अक्षयचन्द्र शर्मा, सदासुख कोठारी, जौहरीमल भंसाली, हरिराम शर्मा, जेठमल शर्मा, सिद्ध महाराज, पूनमचन्द शर्मा, भंवरलाल कट्टा, सर्वश्री हनुमानमल वर्मा, देवमित्र आर्य।

प्रसिद्ध संगीत साधक व गायक (नए पुराने) :

स्व. कन्हैयालाल बैंगाणी, हनुमानमल बैंगाणी, पूसाराम स्वामी, जयचन्द दर्जी, सूरजमल जांगिड़, रूपसेन, राधाकृष्णा शर्मा आदि।

सर्वश्री श्याममोहन श्रोत्रिय, मनोज दाधीच, मोतीलाल भोजक, मुस्तफा बिसायती, बंशीसिंह, अनूप तिवाड़ी, मोडाराम रेगर आदि।

प्रसिद्ध फुटबाल व बॉलीबाल खिलाड़ी (नए पुराने) :

स्व. जेठमल शर्मा, मालचन्द पाटणी, हुसैन छींपा, काजी मोहम्मद गनी, मजीद बिसायती, हँसराज कठोतिया, दीपाराम जाट, अल्लाउद्दीन सोलंकी, गफूर मोची, बजरंगलाल अग्रवाल, सूरजमल मूंथा आदि......

सर्वश्री पूनमचन्द बैंगाणी, खींवराज पाण्ड्या, चाँदमल शर्मा, हुलासमल बोथरा, दौलतराम बोथरा, मांगीलाल भोजक, जीतमल जांगिड़, रामेश्वरलाल जांगिड़, अनोपचन्द माथुर, बिरधीचन्द पटेल, अली मोहम्मद भटभोड़ा।

वर्तमान क्रिकेट खिलाड़ी :

इमरान छींपा, प्रेमसिंह, रणसिंह गहलोत, सौरभ शर्मा, सुमित जांगिड़, पृथ्वीसिंह जेतमाल, अजयसिंह चौहान, धीरज बैंगानी, असलम सीलावट (नागौरी), अजीज काजी, प्रवीण शर्मा आदि। इनमें इमरान, प्रेमसिंह व सुमित जांगिड़ प्रदेश स्तर के खिलाड़ी हैं।

सिने व दूरदर्शन कलाकार :

श्री जे.पी. शर्मा : श्रीकृष्णा के सिरियल में शकुनि की भूमिका निभाई। लोकप्रिय सिरियल हिना, शांति, अलिफ-लैला में महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं में अच्छा प्रदर्शन किया।

सुश्री सुजाता पाण्ड्या ने राजस्थानी सिने रंगमंच पर नायिका के रूप में अपनी पहचान बनाई। श्री गौरव शर्मा व श्रीमती शोभा शर्मा जयपुर दूरदर्शन केन्द्र पर समाचार वाचक हैं।

एक विश्वकीर्तिमान शहर के नाम :

इस शहर के महेश सांखला ने साइकिल पर बीस बच्चों को बैठाकर 281 मीटर की दूरी तय की। उनका कहना है कि यह एक विश्वकीर्तिमान है। इससे पहले इसी करतब में जापान के युवक मितो इतामी का 16 बच्चों को बैठकर 50 मीटर की दूरी पार करने का कीर्तिमान था।

परप्रान्तों से आए लोग, जिनके हम ऋणि हैं :

स्वास्थ्य सदन के व्यायाम शिक्षक श्री अमूल्यरत्न बनर्जी, प्रधानाध्यापक—सर्वश्री श्रीराम, ताराचन्द, आदित्यनारायणसिंह, सर्यूप्रसाद दुब्बे, हरगोविन्दसिंह, ख्यालीराम तिवाड़ी, गंगाप्रसाद सिंहल, विद्यानन्द, मूलराज व्यास, जेठमल सोनी, राधेश्याम शर्मा, डॉ. रामबिहारी टण्डन, डॉ. कन्हैयालाल टण्डन, डॉ. शालिगराम टण्डन, डॉ. देवीसिंह, डॉ. बोरा, डॉ. सिन्हा, डॉ. सुनीलरंजन गुहारॉय, डॉ. विभूतिभूषण मुखर्जी, वैद्य श्री वैशम्पायन, वैद्य श्री गंगाशरण शर्मा, अध्यापक श्री तेजनारायण झा, रामलखन, व्यायाम शिक्षक श्री शिवकरण छंगाणी, श्री गंगाप्रसाद अवस्थी, ठिकाणे के कामदार मीर साहब आदि-आदि।

सांस्कृतिक मंच के प्रणेता व कलाकार :

स्व. श्रीचन्द वर्मा, जयकृष्ण शर्मा, रतनलाल सोनी, राधाकृष्ण शर्मा, सर्वश्री श्याम-मोहन श्रोत्रिय, मदनमोहन शर्मा, मोतीलाल भोजक, पण्डित हनुमानदत्त शास्त्री आदि....

सर्वश्री कैलाशसिंह जोधा, निर्मल भार्गव, भंवरलाल प्रजापत घिन्नड़ के अच्छे नृतक हैं। विमल भोजक घिन्नड़ नृत्य के पार्श्व संगीत में माहिर हैं तथा नृत्य के साथ गाने की कला भी उन्हें हासिल है। श्री अनूप तिवाड़ी ने लोकगीतों की प्रस्तुति में अच्छी महारत हासिल की है।

शहर के जीवन से जुड़ी कुछ अन्य प्रसिद्ध घटनाएँ :

भारत-जर्मन जनवादी गणतंत्र मैत्री संघ का अधिवेशन :

28-29 मार्च 1981 : भारत जर्मन जनवादी गणतंत्र मैत्री संघ का राजस्थान राज्य सम्मेलन लाडनूं में आयोजित हुआ। इसमें भाग लेने जर्मन जनवादी गणतंत्र (तत्कालीन पूर्वी जर्मनी) के भारत स्थित राजदूत श्री डर्च, उनकी धर्मपत्नी और भूतपूर्व राजदूत श्री हर्बर्ट फिशर लाडनूं आए। श्री सुखदेव 'दीपंकर' शर्मा उस मैत्री संघ की राज्य कौंसिल के मंत्री थे। इस सम्मेलन में विश्वशांति और मैत्री सम्बन्धी अनेक पहलुओं पर विचार हुआ। शहर के इतिहास से जुड़ी यह एक अन्तर्राष्ट्रीय घटना थी। उस दौरान

उपरोक्त दोनों महानुभावों ने युवक परिषद्, लाडनू द्वारा आयोजित एक बैठक में भी भाग लिया था। इसी अधिवेशन का फल था कि स्व. दीपंकर शर्मा पूर्वी जर्मनी की मैत्री यात्रा पर जाने का सुअवसर पा सके।

साम्प्रदायिक दंगे :

देश विभाजन के समय फैली आग से यह शहर अपने आपको बचाने में सफल रहा था। लेकिन जाने-अनजाने मन के किसी अंधकार भरे कोने में नकारात्मकता पनपती रही जो एक दिन दंगे के रूप में फूट पड़ी। सन् 1989 में थोड़े से अन्तराल पर दो दंगे हुए। करीब एक महीने तक शहर में कर्फ्यू रहा। प्रदेश में कर्फ्यू की यह सबसे लम्बी अवधि थी। इन दंगों के दरमियान पाँच निर्दोष जानें गईं। दंगों के कारणों की तलाश में परस्पर दोषारोपण करते रहे तो कोई हल निकलने वाला नहीं। सब अपने-अपने मन के आइनों में झांककर देखें और निराकरण का ईमानदारी से प्रयत्न करें तो ही समाधान सम्भव है। प्रेम और भाईचारे के साकारात्मक भावों में ही हमारी सामाजिकता सुनिश्चित हो सकती है। सभी पक्षों में परस्पर संवाद बना रहे यह बहुत आवश्यक है।

शांति समिति :

साम्प्रदायिक दंगों के तुरन्त बाद ही शहर में एक शांति-समिति गठित की गई। उसमें शहर के दोनों प्रमुख सम्प्रदायों के दस-दस प्रतिनिधि शामिल किए गए। समिति आज दिन तक सक्रिय है। इसके सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं—सर्वश्री मोतीसिंह जोधा, राजकुमार पाण्ड्या, (स्व.) बुधमल बाफणा, (स्व.) पुनमचन्द शर्मा, चौ. नन्दराम ठोलिया, भंवरलाल जांगिड़, इन्द्रराजमल कोठारी, मूलचन्द प्रजापत, नेमीचन्द सांखला, रूपचंद पंवार, (स्व.) फूलेखाँ कायमखानी, कैप्टन हिम्मतखाँ मोहिल, हाजी मोहम्मद हुसैन बड़गुजर, अली अकबर रिजवी, स्व. सफी मोहम्मद छींपा, जमालखाँ पहाड़ियान, मोहम्मद बोपारी, मोहम्मद हुसैन मुगल, मांगिलाल बटबोड़ा। श्री राजकुमार पाण्ड्या इस समिति के संयोजक हैं। दंगों के दौरान तत्कालीन जिलाधीश श्री सुनील अरोड़ा, पुलिस अधीक्षक श्री नवजीतसिंह सिद्धु और पुलिस उपा महानिरीक्षक श्री मदन शर्मा की भूमिकाएँ सराहनीय रही थीं।

तेरह हाथियों का जुलूस :

स्थानीय चन्द्रसागर स्मारक में श्री महावीर भगवान की पंचकल्याणक बिम्ब प्रतिष्ठा के अवसर पर सन् 1984 में एक भव्य शोभायात्रा शहर में निकाली गई, जिसमें तेरह हाथी थे। एक उत्साहवर्धक आयोजन था।

खेल-जगत — एक समीक्षा :

गत शताब्दी के पाँचवे दशक के प्रारम्भ से ही इस शहर में फुटबॉल का खेल बहुत लोकप्रिय हो गया था। इस खेल में शहर ने कुछ कीर्तिमान भी स्थापित किए। अनेक राष्ट्र तथा प्रान्त स्तर की प्रतियोगिताओं में भाग लेकर अच्छा नाम कमाया। डॉ. सुनीलरंजन गुहारॉय और ठा. हरिसिंह इस खेल के अच्छे रेफ्री माने जाते थे। उसके बाद बालीवॉल और कबड्डी की लोकप्रियता बढ़ी। स्व. मालचन्द पाटणी बॉलीबॉल के आदर्श रेफ्री के रूप में मान्य हुए। श्री रायचन्दजी फूलफगर कबड्डी के माने हुए निर्णायक समझे जाते थे।

पिछले तीन दशकों में शहर में क्रिकेट की लोकप्रियता बढ़ी है। हर मोहल्ले में क्रिकेट क्लब स्थापित हो गए हैं तथा शहर में क्रिकेट के राज्यस्तरीय खिलाड़ी भी तैयार हुए हैं।

लाडनूं का प्रशासनिक विकास :

एक जमाना था जब लाडनूं कस्बे की आबादी अपने जिला मुख्यालय नागौर से अधिक थी। सन् 1951 की जनगणना में लाडनूं कस्बे की आबादी 20,914 थी, जबकि नागौर की 19,588। देश आजाद होने के शीघ्र बाद ही लाडनूं तहसील का गठन हो गया था। सन् 2002 में लाडनूं उपखण्ड बना। इस समय प्रदेश के प्रशासनिक ढाँचे में लाडनूं का स्थान एक उपखण्ड दर्जे का है, जिसका मुख्यालय लाडनूं में है।

जनतांत्रिक व्यवस्था और लाडनूं :

लाडनूं तहसील की स्थापना के शीघ्र बाद ही लाडनूं विकास खण्ड बना। खण्ड विकास अधिकारी इसका सर्वेसर्वा होता था। देश में पंचायती राज का शुभारम्भ सबसे पहले नागौर जिले में ही हुआ था। इसके उद्‌घाटन अवसर पर देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू नागौर पधारे थे। उस कार्यक्रम की व्यवस्था में श्री दीपंकर शर्मा की भूमिका बड़ी प्रभावशाली रही। पंचायती राज संरचना के तहत लाडनूं पंचायत समिति का गठन हुआ। उसका मुख्यालय लाडनूं में रहा जबकि उसका कार्यक्षेत्र लाडनूं हलके के गाँवों का चहुँमुखी विकास करना था। लाडनूं शहर के विकास का दायित्व लाडनूं नगरपालिका का रहा।

लाडनूं विधानसभा क्षेत्र और विधायक :

प्रारम्भ में लाडनूं तहसील ही लाडनूं विधानसभा क्षेत्र था। विगत वर्षों में डीडवाना तहसील की कुछ पंचायतें इस क्षेत्र में और शामिल कर दी गई। देश के प्रथम आम चुनाव (1952) में कांग्रेस के श्री मथुरादास माथुर इस क्षेत्र से विधायक निर्वाचित हुए।

यह सीट श्री माथुर ने श्री दीपंकर से याचना करके ली थी। 1957 में श्री रामनिवास मिर्धा (काँग्रेस), 1962 में पुनः श्री मथुरादास माथुर (काँग्रेस) निर्वाचित हुए। श्री माथुर ने गृह तथा वित्त जैसे बड़े विभागों की जिम्मेदारी सम्भाली। श्री मिर्धा राजस्थान विधानसभा के स्पीकर निर्वाचित हुए। लाडनूं क्षेत्र के विकास में दोनों की ही भूमिका सन्तोषप्रद रही। इस क्षेत्र में सुजला महाविद्यालय की स्थापना का श्रेय मथुरादास माथुरको ही जाता है। उनके कार्यकाल में सड़कों का भी अच्छा विकास हुआ। शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं का समुचित प्रसार हुआ।

1967 में स्वतंत्र पार्टी के श्री हरजीराम बुरड़क ने यह सीट काँग्रेस से छीन ली। 1972 में श्री दीपंकर शर्मा (काँग्रेस), 1977 में श्री हरजीराम बुरड़क (जनता पार्टी), 1980 में श्री रामधन (निर्दलीय), 1977 में हरजीराम बुरड़क (लोकदल), 1990 में ठा. मनोहरसिंह (निर्दलीय), 1993 में श्री हरजीराम बुरड़क (काँगेस), 1998 में पुनः श्री हरजीराम (कॉंग्रेस), 2004 में ठा. श्री मनोहरसिंह बी.जे.पी. की टिकट से निर्वाचित हुए।

श्री हरजीराम बुरड़क पाँच बार इस क्षेत्र से विधायक चुने गए–उनकी राजनैतिक यात्रा भी एक क्रमिक विकास की कहानी है। कम महत्त्व के राजनैतिक दलों से वे धीरे-धीरे बड़ी मंजिल तक पहुँचे। उनकी इस प्रवृत्ति को अन्यथा लेना उचित नहीं। बिजली विभाग, सार्वजनिक निर्माण विभाग तथा जलदाय विभाग के सहायक अभियंता कार्यालय उन्हीं के कार्यकाल में इस शहर में स्थापित हुए। पशुचालित वाहनों को उन्होंने कृषि उपकरणों में शुमार करवाकर बिक्री कर से मुक्त करवाया। लाडनू के विकासशील प्रमुख उद्योग को उनका यह महत्त्वपूर्ण सहयोग माना जाएगा। लाडनू को उपखण्ड का दर्जा उन्हीं के कार्यकाल में मिला। लाडनू की जलदाय योजना के नवीनीकरण का श्रेय भी एकमात्र उनको ही जाता है। राजस्थान उपक्रम समिति के अध्यक्ष तथा जोधपुर विश्वविद्यालय की सीनेट, सण्डीकेट व उपकुलपति निर्वाचन समिति के आप सदस्य भी रह चुके हैं। तहसील के छोटे-बड़े सभी गाँवों तक पानी पहुँचाने का दायित्व भी उन्होंने मनोयोग से पूरा किया। आप जनतादल के प्रान्तीय अध्यक्ष भी रहे।

क्षेत्र के गाँवों की कुछ पेचीदी जलदाय योजनाओं को क्रियान्वित करवाने का श्रेय श्री दीपंकर शर्मा को है। लाडनूँ की बिजली सप्लाई को बाकलिया की 33 K.VA की लाइन से जुड़वाने का कार्य भी उन्हीं के प्रयत्नों का फल था। ठाकुर मनोहरसिंह दूसरी बार क्षेत्र के विधायक निर्वाचित हुए है। आज तक इस क्षेत्र से चुने गए विधायको में आप सबसे कम उम्र के हैं। आपका निर्वाचित होना आपके पूर्वजों के शासन की लोकप्रियता का प्रमाण है। आप सरल स्वभाव और साफ-सुथरी छवि के व्यक्ति हैं।

लाडनू नगरपालिका और उसके निर्वाचित अध्यक्ष :

लाडनू नगरपालिका के प्रथम चुनाव 1951 में हुए। श्री दीपंकर शर्मा प्रथम निर्वाचित अध्यक्ष बने। उनको यह अवसर तीन बार प्राप्त हुआ। श्री जेठमल शर्मा और श्री कन्हैयालाल सेठी को भी यह अवसर दो-दो बार मिला। नगरपालिका का शैशवकाल आर्थिक कठिनाइयों में बीता। श्री दीपंकर शर्मा को नगर विकास की योजनाओं को पूरा करने में बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ा था। अलबता श्री कन्हैयालाल सेठी पर्याप्त मात्रा में जन-सहयोग जुटाने में सफल रहे। शहर की प्रकाश व्यवस्था में भी सुधार हुआ। कुछ नई सड़कें भी जन-सहयोग से बनी।

अनेक अन्तरालों में प्रशासकों के कार्यकाल भी लम्बे चले। गत तीन चुनाव नियमित रूप से हुए। क्रमशः श्री बच्छराज नाहटा, श्रीमती सुशीला दूगड़ और श्रीमती गुलाबरानी भोजक पालिका अध्यक्ष चुनी गई। श्री बच्छराज नाहटा के कार्यकाल में लाडनू नागरिक परिषद्, कलकत्ता के सहयोग से नगरपालिका भवन बना। इस अवधि में नगरपालिकाओं के वैधानिक स्वरूप में बड़ी तब्दीली हुई। उनके अधिकारों में भी विस्तार हुआ। साथ-साथ राज्य और केन्द्रीय सरकारों द्वारा उनको मिलने वाले अनुदानों में भी वृद्धि हुई। आज नगरपालिकाओं के पास आर्थिक अभाव जैसी कोई कठिनाई नहीं है। पिछले 15 वर्षों में विकास के नाम पर इस शहर में करीब पांच करोड़ रुपये खर्च किए जा चुके हैं लेकिन पैसा महज इसलिए खर्च हुआ है कि उसे खर्च करना है।

संसदीय चुनाव क्षेत्र और लाडनू :

प्रारम्भ में 'लाडनू' अपने ही जिले नागौर संसदीय क्षेत्र का हिस्सा रहा। सन् 1952 में प्रथम आम चुनाव हुए। इस क्षेत्र से सांसद बनने का सुयोग—सर्वश्री एस.के.डे. गजाधर सोमाणी, ठा. औंकारसिंह (खींवसर), नन्दकिशोर सोमाणी, मथुरादास माथुर, नरेन्द्र सांगी आदि को मिला। प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि इन सबसे लाडनू क्षेत्र किस प्रकार लाभान्वित हुआ। गत चार चुनावों में लाडनू विधानसभा क्षेत्र को चूरू संसदीय क्षेत्र से जोड़ दिया गया है। क्रमशः श्री दोलतराम सारण (जनता पार्टी), रामसिंह कस्वां (बी.जे.पी.), नरेन्द्र बुढ़ानिया (कॉंग्रेस) चुने गए। इस वक्त श्री रामसिंह कस्वां (बी.जे.पी.) दूसरी बार निर्वाचित हुए हैं। इस क्षेत्र की एक बड़ी आवश्यकता बड़ी लाइन रेल मार्ग और नहर के पानी की है। देखना यह है कि कौन सांसद विशेष सक्रिय होकर इसे पूरा करवाता है।

II

लाडनू में निवास करने वाली प्रमुख जातियाँ

आर्यों की वर्ण व्यवस्था का आधार चेतनागत था। सामाजिक या आर्थिक नहीं था। ब्राह्मण सर्वोच्च चेतना के वाहक थे। लेकिन चेतना के ऊर्ध्वारोहण की यह यात्रा बड़ी श्रम साध्य थी। नए उर्ज्वसित बीज के अभाव में वह शिथिल पड़ने लगी। प्रणेता थकने लगे। ज्ञान और सामर्थ्य उसी अनुपात में उनके हाथों से छूटने लगा। जनसंख्या बढ़ने लगी। उदरपूर्ति की समस्या उत्पन्न हुई। वृत्तियों का जन्म हुआ। कर्मकाण्ड भी वृत्ति बन गया।

पेशेवर जातियाँ जन्मी। संस्कारों में जातीय अहंकार बढ़ने लगा। दिन-प्रतिदिन जातियाँ प्रथा के रूप में रूढ़त्तर होती गई। आदमी की पहचान जाति के आधार पर होने लगी। मात्र अर्थोपार्जन जीवन का लक्ष्य रह गया।

इतिहास सिर्फ राजवंशों, विशाल किलों, बुर्जों और भव्य राज-प्रासादों की ही कहानी नहीं है, आम आदमी का योगदान उसमें सर्वाधिक महत्त्व का है। सबको शुमार करने में ही इतिहास की सार्थकता है।

कुम्हार :

कुम्भकार का अपभ्रंश है। यह जाति देश की मूलभूत जातियों में से है। मिट्टी से बर्तन बनाने का धंधा उतना ही पुराना है, जितना स्वयं मनुष्य जाति का इतिहास। जब से मानव सभ्यता का जन्म हुआ है, यह जाति अस्तित्व में रही है। पुरानी सभ्यताओं के सम्बन्ध में होने वाले उत्खननों में मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े मिलना इस बात का संकेत माना जाता है कि वहाँ सभ्यता फलित हुई। प्रजापति शब्द इस जाति का सार्थक विरुद है।

कुम्हार लाडनू कस्बे के सर्वाधिक पुराने बाशिन्दे हैं। कस्बे के वर्तमान बाजार के उत्तर-पूर्व में इनकी आबादी थी। वहाँ स्थित बर्तन पकाने का आवां (न्यावाड़ा) जमी हुइ राख के विशाल ढ़ेर के रूप में आज भी मौजूद है, जो इस बात का प्रमाण है कि यह शहर अति प्राचीन है।

संवत् 1866 की ठिकाणे की एक बही से उस वक्त कस्बे में कुम्हार जाति के तेरह घरों का होना साबित होता है। बुजुर्गों का कहना है कि आज से करीब साठ साल पहले इस

कस्बे में इस जाति के घरों की संख्या 60 थी। आज यह संख्या बढ़कर तीन सौ करीब हो गई है। पड़ोस के गाँवों के कुम्हार यहाँ आकर बड़ी संख्या में बसे हैं। धीरे-धीरे यह जाति अपने पुश्तैनी धन्धे से विलग हो रही है। अनेक नए धन्धों से ये लोग जुड़ते चले जा रहे हैं।

सुथार या खाती :

एक ही जाति की ये दो शाखाएँ हैं। ये अपने अठारह गौत्र और 1444 शासन (उपजातियाँ) मानते हैं। सूत्रधारों का सम्बन्ध भवन निर्माण तथा मूर्तिकला से रहा। सुथार शब्द सूत्रधार का ही अपभ्रंश है। अतीत में बने राजप्रासादों, मन्दिरों व गुफा मन्दिरों के निर्माता सूत्रधार ही थे। कई बड़े मन्दिरों पर उनके नामों का उल्लेख भी है। खाती शब्द ख्याता का अपभ्रंश है। इसीसे आख्याता, व्याख्याता आदि शब्द बने। गाँवों में खाती की खतौड़ (वर्क शॉप) संध्याकालीन गोष्ठियों का स्थान हुआ करती थी।

कस्बे में मेड़तिया (सपणीगर) और नागौरी मुसलमान कारीगरों का आगमन हो जाने पर खाती या सुथारों का धन्धा सिर्फ लकड़ी के काम तक सीमित रह गया। वर्तमान में इस जाति ने अपने पुश्तेनी धन्धे के साथ-साथ अन्य तकनीकी काम भी अपना लिए हैं। सन् 1866 की ठिकाणे की बही में इस जाति के नो (9) परिवारों का उल्लेख है। इस समय इस जाति के परिवारों की संख्या तीन सौ से अधिक है। यह जाति समूह अपने आपको ब्राह्मण मूल का मानता है। अंगिरा ऋषि के पुत्र जंगिड के नाम पर अपने आपको जांगिड चिह्नित करता है। इस जाति ने इस शहर के आर्थिक उन्नयन में अच्छा योगदान दिया।

स्वर्णकार (सुनार) :

इस जाति के भी दो वर्ग हैं। एक वर्ग अपने आपको क्षत्रिय मूल का मानता है। यह वर्ग अपना सम्बन्ध चन्द्र वंश के किसी पौराणिक पुरुष अजमीढ़ से जोड़ता है तथा अपनी पहचान मैढ़ क्षत्रिय नाम से करता है। मीढ़ की संतान मैढ़। इस मान्यता का आधार सिर्फ भाटों के वृत्त ही हैं। दूसरा वर्ग अपने आपको ब्राह्मण मूल का मानता है। यह जड़ाई के काम में माहिर है। वस्तुस्थिति यह है—अन्य जातियों की तरह सुनार जाति भी मध्ययुगीन इतिहास के संक्रमणकाल में विकसित हुई। उस काल विशेष के कुछ क्षत्रिय कुल बिना किसी भेदभाव के इस जाति में समाहित हुए। जाति का क्षेत्र मुख्य रूप से राजपूताना ही रहा। फिर भी इसका फैलाव पड़ौसी प्रदेश मालवा, गुजरात, सिंध व हरियाणा तक तलाशा जा सकता है।

प्रत्येक शिल्पकला उतनी ही पुरानी है, जितनी की मानव सभ्यता। यहाँ प्रश्न आभूषण बनाने की शिल्पकला का नहीं है बल्कि उस समूह का है, जिसने किन्हीं विशेष परिस्थितयों में इस शिल्प का वरण किया तथा इस आधार पर उसका परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध जुड़ा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि चाँदी-सोने के आभूषण बनाने के इस कार्य से इस जाति को एक विश्वसनीय आर्थिक सम्बल मिला। देश के सभी क्षेत्रों में इस जाति ने अपने कार्यक्षेत्र तलाशे और अच्छा धनोपार्जन किया।

स्वर्गीय भीमजी मैढ़ स्वर्णकार ने आज से करीब आठ दशक पूर्व इस शहर में अपने शासन की कुलदेवी चामुण्डा का एक मन्दिर बनवाया। वर्तमान में इनके परिवार-जनों ने चामुण्डा चैरिटेबल ट्रस्ट की स्थापना करके अपने जनहित के कार्यों को विस्तार दिया है।

ठिकाणे की विक्रमी सम्वत् 1866 की बही में कुल 5 सुनार परिवारों का उल्लेख है। इस समय कस्बे में करीब 150 घर मैढ़ सुनारों के तथा 40 घर ब्राह्मण सुनारों के आबाद हैं।

लुहार :

लुहार जाति के भी दो वर्ग हैं—बसीवान और गाड़िया। गाड़िया लुहार एक घुम्मकड़ जाति है। उनकी बैलगाड़ी ही उनका बसेरा होती है। वे अपनी इस परम्परा को महाराणा प्रताप की प्रतिज्ञा से जोड़ते हैं। चित्तौड़ हाथ से निकल जाने पर महाराणा प्रताप ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक वे चित्तौड़ पर पुनः काबिज नहीं हो जाते वे महलों में वास नहीं करेंगे। लेकिन हकीकत यह है कि धरती पर विचरण गाड़िया लुहारों की विवशता नहीं जीवन का ढ़ंग है। राजस्थान, मालवा, गुजरात, उत्तरप्रदेश यहाँ तक की उत्तराखण्ड के मैदानी इलाकों तक ये अपनी गाड़ियाँ लिए हुए घूमते रहते हैं। लाडनूँ कस्बे में बसीवान लुहारों के करीब पन्द्रह परिवार हैं। करीब तीस गाडिया लुहार वर्षों से लाडनू में निवास कर रहे हैं। वे अपना बसेरा गाड़ियों में ही रखते हैं। राज्य सरकार ने इनके स्थाई आवास की अनेक योजनाएँ संचालित कर रखी हैं।

दर्जी :

इस कस्बे में दर्जी समुदाय के करीब 80 परिवार आबाद हैं। ठिकाणे की संवत् 1866 की बही में सिर्फ छः परिवार होना साबित होता है। ये जाति भी अपने आपको क्षत्रीय मूल की बताती है तथा भक्त पीपाजी को अपना अग्रसर मानती है।

छींपा :

यह जाति वस्त्र रंगाई और छपाई का काम करती है। इसके भी दो विभाग हैं। हिन्दू छींपा व मुसलमान छींपा। आज से करीब 200 वर्ष पूर्व इस शहर में मुसलमान छींपों के करीब 22 परिवार आबाद थे। आज उनके इस शहर में कम से कम 125 परिवार आबाद हैं। वस्त्रों की रंगाई छपाई में इन्होंने महारत हासिल कर ली है। लाडनू की रंगाई छपाई की शोहरत देश के महानगरों तक फैली हुई है। इस धन्धे से यह जाति अच्छी फली-फूली तथा आर्थिक रूप से सम्पन्न भी बनी।

छींपा दर्जी (भाटी) :

विक्रम सम्वत् 1866 की लाडनू ठिकाणे की एक बही से उस समय लाडनू में एक हिन्दू छींपा परिवार का बसा होना इंगित है। विक्रमी सम्वत् 1717 में इस परिवार के अग्र पुरुष देवोजी जैसलमेर से लाडनू आकार बसे। यह परिवार क्षत्रिय मूल का है तथा इसका मूल वंश भाटी है। सल्तनत युग के मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में कुछ क्षत्रिय जातियाँ सन्त नामदेव परम्परा में दीक्षित हुईं। उन्होंने शस्त्र त्यागकर वस्त्रों की रंगाई-छपाई का धंधा अपना लिया, जिससे वे मुसलमान होने से बच गईं।

वर्तमान बाजार के पास स्थित इस परिवार की जमीन का पट्टा इनके पूर्वज सेवोजी तथा हेमोजी के नाम का है। यह पट्टा सम्वत् 1861 की साल का ठाकुर पदमसिंह के समय का है। यह पट्टा लाडनू के प्राचीनतम पट्टों में से है। इस पट्टे की कुछ विशेषताएँ हैं। इसमें जमीन की गजगत का विवरण नहीं है, सिर्फ पड़ोस दर्शाए गये हैं तथा साखें मोहिलों की हैं, न की महाजन लोगों की।

शहर की उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित छींपोळाई तालाब के पास एक पुराना तालाब था, जिसे बुढ़ी छींपोळाई कहते थे। यह तालाब इसी परिवार ने बनवाया था। इसके आसपास इस परिवार के खेत थे। वर्तमान नया तालाब ठाकुर अणतसिंह के समय बना तथा उसका नाम अणदोळाई रखा गया। लेकिन यह नाम प्रचलन में नहीं आ सका। गणगौर के मेले पर इस परिवार की गौर-ईशर की सवारी अलग से निकलती थी। करीब साढ़े तीन सौ वर्षों से यह परिवार अपनी पहचान बनाए हुए है। पहले यह लोग वस्त्रों की रंगाई-छपाई का काम करते थे, फिर दर्जी का धंधा अपना लिया। अत: छींपा दर्जी कहलाए। अब व्यापार में लगे हुए हैं और शहर के सम्पन्न परिवारों की गिनती में आते हैं।

गूजर :

किसान वर्ग की एक श्रमशील कौम है, जिनके धन्धे में पशुपालन—विशेष रूप से गाय, भेड़, बकरी पालने की प्रथा रही है। खेती के साथ-साथ गाँव की गाएँ दूहने का धन्धा भी किसी समय इनकी आजीविका का आधार रहा। अब स्थिति यह है कि प्रति व्यक्ति जमीन कम पड़ रही है, चरागाहों का नितान्त अभाव हो गया है अतः पुश्तैनी धन्धे से जुड़े रह पाना दिन-दिन कठिनत्तर होता जा रहा है। युवक धन्धे की तलाश में महानगरों की शरण में जाने को विवश हैं। दो सौ वर्ष पुरानी ठिकाणे की बही में इस जाति के परिवारों की संख्या 8 दर्शाई गई है, आज शहर में इनके घरों की संख्या करीब 150 है। इसी जाति के श्री गोरधन गूजर अच्छे व्यापारी हैं। श्री लादूराम गूजर शहर की नगरपालिका मण्डल के उपाध्यक्ष रह चुके हैं।

सीकलीगर :

सीकलीगर लुहारों का पुश्तैनी धंधा धारदार हथियार बनाना तथा पुराने औजारों के धार लगाना रहा है। दो सौ साल पहले इस कस्बे में इस जाति के घरों की संख्या चार थी। इस जाति के परिवारों में विशेष इजाफा नहीं हुआ है। आज भी इस जाति के परिवारों की संख्या इस शहर में दस से अधिक नहीं है।

माळी :

माळी मूल रूप से किसान हैं। सब्जी की खेती इनका प्रमुख धन्धा रहा है। सब्जी उत्पादन और व्यवसाय आज भी इनकी आजीविका का मुख्य आधार है। शहर में मालियों का अलग से मोहल्ला है, जिसमें इस जाति के करीब दो सौ परिवार आबाद हैं। आज से करीब दो सौ वर्ष पहले कस्बे में इनके परिवारों की संख्या मात्र 13 थी। शहर में पानी आपूर्ति का काम भी यह कौम करती थी। इस काम के लिए वे चमड़े की बनी हुई पखालें रखते थे, जिन्हें ऊँट के दोनों बाजू लटका कर लाते थे। पास के गाँव मंगलपुरा में इनकी बड़ी बिरादरी है। वहाँ इस जाति के करीब 500 परिवार आबाद हैं। अपने आपको ये लोग क्षत्रीय मूल का मानते हैं। गहलोत, टाक, पंवार इनके मुख्य शासन हैं।

राजगीर (शिलावट) :

इस जाति के भी दो विभाग हैं। मेड़तिया और नागौरी। मेड़तिया शिलावट सपणीगर भी कहलाते हैं जबकि नागौरी भटभोड़ा नाम से जाने जाते हैं। कस्बे के ठिकाणे की

संवत् 1866 की बही के अनुसार उस समय सपणीगर (शिलावटों) के इस शहर में 16 घर आबाद थे जबकि नागौरियों के 13 घर थे। इस समय सपणीगरों के परिवारों की संख्या करीब 150 है तथा नागौरी सीलावटों के 300 घर आबाद हैं। प्रारम्भ में सपणीगर पत्थर की घड़ाई का काम अधिक करते थे।

लाडनूं बड़े भवनों का शहर कहलाता है। यहाँ की हवेलियाँ इस शहर के व्यक्तित्व का एक आकर्षक अंग है। इनके निर्माण का श्रेय यहाँ के राजगीरों को ही जाता है। वर्तमान समय में भी लाडनूं में अच्छे युवक राजगीर मौजूद हैं, जो देश के महानगरों में भी निर्माण कार्य सम्पन्न करवाते रहते हैं। आजकल इन राजगीरों में अरब देशों की ओर जाने का रूझान बढ़ रहा है। इस कौम के साथ आजीविका का एक विश्वसनीय आधार जुड़ा हुआ है।

जाट :

राजस्थान की ग्रामीण संस्कृति की पहचान का प्रतीकात्मक नाम जाट है। जाटों की अपनी एक मौलिक पहचान है—निरामिश भोजन, सीधी-सादी सरल जीवन पद्धति, मोटा खाना, मोटा ही पहनना, अपने पशुओं के साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार आदि। कृषि कर्म इनका एकमात्र अवलंबन रहा है। सही माने में यह जाति ही किसान है। किसी जमाने में खेती के अतिरिक्त इनके पास कोई अन्य धन्धा नहीं था। इसी आधार पर जाट का घर सर्व प्रकार से शुद्ध माना जाता रहा है। अपनी इस शुद्धता को कायम रख सकें तो शेष समाज पर जाटों का बड़ा उपकार माना जाएगा।

मेरा मानना है कि 'जाट' युरोप के नीदरलेण्ड्स नाम से जाने जाने वाले देशों के खेतिहर इलाकों के वासी थे। अतः आर्य तो वे थे। इस सम्बन्ध में मेरा अध्ययन इस प्रकार है—

बेल्जियम की पीट (एक प्रकार का कोयला) की खदानों में दफन किए हुए कुछ शव प्राप्त हुए थे। वे शव सड़े नहीं थे, मम्मी बन गए थे। अधिकतर शवों की मुखाकृतियाँ सौम्य थी। ऐसा लगता था, उन्हें बलि चढ़ाया गया था। गलों पर फन्दे के निशान भी थे। उस क्षेत्र के प्राचीन इतिहास में बसन्तोत्सव मनाने का उल्लेख है तथा उन उत्सवों में बसन्त की अधिष्ठात्री देवी को बलि देने का भी विधान था। शवों की परीक्षा से मालूम हुआ कि उन सब की आन्तों में समान रूप से एक शाकाहारी भोजन था, जो विभिन्न प्रकार के क्षेत्रीय धानों (जई, गेहूँ, दालों) के मिश्रण से बना हुआ था। हमारे गाँवों में इस तरह के भोजन को खीच नाम से जाना जाता है। खीच जाटों का मुख्य

ऊपर वर्णित क्षेत्रों में शीत की प्रधानता है। वायुमण्डल में सदा ओस छाई रहती है। सूर्य के दर्शन यदाकदा ही होते हैं। फसलों को पकने के लिए पर्याप्त गर्मी नहीं मिल पाती। इन विषमताओं से परेशान होकर वहां के खेतिहर किसान अधिक धूप की तलाश में पूर्व की ओर आमुख हुए। धीरे-धीरे टर्की, मेसोपोटामिया, इरान और अफगानिस्तान होते हुए वे भारत पहुँचने में सफल हुए। भारत में प्रवेश करते ही पंजाब की नदियों का सरसब्ज इलाका उन्हें मिला। वहीं उनके पैर थम गए। युगों तक वहाँ उन्होंने वास किया।

इतिहासकार कर्नल टॉड की मान्यता है कि जाट मुल्तान के सीमा प्रदेश के वासी थे। गजनी के हमलों से त्रस्त होकर उन्होंने अपनी जगह छोड़ी। पंजाब में यत्र-तत्र बसे, हरियाणा में पहुँचे तथा अधिक सुरक्षा की तलाश में बड़ी संख्या में वे राजस्थान में उतर आए। इस भू-भाग पर उन्होंने अपने जनपद कायम किए। किसी प्रकार की राजनैतिक सत्ता स्थापित करने की उनकी महात्वाकांक्षा कभी नहीं रही अतः कृषि और पशुपालन का अपना मूल आधार उन्होंने नहीं छोड़ा। जाटों का एक दल मारवाड़ की समतल धरती तक पहुँच गया। मारवाड़ के जाटों के लिए कृषि का धन्धा प्रमुख आधार बना। पशु-पालन दूसरे स्थान पर रहा। 'थळी' में स्थल की प्रधानता थी, अतः वहाँ के जाटों के लिए पशुपालन के धन्धे की प्रमुखता रही।

इतिहासकार दयालदास के अनुसार रायसलाणा के बेनीवाल, लूंधी के पूनिया, सूई के सीहाग, धनसी के सोहुवा, लाधड़िया शेखसर के गोदारा, भाइंग के सारण, सिद्धमुख के कस्बा जाटों के प्रसिद्ध ठिकाणे थे। इनके अतिरिक्त जाखड़, गोरछा आदि जाट जातियाँ भी महत्त्वपूर्ण रहीं।

राजस्थान की कृषि का सारा दारमदार जाटों पर है। राजस्थान के अधिकतर गाँवों में जाट जाति का बाहुल्य है। यह एक परिश्रमी और सम्पन्न कौम है। जाटों का शारीरिक श्रम में कोई मुकाबला नहीं। राज्य में जागीरदारी प्रथा के दौरान जाटों ने सामंतशाही के आतंक का भी बड़े साहस से सामना किया। अन्याय के सामने जाट कभी झुके नहीं।

लाडनू कस्बे के भी जाट पुराने वाशिन्दे हैं। भाकर, इनाणिया, पाण्डर आदि शाखाओं के जाट लाडनू में लम्बे समय से रहते आ रहे हैं। आज से करीब दो सौ वर्ष पुरानी बही के आधार पर उस समय लाडनू में सिर्फ सात परिवार जाटों के आबाद थे। आज उनकी संख्या करीब 150 हो गई है। आधुनिक साधनों के साथ कृषि कर्म से जुड़े रहने में ही जाटों की सफलता निहीत है। कृषि कर्म इनके लिए स्वधर्म है। अन्य धन्धों में भी यह [illegible] हासिल [illegible] रही है। लेकिन कहावत प्रसिद्ध है—धन खेती धिक चाकरी।

बिश्नोई :

ग्रामीण परिवेश में जन्मे जाम्भोजी नाम के सिद्ध पुरुष बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक हुए। नागौर जिले के उत्तरी छोर पर स्थित पीपासर गाँव में लोहट परमार के घर संवत् 1508 (ई. सन् 1451) में उनका जन्म हुआ। थळी प्रदेश के काकड़ा नामक कस्बे से कुछ दूरी पर समराथल नामक एक बड़े टीबे पर जम्भोजी ने साधना की थी। वहीं उनको ज्ञान प्राप्त हुआ। वहाँ से कुछ ही दूरी पर मुकाम नामक स्थान पर जाम्भोजी का एक मन्दिर है। प्रतिवर्ष फाल्गुन की अमावस्या को वहाँ एक बड़ा मेला लगता है।

जाम्भोजी ने अपने अनुयायियों को नैतिक उद्‌बोधन के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण की भी दृष्टि दी। हरे वृक्ष मत काटो, जंगल के जानवरों की रक्षा करो। प्रतिदिन घी का हवन करो। ये लोग अपने मृतकों के शवों को गाड़ते हैं। शवों के गाड़ने के लिए कोई विशेष स्थान नियत नहीं होता। इसके लिए वे अपने खेतों की जमीन का ही उपयोग करते हैं। जाम्भोजी के उपदेशों में उन्तीस बातों का समावेश है। पुरानी लाडनू जागीर के एक कस्बे रोटू में भी इस सम्प्रदाय का एक बड़ा मन्दिर है। वहाँ जाम्भोजी का एक खाण्डा तथा पत्थर पर उनके पंजे का निशान पूजनीय वस्तुओं के रूप में संरक्षित है। रोटू गाँव के शमी वृक्ष (खेजड़ी) भी दर्शनीय हैं। उनमें कुछ वृक्ष तो पाँच सौ वर्ष पुराने हैं। विश्नोइयों के गाँवों में हिरण का शिकार वर्जित है।

हरियाणा तथा राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर संभागों में विश्नोई समाज की संख्या सर्वाधिक है। इस सम्प्रदाय के अग्रपुरुष जाम्भोजी ने नस्ल सुधार पर भी बहुत ध्यान दिया। यही कारण है कि ये लोग हृष्ट-पुष्ट तथा मजबूत कद-काठी के होते हैं। स्वभाव से मेहनती होते हैं अतः सम्पन्न हैं। इस सम्प्रदाय में सभी जातियों के लोग दीक्षित हुए लेकिन जाटों की संख्या अधिक थी। जाटों की तरह कृषि कर्म इनका मुख्य सहारा है। लाडनू कस्बे में पहले विश्नोई आबाद नहीं थे लेकिन पिछले कुछ वर्षों से ये यहाँ बसने लगे हैं। इस समय इस शहर में इनके परिवारों की संख्या करीब बीस हो गई है। ये लोग दूध का धंधा करते हैं।

जसनाथी :

इस पंथ के प्रवर्तक सिद्धाचार्य जसनाथ हुए। उनका जन्म संवत् 1539 में बीकानेर के कतरियासर गाँव में हुआ। हमीर नाम के 'जाणी' जाट के वे पोष्य पुत्र थे। उनकी माँ का

नाम रूपा दे था। उन्होंने मात्र चौबीस वर्ष की अवस्था में जीवित समाधि ले ली थी। उनकी वाणी तीन पुस्तकों में संकलित है। उनके उपदेश वैष्णव धर्म आधारित हैं। उनके मानने वालों में भी जाटों की संख्या ही अधिक रही। ये लोग सिर पर भगवा साफा रखते हैं। इस सम्प्रदाय में लालनाथ नाम के एक अन्य सिद्ध पुरुष हुए। उनकी वाणियाँ भी उनके संबुद्ध होने की परिचायक हैं। सिद्धों का अग्नि नृत्य भी प्रसिद्ध है।

जाटों में हुए प्रसिद्ध भक्त धन्ना के अनुयायी धनावंशी साद (स्वामी) कहलाते हैं। भक्त परसोजी से परसवंशी साधों का सम्प्रदाय चला। ये जाति के बढ़ई (खाति) थे। ये सभी पथप्रवर्तक सन्त इस प्रदेश के ग्रामीण परिवेश की उपज हैं। ये इतिहास की उस विषम बेला में हुए जो मध्यकाल के नाम से जानी जाती है। इन सन्तों ने जन-मानस को उद्बोधित किया और धर्म-परिवर्तन के उस कठिन दौर में आम आदमी के आत्म-गौरव को डिगने से बचाया। इनकी इतिहास और संस्कृति को अमूल्य देन है।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण (भोजक या सेवग) :

लाडनू में इस जाति के परिवारों की संख्या करीब 150 है। ये लोग अपना मूल स्थान ईरान के शाकद्वीप को बताते हैं। अपने को ब्राह्मण वर्ण से जोड़ते हैं। सन् 1891 की जनगणना के बाद जो जाति परक रिपोर्ट तैयार की गई थी, उसमें सेवगों ने अपने बारे में इस प्रकार उल्लेख करवाया था—

'भारत खण्ड के ब्राह्मण तो भूदेव हैं। हम सूर्य मण्डल से उतरे हुए मग ब्राह्मण हैं। शाकद्वीप के रहने वाले हैं। भारत खण्ड के ब्राह्मण मन्दिरों की पूजा नहीं करते थे अतः कृष्ण पुत्र साम्ब अपने बनवाए हुए सूर्य मन्दिर की पूजा करवाने के लिए शाकद्वीप से हम 'मग' ब्राह्मणों को भारत देश लाए। हमारा विवाह भोज जाति की कन्याओं से करवाया अतः हम भोजक कहलाए। सूर्यपुत्र जरथुस्ट से हमारी उत्पत्ति है। आदित्य शर्मा हमारी उपाधि है।'' उपरोक्त कथन के प्रमाण में हस्तलिखित भविष्य पुराण का निम्न श्लोक वे उद्धृत करते हैं—

जरशस्त इतिख्यातो वचार्थोख्यातिभागतः।
पुश्चभूयः संत्राप्य यथाये लोकपूजितः॥
भोजकन्या सुजातत्वाद्भोजकास्तेन ते स्मृताः॥
आदित्यशर्मा यः लोके वचार्थाख्यातिभागताः

बम्बई से प्रकाशित भविष्यपुराण में इस प्रकार कथन है—

जरशस्त इतिख्यातो वंशकीर्तिविवर्धनः
अग्निजात्यामधाप्रोक्ताः सोमजात्या द्विजातयः
भोजकादित्य जात्यादि दिव्यास्ते परिकीर्तिताः

(अध्याय 139)

शेख सादी ने अग्निपूजक मगों का वर्णन इस प्रकार किया है—

अगर सद साल मग आतिश फरोज्द।
चो आतिश अंदरो उफतद विसोज्द॥

अल्बेरूनी ने लिखा है—अब तक हिन्दुस्तान में बहुत से जरथुश्त के मानने वाले हैं। उनको मग कहते हैं। वे सूर्य की पूजा करते हैं। शाकद्वीपीय ये ब्राह्मण, पारसियों के अग्रज हैं। पारसी जाति लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी में भारत आई थी और बम्बई के आसपास बस गई थी। वे भी अग्निपूजक हैं तथा जरथुश्त के अनुयायी हैं।

करीब 550 ई. सन् की लिखी हुई नेपाल से प्राप्त एक संस्कृत पुस्तक में मगों के बारे में इस प्रकार उल्लेख है—

ब्राह्मणानाम् मगानां च समत्वं जायते कलौ।

अर्थात् कलयुग में ब्राह्मणों और मगों का दर्जा बराबर हो जाएगा। इससे सिद्ध होता है कि पुस्तक के रचनाकाल वि. संवत् 607 में ब्राह्मण मगों से श्रेष्ठ माने जाते थे। इतिहासवेताओं का इस प्रसंग में अनुमान है कि यह जाति इरान से भारत आई। वे फलित ज्योतिष के ज्ञाता थे। अनुमान है कि भारतवर्ष में फलित ज्योतिष का प्रचार इन्हीं लोगों द्वारा हुआ होगा क्योंकि वैदिक ज्योतिष में फलित नहीं है।

ब्राह्मण :

राजस्थान में ब्राह्मणों की छः मूल शाखाएँ हैं। दायमा, पारीक, खण्डेलवाल, सारस्वत, गौड़ और गुर्जर गौड़। दायमा अपने आपको दधीचि ऋषि की संतान मानते हैं। दधिमथि इनकी कुल देवी है। जायल तहसील का गोठ मांगलोद गांव इनका उत्पत्ति स्थान है। वहाँ दधिमथि माता का एक प्राचीन मन्दिर है। दायमा लाडनू कस्बे के ठाकुर घराने के राजव्यास रहे हैं। सभी प्रकार के कर्मकाण्ड सम्पन्न करवाने में वे ही अग्रणी माने जाते हैं।

पारीक ब्राह्मणों का मानना है जब से यह कस्बा बसा है वे तब से ही इसके वाशिन्दे हैं। खण्डेलवाल ब्राह्मण अपनी उत्पत्ति खण्डेला से मानते हैं। उनकी संख्या भी इस कस्बे में काफी है। कस्बे में सारस्वत बहुत कम हैं। गौड़ ब्राह्मणों का सिर्फ एक परिवार यहाँ

आबाद है। गुर्जर गौड़ बिल्कुल नहीं हैं। पड़ौस के गाँवों से बहुत बड़ी संख्या में ब्राह्मण लाडनूं कस्बे में आकर बसे। कस्बे में दायमा, पारीक तथा खण्डेलवाल ब्राह्मण परिवारों में संख्या क्रमश: 150, 150, 100 हैं। दो सौ वर्ष पहले इस कस्बे में सिर्फ पन्द्रह ब्राह्मण परिवार आबाद थे।

वेदकालीन ब्राह्मण बड़े अद्‌भुत पुरुष थे। ब्राह्मण विद्वानों द्वारा रचित संस्कृत साहित्य मनुष्य जाति की अनमोल विरासत है। ब्राह्मणों ने जो ऊँचाइयाँ हासिल की वे मानव विकास क्रम की पराकाष्ठाएँ मानी जाती हैं।

कायस्थ, पंचोली या माथुर :

सामन्ती काल में राजकाज सम्बन्धी कामों का एक बड़ा दायित्व कायस्थों के जिम्मे रहा। न्यायसंचालन से जुड़े हुए कातिब, मुख्तियार, पेशकार, मुहरिर आदि अनेक प्रकार के काम कायस्थों को ही सौंपे जाते थे। प्रशासन व राजस्व मामलों से सम्बन्धित दीवान व कानूनगो आदि पदों पर भी इस जाति को प्राथमिकता मिलती थी। परम्परा से इन कामों को करते रहने से इस जाति को इन कामों की महारत हासिल हो गई थी।

मुसलमान राज के वक्त इन्होंने फारसी पढ़ी। अंग्रेजों के कार्यकाल में अंग्रेजी। परिस्थितियों के अनुकूल अपने आपको ढाल लेने की इस कौम में अद्‌भुत क्षमता है। वफादारी और काम की जानकारी के गुण इस कौम के जन्मजात संस्कार रहे हैं। यही कारण है कि हर परिस्थितियों में यह जाति राजकाज के कामों से निरन्तर जुड़ी रह पाई।

कायस्थ अपना मूल स्थान मथुरा मण्डल के चौरासी गाँवों को मानते हैं। इसीलिए शायद ये 'माथुर' कहलाए। वहाँ से आजीविका की तलाश में उनको सब दिशाओं में निकलना पड़ा। एक समूह उत्तरप्रदेश, बिहार होता हुआ बंगाल की सीमा तक पहुँच गया। पाल व सेन वंश के समय के अनेक प्रसंगों में इस जाति की उपस्थिति लक्षित होती है। दिल्ली के सल्तनत तथा मुगल कालों में परिस्थितियाँ निरन्तर बदलती रहीं। इन बदलावों के साथ कायस्थों के प्रयाणपथ भी शीघ्रता से बदले। मुगलकाल में दिल्ली में कायस्थों का पूरा बोलबाला था।

राजस्थान की रियासतों में भी कायस्थों को काम करने का अच्छा अवसर मिला। मारवाड़ रियासत में इनकी प्रतिद्वन्द्वता ओसवालों से रही अत: दीवान जैसे बड़े पदों पर पहुँचने में इनको कठिनाई हुई। लाडनूं कस्बे में इनका आगमन राठौड़ों के साथ । राव जोधा को अपने दामाद राव अजीत मोहिल से युद्ध करना पड़ा। कहते हैं

उस लड़ाई में कायस्थ मनसुखराय के एक पुत्र सारंगराय फौज मुसाहिब थे तथा दूसरे पुत्र मनोहरराय फौज बख्शी थे। लड़ाई में मनोहरराय तो काम आए तथा सारंगराय घायल हो गए। इन्हीं मनसुखराय के वंशजों को कालान्तर में लाडनू की कानूनगी मिली।

लाडनू के कायस्थ मेड़तवाल शाखा के हैं तथा बलुन्दा के कायस्थ इनके निकट के भाई बंधुओं में से हैं। कहते हैं मेड़तिया मुसलमान सीलावटों और मेड़तवाल पंचोलियों (कायस्थों) की पोळें लाडनू में एक ही समय में बनी थीं। इस जाति को लाडनू में आबाद हुए करीब चार सौ साल हो गए हैं। लाडनू कस्बे के अनेक ऐतिहासिक प्रसंग इस जाति से जुड़े हुए हैं। गाजी उमरशाह पीर की दरगाह की चार दीवारी और गुम्बज बनवाने का श्रेय लाडनू के किसी कायस्थ मुसाहिब को ही जाता है। बदली परिस्थितियों में भी अपने आर्थिक आधार ढूँढ़ने में यह जाति समूह सफल रहा है।

टण्डन :

यह एकमात्र खत्री परिवार है, जो पिछली शताब्दी के तीसरे दशक के प्रारम्भ में उत्तरप्रदेश से लाडनू आकर बसा। इसके अग्र पुरुष स्व. रामबिहारी टण्डन पेशे से डॉक्टर थे। समाज सेवा उनका संस्कारगत स्वभाव था। स्थानीय गौशाला के उन्नयन में उन्होंने अनुकरणीय योगदान दिया। उनके पुत्रगण स्व. कन्हैयालाल व शालिगराम भी योग्य चिकित्सक थे। डॉ. कन्हैयालाल अपने जमाने के शहर के लोकप्रिय डॉक्टर थे। उनके पुत्र स्व. विजय टण्डन ने भी इस पेशे में अच्छा यश कमाया। वर्तमान में कन्हैयालाल के सबसे छोटे पुत्र श्री बहादुरसिंह अपनी महत्ती सेवा इस शहर को दे रहे हैं।

रेलवे में नौकरी करने वाले कुछ खत्री परिवार, यथा—कपूर, दुग्गल सेवानिवृत्ति के बाद इसी कस्बे में स्थायी रूप से बस गए हैं।

बंगाली परिवार :

इस समय लाडनूँ में चार बंगाली परिवार निवास कर रहे हैं। डॉ. सुशीलरंजन गुहाराय का परिवार उनमें सबसे पुराना है। डॉ. सुशीलरंजन गुहाराय स्व. डॉ. सुनीलरंजन के अनुज थे। दोनों ही भाई होम्योपेथी में अच्छी योग्यता रखते थे। यह गुहाराय परिवार पढ़ा-लिखा और सम्पन्न है।

सिंधी :

वर्तमान में करीब 10 सिंधी परिवार लाडनू में आबाद हैं। सन् 1947 में देश में फैली

साम्प्रदायिक आग के वक्त लाडनू के तत्कालीन जागीरदारी प्रशासन ने किसी भी बाहरी व्यक्ति के प्रवेश पर रोक लगा दी थी। अतः सिंधी सम्प्रदाय लाडनू में कम बस पाया।

उत्तरप्रदेश के कुछ ब्राह्मण, कायस्थ व अहीर परिवार लाडनू में बस गए हैं। सरकारी या अर्ध-सरकारी सेवाओं से निवृत्त होने के बाद उन्होंने यहीं पर बसना उचित समझा। ऐसे परिवारों की संख्या करीब दस है।

खण्डेलवाल वैश्य (सरावगी) :

लाडनू कस्बे के प्रारम्भिक वाशिन्दों में इस समुदाय का नाम गिना जाता है। डॉ. परमेश्वरलाल सोलंकी की स्थापना है कि यह गाँव खाण्डल पाल वंशीय महाजनों का स्वाशासित गाँव था। फिर भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह जाति समूह इस कस्बे में कब आया। सरावगी जैन धर्म की दिगम्बर शाखा के अनुयायी हैं तथा अपना उत्पत्ति स्थान खण्डेला शहर को मानते हैं। ये लोग क्षत्रिय मूत्र के हैं।

खण्डेलवाल वैश्यों का मानना है कि उनके अग्रपुरुष खण्डेलगिरी विक्रम की दूसरी सदी के प्रथम दशक में दीक्षित हुए। वे चौहान मूल के थे। लेकिन उस अवधि में स्वयं चौहानों का अस्तित्व सिद्ध कर पाना कठिन हो रहा है। कुछ शाखाएँ जैसे बाकलीवाल, कासलीवाल, हलद्या आदि अपने आपको मोहिल मूल की मानती हैं तथा उनकी कुलदेवी जीण है। मोहिल वंश का उद्‌भव ईसा की ग्यारहवीं सदी के मध्य ठहरता है। इस स्थिति में यह मानना ही युक्तियुक्त है कि इतिहास के लम्बे कालखण्ड में यह जाति समुदाय विकसित हुआ।

जैन धर्म में दीक्षित होते ही इस जाति ने खण्डेला त्याग दिया। सीकर उस समय तक बसा नहीं था। पहले पहल ये लोग लाडनू आए। लाडनू से नागौर, कुचामन, झालरा पाटण, उज्जैन, इन्दौर आदि स्थानों को स्थान्तरित हुए। कुछ लोग आसपास के ग्रामीण इलाकों में भी विसर्जित हो गए। यथा—लालगढ़, जसरासर, मेणसर, डेह आदि। इन गाँवों से कालान्तर में ये पुनः लाडनू और सुजानगढ़ आकर बसे। जयपुर रियासत के दीवान आदि शासकीय पदों पर रहकर इस सम्प्रदाय ने अच्छा नाम कमाया था। वि. संवत् 1866 की बही से उस समय लाडनू कस्बे में इस जाति के 41 परिवारों का निवास करना प्रमाणित है। लाडनू कस्बे में वर्तमान में इस जाति के करीब दो सौ घर आबाद हैं।

लाडनू कस्बे को इस सम्प्रदाय की बड़ी बहुमूल्य देन है। यहाँ करीब तीस पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न हो चुकी हैं, जिनके आधार पर यह शहर दिगम्बर जैनियों के बड़े तीर्थों शुमार हो गया है। लाडनू का पुराना जैन मन्दिर अति प्राचीन है। स्थानीय गंगवाल

परिवार द्वारा निर्मित नया जैन मन्दिर भी अपनी कीर्ति सर्वत्र बिखेर रहा है। इस वंश में अनेक बड़े उद्योगपति व व्यवसायी हुए हैं। कुछ प्रतिभा-सम्पन्न युवक विदेशों में अच्छा नाम कमा रहे हैं।

माहेश्वरी :

खण्डेला राज्य के किसी क्षत्रिय राजकुमार ने अपने 72 सहयोगियों सहित क्षत्रिय वर्ण का त्याग कर वैश्य वर्ण अपना लिया तथा वे वैष्णव धर्म में दीक्षित हुए। सूरज-कुण्ड नामक स्थान पर उनके हथियार जलवत होकर कुण्ड के पानी में समा गए। तब से उस स्थान का नाम लोहार्गल प्रसिद्ध हुआ। लोहार्गल से वे सबसे पहले डीडवाना गए, फिर अन्यत्र विसर्जित हुए। ये लोग देश में सर्वत्र बड़े उद्योगों तथा व्यवसायों से जुड़े हुए हैं। बिड़ला, बांगड़, सोमानी, तापड़िया, तोसनीवाल, झंवर इसी सम्प्रदाय के हैं। लाडनू ठिकाणे से प्राप्त संवत् 1866 की बही के अनुसार उस समय इनके सात परिवार इस कस्बे में आवासित थे। उस बही में पूरे लाडनू शहर से उगाहे गए चन्दे की बिगत है। माहेश्वरी समाज के किसी लक्ष्मणदास ने सबसे अधिक चन्दा 4500रु. दिया था। इससे इस सम्प्रदाय की उस समय की सम्पन्न स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। उस बही से यह भी जानकारी मिलती है कि उस समय लाडनू में करवा, लाहोटी भैया, मंत्री, सारड़ा, बिहाणी व मूंधड़ा जातियों के माहेश्वरी निवास करते थे। झंवर तथा जाजू परिवार बाद में आकर बसे। पुरानी जातियों में करवा, लाहोटी मंत्री तथा सारड़ा अब यहाँ नहीं रहते हैं।

श्रीकृष्ण व चम्पालाल झंवर परिवारों का गौशाला के उन्नयन में अच्छा योगदान रहा। भैया परिवार ने भी अभी हाल ही में पहली पट्टी स्थित अपनी बगीची में बड़ी सुन्दर व आकर्षक मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ करवाई हैं। एक बड़े हॉल का भी निर्माण करवाया है, जिसमें करीब चार सौ आदमियों के बैठने की समुचित व्यवस्था है। साथ-साथ मंच भी बना हुआ है। इस हॉल ने शहर में ओडिटोरियन की कमी को पूरा कर दिया है। शहर के उन्नयन में मूंधड़ा परिवारों का योगदान भी स्तुत्य रहा।

ओसवाल :

ओसवाल क्षत्रिय मूल के हैं। ओसवालों का उत्पत्ति स्थल मारवाड़ है। मारवाड़ का आदर्शवादी रुझान और इसकी जीवन्त सांस्कृतिक परम्पराएँ ओसवालों को विरासत में मिलीं। यद्यपि ओसवाल सम्प्रदाय में राजपूतों के प्रायः सभी कुलों के लोग हैं लेकिन प्रतिहार, परमार और राठौड़ों की उनमें प्रधानता है। सिंघवी जाति ब्राह्मण मूल की है।

दूगड़ आदि चौहान वंश से निकले। यह बात सुनिश्चित है कि इतिहास के एक लम्बे कालखण्ड में इस वंश का विकास हुआ।

परिवर्तन की इस समस्त प्रक्रिया में वर्णान्तरण मुख्य घटना थी। धर्म का चयन दूसरे स्थान पर रहा। अपने उद्भव के प्रारम्भिक काल में कुछ ओसवाल आजीविका की तलाश में अविभाजित पंजाब के मुल्तान आदि स्थानों को चले गए। देश विभाजन के बाद वे दिल्ली आदि जगहों पर लौट आए। ये पंजाबी ओसवाल जैन धर्म की दिगम्बर शाखा के अनुयायी हैं। गुजरात के ओसवाल श्वेताम्बर शाखा के मन्दिर मार्गी हैं।

प्रारम्भ में सभी जैन श्वेताम्बरी ओसवाल मन्दिर मार्गी ही थे। स्वयं लाडनू में श्वेताम्बर जैनियों ने चारभुजा चौक में भगवान् शान्तिनाथ का मन्दिर स्थापित करवाया, जो आज भी मौजूद है। बीकानेर में मन्दिर मार्गी जैन श्वेताम्बर ओसवाल बड़ी संख्या में वास करते हैं। इन मन्दिर मार्गी ओसवालों ने बड़े कलात्मक मन्दिरों का निर्माण करवाया जो देश की एक अमूल्य निधि है। संवत् 1817 में आचार्य भिक्षु ने जब 'तेरापंथ' नाम से अलग पंथ की स्थापना की तो थळी प्रदेश के प्रायः सभी ओसवालों ने उस पंथ में गुरुधारणा कर ली।

युद्ध और व्यापार दोनों ही अवस्थाओं में साहस एक सर्वोपरि आवश्यकता है और साहस का गुण क्षत्रिय मूल की जातियों को विरासत में मिला। यही कारण है कि ये जातियाँ व्यापार में भी सफल रहीं।

वाणिज्य कर्म अपना लेने पर भी ओसवाल जाति के क्षत्रियोचित संस्कारों में कमी नहीं आई। राठौड़ों द्वारा लड़े गए अनेक युद्धों में उन्होंने युद्धों का न केवल कुशल संचालन किया बल्कि स्वयं भी लड़े। राठौड़ व ओसवाल—दोनों ही वंश परस्पर उपकृत हुए। राठौड़ों के सहारे ओसवाल महाजनों को सुरक्षा मिली। राठौड़ों को ओसवालों की प्रशासन क्षमता का महत्त्वपूर्ण आधार मिला। नीतिकुशल ओसवालों ने राठौड़ राजकुल को उच्छृंखल होने से बचाए रखा। इतिहास को यह ओसवाल कुल की बड़ी देन है। परिश्रम, प्रतिभा, सन्तुलित स्वभाव के बल पर ओसवालों ने अपनी विशेष पहचान बनाई।

इतिहास के मध्यकाल में राठौड़ों के प्रयाणपथ ही मुख्य रूप से ओसवालों के प्रयाणपथ बने। राव बीका जांगल प्रदेश की तरफ जब राज्य विस्तार को निकले तो उनके पिता राव जोधा ने उनके साथ अपने विश्वसनीय सामन्त बैद लखनसी मेहता को भेजा। यह

भी सही है कि दोनों पक्षों में परस्पर कभी-कभी गलत फहमियाँ भी पनपी लेकिन वे व्यक्तिगत स्तर तक ही सीमित रहीं। लाडनू में भी ओसवालों का आगमन राठौड़ों के साथ ही हुआ। थळी प्रदेश में भी जहाँ-जहाँ राठौड़ों ने अपना राज्य-विस्तार किया – ओसवाल उनके अनुगामी बने। यही कारण है कि बीकानेर, श्रीडूँगरगढ़, बीदासर, राजलदेसर, सरदारशहर, सुजानगढ़, चूरू आदि स्थान सर्वाधिक ओसवाल आबादी वाले शहर हैं।

परन्तु प्रशासकीय पद सीमित थे। मारवाड़ और थळी प्रदेश में उस समय तक प्राकृतिक सम्पदा का शोधन नहीं हो पाया था। कृषि भूमि पर जाट काबिज हो गए थे। कृषि कर्म ओसवालों के लिए सहज संस्कार नहीं बन सका। अपने आभिजात्य का भाव ओसवालों ने कभी क्षीण नहीं होने दिया। नतीजन सम्पदा के नए स्रोतों की तलाश में उन्हें बंगाल, बिहार, आसाम तथा दक्षिण भारत की तरफ उन्मुख होना पड़ा। यह उनका समयानुकूल साहस और सूझबूझ भरा निर्णय था।

बंगाल के मुसलमान शासकों के विश्वासपात्र बने रहने में ओसवाल सफल रहे। जगतसेठ का विरुद उनके यश प्रवर्तन का चरम उत्कर्ष था। अंग्रेज व्यापारियों के समक्ष भी ओसवाल समुदाय ने अपने विश्वास को शिथिल नहीं पड़ने दिया। विलायत से आने वाले अधिकांश माल की दलाली का काम ओसवालों को मिला। अथक परिश्रम के बल पर पाट के व्यवसाय पर भी ओसवालों का एकछत्र अधिकार हो गया। ओसवालों ने अतुल सम्पदा अर्जित की। परन्तु बीसवीं सदी के प्रारम्भ की औद्योगिक दौड़ में वे पिछड़ गए।

संवत् 1866 की बही के अनुसार उस समय इस कस्बे में ओसवालों के 51 परिवार आबाद थे। वर्तमान में इस जाति समुदाय के परिवारों की इस कस्बे में संख्या करीब 1500 है। थळी प्रदेश के सभी कस्बों की तुलना में यह संख्या सर्वाधिक है।

अग्रवाल :

अग्रवाल जन्मजात व्यापारी हैं। संसार की प्रमुख व्यवसायिक जातियों में इनकी गिनती होती है। यहूदियों के समकक्ष इनकी व्यवसायिक प्रतिभा उजागर हुई है। देश के करीब-करीब आधे से अधिक उद्योग व व्यवसाय इस जाति के हाथ में है। यह किसी व्यक्ति विशेष या घराने की यात्रा नहीं एक कौम की समूहगत यात्रा है, जो हजारों वर्षों से सतत चल रही है।

इस जाति का लक्ष्य सिर्फ एक है—सम्पदा की तलाश। फिर भी इनकी प्रतिभा सभी क्षेत्रों में उजागर हुई है। इस यात्रा में ये कभी रुके नही, थके नहीं। किसी स्थान विशेष से मोह नहीं रहा। अनेक बार कुचले गए, फिर उठे और चल दिए। कई बार अस्तित्व खतरे में पड़ा लेकिन बीज इतना सबल था कि पुनः पुनः उठता रहा। संघर्षों ने इन्हें संवारा, बाधाओं ने इन्हें निखारा। इनका जीवन संघर्षों की एक लम्बी कहानी है।

परिस्थितियाँ कैसी भी हों अग्रवाल हार नहीं मानता। स्व के प्रति आस्थावान और पर के प्रति सावधान—अपने अस्तित्व को बचाए रखने का भाव इस जाति समूह में संस्कारगत है। जन्म लेकर जीते सब हैं लेकिन अग्रवालों के जीवन में एक जन्मजात दिशा है। उनमें सामान्य बुद्धि का एक सहज स्रोत है—वह स्रोत चाहे कितना ही क्षीण क्यों न हो लेकिन हर परिस्थिति में राह बता देता है। अग्रवाल सोचता कम है, झिझकता कभी नहीं, अति शीघ्र निर्णय लेकर काम शुरु कर देता है।

उन स्रोतों को बता पाना कठिन है, जिनसे अग्रवाल सूचनाएँ पाते हैं। लेकिन यह बात स्पष्ट है कि दस में से नो सूचनाएँ उनकी सही उतरती हैं। और सबसे पहले वे उन्हीं को प्राप्त होती हैं। संगठनात्मक सामर्थ्य, पूर्वानुमान लगाने की बुद्धि, जोखिम उठाने का मादा उनके विशेष गुण हैं। इतिहास के धूमिल काल से ही उन्होंने व्यापार को अपनाया। उन्होंने जन्म से ही अपने को व्यापारी पाया।

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इन विलक्षण गुणों वाले समुदाय का जन्म कहाँ हुआ ? यह जाति समूह भारत में ही विकसित हुआ या बाहर से आया ?

तथ्य यह है कि सशक्त बीज विषम परिस्थितियों में ही पनप सकता है। परिवेश जितना आक्रामक होगा, बीज उतना ही सबल बनेगा। भारत एक सुरम्य धरती है। इस देश की संरचना में एक अनुपम सम है। यहाँ सहज ही सब कुछ उपलब्ध है। जहाँ विशेष संघर्ष करने की स्थिति ही पैदा नहीं होती, वहाँ संघर्षो को झेलने वाला बीज पनपे—इसकी सम्भावना अति न्यून रह जाती है। अतः ज्यादा सम्भावना है कि यह पौध बाहर से आई।

अग्रवालों का पहले पहल पंजाब में पाया जाना प्रमाणित है लेकिन अग्रवाल पंजाबी मूल के नहीं हैं। इतिहास पूर्व के लम्बे काल से ही एक मार्ग उत्तर-पश्चिमी हिमालय की श्रेणियों के दर्रो में होकर सुदूर पश्चिम में भू-मध्य सागर तक बहता रहा है। अनगिनत लोग इस रास्ते से भारत आए। एक बार फिर प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस मार्ग पर किन व्यवसायप्रिय जातियो का अस्तित्व रहा, जिनके भारत पहुँचने की

सम्भावना पर विचार किया जा सकता है। यह एक जुदा बात है कि राज्य स्थापना के लिए भी अनेक दल इसी रास्ते से भारत आए।

यहूदी आदि कुछ जातियों की पृष्ठभूमि व्यवसायिक रही है। आज भी यहूदी कुशल व्यापारी हैं लेकिन यहूदी अपने धार्मिक दायरे से बहुत कम बाहर निकल पाए। उनकी धार्मिक भावना व्यवसायिक पृष्ठभूमि की तुलना में अधिक सबल है। सीरिया, जोर्डन आदि अरब देशों के व्यापारी भी अपना अच्छा दबदबा रखते थे। लेकिन इनकी राजनैतिक चेतना अधिक प्रखर थी अतः ये अपनी जमीनों को नहीं छोड़ पाए। साथ-साथ अरबी और अग्रवालों में नस्ल सम्बन्धी बहुत दूरियाँ हैं।

फिनीशियन अग्रवाल साम्य* :

इस अध्ययन क्रम में एक अन्य जाति उभरती है 'फिनीशियन'। वर्तमान लेबनान के भू-मध्यसागरीय तट प्रदेश का नाम फिनीशिया था। फिनीशियन एक सशक्त व्यवसायिक पृष्ठभूमि के लोग थे। उन्होंने जगह-जगह अपने उपनिवेश बसाए। ईसा से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व उनका अस्तित्व साबित होता है। ईसा से करीब तीन हजार वर्ष पहले मिश्र देश से उनके मित्रता पूर्ण सम्बन्ध थे। कुछ इतिहासकार उन्हें मिश्री मूल का ही मानते हैं। कुछ का मानना है कि वे फारस की खाड़ी से आए।

फिनीशियनों ने अनेक नए व्यापारिक मार्गों का अन्वेषण किया। वे बड़े निडर और धैर्यवान लोग थे। वे ऐसे-ऐसे स्थानों को पहुँच सके, जहाँ कोई जाने का साहस नहीं कर सकता था। मिश्र द्वारा मिली सुरक्षा में उनका व्यापार नील नदी के डेल्टा के भीतरी भागों तक पहुँच गया था। उनके निर्यात की मुख्य वस्तुएँ—देवदार, पाइन, कपड़ा कसीदाकारी की वस्तुएँ, धातु और काँच से बनी वस्तुएँ, नमक और शराब थे। आयात वे कच्चे माल का करते थे, यथा—पेपीरस घास, हाथी दांत, आबनूस, अम्बर, गर्म मसाले, सुगन्धित सामग्री (अगर आदि), घोड़े, चाँदी, ताम्बा, लोहा, रांगा, जवाहरात आदि। यह कच्चा माल अफ्रीका से आता था। तैयार माल यूनान होकर पश्चिम युरापे के देशों को जाता था।

लेबनान एक ऐसा स्थान है, जहाँ तीन महाद्वीप मिलते हैं। पूर्व में एशिया, पश्चिम में युरोप और दक्षिण में अफ्रीका। प्राचीन विश्व के मानचित्र पर यह विश्व व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र था। फिनीशियन जाति उस समस्त व्यापार की एकमात्र स्वामी थी।

---

* स्रोत— एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका खण्ड :—22-887, 22-894, 20-220-26, 26-64-2b, 24-950-1b, 28-3-2b, 20-604, 9-392-2b, 3a, 2-348-2a, 15-350-1a

इस जाति का लक्ष्य सिर्फ एक है—सम्पदा की तलाश। फिर भी इनकी प्रतिभा सभी क्षेत्रों में उजागर हुई है। इस यात्रा में ये कभी रुके नही, थके नहीं। किसी स्थान विशेष से मोह नहीं रहा। अनेक बार कुचले गए, फिर उठे और चल दिए। कई बार अस्तित्व खतरे में पड़ा लेकिन बीज इतना सबल था कि पुनः पुनः उठता रहा। संघर्षों ने इन्हें संवारा, बाधाओं ने इन्हें निखारा। इनका जीवन संघर्षों की एक लम्बी कहानी है।

परिस्थितियाँ कैसी भी हों अग्रवाल हार नहीं मानता। स्व के प्रति आस्थावान और पर के प्रति सावधान—अपने अस्तित्व को बचाए रखने का भाव इस जाति समूह में संस्कारगत है। जन्म लेकर जीते सब हैं लेकिन अग्रवालों के जीवन में एक जन्मजात दिशा है। उनमें सामान्य बुद्धि का एक सहज स्रोत है—वह स्रोत चाहे कितना ही क्षीण क्यों न हो लेकिन हर परिस्थिति में राह बता देता है। अग्रवाल सोचता कम है, झिझकता कभी नहीं, अति शीघ्र निर्णय लेकर काम शुरु कर देता है।

उन स्रोतों को बता पाना कठिन है, जिनसे अग्रवाल सूचनाएँ पाते हैं। लेकिन यह बात स्पष्ट है कि दस में से नो सूचनाएँ उनकी सही उतरती हैं। और सबसे पहले वे उन्हीं को प्राप्त होती हैं। संगठनात्मक सामर्थ्य, पूर्वानुमान लगाने की बुद्धि, जोखिम उठाने का मादा उनके विशेष गुण हैं। इतिहास के धूमिल काल से ही उन्होंने व्यापार को अपनाया। उन्होंने जन्म से ही अपने को व्यापारी पाया।

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इन विलक्षण गुणों वाले समुदाय का जन्म कहाँ हुआ? यह जाति समूह भारत में ही विकसित हुआ या बाहर से आया?

तथ्य यह है कि सशक्त बीज विषम परिस्थितियों में ही पनप सकता है। परिवेश जितना आक्रामक होगा, बीज उतना ही सबल बनेगा। भारत एक सुरम्य धरती है। इस देश की संरचना में एक अनुपम सम है। यहाँ सहज ही सब कुछ उपलब्ध है। जहाँ विशेष संघर्ष करने की स्थिति ही पैदा नहीं होती, वहाँ संघर्षों को झेलने वाला बीज पनपे—इसकी सम्भावना अति न्यून रह जाती है। अतः ज्यादा सम्भावना है कि यह पौध बाहर से आई।

अग्रवालों का पहले पहल पंजाब में पाया जाना प्रमाणित है लेकिन अग्रवाल पंजाबी मूल के नहीं हैं। इतिहास पूर्व के लम्बे काल से ही एक मार्ग उत्तर-पश्चिमी हिमालय की श्रेणियों के दर्रों में होकर सुदूर पश्चिम में भू-मध्य सागर तक बहता रहा है। अनगिनत लोग इस रास्ते से भारत आए। एक बार फिर प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि मार्ग पर किन व्यवसायप्रिय जातियों का अस्तित्व रहा, जिनके भारत पहुँचने की

सम्भावना पर विचार किया जा सकता है। यह एक जुदा बात है कि राज्य स्थापना के लिए भी अनेक दल इसी रास्ते से भारत आए।

यहूदी आदि कुछ जातियों की पृष्ठभूमि व्यवसायिक रही है। आज भी यहूदी कुशल व्यापारी हैं लेकिन यहूदी अपने धार्मिक दायरे से बहुत कम बाहर निकल पाए। उनकी धार्मिक भावना व्यवसायिक पृष्ठभूमि की तुलना में अधिक सबल है। सीरिया, जोर्डन आदि अरब देशों के व्यापारी भी अपना अच्छा दबदबा रखते थे। लेकिन इनकी राजनैतिक चेतना अधिक प्रखर थी अतः ये अपनी जमीनों को नहीं छोड़ पाए। साथ-साथ अरबी और अग्रवालों में नस्ल सम्बन्धी बहुत दूरियाँ हैं।

फिनीशियन अग्रवाल साम्य* :

इस अध्ययन क्रम में एक अन्य जाति उभरती है 'फिनीशियन'। वर्तमान लेबनान के भू-मध्यसागरीय तट प्रदेश का नाम फिनीशिया था। फिनीशियन एक सशक्त व्यवसायिक पृष्ठभूमि के लोग थे। उन्होंने जगह-जगह अपने उपनिवेश बसाए। ईसा से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व उनका अस्तित्व साबित होता है। ईसा से करीब तीन हजार वर्ष पहले मिश्र देश से उनके मित्रता पूर्ण सम्बन्ध थे। कुछ इतिहासकार उन्हें मिश्री मूल का ही मानते हैं। कुछ का मानना है कि वे फारस की खाड़ी से आए।

फिनीशियनों ने अनेक नए व्यापारिक मार्गों का अन्वेषण किया। वे बड़े निडर और धैर्यवान लोग थे। वे ऐसे-ऐसे स्थानों को पहुँच सके, जहाँ कोई जाने का साहस नहीं कर सकता था। मिश्र द्वारा मिली सुरक्षा में उनका व्यापार नील नदी के डेल्टा के भीतरी भागों तक पहुँच गया था। उनके निर्यात की मुख्य वस्तुएँ—देवदार, पाइन, कपड़ा कसीदाकारी की वस्तुएँ, धातु और काँच से बनी वस्तुएँ, नमक और शराब थे। आयात वे कच्चे माल का करते थे, यथा—पेपीरस घास, हाथी दांत, आबनूस, अम्बर, गर्म मसाले, सुगन्धित सामग्री (अगर आदि), घोड़े, चाँदी, ताम्बा, लोहा, रांगा, जवाहरात आदि। यह कच्चा माल अफ्रीका से आता था। तैयार माल यूनान होकर पश्चिम युरापे के देशों को जाता था।

लेबनान एक ऐसा स्थान है, जहाँ तीन महाद्वीप मिलते हैं। पूर्व में एशिया, पश्चिम में युरोप और दक्षिण में अफ्रीका। प्राचीन विश्व के मानचित्र पर यह विश्व व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र था। फिनीशियन जाति उस समस्त व्यापार की एकमात्र स्वामी थी।

---

* स्रोत—एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका खण्ड:—22-887, 22-894, 20-220-26, 26-

अरबी कारवां व्यापारी इन फिनीशियनो के दलाल थे। भारत के साथ भी खुश्की रास्ते से इनके व्यापार-सूत्र जुड़े हुए थे। अरबी व्यापारियों के मारवाड़ के पाली शहर तक पहुँचने के प्रमाण हैं।

फिनीशियनो का पैतृक नगर अगेरित (Ugarit) उनका सांस्कृतिक केन्द्र भी था। उसके अतिरिक्त भू-मध्यसागर के पूर्वी किनारे के सहारे बाईब्लोस, सिडोन, टायर नाम से नगर राज्य भी थे। शासन गणराज्य पद्धति पर आधारित था। राजा चुना जाता था लेकिन फिनीशियन व्यापारिक घराने इतने सशक्त थे कि वे राजा पर अंकुश रखते थे। फिनीशियन किसी संघीय राज की स्थापना तो नहीं कर पाए क्योंकि उनमें राजनैतिक चेतना का नितान्त अभाव था। मूल रूप से वे व्यापारी ही थे।

ईसा की तेरहवीं सदी पूर्व अगेरित नगर समुद्री और स्थली हमलावारों द्वारा नष्ट कर दिया गया। बाईब्लोस को भी तहसनहस कर दिया गया। सिडोन नगर अंशतः जला दिया गया। वहाँ के निवासी 'टायर' नगर को भाग गए। 'टायर' फिनीशियनो का बड़ा केन्द्र बना। एक बार फिर यह जाति सम्भली। उत्तरी अफ्रीका के एक बड़े नगर राज्य कारथेज होते हुए वे स्पेन की चाँदी और ताम्बे की खानों तक पहुँचने में सफल हुए।

ईसा पूर्व 868 : फिनीशिया पर असीरिया का अधिकार हो गया। फिनीशियनो के साथ असीरियावासियों का व्यवहार बड़ा क्रूर रहा। ईसा पूर्व 538 में फिनीशिया पर ईरानी काबिज हो गए। फिनीशियनो ने असीरिया के विरुद्ध ईरानियों की मदद की थी क्योंकि इरानी अपेक्षाकृत उदार थे। ईसा की तीसरी सदी पूर्व कारथेज पर रोमनों का हमला हुआ। उन्होंने फिनीशिया की मुख्य भूमि को भी रौंदा। ईसा पूर्व 146 में कारथेज पूरी तरह से नष्ट कर दिया गया। अतः पश्चिमी देशों की तरफ उनके निकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

ईसा पूर्व 332 में यूनानियों ने भी फिनीशिया पर हमला किया। उन्होंने फिनीशिया को पूरी तरह कुचला। इनके स्त्री-बच्चों को गुलामों की तरह बेचा गया। व्यवसायिक पृष्ठभूमि वाली एक पुरुषार्थी कौम समूल रूप से नष्ट होने के कगार पर आ गई। लेकिन प्रकृति किसी बीज को शीघ्रता से नष्ट नहीं होने देती। सम्भवतः बच पाने की आशा में इनका एक दल पूर्व की ओर मुखातिब हुआ। ईरान से इनके अच्छे सम्बन्ध थे। यह दल बलुचिस्तान व अफगानिस्तान के रास्ते पंजाब पहुँचने में सफल हुआ। यह उस

पंजाब में इस समूह को जमने में बहुत मेहनत करनी पड़ी। विवाह आदि में भी कठिनाइयाँ आई। उस जमाने में जातिगत तालमेल बैठा पाना भी एक टेढ़ी खीर थी। लेकिन परिस्थितियों के अनुकूल अपने आपको ढाल लेने की इस जाति में अद्भुत क्षमता है। धीरे-धीरे ये लोग भारतीय परिवेश में रम गये। लेकिन तब तक पंजाब की परिस्थितियाँ बदलने लगी थी। इस्लाम का प्रादुर्भाव हो चुका था। गजनवियों के हमले शुरु हो गए। इन अग्रपुरुषों को पंजाब छोड़ने को बाध्य होना पड़ा। वे हरियाणा में उतर आए। नीड़ का निर्माण फिर फिर की तर्ज पर उन्होंने अग्रोहा शहर बसाया। निःसन्देह अग्रवाल सिकन्दर के अग्रसर थे।

इन अग्र पुरुषों के सामने उस वक्त धर्म के दो विकल्प थे। हिन्दू परम्परा में सनातन धारा तथा जैन धर्म। जिसको जो भाया वही अपना लिया। शेष जातियों की तरह जातिगत ढाँचे की भी इन लोगों को आवश्यकता महसूस हुई। विवाह आदि सम्बन्धों के लिए जाति आधार पर वर्गीकरण जरूरी भी था। कुछ जातियाँ स्थानों के नाम पर बनी कुछ उन व्यवसायों के जो वे करते थे। अग्रवालों का वर्तमान जातीय ताना-बाना पाँच सौ वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। लेकिन जाने-अनजाने अग्रवाल अपनी नस्ल की शुद्धता को बनाए रखने में सफल रहे।

कालान्तर में अग्रोहा पर भी दबाव बढ़ा। वह स्थान भी अग्रवालों को छोड़ना पड़ा। अग्रोहा में हुए उत्खननों में जगह-जगह आग लगने के चिह्न मिले हैं। युनान सहित अनेक युरोपीय देशों के सिक्के मिले हैं। ऐसा लगता है तब तक उनके व्यापारिक सम्बन्ध युनान आदि देशों से बने हुए थे। सुरक्षा की तलाश में अग्रवाल राजस्थान की मरुभूमि में उतर आए तथा शेखावाटी अंचल में बसने को विवश हुए। यहाँ उन्हें काफी कुछ निश्चिन्तता मिली। यद्यपि शेखावाटी का प्रशासनिक ढाँचा ठीक नहीं था, अनेक जमीदार स्वयं चोरी और डकैती को प्रोत्साहन देते थे लेकिन तब तक ऐसी छोटी-मोटी बाधाओं का सामना करना अग्रवालों ने सीख लिया था।

विकास की फिर एक यात्रा शुरु हुई। गंगा घाटी तथा दोआब के नगरों में अग्रवालों ने अपना व्यापार जमाया। उसके बाद वे सुदूर पूर्व में बढ़े। दक्षिण में भी पहुँचे। भारत असीमित सम्भावनाओं का देश है। धीरे-धीरे देश के प्रत्येक कोने में यह जाति समूह फैल गया। आज स्थिति यह है कि देश के आधे से अधिक पूँजीस्रोत इस समुदाय के हाथों में है।

अपनी अर्जित सम्पत्ति के बल पर यह कौम अन्य महाजन कौमों से जुड़ गई। ओसवाल, माहेश्वरी, सरावगी आदि महाजन जातियाँ क्षत्रिय मूल की हैं। अग्रवाल जाति का

आधार पौराणिक तो है लेकिन इनकी पौराणिकता भू-मध्य सागर के पूर्वी तट से जुड़ी हुई है। ईसा पूर्व दसवीं शताब्दी के मध्य दशकों में इस जाति के एक प्रमुख शहर टायर के शासक हिरोन के यहूदियों के प्रसिद्ध राजा सोलोमन से निकट के सम्बन्ध थे। मिश्र के फराहों से भी इस जाति के अच्छे सम्बन्ध रहे हैं।

अगेरित, अग्रिप्पा, बॉल आदि शब्द फिनीशियनों की पौराणिक पहचान है। अगेरित नगर इस जाति का मुख्य केन्द्र था। अग्रिप्पा पुराण पुरुष हुए हैं, जिन्होंने अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया। 'बॉल' इनकी कुल देवियों में से एक थी, जिसका नाम इस जाति का प्रत्येक व्यक्ति अपने नाम के साथ जोड़े रखता था। इन शब्दों का अग्रवाल शब्द से ध्वनि साम्य है। यह साम्य महज आकस्मिक या संयोग मानकर नकारा नहीं जा सकता है। इसकी जड़ें गहरे में पौराणिक हैं। फीनिशियनों से अग्रवालों का नस्ल साम्य भी लक्षित होता है।

सीरिया के भू-मध्यसागरीय तट पर 'रास समरा' नामक स्थान पर फ्रांस के पुरातत्व विभाग द्वारा कुछ उत्खनन कार्य हुआ है। उसमें अगेरित नगर के अवशेष मिले हैं। वहाँ से प्राप्त शिलालेखों पर काव्यमय आलेख है। उनमें योद्धाओं और पुराण पुरुषों की शौर्य गाथाएँ अंकित हैं। इन शिलालेखों से उस समय की धार्मिक परम्पराओं पर भी प्रकाश पड़ता है।

अगेरित आदि फिनीशियन नगर न केवल व्यापार के बड़े केन्द्र थे बल्कि वहाँ व्यापारिक संस्कृति का एक महा दरिया बहा, जो शाखाओं में विभक्त होकर अनेक दिशाओं में पहुँचा। भारत के अग्रवाल भी उन शाखाओं में से एक के प्रतिनिधि बने। फिनीशियाई मूल के ये लोग मात्र फेरी वाले (Peddlers) नहीं थे, एक संस्कृति के वाहक थे। युनान सहित कई देशों ने इनकी नाप-तोल की पद्धति को अपनाया। कुछ परिवर्तनों के साथ इनकी वर्णमाला को अंगीकार किया। इन अग्र-पुरुषों का इतिहास करीब पांच हजार वर्ष पुराना है। करीब-करीब इतना ही इनका व्यापारिक अनुभव है। इस लम्बी अवधि में इन्होंने जो अन्तर्दृष्टि विकसित की है वह इनकी अमूल्य निधि है। यह पीढ़ियों तक इनकी रक्षा करती रहेगी।

अग्रवालों को सदैव ही अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़नी पड़ी। नतीजतन विषम परिस्थितियों में अपने आपको बचा पाने की सहज बुद्धि (इन्टेलीजेन्स) उनमें सन्तोषजनक रूप में विकसित हो पाई। यही कारण की अग्रवाल विषम से विषम परिस्थितियों में मार्ग ढूँढ लेते हैं। अग्रवाल गति से सदैव जुड़े रहे।

अग्रवाल जाति के सम्बन्ध में यह मात्र मेरी धारण है। मैंने एक विचार वीथि खोली है। इस दिशा में और अधिक क्रमबद्ध अध्ययन की आवश्यकता है। यह अध्ययन शोध की सम्भावनाओं से भरा पड़ा है। भारत में बसे हुए इस समूह को दो हजार वर्ष से अधिक हो गए हैं। इन्हें पाकर भारत अधिक समृद्ध बना है—ऐसा मेरा मानना है।

मैं नहीं कह सकता कि फिनीशियनो से शुरु करके मैं अग्रवालों तक पहुँचा हूँ या कि अग्रबालों से फिनीशिया तक। फिर भी इन दोनों में मुझे घनिष्ठ सम्बन्ध लगता है। एक छोर पर 'अगेरित' है, दूसरे पर 'अग्ररोहा'। नींव में अग्रप्पा विराजित हैं तो शिखर पर अग्रसेन।

लाडनूं शहर में अग्रवाल एक लम्बे समय से निवास कर रहे हैं। संवत् 1866 की बही में इस कस्बे में इस जाति के 16 घरों का वास होना साबित है। आज शहर में इनके परिवारों की संख्या लगभग 150 है। इस शहर में इस जाति में काफी ख्याति प्रास पुरुष हुए हैं। स्व. लक्ष्मीनारायणजी बड़े आदर्श श्रेष्ठि पुरुष थे। उन्होंने अनेक जनोपयोगी कार्य सम्पन्न करवाए। वर्तमान में श्री श्यामसुन्दर अग्रवाल शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी रुचि रखते हैं। समाज सेवा क्षेत्र में वे अनेक बार सम्मानित हो चुके हैं। स्थानीय गौशाला के वे मुख्य ट्रस्टी हैं।

राजपूत :

जोधा राजपूतों के करीब दस घर लाडनूं में आबाद हैं। विदित रहे लाडनूं पर राठौड़ जोधाओं का ही राज था। गौड़ राजपूतों का एक घर अब अलग-अलग परिवारों में बंट गया है। कुछ परिवार बाहर से आकर बसे हैं। इस वक्त इस जाति के करीब 25 परिवार इस शहर में आबाद हैं।

कायमखानी :

एक मार्शल कौम है। कायमखानियों की मलवाण शाखा के ताजूखाँ और नाजूखाँ गगवाणा (अजमेर के पास) नामक स्थान पर हुई लड़ाई में काम आए थे। वे बरड़वा के रहने वाले थे। उस समय नागौर पर महाराजा बख्तसिंह का अधिकार था। उन्होंने सरकटी के एवज में इन दोनों भाइयों के परिवारों को लाडनूं में 975 बीघा जमीन बतौर बाढ़ेती तथा 80 बीघा आवास खातिर व 12 बीघा कब्रीस्तान के लिए इनायत की थी। गगवाणा के कब्रीस्तान में इन दोनों भाइयों की कब्रों पर चबूतरे बने हुए हैं। यह घटना वि. संवत् 1797 चेत बदी 3 में घटी थी। इनके बाद कायमखानियों की अन्य शाखाएँ लाडनूं में बसीं। लाडनूं के

बड़ा बास के असरफ खाँ मुसरफ खाँ को भी 400 बीघा जमीन सिर कटी में ही मिली। इस जमीन पर उन्होंने सुलवाई नाम की नाडी बनवाई जो आज भी मौजूद है। पायली गाँव के सकरू खाँ मलवाण की बेटी शाहजहाँ बानो संवत् 1788 में लाडनू में सती हुई। उनके पति इमामदीन खाँ घाणेराव की लड़ाई में काम आए थे। इस समय लाडनू में कामयाखनियों के करीब 1400 घर आबाद हैं।

मोहिल :

पूरी पुस्तक का एक बड़ा भाग मोहिळ वंश को समर्पित है। जिस मोहल्ले में मोहिल रहते हैं उसे बड़ा बास नाम से पुकारा जाता है। उनकी पोळ को बड़ी पोळ का दर्जा प्राप्त है। यह सब इस कौम के विशेष सम्मान का परिचायक है। इस वक्त शहर में इनके परिवारों की संख्या करीब 400 है। इतनी बड़ी संख्या राजस्थान के किसी अन्य शहर में इनकी नहीं है।

राइका :

सामन्ती शासन व्यवस्था में राइका एक विशेष पहचान वाली जमात थी। ये लोग ऊँट पालने का काम करते थे। जमीदार ठिकाणों के सन्देशवाहक भी थे। ऊँटों के टोळों के साथ चारे की तलाश में दूर-दूर तक घूमते रहते थे। मारवाड़ की संस्कृति इनकी रग-रग में समा गई थी। ये उसके अच्छे वाहक थे।

बणजारा :

लाडनू में बनजारे नहीं बसते लेकिन आते जाते रहते हैं। यहाँ के सामाजिक जीवन से वे जुड़े हुए हैं। पास के एक गाँव निम्बी (जोधां) में उनके करीब बीस परिवार आबाद हैं। घरों में दैनिक उपयोग में आने वाला प्राय: सभी तरह का सामान, यथा—मिर्च मसाले, सूखे मेवे, लौंग, काली मिर्च आदि बेचते रहते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही काम में लगे रहते हैं।

रावणा राजपूत :

ये लोग राजपूत मूल के हैं। इनकी अनेक शाखाएँ हैं, यथा—चौहान, भाटी, राठौड़, बड़गूजर, जेतमाल, नरुका आदि। भाटी शाखा ठा. पदमसिंह जी के शासन काल में लाडनू आई। जागीरदार ठिकाणे से इस समुदाय का निकट का सम्बन्ध रहा। सामन्ती युग से जुड़ी हुई सभी जातियों के परम्परागत आधार समाप्त हो गए हैं। इस तरह के सभी समुदायों ने अपनी नई पहचान उभार ली है। सब धन्धों के द्वार अब सबके लिए खुले हैं। यथा—योग्यता सब अपना-अपना चयन कर रहे हैं। वर्तमान में लाडनू शहर [illegible] जाति के परिवारों की संख्या [illegible] भग 200 हैं।

भाटी :

ठाकुर पदमसिंह के कार्यकाल से लाडनूं के भाटियों का इतिहास जुड़ा हुआ है। जैसलमेर से एक भाटी परिवार जिसके मुखिया मेहताबसिंह थे, मारवाड़ आया। मेहताबसिंह के गोद पुत्र भोजराज थे। भोजराज के पिता का नाम सहसमल था। सहसमल जैसा भाटी थे। इसी जैसा वंश के अग्र पुरुष जैसल ने जैसलमेर बसाया था। इस भाटी परिवार को जोधपुर महाराजा की तरफ से जोधपुर जिले में आसोप के पास आसावरी गांव में छः सौ बीघा जमीन इनायत हुई। भाटी भोजराज महत्त्वाकांक्षी थे। उन्होंने उहड़ राठौड़ों से भावण्डा गाँव छीन लिया। उनका हौसला और बढ़ा और अपने पड़ौसी अन्य खांप के भाटी सरदारों से किसी बात पर उलझ पड़े। भोजराज के परिवार वालों की संख्या कम थी। कुछ मारकाट हुई। भोजराज काम आए। उनके पुत्र उदयसिंह घायल हो गए।

घायल उदयसिंह भावण्डा गाँव उदक कर अपने परिवार के साथ आश्रय की तलाश में कसूम्बी गाँव पहुँचे। कसूम्बी सीमा का गाँव था अतः विशेष विपत्ति पड़ने पर सीमा पार कर दूसरी रियासत में पहुँचा जा सकता था। भोजराज के विरोधी पक्ष के भाटी किसी रिश्ते से जोधपुर महाराजा से जुड़े हुए थे। मामला दरबार के पास पहुँचा। जोधपुर महाराजा कुपित हुए। जोधपुर के सैनिकों ने उदयसिंह भाटी का पीछा किया। कसूम्बी ठिकाणे ने भाटी परिवार को आश्रय दिया। जोधपुर के सैनिक पीछा करते हुए कसूम्बी पहुँच गए। कसूम्बी ठिकाणे को पहले से भनक पड़ गई थी अतः उदयसिंह के पुत्र मानसिंह अपने पुत्र बिशनसिंह तथा परिवार को लेकर लाडनूं चले गए। लाडनूं पर उस समय ठाकुर पदमसिंह काबिज थे। पदमसिंह ने कुशल योद्धा समझकर परिवार की सुरक्षा का वादा कर लिया। संयोग से उस समय ठाकुर पदमसिंह के विवाह का आयोजन था। उगरास के खंगारोतों के यहाँ बारात जानी थी। पदमसिंह बिशनसिंह भाटी को अपने साथ बारात में ले गए।

पता लगाते-लगाते जोधपुर के सैनिक उगरास पहुँच गए। रंग में भंग पड़ता दीखा। राजपूतों ने सलाह मशविरा किया। जोधपुर सैनिकों का सामना करना सम्भव नहीं था, साथ-साथ भाटी परिवार की रक्षा करनी भी जरूरी थी। सैनिकों को बताया गया कि उनके पास भाटी परिवार का कोई सदस्य नहीं है। बिशनसिंह को उन्होंने दायजवाल बताकर उसकी प्राणरक्षा की। जोधपुर सैनिक तो चले गए लेकिन आपात काल मर्यादा नास्ते वाली कहावत चरितार्थ हुई। उसी दिन से वरीयताक्रम में भाटी परिवार पिछड़ गया।

भाटी ठाकुर भोजराज की वंश परम्परा में क्रमशः उदयसिंह, मानसिंह, बिशनसिंह, खुमाणसिंह, ज्ञानसिंह, जोरावरसिंह, रघुनाथसिंह हुए। रघुनाथसिंह की सन्तान इस समय लाडनूं में है। रघुनाथसिंह के एक भाई पूस जी की सन्तान लादूसिंह की परम्परा में भंवरसिंह आदि जयपुर रहते हैं।

चारण :

दो सौ वर्ष पुरानी ठिकाणे की बही में इस जाति के पाँच घर लाडनूं में बसे होने का उल्लेख है। सम्भवतः ये सामोर शाखा के चारण थे। प्रसिद्ध कवि तेजा सामोर के पुत्र जसुदान को राव जयसिंह मोहिल ने 1500 बीघा जमीन दान में दी थी। इस समय इस जाति के बीस परिवार लाडनूं में आबाद हैं। चारण काव्य साधना से जुड़ी हुई एक स्वाभिमानी जमात रही है। सामन्ती युगीन अन्य जातियों की तरह यह जाति भी वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में अपना स्थान बनाने में लगी हुई है। पड़ौस के गाँव मालासी व गोरेड़ी में इस जाति के परिवारों की संख्या काफी है। मालासी गाँव तो चारणों का जागीरदारी गाँव रहा है।

राजपुरोहित :

लाडनूं ठिकाणे की पुरोहित वृत्ति से जुड़ा हुआ सिर्फ एक परिवार अपनी अच्छी पहचान बनाए हुए है। सम्भवतः यह परिवार संवत् 1866 के बाद ही इस कस्बे में आकर बसा क्योंकि ठिकाणे की उस वर्ष की बही में किसी भी राजपुरोहत परिवार का उल्लेख नहीं है। यह परिवार दूसरी पट्टी में अपने पुश्तेनी भवन में आबाद है। इसी परिवार के श्री मन्नालाल पुरोहित एक विद्वान् और लाडनूं के इतिहास में रुचि रखने वाले व्यक्ति हैं। लाडनूं के इतिहास के सम्बन्ध में उनकी अवधारणाएँ काफी महत्त्व रखती हैं। इन वर्षों में इस जाति का एक-आध परिवार बाहर से आकर भी लाडनूं में बसा है।

काजी :

अपने आपको ईरानी मूल का मानते हैं और अपना सम्बन्ध ईरान के हमदान शहर से जोड़ते हैं। इस कोम का इस शहर से करीब एक हजार वर्ष का सरोकार है। गाजी उमरशाह से ये अपना रिश्ता जताते हैं। नागौर के हमीदुद्दीन सव्वाली के सूफी घराने से भी इनका निकट का सम्बन्ध रहा—ऐसा इनका मानना है। दिल्ली के सल्तनत काल व बादशाहत के दौरान सम्भवतः ये लोग इस कस्बे की न्याय-व्यवस्था से जुड़े हुए थे। काजियों की पोळ इनके बड़े रुतबे की पहचान है। वर्तमान में इनके करीब चालीस परिवार इस शहर में आबाद हैं। वि. संवत् 1866 की बही में इस कस्बे में उनके

सिर्फ तीन परिवार होने का सबूत है। ठिकाणे की तरफ से काफी जमीनें भी इन्होंने प्राप्त की। को नृप होउ हमें का हानि की तर्ज पर ये लाडनूं ठिकाणे से जुड़े रहे, साथ ही साथ शहर की मस्जिदों का भी कामकाज देखते रहे। शहर काजी जैसे ओहदे के ये एकमात्र हकदार हैं।

इस जमात के अग्रपुरुष हजरत काजी फुजैल हमदानी पहले पहल भारत आए, जो हजरत अली की 14वीं पीढ़ी में थे। वर्तमान शहरकाजी हजरत मौहम्मद अयूब 39वीं पीढ़ी में हैं। हजरत मौहम्मद अयूब मजहबी तालीम में मुल्क के माने हुए शख्स हैं।

साध (स्वामी) :

इस जाति के परिवारों की संख्या शहर में करीब दस हैं। ये धनावंशी, परसवंशी आदि वर्गों में बंटे हुए हैं। कृषि कर्म इनकी आजीविका का मुख्य आधार है। सरकारी नौकरियों में भी अपना स्थान बनाने में ये सफल हुए हैं। इस जाति में भी जाट मूल के लोग अधिक हैं।

नाई :

यह भी क्षत्रिय मूल का एक वृत्तिपेशा समुदाय है। विवाह आदि आयोजनों पर भोजन बनाने का काम भी ये करते हैं। आजकल ये अनेक अन्य धन्धों में जाने लगे हैं। यह वाक चतुर और व्यवहार कुशल जमात है। पढ़-लिखकर राजकीय सेवाओं में भी अच्छा स्थान बनाने में सफल रहे हैं। संवत् 1866 की ठिकाणे की बही में इनके आठ घर इस कस्बे में बसे होने का उल्लेख है। वर्तमान में इस शहर में इस जाति के परिवारों की संख्या लगभग 150 है।

मेघवाल :

एक सरल स्वभाव की सीधी सादी कौम है। इस जाति की नैतिकता सदैव से ही विश्वसनीय रही है। आज से करीब दो सौ वर्ष पहले इस कस्बे में इस जाति के पच्चीस घर आबाद थे। आज इनके परिवारों की संख्या करीब 70 है। पुराने जमाने में ये लोग मरे हुए पशुओं की खाल उतारने, कपड़ा बुनने, गाँव सफाई आदि धंधों से जुड़े हुए थे। अब ये सभी धंधे इन्होंने छोड़ दिए हैं। शारीरिक श्रम और मजदूरी के सहारे ये अपना गुजर-बसर कर रहे हैं। यह जाति भाम्बी और मेघवाल नामों से भी पुकारी जाती है। राजस्थान विधानसभा में भी इस जाति के विधायकों की संख्या अच्छी रहती है। सरकारी नौकरियों में आरक्षण का लाभ भी इन्होंने समझदारी से उठाया है।

नायक :

इस जाति के करीब पचास परिवार लाडनू में आबाद हैं। सरकण्डे की तीलियों से खारियाँ (चारा भरने की नांद), छाज आदि बनाने का धन्धा इनका पुश्तैनी काम था। जमीदार ठिकाणों से ये सम्बन्ध बनाए रखते थे। इनकी नैतिकता पर अनेक बार प्रश्न चिह्न लगे। इनमें शराब का व्यसन ज्यादा फैल रहा है। औरतें खेती के धन्धों में मजदूरी तलाश लेती हैं। ये अपने आपको लोकदेवता पाबूजी के अनुयायी मानते हैं।

जोतगी :

इस जाति के करीब 60 परिवार लाडनू में आबाद हैं। इस जाति के परम्परागत आर्थिक आधार भी छिन्न-भिन्न हो गए हैं। अधिकतर परिवार बीड़ी बांधने का काम करते हैं। कुछ परिवारों ने देश के महानगरों में काम तलाश लिए हैं। ये अपने आपको शनि देव के उपासक मानते हैं।

भाट :

एक पुरानी बही के अनुसार दो सौ वर्ष पहले इस कस्बे में इनके परिवारों की संख्या चार थी। आज भी वे ही परिवार आबाद है। अपनी पुश्तैनी वृत्ति से इनका गुजर बसर सम्भव नहीं। मजदूरी सम्बन्धी कुछ अन्य धन्धे इन्होंने अपना लिए हैं।

मणिहार :

इस जाति के करीब बीस परिवार शहर में आबाद हैं। ये लाख की चूड़ियाँ बनाने के धन्धे से जुड़े हुए हैं। कुछ परिवार अपनी पहचान मुगल नाम से भी करते हैं। इनके जातिगत शिष्टाचार की अलग पहचान है। आजकल आजीविका के अन्य धन्धे भी ये तलाशने लगे हैं। शहर में एक घर हिन्दू मणिहार का भी है।

खटीक :

प्रारम्भ में यह जाति देशी शराब बनाने के धंधे से जुड़ी हुई थी। इसी कारण इस जाति की कलाळ नाम से पहचान उभरी। वर्तमान में इस जाति के अधिकतर लोग फेरी के धंधे से जुड़े हुए हैं। कुछ अच्छी राजकीय सेवाएँ प्राप्त करने में भी सफल रहे हैं। शहर में इस जाति के करीब 30 परिवार आबाद हैं।

तेली :

पुराने जमाने में तिलों से तेल निकालने का धन्धा एक बड़ा घरेलू उद्योग माना जाता था। तेलियों की घाणियों की तादाद पर किसी गाँव या कस्बे की माली हालत

का अनुमान लगा लिया जाता था। दो सौ वर्ष पहले से ही कस्बे में तेलियों के मोहल्ले की अलग से पहचान रही है। उस समय इनके दस घर यहाँ आबाद थे। वर्तमान में इस जाति के करीब 150 घर इस शहर में हैं और एक पूरी सड़क ही उनके नाम से जानी जाती है।

सब्जी फरोश :

इस शहर में मुसलमान सब्जी फरोशों के करीब 40 परिवार आबाद हैं। शहर में फलों और सब्जियों की आपूर्ति ये लोग बखूबी करते रहते हैं। साथ-साथ उनके भावों में सन्तुलन भी बनाए रखते हैं। यह एक व्यावसायिक जमात है।

शोरगर :

ये लोग बारूद का काम करते थे। अब यह काम समाप्त हो गया है। कस्बे में इनके घरों की संख्या इस समय करीब 15 है। कुछ समय तक इन्होंने पलदारी का भी काम किया अब वह भी छोड़ दिया है। अधिकतर लोग अरब देशों में जाने लगे हैं तथा राजगीर आदि दूसरे धन्धों से जुड़ गए हैं।

बोपारी :

कसाई जाति को ही बोपारी कहते हैं। कुछ परिवार अपनी पहचान कुरेशी नाम से करते हैं। दो सौ साल पहले इस शहर में सिर्फ एक घर इस कौम का था। आज उनकी संख्या करीब 150 है। पिन्दारों का सिर्फ एक घर कस्बे में आबाद था, आज करीब पच्चीस परिवार हैं। बोपारी और पिन्दारे समान मूल के हैं।

बिसायती :

यह भी एक बाहर से आई हुई जमात है। ये हमेशा से ही फेरी का काम करते आए हैं और घुमक्कड़ स्वभाव के हैं। इनके करीब 125 घर इस शहर में आबाद हैं।

निवारिया :

इनके करीब 10 परिवार शहर में हैं। इनका काम सोने-चाँदी के पुराने आभूषणों को गलाकर शुद्ध सोने व चाँदी में तब्दील करना है। अब यह काम मराठा जाति के कुछ परिवार करते हैं, जो महाराष्ट्र से आकर यहाँ बस गए हैं। ऐसे परिवारों की संख्या 4 है।

धोबी :

दो सौ साल पहले इस कस्बे में धोबियों के घरों की संख्या तीन थी। आज दस से अधिक नहीं है। इस जमात में हिन्दू मुसलमान दोनों ही सम्प्रदाय के लोग हैं।

किसी जमाने में मिरासी, भगत आदि भी इस शहर में बसते थे। भक्तों का अलग से मोहल्ला पहचाना जाता था, जहाँ गाइकाओं की मोहक ताने गूंजती रहती थीं लेकिन कालचक्र ने सबको रोंद डाला। जातियों की पहचान तो अभी भी कायम है लेकिन जातिगत धंधों के नीचे से यथार्थ की जमीन खिसक गई है।

अळाया :

इस जाति के करीब तीस परिवार यहाँ आबाद हैं। यह जमात बेण्ड बाजे का रोजगार करती आई है। इनके घर की औरतें दाई का काम किया करती थीं। कुछ आज भी करती हैं। यह एक वृतिपेशा समुदाय रहा है। अब ये अपने स्वतंत्र धन्धे करने लगे हैं।

सांई : परिवारों की संख्या शहर में करीब चालीस है। यह एक याचक समुदाय था। अब अपने स्वतंत्र धन्धे करने लगे हैं। दो सौ वर्ष पुरानी बही में इनके सिर्फ एक परिवार का लाडनू में बसना लक्षित है।

ढ़ोली :

यह भी एक वृत्तिपेशा समुदाय रहा है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर ढ़ोल के साथ अनेक आयोजन होते थे। इस कोम की गिनती गायक कौमों में रही है। इनका शकुन माना जाता था तथा घर में इनका आना शुभ का संकेत था। अब पुरानी वृत्तियों के साथ-साथ ढ़ोली परम्परा भी समाप्त हो रही है। ढ़ोली भी अपना आर्थिक समाधान अन्य धन्धों में खोजने को विवश हैं। एक मोहक सांस्कृतिक परम्परा लुप्त होने के कगार पर है।

मोची :

मुसलमान मोचियों के करीब 20 घर यहाँ आबाद हैं। हिन्दू मोचियों की वर्तमान बाजार में उत्तर में एक पूरी बस्ती थी। अब सब हिन्दू मोची लुधियाना आदि बड़े शहरों में चले गए हैं।

रेगर :

यह जाति पशुओं की खालों का व्यवसाय करती आई है। देशी जूते बनाने का काम भी करती आई है। इस जाति के कुछ लोग बड़े नगरों को भी चले गए हैं। कुछ पढ़-लिखकर सरकारी नौकरियों में भी स्थान बना चुके हैं। शहर में रेगरों का एक पूरा मोहल्ला है। इनके परिवारों की संख्या करीब दो सौ है।

हरिजन (मेहत्तर) :

इस जाति के अधिकतर लोग स्थानीय नगरपालिका में सफाई कर्मचारियों के रूप में सेवारत हैं। कुछ ने रेलवे आदि की नौकरियां तलाश ली हैं। कुछ लोग स्थानीय अस्पतालों तथा नर्सिंग होमों में जगह बना चुके हैं। कुछ परिवारों ने शिक्षित होकर आरक्षण का लाभ भी उठाया है। कुल मिलाकर इस कौम के पास आजीविका की समस्या नहीं है। यह कौम मुख्य रूप से वृत्ति पेशा रही है। इनका शहर में अलग से मोहल्ला है। शहर में इनके घरों की संख्या करीब 200 है।

पुरानी वर्ण-व्यवस्था के टिके रहने का कोई आधार नहीं रह गया था। सबसे बड़ी समस्या खड़ी हो गई थी आजीविका की। वैदिक कालीन समाज का ताना-बाना बिखर गया था। क्षत्रिय वैश्य बनने को विवश हुए। कुछ ने पेशेपरक समुदायों में आश्रय ढूँढ़ लिया। यही कारण है कि राजगीर, घांची, माली, दर्जी, नाई आदि वृत्तिप्रधान जातियों के शासन क्षत्रिय मूल के हैं, यथा—भाटी, टाक, तंवर, पंवार आदि।

परिस्थितियाँ एक बार फिर बदल गई हैं। धन्धों पर किसी व्यक्ति या जाति-विशेष का कोई अधिकार नहीं। मात्र जाति के सहारे अब आजीविका का पा लेना कठिन है। अतः धन्धे की तलाश जातिगत दायरों के बाहर करने की आवश्यकता आ पड़ी है। बहुत से परम्परागत धन्धे तो समास प्रायः ही हो गए हैं। एक नई तलाश शुरु हुई है। यह सामान्य तलाश नहीं है, पुरुषार्थ का सर्वोच्च माँगती है। आदमी यदि थका नहीं तो नए द्वार खुलेंगे। थक गया तो आपस की छीना-झपटी में समास हो जाएगा।

III

प्राचीन शहर के समकालीन कुछ प्रसिद्ध कस्बे

डीडवाना, खाटू, मारोठ, नागौर आदि कस्बों की प्राचीनता करीब-करीब लाडनू जितनी ही है। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि नगरों से तो ये कस्बे बहुत पुराने हैं। उदयपुर, अजमेर आदि से भी ये कस्बे बहुत पहले ही अस्तित्व में आ गए थे। इन शहर या कस्बों की राजस्थानी संस्कृति को अमूल्य देन है। लाडनू से सम्बन्ध रखने वाले कुछ कस्बों की जानकारी यहाँ दी जा रही है—

डीडवाना :

गुर्जर प्रदेश का एक प्रमुख शहर रहा है। सम्भवतः यह डाहलियों के अधिकार में भी रहा। यह शहर हिन्दू और जैन दोनों ही धर्मों का केन्द्र रह चुका है। ईसा की दसवीं

शताब्दी में जैन सन्त जिनेश्वर सूरि ने डीडवाना में 'कथाकोष' की रचना की। विख्यात जैन विद्वान हेमचन्द्र सूरि के गुरु श्रीदत्त सूरि ने डीडवाना के शासक यशोभद्र को उपदेश दिया था। यशोभद्र ने "चौबीसा हिमालय' के नाम से एक प्रसिद्ध जैन मन्दिर का निर्माण करवाया। इस मन्दिर का अस्तित्व ई. सन् 1184 तक रहा। जैन आचार्य सिद्धसेन सूरि द्वारा लिखित 'सकल तीर्थ माला' में डीडवाना का उल्लेख है।

माहेश्वरी समाज का भी डीडवाना एक बड़ा केन्द्र रहा है। यहाँ निरंजनी, साधुओं का बड़ा मठ भी है। विष्णु आदि की अनेक प्राचीन मूर्तियाँ यहाँ प्राप्त हुई हैं। इसके पड़ोसी गाँव 'दौलतपुरा' में भी प्राचीन शिलालेख व ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं। एक ताम्रपत्र तो वि. संवत् 900 का है। मुसलमान शासक भी यहाँ करीब पांच सौ वर्षों तक काबिज रहे।

खाटू :

चौहानकाल के प्रारम्भ से ही खाटू एक समृद्ध ऐतिहासिक स्थान रहा है। अजमेर से इस कस्बे का घनिष्ठ सम्बन्ध था। 'पृथ्वीराज रासो' में भी इस शहर का अनेक बार उल्लेख आया है। पृथ्वीराज स्वयं खाटू वन में शिकार खेलने आते थे। इतिहास के प्रारम्भिक काल में डाहलियों का भी यहाँ राज रहा। कुछ इतिहासकार खाटू को पृथ्वीराज की ननिहाल मानते हैं। मगरबी शाखा के सूफी सन्तों का भी यह प्रमुख केन्द्र था।

यहाँ से भी अनेक प्राचीन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। नाथों के मठ में ये मूर्तियाँ आज भी सुरक्षित हैं। सात घोड़ों पर सवार सूर्य की मूर्ति, महिषासुर मर्दिनी दुर्गा की मूर्ति, कुबेर तथा अन्य मूर्तियाँ हैं। कुछ रतिरत मूर्तियाँ भी हैं। एक फलक बौद्ध मूर्तियों का भी प्राप्त हुआ है।

मारोठ :

राजस्थान में दुल्हे की निकासी के अवसर पर दुल्हे की घोड़ी को इंगित करते हुए महिलाएँ एक मंगल गीत गाती हैं— "तेजण छै मारोठ री"। इसके अतिरिक्त वर पक्ष के रात्रिगीतों में 'तेजण' नाम की इस घोड़ी के सम्बन्ध में अनेक गीत गाए जाते हैं। 'तेजण' मारोठ के इतिहास प्रसिद्ध दहिया राजा विल्हण की घोड़ी का नाम था, जिस पर सवार होकर वह अपने राज्य की रात्रि गस्त में निकलता था। मारोठमें हिन्दू मन्दिरों के साथ-साथ अनेक प्राचीन जैन मन्दिर भी हैं। मारोठ एक प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्र रहा है।

रिणी :

एक प्राचीन कस्बा है। यह चूरू जिले के उत्तरी छोर पर स्थित है। इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार रिणी की स्थापना सुदूर अतीत में रिणीपाल डाहलिया ने की थी। ईसा की 11वीं सदी में डाहलिया वंश के अंतिम शासक जसवंत डाहलिये को अपदस्थ कर चाहिल चौहान रिणी पर काबिज हो गए। कालान्तर में चाहिलों को बीका राठौड़ के वंशधरों ने सत्ता से हटा दिया।

रिणी का जैन मन्दिर लाडनूँ के जैन मन्दिर जितना ही पूराना है। लाडनूँ के जैन मन्दिर में सरस्वती की एक सुन्दर और कलात्मक प्रतिमा विद्यमान है। रिणी के जिनालय में भी इसी तरह की एक सरस्वती की प्रतिमा उपलब्ध है। लाडनूँ की सरस्वती प्रतिमा पर विक्रमी सम्वत् 1219 का शिलालेख है जबकि रिणी की प्रतिमा पर संवत् 1204 का अंकन है। दोनों ही प्रतिमाओं के संस्थापक संघ समान हैं।

पल्लू :

पल्लू कस्बा रिणी से कुछ दूरी पर हनुमानगढ़ जिले में स्थित है। खरतरगच्छ पत्रावली में इसे पल्लूपुर नाम से सम्बोधित किया गया है। पल्लू में भी अनेक शैव तथा जैन प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं। पल्लू की मूर्तियों को ईटालवी विद्वान् डॉ. ट्रेसीटोरी ने चिह्ना था। पल्लू से प्राप्त मूर्तियों में दो सरस्वती की कलात्मक मूर्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं। उनमें से एक मूर्ति बीकानेर संग्रहालय में मौजूद है। पल्लू से ही नन्दी पर सवार उमा-महेश्वर की एक प्राचीन कलात्मक मूर्ति प्राप्त हुई है। इसी प्रकार की उमा-महेश की एक आकर्षक मूर्ति लाडनूँ में भी उपलब्ध है। अतीत के किसी महत्त्वपूर्ण कालखण्ड में पल्लू, रिणी तथा लाडनूँ में ऐतिहासिक स्तर पर अनेक समानताएँ रही।

झालरापाटन :

इस शहर से भी लाडनूँ का गहरा सम्बन्ध रहा है। लाडनूँ में सम्पन्न हुई दिगम्बर जैन पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं में से अनेक प्रतिष्ठाओं की जानकारी झालरापाटन के शान्तिनाथ मन्दिर के भट्टारकीय ग्रंथागार में रखे एक गुच्छक से प्राप्त हुई है। अधिकतर खण्डेलवाल महाजन झालरापाटन होकर ही मध्यप्रदेश के अन्य बड़े शहरों; यथा— इन्दौर, उज्जैन आदि को गए थे। झालरापाटन भी जैन धर्म का एक प्रमुख केन्द्र रहा है।

धुड़ीला :

धुड़ीला गाँव लाडनू से करीब 20 कि.मी. की दूरी पर दक्षिण दिशा में स्थित है। यह जोधों की केसरीसिंहोत परम्परा के अग्रणी ठिकाणों में से था। यहां के ठाकुर जुझारसिह ने महाराजा अजीतसिंह के विपत्तिकाल में बड़ी सेवा की थी। इसी परम्परा के भारतसिंह को आगे चलकर कसूम्बी की जागीर मिली। भारतसिंह की सन्तान को ही सिरकटी में आगे चलकर लाडनू मिला। किसी जमाने में धुड़ीला में 60 परिवार ओसवालों के निवास करते थे। वहां की कामदारी एक सिंघी परिवार के पास थी। संवत् 1974 की महामारी में इस परिवार के सर्वश्री इन्दरचन्द, छोगमल किशनलाल, रूपचन्द चार भाई लाडनू में आकर बसे।

IV

लाडनू शहर के भवन

लाडनू शहर के भवन लाडनू के व्यक्तित्व का एक मोहक अंग हैं। रेलवे स्टेशन से शहर में प्रवेश करते ही सड़क के दोनों ओर लगे नीम के विशाल दरख्त हर नए यात्री को आकर्षित किए बिना नहीं रहते। फिर शुरु होता है बैंगानी परिवार की शानदार हवेलियों का एक सुन्दर सिलसिला, जो अनायास ही आगन्तुक के मन को अपनी ओर खींच लेता है। हर हवेली अपने आप में एक नायाब अंदाज समेटे हुए है।

लाडनू की अधिकतर हवेलियों में चौक मिलाण की परम्परागत पद्धति का उपयोग हुआ है। यहाँ के भवन समन्वय शैली के हैं। हिन्दू, ईरानी, इटालियन आदि शैलियों का अद्‌भुत सम्मिश्रण है उनमें। जोधा शासकों पर बनी राजपूत शैली की बीस स्तम्भ वाली छतरियाँ कला के बेजोड़ नमूने हैं। अनेक हवेलियों में लगे जालीदार झरोखों में फारसी प्रभाव झलकता है। फूल-पत्तीदार बेलबूंटे, ज्यामितीय संरचना की तरह-तरह की जालियाँ फारसी स्थापत्य के आधारभूत लक्षण हैं। सुडोल स्तम्भ और बड़े दरवाजों वाले विशाल कक्ष इटालियन शैली को इंगित करते हैं।

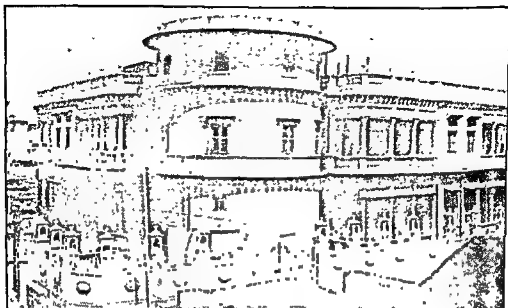
शेखावाटी शैली की अपनी अलग पहचान है। अच्छे पत्थर की कमी के कारण शेखावाटी के शहरों में चूने के प्लास्टर का काम भवन निर्माण में अधिक हुआ है। इन प्लास्टरों

पर राजपूत शैली के रंग-बिरंगे चित्रों का अंकन शेखावाटी स्थापत्य की विशेषता है। यद्यपि इस शैली का जन्म कोटा, बूँदी आदि हाड़ौती के शहरों में हुआ था लेकिन उसका विकास शेखावाओी में अधिक हुआ। चौथी पट्टी स्थित स्व. भंवरलालजी बैद की हवेली इस शैली का सर्वाधिक आदर्श नमूना है। सेठ गिरधारीमलजी बैद की हवेली भी इसी श्रेणी में आती है।

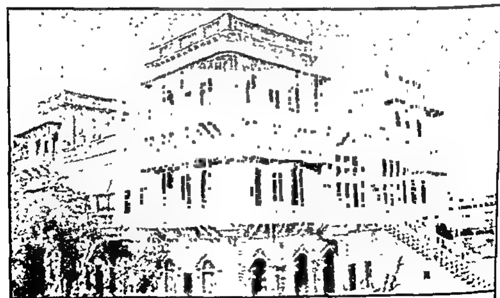
झरोखों के निर्माण की परम्परा राजस्थान के अनेक शहरों में रही है, यथा—जैसलमेर, बीकानेर, फलौदी आदि। जैसलमेर के कुछ झरोखे तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। झरोखों का निर्माण करवाना विशेष रूप से सम्पन्न लोगों के ही वश की बात थी। लेकिन लाडनू में यह शौक सामान्य आय वाले व्यक्ति को भी था। इसका कारण था कि इस शहर में झरोखों का काम करने वाले कारीगर बहुत थे तथा पत्थर सुगमता से उपलब्ध था। अच्छे झरोखों में खाटू के भवाने की खान का पत्थर काम में लिया जाता था। यह पत्थर महीन और कलात्मक घड़ाई के लिए बहुत उपयुक्त है।

लाडनू के भवनों के निर्माण में स्थानीय मेड़तिया तथा नागौरी सिलावटों का मुख्य योगदान रहा। मेड़तिया सपणीगर सिलावट पत्थर की घड़ाई के काम में माहिर रहे हैं। इनके अतिरिक्त कुछ बाहर के मिस्त्री भी शहर में सराहनीय काम कर गए। शेखावाटी के स्व. रामनारायण प्रजापत तथा रतनगढ़ के सुभान सिलावट के नामों को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। सुभानजी ने बैंगाणी परिवार की सभी हवेलियों, यथा—चन्दन निवास, जीवन निवास, हाथीमल की हवेली, स्थानीय टाउन हॉल तथा इनके अलावा सेठ गणपतराय सेठी की हवेली, शोभाचन्द भूतोड़िया की हवेली आदि का निर्माण करवाया। स्व. भंवरलाल बैद की हवेली तथा बड़े जैन मन्दिर के शिखर के निर्माण का श्रेय मिस्त्री रामनारायण प्रजापत को जाता है।

जैन विश्वभारती परिसर की अनेक इमारतें, नीलकण्ठ महादेव मन्दिर, पहली पट्टी का मेघ भवन, चौथी पट्टी की विश्वभारती रोड पर नया बना बैद भवन, भइयों की बगीची का कलात्मक काम आदि आधुनिक भवन निर्माण शैली के आदर्श नमूने हैं। मंगलम अस्पताल और 'धर्मदीप' भवन छित्तर पत्थर में बने जोधपुरी भवन निर्माण परम्परा के अच्छे उदाहरण हैं। सुखसदन कोठीनुमा शैली की एक बेजोड़ इमारत है। संगमर्मर में निर्मित नया जैन मन्दिर योजना विन्यास का एक अनुपम प्रतीक है।



लाडनू के भवन— सुख-सदन



लाडनू के भवन— चन्दन-निवास



लाडनू के जाली-झरोखे

V

कस्बे के व्यक्तित्व से जुड़े कुछ प्रेरक प्रसंग

जनश्रुतियाँ स्मृति से जुड़ी रहती हैं। जो स्मृति में थम जाता है, वह जीवन को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। जनश्रुतियाँ या अनुश्रुतियाँ जीवन्त इतिहास है, जो हर क्षण जीवन को उद्वेलित करता रहता है। लाडनू कस्बे के जीवन से जुड़ी हुई कुछ अन्तरंग स्मृतियाँ यहाँ दी जा रही हैं।

वि. संवत् 1996 का अकाल बड़ा भयंकर था। व्यापारी परिस्थिति का बेजा फायदा न उठाने पाए—इस दृष्टि से जोधपुर महाराज श्री उम्मेदसिंह जी ने बाजरी के व्यापार पर नियंत्रण घोषित कर दिया था तथा बाजरी का भाव प्रति रुपया नो सेर निर्धारित कर दिया था। उन दिनों लाडनू, डीडवाना परगने के अन्तर्गत था तथा परगने के हाकिम मुकुन्ददास जी तापड़िया थे।

लाडनू के बाजार में बाजरी उपलबध नहीं थी। श्री तापड़िया जी ने लाडनू शहर के उस समय के प्रसिद्ध व्यापारी श्री मांगीलालजी पांड्या को बाहर से बाजरी मंगवाने के लिए तैयार किया तथा दस हजार बोरी तक का परमिट लिख दिया। बाजरी पहुँच जाने पर हाकिम साहब ने उसके भावों की जानकारी चाही। बाजरी की पड़ता प्रति रुपया आठ सेर तेरह छटांक आई। हाकिम साहब ने मांगीलालजी को प्रति रुपया पौने नो सेर के भाव से बाजरी बेचने का लिखित आदेश दे दिया ताकि बाजरी का लागत मूल्य वसूल हो सके।

स्थानीय ओसवाल सभा को स्थिति की पूरी ज़ानकारी नहीं थी। उसकी नजरों में उपरोक्त भाव महाराजा के आदेश की सरासर अवहेलना थी। उसके अधिकारियों ने मारवाड़ के चीफ कंट्रोलर को तार द्वारा शिकायत दर्ज करवा दी। चीफ कण्ट्रोलर जांच के लिए आए। हाकिम साहिब की लाडनू ठिकाणे में पेशी हुई। हाकिम मुकुन्ददास ने जो उत्तर दिया वह एक योग्य और जुम्मेवार अधिकारी का उत्तर था। उस उत्तर में एक ईमानदार अधिकारी का स्वाभिमान झलकता है—

"कानून की भावना है कि व्यापारी जनता की मजबूरी का नाजायज लाभ न उठाने पाए। अगर व्यापारी द्वारा इस व्यवसाय में एक पैसा भी मुनाफा कमाना साबित हो मैं अपनी नाकाबलियत मंजूर कर लूँगा। अन्यथा परगने का हाकिम मैं हूँ, आप

या दरबार नहीं। जनहित की सर्वोपरि भावना के आधीन परिस्थिति अनुरूप जैसा करना उचित था, वैसा मैंने किया। कानून की खिलाफत की मंशा मेरी कभी नहीं रही।"

बात महाराजा तक पहुँची। अन्तिम फैसले में हाकिम साहब तथा सेठ साहब को शाबासी मिली तथा लाडनू के लिए बाजरी का भाव प्रति रुपया पौने नो सेर स्वीकार कर लिया गया।

चौथी पट्टी सोना पट्टी कहलाती थी। दोनों तरफ बड़ी-बड़ी हवेलियों की कतारें थी लेकिन सोने की थाळी में एक पीतल की मेख थी। शहर के गन्दे पानी का नाला इस पट्टी के बीच में से होकर बहता था। विकास के साथ आवागमन बढ़ रहा था। गली के बीचो-बीच बहने वाला यह गन्दा नाला आवागमन में बाधक बनने लगा। सेठ चिमनीरामजी (श्री गिरधारीमलजी बैद के पिता) के मन में विचार आया कि यह नाला उठना चाहिए। लेकिन विरोधियों की इच्छा सदैव ही विरोध करने मात्र पर टिकी रहती है। उन्होंने लाडनू ठाकुर साहब को इस तर्क पर अपने पक्ष में कर लिया कि सरकारी नाले को चिमनीराम बैद हटाने वाला कौन? बात दरबार तक पहुँची। उन्होंने भी लाडनू ठिकाणे का ही पक्ष लिया।

अन्त में सेठ चिमनीरामजी रियासत के अंग्रेज रेजिडेण्ट के पास माउण्ट आबू गए। रेजीडेण्ट महोदय चिमनीरामजी के तर्क से सहमत हो गए कि बदली हुई परिस्थितियों में नाला उपादेय नहीं रह गया था। रेजीडेण्ट महादेय ने नाला तुड़वाने का लिखित आदेश जारी कर दिया। सांभर पहुँचकर चिमनीरामजी ने अपने घर खबर करवाई कि पचास गाड़ी और पांच सौ मजदूर तैयार रखे जाएँ। उन्होंने लाडनू पहुँचते ही नाला तुड़वा दिया और नाले के पत्थर लाडनू गढ़ में पहुँचा दिए। कहते हैं गढ़ के मुख्य बुर्ज पर बना अठ-पहलू बड़ा कमरा उन्हीं पत्थरों से निर्मित था।

निकटवर्ती डूंगर पर सीढ़ियाँ बनवाने की योजना के बारे में शहर में चर्चा चल रही थी। मावलियों की बाड़ी निवासी श्री मोटारामजी कुम्हार (टाक) स्थानीय फर्म श्री चिमनीराम गिरधारीमल बैद के मुनीम थे। वे चाहते थे कि यह यश उनके सेठजी (श्री गिरधारीमलजी बैद) को ही मिले। उन्होंने राजगीर को समझा दिया कि जब सेठजी इस काम की लागत के बारे में जानकारी चाहें तो उनको अनुमानित लागत कम बताना। चार हजार रुपये के अनुमानित खर्च के स्थान पर राजगीर ने सेठजी को सिर्फ ढ़ाई हजार ही खर्च बताया और सेठजी ने हाँ भर ली। लागत तो उतनी ही आनी थी, जितनी प्रारम्भ में अनुमानित थी। सेठजी को अतिरिक्त लागत का कोई गम नहीं था क्योंकि इस काम में बड़ा यश मिला था।

स्व. सुखजी ठेकेदार जाति से कायमखानी थे। वे सज्जन स्वभाव के सहृदय व्यक्ति थे। उन्होंने स्थानीय जावा बास में एक धर्मशाला का निर्माण भी करवाया। एक बार बिरादरी की जमात जुड़ी हुई थी। किसी मस्जिद के निर्माण का मसला था। बातचीत के सिलसिले में किसी ने ठेकेदार सुखजी से कहा, "ठेकेदारां चूनो सत्यो दीज्यो। मस्जिद को काम हे।" विदित रहे सुखजी का अपना चूने का भट्टा था तथा वे चूने के बड़े व्यापारियों में गिने जाते थे। ठेकेदार सुखजी ने जो उत्तर दिया, वह इस प्रकार था–

"आप मुझ से सौ, दो सौ रुपये चन्दे के अधिक ले लें लेकिन निखालिश चूना देने का वादा मैं नहीं करूँगा। बिना मिलावट का चूना दे सकना मेरे वश की बात नहीं।"

चूने का धंधा ही ऐसा है, इसमें मिलावट हुए बिना नहीं रह सकती।

आभिजात्य की प्रतिमूर्ति थे स्व. हाथीमल खटेड़। मुर्शिदाबाद के किसी प्रसिद्ध ओसवाल जमीदार घराने में वे मुनीम रह चुके थे अतः बंगाल की बाबू परम्परा उनके रग-रग में समा गई थी। अपने जीवन काल में वे कभी स्थानीय बाजार नहीं गए। हाथ में थेला लेकर चलने या सब्जी आदि खरीद कर लाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। उनसे मिलने लोग उनके दौलतखाने में ही आते थे।

स्व. शोभाचन्द भूतोड़िया बड़े सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। कलकत्ते में अन्य व्यवसायों के साथ बैंकिंग का व्यवसाय भी करते थे। कारोबार भाइयों के साझे का था। एक बार किसी हरियाणवी अग्रवाल महाजन को दस हजार रुपये देने का उन्होंने वादा कर लिया। दूसरे दिन रुपये उसको दे भी दिए। गुमास्तों की नजर में यह काम ठीक नहीं हुआ था। पार्टी फेल होने के कगार पर थी। शोभाचन्द ने कहा, "हम दोनों में से किसी एक को तो फेल होना ही था। अगर मैं वादा करके रुपया नहीं देता तो मैं पहले फेल माना जाता।" रुपये शोभाचन्द ने अपने निजी नाम लिख दिए। बात विस्मृति के गर्त में चली गई।

एक दिन एक अजनबी सेठ लाडनू आया और शोभाचन्द की हवेली का पता पूछता हुआ वहाँ पहुँच गया। सेठ शोभाचन्द से मिलकर वह बोला, "मैंने मन ही मन वादा कर लिया था कि जब तक आपके रुपये नही चुका दूँगा मैं अपनी एकमात्र बेटी का विवाह नहीं करूँगा।" उसने सेठजी के सामने दस हजार रुपये मय ब्याज के रख दिए और अपनी पुत्री के विवाह का निमंत्रण पत्र भी उनको थमा दिया। शोभाचन्द आगन्तुक सेठ को पहचान गए थे। उन्होंने रुपये नहीं रखे और बोले, "बेटी के विवाह में कभी भी रुपयों की जरूरत पड़ सकती है और रुपयों की आवश्यकता हो तो ले जाइए। विवाह ...न हो जाने पर यदि बच जाएँ तो पहुँचा दें।"

हरजी माळी शहर के जाने-माने व्यापारी थे। पास-पड़ौस के गाँवों में उनकी अच्छी पेठ थी। धान के साथ-साथ घी का भी व्यापार करते थे। एक बार किसी अन्तरंग परिचित ने उनके सामने शुद्ध गाय के घी की जरूरत जाहिर की। घर में किसी प्रसूति के सम्बन्ध में उसकी जरूरत थी। हरजी ने विश्वासी माने जाने वाले किसी आसामी के मारफत घी पहुँचा दिया। परिचित को ऐसा लगा कि घी में मिलावट है। उसने अपनी शंका हरजी के समक्ष रखी। हरजी ने उसी वक्त घी मँगवाया। चखकर घी की परख की। घी में मिलावट थी। हरजी ने आसामी को बुलवाकर उसके सामने घी नाली में फिंकवा दिया। पाँच सेर घी की पच्चीस रुपया कीमत अपने परिचित को थमा दी। आसामी से सिर्फ इतना ही बोले, "अब कभी मेरी दुकान पर मत चढ़ना।"

मीरू (मीर खाँ) और अन्नू खाँ दो कायमखानी बन्धु थे। एक बार जब वे कुछ ओसवाल (दूगड़) महिलाओं के रक्षक के रूप में ऊँटों के साथ बीदासर से लाडनू आ रहे थे तो रास्ते में डाकुओं ने घेर लिया। दोनों भाई डाकुओं से जूझ पड़े। डाकू संख्या में ज्यादा थे। डाकूओं ने उनसे कहा, "बनियों के लिए क्यों जान गँवाते हो?" उनका उत्तर था, "लोग कोम का विश्वास करना छोड़ देंगे। पूरी कोम बदनाम होगी। लाडनू जाकर मुँह कैसे दिखाएँगे?" एक भाई वहीं काम आया। दूसरा घर पहुँचकर मर गया।

मार्च 16, 1989 : *सादड़ी के थानाधिकारी लाडनूवासी दीन मोहम्मद मोहिल किसी तपतीस के सम्बन्ध में अपने वरिष्ठ अधिकारी संजीव उपमन्यु व दो अन्य सिपाहियों के साथ जीप में सवार होकर जा रहे थे। जीप दुर्घटना ग्रस्त हो गई। यद्यपि दीन मोहम्मद सुरक्षित बच गए थे लेकिन अपने पदाधिकारी तथा अन्य दो साथियों को बचाने के प्रयास में जीप में लगी आग की चपेट में स्वयं आ गए। इलाज के लिए बम्बई ले जाए गए लेकिन बच नहीं पाए। वे बड़े लोकप्रिय अधिकारी थे।*

पहली पट्टी स्थित श्री दौलतराम बैगवानी की दूकान पर श्री जौहरीमल भंसाली अक्सर बैठ जाते थे। सादगी और अन्तःकरण की शुद्धता भंसाली परिवारों की विशेष पहचान है। बैगवाणी की दूकान के सामने पंचायती नोहरे की चबूतरी पर एक व्यक्ति बर्फ की दूकान लगाकर बैठते थे। एक बालिका अक्सर दूकान पर काम करने वाले व्यक्ति के लिए खाना पहुँचाने तथा अन्य घरेलू परामर्श हेतु दूकान पर आया करती थी। एक बार श्री जोहरीमलजी ने श्री बैगवानी से उपरोक्त दूकानदार तथा उस बालिका के बारे में जानकारी चाही। श्री बैगवाणी श्री जौहरीमल का आशय समझ गए थे। उन्होंने

सारी जानकारी दे दी, साथ-साथ यह भी जता दिया कि परिवार की माली स्थिति कमजोर है।

श्री जौहरीमल ने अपने पुत्र के साथ बालिका के विवाह सम्बन्ध की बातचीत की पहल की। प्रस्ताव स्वीकार होना ही था। अपने समधि को विवाह के समस्त खर्च भार से भी भंसाली ने मुक्त कर दिया था। सिर्फ आदर्शों का अभिमान जीवन का बोझ है। आदर्श जीवन का अंग बने—यही श्री जौहरीमलजी की दृष्टि थी।

चन्दरी अपने जमाने की प्रसिद्ध गायिका थी। साथ-साथ शालीनता की प्रतिमूर्ति भी। चूरू के किसी ओसवाल बरड़िया श्रेष्ठि ने अपने पुत्र के विवाहोपलक्ष में सोने के गहनों का एक सेट उसे उपहार में दिया था। कुछ वर्षों बाद उस परिवार की आर्थिक स्थिति कई कारणों से कमजोर हो गई। चन्दरी ने वे गहने उस परिवार को लौटा दिए, यह कहकर कि—"मैंने अपना शौक पूरा कर लिया। अब मेरी अवस्था भी गहने पहनने की नहीं रही। आप अपनी अमानत सम्भाल लें। आपका उपकार मैं कभी नहीं बिसार पाऊँगी।"

सिरहमलजी आर्य बड़े हौसले वाले निर्भीक व्यक्ति थे। उनके पड़ोसी थे सकरूजी लीलघर। परस्पर नोंक-झोंक चलती रहती थी। मुहरम का दिन था। ढ़ोल और तासे युद्ध के नगाड़ों की तरह जोर-जोर से बज रहे थे। श्री सिरहमल सकरूजी को सम्बोधित करके बोले, "सकरूजी! आज तो आपको ढ़ोल तासे बहुत सुहा रहे हैं। फिर आप हमारे चंग से इतने क्यों चिढ़ते हो?" सकरूजी कैसे स्वीकार करते कि यह ढ़ोल और चंग का सवाल नहीं। सवाल है एक-दूसरे को बर्दाश्त करने का।

ई. सन् 1945 : अजमेर में ऑल इण्डिया फुटबाल टुर्नामिन्ट का आयोजन था। लाडनू की टीम भी आमंत्रित थी। सबसे पहला खेल दिल्ली व लाडनू के बीच हुआ। लाडनू ने दिल्ली की टीम को तीन गोल से पराजित किया। दी हिन्दुस्तान टाइम्स व टाइम्स ऑफ इण्डिया में खेल की समीक्षा छपी। लाडनू की टीम के खिलाड़ियों के फोटो प्रकाशित हुए। पहला गोल गनी काजी ने दिया था। उस समय जोधपुर रियासत के तत्कालीन महाराज कुमार श्री हनुमन्तसिंह मेयो कॉलेज में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। जब उन्होंने सुना कि उनकी रियासत की एक जागीर की टीम ने दिल्ली की टीम को हरा दिया है तो वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने टीम के स्वागत में एक भोज दिया। स्व. शर्मा उस टीम के कप्तान थे।

VI

कस्बे का साम्प्रदायिक सद्भाव—कुछ परम्पराएँ

बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में बंगाल, बिहार, आसाम की यात्राों का दौर बढ़ गया था। लाडनू में तब तक रेल की सुविधा नहीं पहुँच पाई थी। यहाँ से ऊँट पर सवार होकर सांभर जाना पड़ता था। वहाँ से रेल पर चढ़ते थे। सांभर जाने का मार्ग उमरशाह पीर की दरगाह के सामने से होकर था। परम्परा यह थी कि ऐसा प्रत्येक यात्री दरगाह तक ऊँट के साथ पैदल जाता था। वहाँ नारियल बधार कर फिर ऊँट पर सवार होता था।

शहर में किसी बड़ी बीमारी के प्रकोप पर—गाँव के जमींदार द्वारा सार्वजनिक घोषणा करवाई जाती थी कि अमुक बीमारी फैल रही है अतः उसके निवारण हेतु शहर का प्रत्येक परिवार स्थानीय खदर पीर जी पर चूरमे का प्रसाद चढ़ाए। खदर पीर जी का पूरा नाम ख्वाजा खिज़्र अहले सलाम था।

शहर में रामदेव जी का मन्दिर संवत् 1745 में बन गया था। रामदेव जी की पूजा का अधिकार प्रारम्भ से ही मोहिल जाति के पास रहा। होली, दीवाली के त्यौहारों पर शहर के कायमखानी तथा मोहिल समुदायों के प्रमुख लोग नियम से लाडनू ठिकाणे में दुआ-सलाम (राम-राम) करने जाते रहे हैं। ठाकुर साहब अमल की मनुहार से उनका स्वागत करते आए हैं। ये लोग फिर सीतारामजी के मन्दिर भी जाते थे। मन्दिर के पुजारी उन्हें प्रसाद भेंट करते थे।

गणगौर के सांस्कृतिक मेले में गणगौर की सवारी के साथ मोहिल कायमखानी सरदार अगवाणी में रहते थे। वे गणगौर के रक्षक भी माने जाते थे। स्वयं ठाकुर साहब नियम से मेले में शिरकत करते थे। जाते वक्त वे घोड़े पर सवार होकर जाते थे। आते वक्त पालकी में बैठते थे। पालकी को लाडनू के तेली कहार अपने कंधों पर उठाकर चलते थे।

ईद व बकराइद की बड़ी नमाज के बाद ईदगाह से लौटते वक्त घोड़े पर सवार शहरकाजी गढ़ के सामने से होकर गुजरते हैं। ठाकुर साहब उस मौके पर शहर काजी का साफा बंधाकर सम्मान करते हैं। यह रिवाज आज भी जारी है। ठिकाणे में ठाकुर घराने के किसी भी विवाह अवसर पर वर-वधु के स्थानीय अलीशाह के मजार पर जोड़े से जात देने तथा नारियल चढ़ाने का रिवाज है। इसकी पालना आज दिन तक की जाती रही है।

ताजियों के जुलूस में हिन्दू भी पूरे उत्साह से शरीक होते हैं। शहर में जैन मुनियों के आगमन पर शहर के सभी समुदायों के लोग अगवानी में शामिल होते हैं। महाराज श्री के चौमासे या माघ महोत्सव के अवसर पर पूरे शहर में उत्साहवर्धक माहौल बन जाता है। खुशियाँ बाँटने से बढ़ती हैं।

परम्पराएँ एक दिन में नहीं बनती। विकसित होने में सदियाँ ले लेती हैं। शर्त एक ही है– विभिन्न कौमों में परस्पर संवाद बना रहे। कोई भी धर्म या मजहब आपस में बैर नहीं सिखाता। समस्या तब बन जाती है जब धर्म या मजहब प्रचारक अपना निजी आग्रह थोपने लग जाते हैं।

आज कोई व्यक्ति सिर्फ अपने स्थान से ही प्रभावित नहीं होता। उसे प्रभावित करने वाले परिवेश का असीमित विस्तार हो गया है। अपनी सरजमीं से जुड़े रहना बहुत जरूरी है। यदि हमारी सरजमी स्वस्थ्य रहेगी तो निःसन्देह उसमें सद्‌भाव के फूल खिलेंगे। सावधान रहना जरूरी है कि कोई दूसरा हमारी इस निरोग विरासत को खत्म नहीं कर दे।

VII

थळी प्रदेश में 'तेरापंथ' का आगमन

जैन धर्म की श्वेताम्बर शाखा में 'तेरापंथ' नाम से जाना जाने वाला धर्म समुदाय अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके अधिकतर अनुयायी ओसवाल वंश के हैं। इस क्षेत्र में राठौड़ों के प्रवेश के साथ ही ओसवाल वंश के लोग भी लाडनू तथा थळी के अनेक शहरों और कस्बों में आकर बसे। राठौड़ों का ओसवालों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। राठौड़ों से ओसवालों को सुरक्षा का विश्वास मिला और ओसवालों से राठौड़ों को एक सुलझा हुआ मार्गदर्शन। दोनों एक-दूसरे से लाभान्वित हुए।

संवत् 1837 (ई. सन् 1780) :

उमरकोट की लड़ाई की तैयारी चल रही थी। कसूम्बी के जोधा शासक ठा. शिवदानसिंह को लाडनू का पट्टा मिलने में अभी एक साल की देरी थी। जोधपुर की गद्दी पर महाराजा विजयसिंह आसीन थे। मराठों और पिण्डारियों का आतंक रियासत पर छाया हुआ था। शाहपुरा में संबुद्ध संत रामचरणदासजी रामस्नेही सम्प्रदाय की स्थापना कर

रामनाम की निर्मल धारा बहा रहे थे। रेण गाँव में सन्त दरिया अवतरित हो चुके थे। लाडनूं में अलीशाह दरवेश मौजूद थे। सिद्ध पुरुष हिम्मतसिंह मोहिल की सिद्धाई परवान पर थी। लाडनूं की एक अन्य विभूति सन्त गोविन्दराम जी को स्वर्गवासी हुए सिर्फ दो वर्ष ही बीते थे।

ऐसे में श्वेताम्बर 'तेरापंथ' के आद्याचार्य स्वामी भिक्षु लाडनूं पधारे। वे चारभुजा चौक स्थित भगवान शान्तिनाथ मन्दिर के उत्तर पार्श्व में पारीकों के मोहल्ले में एक कोटड़ी में बिराजे। वह कोटड़ी आज भी मौजूद है तथा पारीक जाति की सम्मलित सम्पत्ति है। आचार्य यहाँ सिर्फ दो दिन ठहरे, फिर वे थळी प्रदेश की ओर प्रस्थान कर गए। उस समय लाडनूं शहर में ओसवाल जाति के सिर्फ पैंतीस-चालीस घर ही आबाद थे। सभी परिवार मन्दिर मार्गी परम्परा के अनुयायी थे।

पंथ के दूसरे आचार्य भारमलजी का विचरण सिर्फ मारवाड़ और मेवाड़ तक ही सीमित रहा। लाडनूं में सर्वप्रथम चतुर्मास 'तेरापंथ' के अग्रणी मुनि स्वरूपचन्दजी का संवत् 1879 में हुआ। पंथ के तीसरे आचार्य रायचन्दजी संवत् 1886 में लाडनूं पधारे। इस क्षेत्र में उनका पहला चतुर्मास संवत् 1887 में बीदासर में हुआ। उसके उपरान्त यह श्रेय लाडनूं को प्राप्त हुआ। डायमलजी दुगड़ पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने संवत् 1887 में इस पंथ में गुरु धारणा ली।

संवत् 1915 में पंथ के चौथे आचार्य श्रीमद् जयाचार्य जी का लाडनूं में चतुर्मास हुआ। जयाचार्य जी ने संघ को अनेक रूपों में नया आयाम दिया। अनेक नई परम्पराओं का उन्होंने सृजन किया। पट्ट महोत्सव, माघ महोत्सव की परम्पराओं की स्थापना उन्होंने ही की। साध्वी प्रमुखा का पद भी उन्होंने ही सृजित किया। साध्वियों की वेशभुषा को भी नया रूप दिया। जयाचार्य का समूचा जीवन अन्तस्चेतना के जागरण का प्रतीक बन गया। आपने आगमों पर साढ़े तीन लाख पदों की रचना कर साहित्य सृजन में कीर्तिमान स्थापित किया। आपके दिशा बोध से ही लाडनूं में वृद्ध साध्वियों के लिए सेवाकेन्द्र की स्थापना हुई।

संवत् 1931 में राजलदेसर की प्रसिद्ध ओसवाल फर्म खड़गसिंह लच्छीराम (बैद) के प्रमुख श्री लच्छीरामजी की अपने जागीरदार से अनबन हो गई। उन्होंने लाडनूं में बसने का मानस बनाया तथा पहली पट्टी में अपनी हवेली निर्मित करवाई। वहाँ एक प्रेत बाधा का अन्देशा हुआ। जयाचार्य जी वहाँ बिराजे। उनके सान्निध्य में प्रेतात्मा को समाधान मिला। तब से वह स्थान साधु-सन्तों का प्रवास-स्थल बना हुआ है। संवत् 1938 में इस युग प्रवर्तक आचार्य का स्वर्गवास हुआ।

तेरापंथ के पाँचवे आचार्य मघवागणी का मूल निवास बीदासर था। आप संवत् 1908 में जयाचार्य जी के बीदासर चतुर्मास के अवसर पर अपनी छोटी बहिन गुलाब कुंवर के साथ दीक्षित हुए। संवत् 1938 में आपको आचार्य पद प्राप्त हुआ। आपके व्याख्यान कौशल से श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाते थे। आप संस्कृत के भी अच्छे विद्वान थे। संवत् 1949 में रतनगढ़ चतुर्मास के अवसर पर आप स्वर्गस्थ हुए।

छठे आचार्य माणकगणी का जन्म जयपुर में हुआ था। आपकी दीक्षा जयाचार्य के हाथों लाडनू में हुई। आपकी देहयष्टि सुन्दर, स्वभाव कोमल तथा कण्ठ मधुर थे। हरियाणा प्रदेश में 'तेरापंथ' के प्रचार का श्रेय आप ही को जाता है। संवत् 1954 में सुजानगढ़ चतुर्मास के अवसर पर आप अस्वस्थ हुए। उसी वर्ष 43 वर्ष की अल्पवय में ही आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य माणकगणी अपना उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं कर सके अतः संवत् 1954 में लाडनू में समस्त संघ एकत्रित हुआ। संघ ने आचार्य चयन का सम्पूर्ण भार संघ के वरिष्ठ मुनि कालू जी को सौंप दिया। उन्होंने डालगणी को संघ का सप्तम आचार्य मनोनीत किया। एक शिष्य द्वारा अपने गुरु का नामांकन एक अद्‌भुत संयोग था। उस समय डालगणी जोधपुर में थे।

आपके आचार्यकाल में पद की गरिमा और महिमा बहुत बढ़ी। संवत् 1964 से 66 तक आपका लाडनू में स्थिरवास रहा। रुग्णावस्था में भी आपने व्याख्यान देना नहीं छोड़ा। संवत् 1966 में लाडनू में ही आप स्वर्गवासी हुए। आपका स्मृति स्थल लाडनू में अवस्थित है।

'तेरापंथ' के अष्टम आचार्य पद पर आचार्य कालूजी पदासीन हुए। आपका जन्म थळी प्रदेश के छापर कस्बे में हुआ था। आपके शासन काल में साधना, शिक्षा, साहित्य आदि क्षेत्रों में संघ ने कीर्तिमान स्थापित किए। कुछ मौलिक संस्कृत ग्रंथों की भी रचना हुई। कालू कौमुदी सरीखे व्याकरण ग्रंथ का सृजन हुआ। संवत् 1973 में विदेश यात्रा को लेकर समाज श्रीसंघ और विलायती विवाद में विभाजित हुआ। परस्पर विवाह, खानपान के सम्बन्ध निलम्बित हो गए, परन्तु आचार्य ने तटस्थ भाव से संघ की एकता बनाए रखी। आपने पहली बार सुदूर दक्षिण में महाराष्ट्र और आन्ध्रप्रदेश को अपने विचरण क्षेत्र में शामिल किया। कलकत्ता में 'तेरापंथ' संघ की स्थापना का श्रेय आप ही को है।

संवत् 1993 : गंगापुर चतुर्मास के अवसर पर आप अस्वस्थ हुए। आपने खुले अधिवेशन में अपने उत्तराधिकारी के रूप में श्री तुलसी के नाम की घोषणा कर दी। हर्मन जेकोबी, डॉ. टेसीटोरी तथा प्रो. गेल्सी जैसे प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान आपसे मुलाकात करने आए।

'तेरापंथ' के नवम् आचार्य श्री तुलसी बने। उनके शासनकाल में संघ का सर्वतोमुखी विकास हुआ। नए आयाम जुड़े। युग अनुरूप व्यवस्थाएँ स्थापित हुई। दर्शन तथा क्षेत्र को विस्तार मिला। आपका जन्म स्थान लाडनूं ही था। जब से थळी प्रदेश में 'तेरापंथ' का पदार्पण हुआ, तब से लाडनूं इस धर्म संघ के लिए एक जाना-पहचाना नाम बन गया था। लाडनूं थळी प्रदेश का प्रवेशद्वार जो है।

लाडनूं में जैन विश्वभारती की स्थापना और विश्वविद्यालय की प्रस्थापना से यह कस्बा विश्व फलक पर एक नक्षत्र के रूप में उभर आया है। आचार्य के प्रशस्तिपूर्ण जीवन की एक घटना यह भी रही कि आपने अपने पद का विसर्जन करके अपने उत्तराधिकारी को अपने जीवनकाल में ही आचार्य पद सौंप दिया।

संघ के दसवें आचार्य महाप्रज्ञ की साधना स्थली लाडनूं रही। आचार्य तुलसी के सान्निध्य में आपने जो प्रज्ञा प्रशस्त की वह आपके जीवन की परम उपलब्धि है। दर्शन के नए क्षेत्रों का अनुसंधान हुआ। तात्विक स्पष्टता आपके चिन्तन की मूल पहचान है। शिक्षा जगत को जीवन विज्ञान जैसे युग अनुरूप विषय को प्रदान करने में आचार्य महाप्रज्ञ का महत्ता हाथ रहा। प्रेक्षाध्यान के रूप में योग को एक नया अवदान आप ही के माध्यम से मिला।

गणाधिपति तुलसी की अनुशंसा से मुख्य श्रमण के नाम की घोषणा हुई, जो आगे चलकर युवाचार्य बने। आचार्यत्व की तीन पीढ़ियों का एक साथ समागम – संघ के इतिहास में एक अनपुम संयोग बना। थळी प्रदेश में 'तेरापंथ' का शुभागमन एक घटना नहीं एक सुयोग भी था। इस संघ की युग अनुरूप होने की क्षमता, दूरदर्शिता और खुलेपन ने अन्य जातीय समूहों को भी अनेकानेक रूपों में प्रभावित किया। सामाजिक सुधारों का तो यह धर्म संघ करीब-करीब अगुवा ही रहा। आभासित कठोरता के बावजूद भी इस समुदाय में आधुनिक बने रहने की सहज ललक है। चाहे कुछ कितना ही पुराना क्यों न हो, अनुपयोगी हो जाने पर उसका परित्याग कर देने में इस समुदाय को परहेज कम रहा।

VIII

गणाधिपति तुलसी :

लाडनूँ शहरवासियों के लिए तुलसी एक हृदय-स्पर्शी नाम है। गणाधिपति तुलसी एक ऐसी संज्ञा है, जिसके निखार ने इस शहर के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को आभामय कर दिया है। बड़ा अनुपम जीवन रहा तुलसीगणी का। बारह वर्ष की वय में दीक्षा ली। बाईस वर्ष के होते-होते तेरापंथ धर्म संघ के आचार्य पद का भार सम्भाला। प्रमाद रहित साधनामय जीवन का ऐसा अद्भुत उदाहरण दुर्लभ है। तुलसी नाम तप का पर्यायवाची बन गया।

आचार्य के रूप में तुलसी ने अपना दायित्व बड़ी कुशलता से निभाया। संघ व्यवस्था को न केवल नई दिशा दी बल्कि उसे उच्च से उच्चतर भूमिका प्रदान की। इस विस्तृत देश की करीब पचास हजार किलोमीटर की पदयात्रा कोई साधार उपक्रम नहीं है। सैकड़ों साधु-साध्वियों की शिक्षा-दीक्षा, पावस-प्रवास, सुविधा-दुविधा का समाधान, लाखों अनुयायियों के भाव जगत को दिशा संकेत, इनके सतत् क्रियाशील जीवन का सबल विधाई पक्ष रहा।

अनगिनत विभिन्न चरित्र, सम्प्रदाय, विश्वास और संस्कारों के लोगों से निरन्तर सम्पर्क। अनुभव की एक लम्बी परम्परा थी—तुलसी का जीवन। अनुभवों के इस महाप्रकाश में कुछ भी जीवन में अनावश्यक जुड़ जाये इसकी कोई सम्भावना नहीं थी।

जैन विश्वभारती तथा विश्वविद्यालय आपकी कृतित्व क्षमता का एक सजीव नमूना है। इन संस्थाओं ने इस शहर को एक तीर्थ ही बना दिया है। देश के कोने-कोने से अनेक विद्वान, विभिन्न आचार-विचार, रहन-सहन और संस्कारों के लोग यहाँ एकत्रित होते हैं। मारवाड़, मेवाड़, गोडवाड़, थळी प्रदेश, हरियाणा, कच्छ, गुजरात, मालवा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र, तमिलनाडु तथा देश-विदेश की कितनी ही संस्कृतियों का संगम स्थल बना रहा है यह संस्थान। ऐसा सुअवसर किसी भी शहर या कस्बे के लिए दुर्लभ उपलब्धि है। जाने-अनजाने यह सुअवसर हमें कितना कुछ दे जाता है, इसका मूल्यांकन सहज नहीं है।

जैन विश्वभारती परिसर में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के भी अनेक कार्यक्रम सम्पन्न हो चुके हैं। विश्वशांति व अहिंसक प्रक्रिया के सम्बन्ध में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन दिसम्बर 988 में आयोजित हुआ, जिसमें विश्व के विभिन्न देशों के करीब 200 प्रतिनिधियों ने

भाग लिया। यूनेस्को के प्रतिनिधि भी उसमें शरीक हुए। उस सम्मेलन की कार्ययोजना 'लाडनूं डिक्लेरेशन' के नाम से जानी गई। इस छोटे से कस्बे के लिए यह एक बड़ी उपलब्धि है।

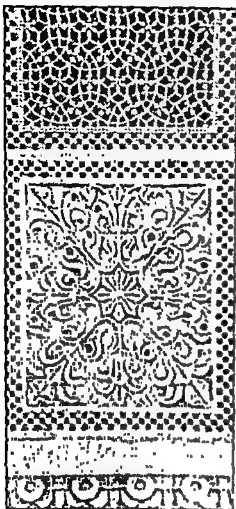
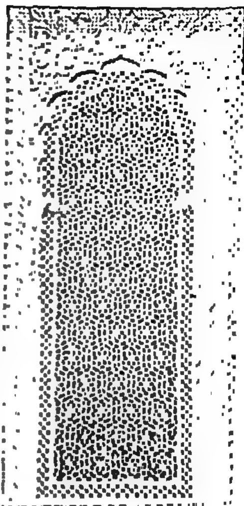
अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान के माध्यम से मनुष्य के आचरण-निर्माण का प्रयत्न भी स्तुत्य है। मनुष्य का नैतिक जीवन समृद्ध बने तथा चरित्र-निर्माण की सम्भावना बढ़े, यही आचार्य तुलसी का स्वप्न था।

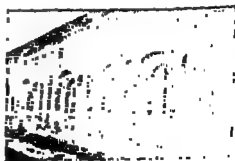
साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा :

बचपन का नाम उनका कला था। बम्बू वाले बैद परिवारों की यशस्वी परम्परा में स्व. सूरजमलजी बैद की आप सुयोग्य पुत्री हैं। कला से कनकप्रभा तक की यात्रा नियमित लगन, स्वनिष्ठा की एक सजग यात्रा है। तेरापंथ की जन्म स्थली केलवा की धरती पर वि.सं. 2017 में आप तेरापंथ धर्म संघ में साध्वी के रूप में दीक्षित हुई। उनका नया नामकरण हुआ 'कनकप्रभा'। एकाग्रता, सजगता और श्रमपरायणता के गुण उन्हें निःसर्ग से प्राप्त हैं। शैक्षणिक प्रगति के साथ-साथ आचार की निर्मलता, वैचारिक दृढ़ता, व्यवहार की मृदुता, सेवाभाव और कार्यदक्षता के कारण सभी साध्वियों का उन्होंने स्नेह और आदर प्राप्त कर लिया।

विक्रम संवत् 2028 माघ कृष्णा त्रयोदशी को आचार्य तुलसी ने आपको तेरापंथ के साध्वी संघ का नेतृत्व सौंपकर साध्वी प्रमुखा के पद पर प्रतिष्ठित किया। उनके नेतृत्व में साध्वी संघ को आश्वासन मिला, समाधान मिला और मिला विकास का नया क्षितिज और नई दिशा।

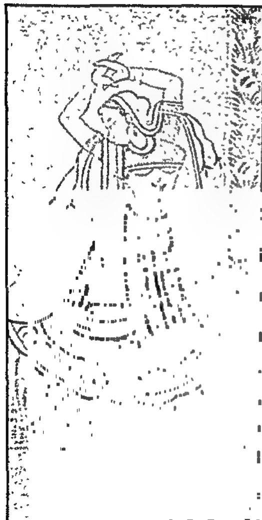
कला पृष्ठ :



पत्थर में उत्कीर्ण जालियाँ

कला पृष्ठ :



एक दरवाजे के पास का भित्ती चित्र



एक कलात्मक झरोखा (सेजावतों का बास)

शहर की गतिविधियों से सम्बन्धित कुछ चित्र

सन् 1946 :

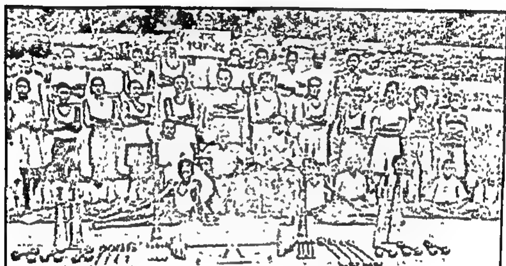
रेलवे स्टेशन से शहर तक रास्ते को चोड़ा किये जाने के समय लिया गया विशिष्ट व्यक्तियों व कार्यकर्त्ताओं का चित्र



क्रम संख्या के अनुसार बाएँ से दाएँ नाम इस प्रकार हैं—1. सर्वश्री मन्नालाल सोनी, 2. दीपंकर शर्मा, 3. बिरधीचन्द पंचोली, 4. काजी अब्दुल लतीफ, 5. शहरकाजी, 6. ठा.सा. बालसिंहजी, 7. नथमल अग्रवाल, 8. सज्जनराज (जोधपुरवासी), 9. भूरेशाह

सन् 1935 :

ओसवाल स्वास्थ्य सदन



कुर्सियों पर बैठे हुए (बाएँ से दाएँ)—अमूल्य रत्न बनर्जी, जस्सुखाँ मोयल, डॉ. रामबिहारी टण्डन (एम.बी.बी.एस.)

दूसरी पंक्ति—पूनमचन्द भाटी, धनराज कोचर, उदयचन्द झँवर, अमीचन्द बरमेचा, मोहनलाल गोलछा, भंवरलाल बैद, तोलाराम भूतोड़िया, जयचन्दलाल भूतोड़िया (सुपुत्र शोभाचन्द भूतोड़िया), नथमल कठोतिया, मदनलाल भूतोड़िया

तीसरी पंक्ति में चौथे स्थान पर—श्री जौहरीमल भंसाली, बच्छराज बैद, नौवें स्थान पर—कन्हैयालाल बैद

बैठे हुए बच्चों में—अमूल्य रत्न बनर्जी के सामने श्री धनराज कठोतिया

(उपरोक्त चित्र ओसवाल स्वास्थ्य सदन के शिक्षार्थियों का है)

उपसंहार :

जब मैं चार साल का था तो मैंने एक चित्र बनाया था—घोड़े का। रोज प्रातः उठते ही मैं सबसे पहले उस चित्र को देखता और बड़ा आनन्दित होता था, जैसे कि मैंने किसी नायाब कृति को जन्म दिया हो। पिताजी की जिस डायरी में मैंने वह चित्र बनाया था, अनायास ही एक दिन वह गुम हो गई। कुछ दिन मन उदास रहा, जैसे कि कोई बहुमूल्य वस्तु मैंने खो दी हो। फिर सब कुछ विस्मृति में चला गया।

बीस वर्ष बाद। एक छोटी-सी पुरानी डायरी मेरी माँ ने मुझे दी और बोली, "देख! इसमें कुछ काम का है क्या?" यह वही डायरी थी, जिसमें मैंने वह चित्र बनाया था। उत्सुकतावश मैंने उसे खोला। वही पृष्ठ सामने उभर आया, जिस पर वह चित्र बना था। लेकिन उसे देखकर मैं हैरान रह गया कि उसमें घोड़े जैसा कुछ भी नहीं था। सिर्फ आँख के रूप में बने एक बिन्दु की चमक यथावत थी।

मैंने लाडनूं कस्बे का इतिहास तो लिख दिया है लेकिन अब मेरे पास इतना समय नहीं बच पाया है कि किसी बड़े अन्तराल के बाद मैं इसके रूबरू होकर इसकी समीक्षा कर सकूँ। आज यह कृति मेरे लिए प्रियकर है लेकिन इसमें श्रेयस्कर कितना है—यह बता पाना मेरे वश की बात नहीं। इसका फैसला तो 'समय' ही करेगा।

इतिहास भूतकाल का स्मरण और स्मृतियों का अंकन मात्र नहीं है, उसमें भविष्य के सपने भी समाहित हैं। स्वप्न विहीन आदमी बूढ़ा बन जाता है। उसका मस्तिष्क नए विचारों को ग्रहण करने की क्षमता खो देता है। भय, कुण्ठा, लोभ, षड्यंत्र, कामुकता और लालसाओं के नकारात्मक भावों से वह घिरता चला जाता है। सत्ता भी तब भ्रष्ट करती है, जब उसमें कोई स्पष्ट विराट दर्शन न जुड़ा हो।

प्रत्येक लेखन की सीमाएँ हैं। आज जो कुछ लिखा गया है, वह कल नकार दिया जाएगा। फिर भी कुछ ऐसा है, जो प्रत्येक मनुष्य के मूल से जुड़ा हुआ है। जो शाश्वत है। हर मनुष्य को एक काल निरपेक्ष दृष्टि मिली है, वह कभी चुकती नहीं। आश्वस्त हुआ जा सकता है कि यह दृष्टि मनुष्य को किसी भी स्थिति विशेष पर अटकने नहीं देगी। गति से विरत नहीं होने देगी। यद्यपि आज कोई नहीं जानता कि परम वास्तविकता क्या है लेकिन कल की सम्भावनाओं के द्वार कब, किसने बन्द किए हैं? यही हमारी ... का एकमात्र आधार है। यही इतिहास की दिशा है और हम सबकी नियति

नये युग का नया आदमी

धरती पर जनसंख्या किसी प्रयोजन से नहीं बढ़ी बल्कि सुविधाजनक परिस्थितियों के कारण बढ़ी। एक कारण कामुकता का विस्फोट भी। यह घटना इतनी अचानक घटी कि संख्या के अनुपात में संभावनाओं के दायरे विकसित नहीं [illegible]

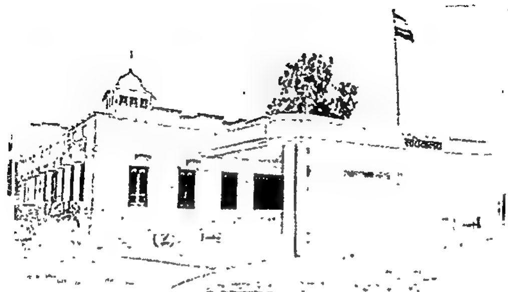
फलस्वरूप अनेक प्रकार की कुंठाओं ने जन्म लिया। कुछ रुग्णताओं ने तो जेनेटिक [illegible]

[illegible]

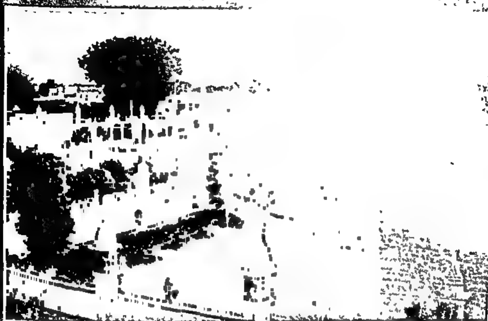
ज्ञात के दायरे बढ़ रहे हैं, इसी अनुपात में आदमी की सर्वांगीण सम्पन्नता भी। सौभाग्य से आदमी के पास एक विस्तृत जीवन अनुभव है। जीवन मूल्यों का एक विश्वसनीय ताना-बाना भी उसे विरासत में मिला है। यह उसका एक बड़ा सम्बल है। समय आ गया है कि आदमी अपनी प्राथमिकताएँ निर्धारित करे।

शारीरिक और मानसिक निरोगता आदमी की पहली अनिवार्यता है। सावधानी बरती जाए कि जाने-अनजाने आदमी अपने रोग अपनी सन्तति को नहीं देने पाए। सन्तती नियोजन के साथ उत्तम नस्ल के चयन की दृष्टि भी संजोनी जरूरी है। निःसंदेह यह एक जौखिम भरा काम है, जिसमें अतिशय विवेक और इमानदारी अपेक्षित है।

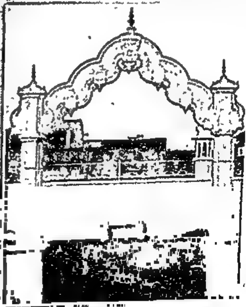
हर पड़ाव के बाद मनुष्य जाति नये अनुभव लेकर निखरती है। विश्वास रखें नई परिस्थितियों में इसके नये उत्तराधिकारी जन्मेंगे। यद्यपि हृदय के संस्कारों को नकारना संभव नहीं लेकिन प्रमुखता मस्तिष्क की रहेगी। युग का प्रवाह बदलना असम्भव है। मात्र पत्थर फैंकने से आंधियाँ नहीं रूकती। जो अशक्त हैं, उन्हें — उनके पक्ष में मार्ग छोड़ना ही पड़ेगा, जो ऊर्ज्वसित, युवा और उत्साहित हैं। इसे त्याग कह दें या अनिवार्यता — कोई फर्क नहीं पड़ता है।



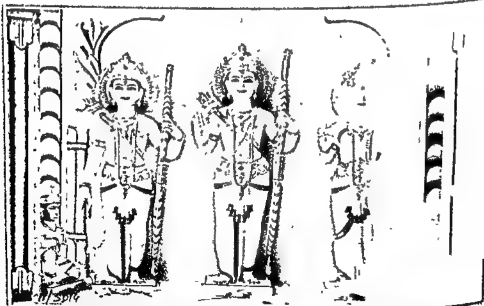
नया जैन मन्दिर





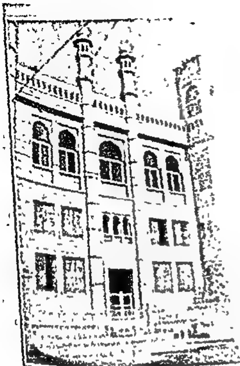




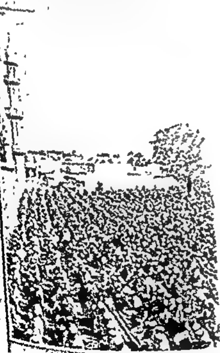


भैया बगीची का शिल्प वैभव

पहली पट्टी, लाडनूं


बड़ा तास मस्जिद


दरगाह


ईदगाह

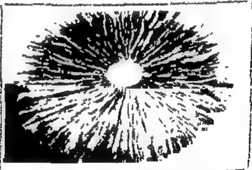

गणगौर मेला



ठा. पदमसिंह जी पर बनी छतरी



नृत्य नाटिका



156 कली का घेर



शिव मन्दिर का कलात्मक नान्दी



गौ-पूजन

परिशिष्ट—1

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के खण्ड 16, पृष्ठ 60 पर लाडनूं कस्बे का परिचय इस प्रकार दिया गया है—

अंग्रेजी में कस्बे का नाम LADNUN लिखा गया है। इसे नागौर जिले का सबसे बड़ा कस्बा बताया गया है। जिला मुख्यालय नागौर से इसकी दूरी 48 मील अंकित है। सन् 1951 की जनगणना के अनुसार इस कस्बे की आबादी 20,914 लिखी गई है। जबकि नागौर की स्वयं की आबादी उसी वर्ष की जनगणना के अनुसार 19,588 दर्शाई गई है।

❊ मारवाड़ के ऐतिहासिक संदर्भ में हमने लाडनूं कस्बे के इतिहास को जाना। इसके साथ-साथ मारवाड़ी समाज के आर्थिक और सामाजिक ताने-बाने के बारे में भी कुछ जानकारी जरूरी है। मारवाड़ी समाज ने व्यापार और व्यवसाय के क्षेत्र में तीव्र वेग से प्रगति की। देश के आधे से अधिक आर्थिक साधनों को हथिया लेना अपने आप में एक आश्चर्यजनक उपलब्धि है।

भारत में रेलों के आगमन से पहले ही अज्ञात शुष्क प्रदेश से इस समाज के कुछ मेहनती अग्रसर पुरुष चले थे। वे उत्तरप्रदेश के पूर्वी भागों से बिहार होते हुए हुगली के किनारे तक, फिर उससे भी आगे आसाम के बीहड़ जंगलों से भरे उत्तरी हिस्से तक फैल गए। इस समाज में परस्पर सहयोग करने की प्रवृत्ति, उसके अनुकूल सामाजिक संगठन, एक साथ खाने-पीने और रहने की व्यवस्था—इन सबका परिणाम बड़ा साकारात्मक रहा। प्रारम्भ में छोटी-छोटी दूकानदारियों और सूद पर पैसा देने के धन्धे से उन्होंने बड़ी दलालियों और बिचौलियों के व्यवसाय में प्रवेश किया। फिर भागीदारियों के सहारे बड़े व्यापार में पैर जमाए। अंततः उद्योगों में पूँजी लगाकर उद्योगपति बन गए।

मारवाड़ी समाज पर एक अमरीकी विद्वान् की शोध :

कदम-कदम चलने की यह बड़ी सुन्दर कहानी है। इस कहानी को अनेक विदेशी लेखकों ने अपने अध्ययन में समाविष्ट किया तथा मारवाड़ी समाज पर अनेक पुस्तकें लिखीं। इस श्रृंखला में एक लेखक वाशिंगटन स्थित कॉलेज ऑफ पब्लिक एफेयर्स ऑफ अमेरिकन यूनिवर्सिटी में सहायक प्रोफेसर डॉ. टामस ए. टिम्बर्ग भी थे। उनकी पुस्तक 'मारवाड़ी समाज-व्यवसाय से उद्योग में'—मारवाड़ी समाज पर एक सुन्दर अध्ययन है। अपनी डॉक्टर्स उपाधि के लिए, उन्होंने शोध हेतु इसी विषय का चयन

किया और फिर उसे पुस्तक रूप में प्रकाशित कर दिया। उनकी मूल अंग्रेजी पुस्तक की अनुवादिका 'देवलीना' हैं। इस पुस्तक में ओसवाल जाति तथा लाडनू सम्बन्धी अनेक प्रसंग हैं। उनका संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

❊ लेखक ने अपने अध्ययन में 77 ओसवाल फर्मों को शामिल किया था, उनमें पाँच फर्में मुर्शिदाबाद की थीं। इनके मालिक ओसवाल अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में अजीमगंज तथा जियागंज में बस गए थे। मुर्शिदाबाद की पटसन की प्रमुख फर्मों में एक फर्म हरीसिंह निहालचन्द नाम से थी। इसके मालिक अजमेर के पास बालडोटा गाँव के सिंघी घराने के ओसवाल थे। सेवईराम सिंघी सबसे पहले 1792 ई. सन् में अजीमगंज आए। उनके पुत्र रायसिंह जिन्हें हरीसिंह नाम से भी पुकारा जाता था ने इस फर्म की स्थापना की।

इसी घराने के डालचन्द सिंघी (1870-1927) जूट बेलर्स एशोसिएशन के प्रथम अध्यक्ष बने। इस फर्म के प्रमुख मुनीम गंगाशहर के मेरुदान चोपड़ा थे। चोपड़ा जी उपरोक्त फर्म में सन् 1896 में आए। 1901 में वरिष्ठ मुनीम बने। 1906 में साझीदार बन गए। लेकिन मुर्शिदाबाद की फर्मों का मुख्य ध्येय जमीदारी तथा उससे सम्बन्धित व्यापार की ओर ही रहा अतः ये फर्में धीरे-धीरे पटसन व्यापार से हटती गईं।

❊ उसी जमाने में चार फर्में ओसवाल जौहरियों की थी, जो 1860 के बाद कलकत्ता आईं। रायबहादुर बद्रीदास मुकीम तथा जैसलमेर के नखत कलकत्ता के सबसे प्रसिद्ध जौहरी थे। ओसवालों की अधिकतर फर्में बीकानेर से और उनमें से आधे से अधिक रियासत के पूर्वी हिस्से सरदारशहर तथा चूरू से कलकत्ता आई थीं। बाकी फर्में जोधपुर रियासत से आईं। छः फर्में लाडनू-सुजानगढ़ तथा बीदासर की थीं। जोधपुर के ओसवालों की शाखाएँ पटसन व्यापार में प्रमुख रहीं।

❊ पटसन व्यवसाय में जोधपुर संभाग के लाडनू कस्बे के व्यापारी अधिक प्रभावशाली थे। जीवनमल बैंगानी (निधन 1917) लाडनू के प्रमुख पटसन व्यापारी थे। उन्होंने सन् 1900 में जीवनमल चन्दनमल नाम से फर्म की नींव डाली। यह शीघ्र ही पूर्वी बंगाल की प्रमुख फर्म बन गई। कहते हैं जीवनमल बैंगानी पहले ओसवाल थे, जिनके पास एक करोड़ से अधिक की सम्पत्ति थी। कलकत्ते के पास पटसन की उनकी जूट प्रेस तथा पूरा बाजार था।

पटसन के व्यापार में लाडनू के बैद भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। लाडनू के जैनी (खण्डेलवाल) भी पटसन के प्रसिद्ध व्यापारियों में से थे। लाडनू के

निकट के कस्बों -- सुजानगढ़ तथा बीदसर के ओसवालों ने भी पटसन व्यापार में बड़ी रुचि दिखाई थी। पूरनचन्द सिंघी सन् 1823 में सुजानगढ़ से कलकत्ता आए। मुर्शिदाबाद के केशवदास सिताबचन्द ने उनका सहयोग किया। पूरनचन्द जी के पोते जेसराज तथा पन्नेचन्द ने जेसराज गिरधारीलाल नाम से फर्म की स्थापना की। सन् 1906 में इस फर्म ने 20 लाख रुपयों की पटसन की गाँठों का व्यापार किया।

❊ लाडनूं के भूतोड़िया परिवारों ने उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में मुर्शिदाबाद के ओसवालों के सहारे बर्धमान में अपना प्रभाव जमाया। यद्यपि भूतोड़िया मुर्शिदाबाद के जैनियो से भिन्न सम्प्रदाय के थे। भूतोड़ियों ने अपने मूल स्थान लाडनूं से निकट का सम्बन्ध बनाए रखा। जैसे-जैसे उनके स्वदेश के अन्य लोग पटसन के व्यवसाय में शामिल होने लगे, वैसे-वैसे वे भी उस व्यवसाय से जुड़ते गए। लेकिन भूतोड़ियों का विशेष ध्यान साहूकारी धन्धे तथा जमीदारियों तक ही सीमित रहा।

❊ विद्वान् लेखक ने सरदारशहर की 14 ओसवाल फर्मों को अपने अध्ययन में शामिल किया था। उनमें सबसे प्रमुख फर्म चैनरूप सम्पतराम की थी। चैनरूप दूगड़ उन्नीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक में कलकत्ता आए। यह कपड़े का सीधा आयात करने वाली पहली मारवाड़ी फर्म थी। प्रथम महायुद्ध से कुछ समय पहले इस फर्म ने अपना कारोबार समेट लिया। उसे केवल साहूकारी तथा जमीनों की खरीद तक सीमित रखा। सम्पतराम ने अपना सारा जीवन सरदारशहर में ही बिताया। उनका काम एजेण्टों के माध्यम से चलता था। उनके प्रमुख कार्यकर्त्ता बीकानेर के बहादुरमल रामपुरिया थे। बहादुरमल ने 1883 में हजारीमल हीरालाल नाम से अपनी अलग फर्म स्थापित की। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद रामपुरियों ने कपड़े की मिल खरीद ली। कलकत्ता के ओसवालों में मिल खरीदने वाले वे पहले व्यक्ति थे।

सरदारशहर की अधिकतर ओसवाल फर्में 1900 के बाद पटसन के काम में शामिल हुईं। ताराचन्द सेठिया उन्नीसवीं सदी के सातवें दशक में कपड़े का व्यापार करने कलकत्ता आए लेकिन 1896 में उनके पुत्र रावतमल ने पाट का काम शुरु कर दिया था। चूरू तथा फतेहपुर से आने वाले ओसवालो ने भी अपना अच्छा स्थान बनाया। रुक्मानन्द बिरधीचन्द नाम की चूरू की फर्म 1836 में स्थापित हो गई थी। 1880 तक कलकत्ता में इस फर्म की 14 शाखाएँ हो गई थीं। ये कपड़े के प्रमुख व्यापारी थे तथा रेली ब्रॉदर्स के प्रमुख खरीददार थे। बाद में यह फर्म चान्दी के सट्टे में उतर गई। 1902 में बड़ी नाजुक स्थिति में इस फर्म ने चान्दी की सप्लाई दी। वह घटना व्यापार के इतिहास में स्मरणीय है।

✲ पटसन के व्यापार में ओसवालों की प्रमुखता देखते हुए यह आशा की जा रही थी कि वे पटसन के क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना करेंगे लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री वेबर ने इसका कारण उनकी जैन-धार्मिक कट्टरता माना है लेकिन यह निष्कर्ष सही नहीं। कलकत्ता के रामपुरिया और इन्दौर के भण्डारी भी तो उनके ही समाज के थे। उन फर्मों को न तो किसी प्रकार का सामाजिक बहिष्कार झेलना पड़ा, न ही उनको कोई अन्य सामाजिक बाधा उत्पन्न हुई।

कुछ विद्वानों ने ओसवालों के उद्योगों में नहीं आने का कारण युद्ध के बाद की अवधि (1919-39) में परम्परागत रूप से की जाने वाली साहूकारी में घटते हुए मुनाफे को बताया है। लेकिन इस काल में भी कपड़े के व्यापारियों की तरह पटसन के ओसवाल व्यापारियों ने काफी पैसा कमाया। इसके अलावा वे सट्टा बाजार में भी प्रमुख रहे। लेकिन उत्पादन प्रक्रिया से जुड़ने में वे हमेशा हिचकते रहे, इसका कारण क्या था?

शायद इसका मुख्य कारण यह था कि पटसन के ओसवाल व्यापारी दलालों के रूप में काम करने के बाद अच्छा खासा पैसा कमाकर अपने स्वदेश चले जाते थे।स्वदेश में उनको अपनी धन-दौलत के कारण यश और प्रतिष्ठा मिलती थी। उनको यह प्रतिष्ठा अति प्रिय थी। वे दिखावे और शानशोकत में अपना धन खर्च करते। फलतः एक लम्बी अवधि तक प्रतिद्वंदिता के क्षेत्र से उन्हें बाहर रहना पड़ता। जिसका नतीजा होता व्यापार पर पकड़ का शिथिल हो जाना।

आभिजात्य के भाव को थामे रखने का एकमात्र आधार पैसा था। अतः ओसवाल भय की स्थिति में रहे कि कहीं पैसा हाथ से निकल नहीं जाए। जोखिम लेने का उनका मादा दिन-दिन कमजोर पड़ता गया और जो जोखिम नहीं ले पाता उसका सब कुछ जोखिम में पड़ जता है। झिझक उनकी संस्कारगत कमजोरी थी।

✲ सरूपचन्द हुकमीचन्द परिवार के सेठ पुसाजी सन् 1789 में लाडनू से इन्दौर आए। यह परिवार खण्डेलवाल जैनी था। अजमेर के भागचन्द सोनी भी इस सम्प्रदाय के थे। इनके अलावा पूर्वी बंगाल के कई व्यापारी जो लाडनू से आए थे, इसी संप्रदाय के थे। जैसे गंगवाल, बगड़ा आदि।

सरूपचन्द हुकमीचन्द के अग्रपुरुष पूसाजी 41 वर्ष की उम्र में होलकर की राजधानी इन्दौर आए। प्रारम्भ में उनके पास थोड़ी पूँजी थी। लेकिन धीरे-धीरे मेहनत से अपनी पूँजी को बढ़ाया। उनकी तीसरी पीढ़ी में उनके एक प्रपौत्र के पुत्रों ने अच्छी प्रगति की। ...के नाम क्रमशः मगनीराम, सरूपमचन्द, ओंकारजी तथा तिलोकचन्द थे। सन्

865 तक इस फर्म के पास कई लाख रुपये की सम्पत्ति हो गई थी। ये होलकर राज्य के ख़ज़ांची बन गए।

तिलोकचन्द के परिवार ने इन्दौर मे ही एक सूती कपड़े की मिल स्थापित की। सन् 886 तक उनकी पूंजी 25-30 लाख तक पहुँच गई थी। सरूपचन्द के पुत्र हुकमचन्द रिवार में सबसे सक्रिय सदस्य थे। कालान्तर में वे भारत के एक माने हुए सटोरिए ी बन गए। इन्दौर में 1909, 1913 और 1928 में उन्होंने तीन मिलों की स्थापना कर ी। 1919 में भागचन्द सोनी की कलकत्ता की शाखा के मैनेजर हरकृष्णदास भट्टड़ के ाथ भारतीय स्वामित्व की पहली जूट मिल की स्थापना की। उन्होंने इस्पात संसाधन ा एक बड़ा कारखाना भी लगाया। एक बीमा कम्पनी भी आरम्भ की। बाद के कुछ र्षों में फर्म को घाटे का सामना करना पड़ा तथा फर्म ने कई मिलों के नियन्त्रण से अपना हाथ हटा लिया। फिर भी यह फर्म बहुत समय तक अपना स्थाइत्व बनाए रख ाई। स्वतन्त्रता के बाद होलकर राज्य का साया उनके सर से हट गया। इन्दौर का औद्योगिक विकास भी तेजी से नहीं हो सका, फिर भी इन्दौर और ग्वालियर मारवाड़ी ातिविधियों के केन्द्र बने रहे।

परिशिष्ट–2

दिगम्बर जैन पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ :

दिगम्बर जैन पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं का यह विवरण लाडनू कस्बे की प्राचीनता को उजागर करने वाला एक आकर्षक अध्याय है। आज़ तक कुल इकतीस प्रतिष्ठाएँ इस शहर में सम्पन्न हो चुकी हैं। जैन सम्प्रदाय के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल श्री सम्मेदशिखर के बाद यह संख्या सर्वाधिक है।

1. संवत् 505 प्रथम पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कोल्हण जी काला ने करवाई, प्रतिष्ठाचार्य भानुनन्दजी थे।

2. संवत् 549 में लालजी गंगवाल ने प्रतिष्ठा करवाई।

3. संवत् 600 में भट्टारक भानुचन्दजी के सान्निध्य में साह लाडणसे ने प्रतिष्ठा करवाई। ससंघ तीन सौ मुनि पधारे। चौबीस करोड़ की राशि खर्च हुई।

4. संवत् 606 में भारीज जी पापड़ीवाल ने माधवचन्द जी के सान्निध्य में प्रतिष्ठा सम्पन्न करवाई।

5. संवत् 616 में दूसरी बार भारीज जी पापड़ीवाल ने प्रतिष्ठा करवाई।

6. संवत् 689 में भट्टारक देवसेन जी के समय में साह जैकुमार ने यह कार्य सम्पन्न किया। 51 मुनिराज पधारे। 14 करोड़ की राशि खर्च हुई।

7. संवत् 795 में भट्टारक विष्णुनन्द जी के सान्निध्य में साह सोढ़ल जी ने प्रतिष्ठा करवाई। 24 लाख रुपये खर्च हुए।

8. संवत् 796 में भट्टारक धर्मचन्द के सान्निध्य में राजू रावका ने प्रतिष्ठा करवाई, उसमें भी 24 लाख रुपए खर्च हुए।

9. संवत् 880 में आचार्य अभयनन्दजी के सान्निध्य में लोहटजी लुहाड़िया ने प्रतिष्ठा करवाई।

10. संवत् 885 में भट्टारक नरचन्द जी के समय में वीरचन्द पहाड़िया ने प्रतिष्ठा करवाई।

11. संवत् 952 में तेजपाल जी साहेमल जी ने आचार्य मूलचन्द जी के सान्निध्य मे प्रतिष्ठा सम्पन्न करवाई।

12. संवत् 1052 में मनहर जी अजमेरा ने आचार्य मूलचन्दजी के सान्निध्य में प्रतिष्ठा सम्पन्न करवाई।

13. संवत् 1052 में सोनपाल जी सोढल जी बड़जात्या बाग नसियां करवाई।

14. संवत् 1101 में किलोजी बेनाड़ा ने प्रतिष्ठा करवाई।

15. संवत् 1110 भट्टारक भावचन्द जी के सान्निध्य में कोलशी बेनाड़ा ने प्रतिष्ठा करवाई। 24 लाख खर्च हुआ।

16. संवत् 1112 में कल्याणजी बेनाड़ा ने प्रतिष्ठा करवाई।

17. संवत् 1125 भट्टारक महाचन्द के सान्निध्य में टोडर भाई दौलत जी साह लाडनूवासी ने अपने गुमास्ते को जिन्स खरीद करने के लिए ग्वालियर भेजा। उसने ग्वालियर के डूँगर पर जिन बिम्ब प्रतिष्ठित करवाए। बाद में साह स्वयं ग्वालियर आए। सब कुछ देखकर प्रसन्न हुए। धनदत्त सेठ की बेटी को अपनी धर्म की बेटी बनाई। पाँच लाख को मायरो दीनो। मन्दिर तथा ग्वालियर किले की प्रतिष्ठाएँ करवाई। तीन करोड़ की राशि खर्च हुई।

18. संवत् 1132 भरतराम जी करथल जी बड़जात्या द्वारा—

19. संवत् 1159 में टोडरमल जी साह द्वारा—

20. संवत् 1272 में बलुसाह जी बड़जात्या द्वारा—

21. संवत् 1334 में कुंभाराम जी पाटणी द्वारा—

22. संवत् 1345 में गोध जी काशलीवाल द्वारा—

23. संवत् 1351 में भट्टारक प्रभाचन्द जी कीर्ति के सान्निध्य में सूरजमल भैंसा द्वारा।

24. वि. संवत् 1352 में थेला जी सुजाजी बड़जात्या ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भट्टारक प्रभाचन्दजी के सान्निध्य में करवाई। इसमें एक कुलमी दक्षिण से आया। उसने 13 हजार मोहरों में बोली ली और प्रतिष्ठा में आने वालों को भोजन करवाया। भोजन करने वाले लोहड़ साजन कहलाए। इस प्रतिष्ठा में 1500 मुनिराज, 300 आर्यिकाएँ, 714 छोटी आर्यिकाएँ और 1800 उपाध्याय पण्डित आदि शामिल हुए। इसमें प्रतिष्ठित पद्म-प्रभु की मूर्ति जयपुर के छाबड़ों के मन्दिर में विराजित है।

25. संवत् 1352 बैशाख सुदी 7 को थेलाजी सुजाजी बड़जात्या ने प्रतिष्ठा करवाई।

26. संवत् 1987 बैशाख कृष्णा 5, बड़े मन्दिर के शिखर की प्रतिष्ठा सेठ सुखदेवजी, भैरूदानजी, तोलारामजी, बच्छराजजी, हंसराजजी, गजराजजी गंगवाल ने करवाई।

27. संवत् 2015 बैशाख शुक्ला 7, पं. नाथूलालजी शास्त्री इन्दौर वालों के प्रतिष्ठाचार्यत्व में श्री आदिनाथ जैन मन्दिर की प्रतिष्ठा सेठ सुखदेव जी गंगवाल के पुत्रों ने करवाई।

28. संवत् 2016 माघ शुक्ला 14, श्री चन्द्रसागर स्मारक की प्रतिष्ठा सेठ माँगीलाल रामनिवास अग्रवाल, लाडनूं ने करवाई।

29. संवत् 2018 फागुन शुक्ला 7, सोमवार को श्री दिगम्बर जैन नसियां के मान-स्तम्भ की प्रतिष्ठा, लाडनू निवासी सेठ केशरीचन्द निहालचन्द अग्रवाल ने करवाई।

30. संवत् 2025 में आचार्य विमल सागरजी ने अनेक जैन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाकर बाहर भेजी।

31. संवत् 2041 फागुन सुदी-7, श्री चन्द्रसागर स्मारक के मन्दिर पर शिखर एवं भगवान शान्तिनाथ की बिम्ब प्रतिष्ठा करवाई सुजानगढ़ निवासी सेठ श्री नेमीचन्द हीरालाल पाटणी ने।

उपरोक्त प्रतिष्ठाओं में से क्रम संख्या-2, 4, 6, 7, 9, 16 तथा 22—इन सात प्रतिष्ठाओं का विवरण 10 फरवरी, 1972 के साप्ताहिक जैन गजट में पं. श्री श्रीनिवासजी शास्त्री के एक लेख – 'प्राचीन प्रतिष्ठाएँ एवं कुन्दकुन्द स्वामी का इतिवृत्त' में प्रकाशित हैं। पण्डित जी ने यह लेख झालरा पाटण के श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में उपलब्ध एक प्राचीन गुच्छक के आधार पर लिखा था। शेष क्रमांक-1, 8, 10, 12, 13, 14, 15, 17 से लेकर 22 तक की प्रतिष्ठाओं का विवरण श्री रतनलाल भाट, ग्राम सीवर, अजमेर की प्राचीन बहियों पर अधारित है।

परिशिष्ट—3

लाडनू से प्राप्त प्राचीन शिलालेख :

इतिहास जानने के अनेक साधनों में प्राचीन शिलालेख मुख्य साधन हैं। लाडनू कस्बे में अनेक पुराने शिलालेख उपलब्ध हैं। यद्यपि इनमें से अधिकतर क्षतिग्रस्त हैं, फिर भी कस्बे की प्राचीनता उजागर करने में वे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अधिकतर शिलालेख देवनागरी लिपी तथा संस्कृत भाषा में हैं। कुछ शिलालेख फारसी में हैं, कुछ अरबी में भी।

बड़े जैन मन्दिर से प्राप्त शिलालेख :

1. लाडनू के प्राचीन जैन मन्दिर में 16वें तीर्थंकर भगवान शान्तिनाथ की मनोहारी मूर्ति के तोरण के नीचे दाईं ओर की पीठिका पर तथा ऊपरी स्तम्भ के शीर्ष पर दो अलग-अलग लेख हैं—

(अ) नीचे की पीठिका का लेख—संवत् 1136, आषाढ़ सुदी 8, माथुर संघे आचार्यश्री गुणकीर्ति भक्त साहु देल्हसुत श्रेष्ठी बहुदेव सर्वे देवाभ्याम् शान्तिनाथ प्रतिमाकारिता।

(ब) ऊपरी भाग का लेख—संवत् 1219 बैसाख सुदी 7, साधु सर्वदेव पत्नी सावविद्या तोरणं श्रेयसे कारितमिदं।

2. भगवान अजितनाथ की प्रतिमा पर अंकित लेख—संवत् 1209 बैशाख सुदी 13, श्री माथुर संघे जिमाजितार्च्चस्य सुतः यणोति लक्ष्मीधरो नाग कुमार पुत्रः अनन्तकीर्ति ह्यसूरिणां प्रतिष्ठिता श्रेष्ठ फलाप्ति। हेतो। मंगलमस्तु।

3. सफेद संगमर्मर की पद्मासन मुद्रा में चौदहवें तीर्थंकर अभिनन्दन नाथ की मूर्ति के पाद पीठ पर अंकित लेख इस प्रकार हैं—

संवत् 1209, बैसाख सुदी 13
प्रतिमा सांग पुत्रेन तील्हेनेयमुत्तमा।
अनन्त कीर्ति भक्तेन कारिता पुण्य हेतवे॥

4. पद्मासन में सफेद संगमर्मर की एक जिन प्रतिभा चिह्न रहित है। उस पर लेख इस प्रकार है—संवत् 1209 बैसाख सुदी 13, सावडास्य..........तज्जेत जिनचन्देण कारिता। अनन्तकीर्ति भक्तेन प्रतिमा श्रेयसे श्रुता॥ माथुर संघे॥

5. सफेद संगमर्मर की आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु की प्रतिमा का लेख—संवत् 1219 बैसाख सुदी 4, माथुर संघे श्री श्री श्री अनन्तकीर्ति सम्बोधितदालूण........मति।

6. पद्मासन मुद्रा में संगमर्मर की सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ की भव्य मूर्ति का लेख अंशतः ही पढ़ा जा सकता है—संवत् 1240 वैशाख सुदी 9 मण्डलपाल मूलसंघेः ....

7. संगमर्मर में निर्मित पद्मासन मुद्रा में भगवान शान्तिनाथ की एक अन्य प्रतिमा पर लेख अस्पष्ट है। जो कुछ भी पढ़ने में आता है, वह इस प्रकार है—संवत् 1244 आषाढ़ सुदी 3.......

8. मन्दिर में अवस्थित सरस्वती की प्रसिद्ध मूर्ति के पादपीठ पर उत्कीर्ण तीन पंक्तियों का लेख इस प्रकार है—

संवत् 1219 वैशाख सुदी 3, शुक्रे ॥ श्री माथुर संघे ॥

आचार्यश्री अनन्तकीर्ति भक्त श्रेष्ठि बहुदेव पत्नी आसादेवी सकुटुम्ब सरस्वतीम् प्रणमति ॥ शुभमस्तु ॥

9. उपरोक्त सरस्वती प्रतिमा के पास ही स्थित आराधिका की मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख इस प्रकार है—संवत् 1226 माघ सुदी 13 सौरव्य संप्रासि......प्रतिमा प्रतिष्ठिता सिद्धै.........करिता। कृति........।

10. कायोत्सर्ग मुद्रा में सफेद संगमर्मर में बनी भगवान पार्श्वनाथ की दो मूर्तियों के पाद पीठ पर अंकित लेख यद्यपि क्षतिग्रस्त हो गया है, उसका जो भी अंश पढ़ने में आता है, वह इस प्रकार है—संवत् 1209 चैत सुदी 11 सांतिसुतेक सेढ़ेक का जा पिता ....

11. भगवान पार्श्वनाथ की नौ नागफण युक्त काले संगमर्मर में बनी प्रतिमा के पादपीठ पर अंकित लेख—संवत् 1145 जेठ सुदी 5 गुनौ मूल संघे साहु बालचन्द (सुत) उदयदेव पुत्र सुरपालेन श्रेयार्थ प्रतिमाकारिता।

12. त्रितीर्थी धातु प्रतिमा—एक ही धातु फलक पर खड्गासन मुद्रा में तीन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। इनमें अंकित चिह्नों के आधार पर दाईं ओर की प्रतिमा सोलवें तीर्थंकर शान्तिनाथ, बार्यी ओर की चौदहवें तीर्थंकर अनन्त नाथ तथा मध्य की चौबीसवें ... भगवान महावीर की हैं। इसके पृष्ठ भाग पर संवत् 1219 अंकित है।

13. अष्ट धातु निर्मित भगवान ऋषभदेव की पद्मासन मुद्रा में बनी प्रतिमा के पृष्ठ भाग पर एक प्रसिद्ध लेख है, जो इस प्रकार है—संवत् 1226 फाल्गुन बदी 2, बुधे श्री माथुर संघे आचार्यश्री अनन्त कीर्ति भक्त खांडिल्ल पाल वंशीय श्रेष्ठीतय बहुदेव सुत महिपति दामोदर माधवे: दामोदर तत्पत्नी शान्ति का पुत्री जल्नो श्रेयर्ति चतुर्विंशति का जिन बिम्बानाम सोमनां कारितेति।

14. एक अन्य प्रसिद्ध लेख—संवत् 1201 जेष्ठ सुदी 10 शनौ संघमुपे श्रीमति माथुराणा मासीद गणि श्री गुणकीर्ति सूरि॥ अनन्त कीर्ति प्रमुखस्तु शिष्योमदीय कीर्तिर्न्निन भागो जगत्यां पादुका युगल तस्येयं गीणगणौ देवरान् क्षेत्रं मानमसोत महीपती पुन:॥ कल्याणा श्री॥

15. अष्टधातु के बने हुए चौबीस तीर्थंकरों के एक फलक के मध्य में दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ की प्रतिमा के सामने एक अस्पष्ट लेख है, जिसमें मात्र संवत् 1510 वर्षे..... ही पढ़ने में आता है।

16. चरण पादुका युक्त लेख—प्राचीन मन्दिर (तलघर स्थित) के भीतर मुख्य वेदी के बाईं ओर के मध्यवर्ती दो खम्भों पर चरण पादुका युक्त दो लेख हैं। इनमें दायीं ओर के खम्भे का लेख (अस्पष्ट) इस प्रकार है—1। संवत् 1201 पौष सुदी 10 गतो संघेयेशीम-ति मासुरा मामासीद गणी श्री गुणकीर्तिसूरि: ॥ अनन्तकीर्ति प्रमुखो रुणि पौर्य दीपकीर्ति: क्षेमेमौ॥ जयतु। पादुका युगलं रणुणोदवेशनं। क्षेत्रगातसमासां तु शांतुमति प्रतिष्ठित:।

17. बाईं ओर का चरण पादुका युक्त स्तम्भ लेख—

पण्डित श्री यश: कीर्तिरमलं पादुका युग-

मासीमद्वरदरुण्स्य देल्हाधाने मुरंगडा:।

विश्वकर्म्य प्रवीणेन गणादिता साम्रनुमाम्रिनवारामे-

ते नेदं कृतं देवकुलवरम्। मंगलं भवतु॥

18. भगवान शान्तिनाथ वेदी के मुख्य द्वार के भीतरी दीवार से संलग्न स्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख, जिसके नीचे श्रुतभक्ति एवं वंदना में लीन श्रावक-श्राविकाओं का अंकन है, इस प्रकार है—आचार्यश्री अनन्त कीर्ति॥ सद्वीपनि शीतल: देववर:॥

19. इसी के बाईं ओर के स्तम्भ पर भी एक पंक्ति के लेख का सिर्फ अन्तिम शब्द—मुनिचन्द्र ही पढ़ने में आता है।

20. इसी के बगल वाले एक स्तम्भ का लेख इस प्रकार है—आचार्यश्री चन्द्रकीर्ति तद्वीय शिष्य श्री कल्पदेव........ ।

21. मन्दिर के प्रमुख द्वार पर सबसे ऊपरी भाग में छत से स्पर्श करते हुए पत्थर पर एक ही पंक्ति में करीब चार फीट से अधिक लम्बाई में एक लेख उत्कीर्ण है, जो इस प्रकार पढ़ा जाता है—

श्रीदेवालय.......न्वय श्री पासादचर्या बहुज्ञात-नृपः ।

सुमेयुत्कट प्रतिमा........समानारुय प्रमोदी भवि सेठाः ॥ ।॥

.........................बहुदेवा कारितं जिनमन्दिरम् ।

सद्देवानु..........ना श्रेयसे........नंद्विता धिरम् ॥2॥

श्री शान्तिनाथ गोबुकाना प्रतीवरुक्तानां सद्विषां क्षेममञ्जिति ।

22. इसी द्वार के बाहर सामने चौक में प्राचीन मन्दिर के तीस खम्भे हैं। एक खम्भे पर प्राचीन लिपि में लेख है, जो पढ़ने में नहीं आता।

सेवग चौक स्थित श्री शान्तिनाथ श्वेताम्बर जैन मन्दिर सम्बन्धित शिलालेख :

1. मन्दिर की चुनाई में लगे एक शिला प्रस्तर अवशेष पर निम्न लेख अंकित है—............ वि. संवत् 1352 जेष्ठ बदी 6 सोमे बी. श्री गोठ गोती केन भार्या सलूणादेवीय पयाइध उन श्रीशान्तिनाथ चैत्ये श्री पार्श्वनाथ देव बिम्ब ....प छै। अदानुतम्रा......सुचित्रयं छै। श्री देवेन्द्र सूरि शिष्य श्री धर्मदेव सूरि लोढ़ा गोत्रे न्यास पइठा कालेस नामे कारितं प्रतिष्ठतं...............श्री नेमीनाथान्वय.....म गणी।

2. संवत् 1353 फागुन सुदी.......सालूणा दे सुत सागर पौत्र श्रेयसे श्री आदिनाथ बिम्ब का प्रति श्री धर्मदेव सूरि...... ।

3. मूल नायक की प्रतिमा का लेख—सं. 1495 वर्षे श्री शान्तिनाथ बिम्बं कारितं साक्षरतंः श्री जिन सागर सूरिभिः ।

4. संवत् 1506 फागुन सुदी 9 शुक्रे सुराणा गोति सं. सूमरा नापासा की पुत्र सं खीमा पिता पुण्यार्थ श्री मुनि सुव्रत बिम्ब का प्रति श्री धर्मघोष गच्छे पद्मानन्द सूरिभिः ।

5. वि.सं. 1510 माघ सुदी 5 को चण्डालिया कालाशाह की पुत्रवधु हरखमि दे ने मल्लधारी गच्छीय गुण सुन्दर गणी के तत्त्वावधान में कुंथुनाथ बिम्ब प्रतिष्ठित करवाया।

6. श्री तख्तसिंह जी विजयराजे 1905 जेठ मासे 5 भीतियां भोम-वासरे श्री लाडणू नगरे सकल समस्त संघ प्रमुख प्रतापसिंह दूगड़ उपदेशात श्री शान्तिनाथ मन्दिर जीर्णोद्धार पंडित उदयभानु जती हस्ते।

अन्य प्रसिद्ध शिलालेख :

1. संवत् 198 : सम्भवतः यह कलचुरी सम्वत् है, जो विक्रम संवत् 504 के तुल्य है। डाहलिया वंश से सम्बन्धित यह शिलालेख इस पुस्तक के पृष्ठ 93, 94 पर फलक सहित अंकित है।

2. संवत् 936 : यह शिलालेख डाहलिया वंश के प्रसिद्ध शासक कोकलदेव से सम्बन्धित है। यह भी फलक सहित पृष्ठ 93, 94 पर अंकित है।

3. संवत् 1010 : आहुति सम्बन्धी यह शिलालेख इस पुस्तक के पृष्ठ संख्या 75 पर फलक सहित अंकित है।

4. संवत् 1187 : बागड़ी शासक देवराज से सम्बन्धित यह शिलालेख पृष्ठ संख्या 106 पर चित्र सहित अंकित है।

5. संवत् 1373 : यह शिलालेख स्थानीय ऐतिहासिक बावड़ी से सम्बन्धित है। लाडनू की प्रसिद्ध बावड़ी का मूल लेख संस्कृत में है। जगह-जगह क्षतिग्रस्त है। उसका हिन्दी आशय इस प्रकार है—लेख में हरिताण (हरियाणा) प्रदेश के नगर ढिल्ली (दिल्ली) के मुसलमान शासकों की वंशावली दी गई है। साब्बदीन, कुत्बुदीन, समसदीन, पेरोजसाही, अलावदीन, मोजदीन, नसरुदीन, गयासदीन, कुद्दी अलावदीन। बावड़ी खुदवाने के समय कुद्दी अलावदीन दिल्ली का शासक था। (बावड़ी साधारण नाम के एक व्यक्ति द्वारा खुदवाई गई थी) साधारण ने लेख में अपना वंश परिचय दिया है। पश्चिम दिशा में इष्ठ (इतिहासकार रामकरण आसोपा ने इसे उई पढ़ा है) नामक स्थान पर कस्यप गोत्रीय क्षत्री भुवनपाल रहता था। भुवनपाल का पुत्र नाल्हड़ हुआ। नाल्हड़ का कीर्तिपाल। कीर्तिपाल की पत्नी का नाम भी नाल्हड़ था, जिससे साधारण जन्मा।

इसके बाद साधारण के मातृपक्ष का परिचय है। साधारण नाम के क्षत्रीय से जोणपाल नामक पुत्र हुआ। जोणपाल के जूमा। जूमा की पत्नी का नाम जोई था। जोई से नाल्हड़

नाम की कन्या हुई। वही साधारण की माँ थी। उसके बाद साधारण के ससुरपक्ष का परिचय है। दिवणपुर में हरिपाल नामक क्षत्रीय रहता था। उसका पुत्र सादड़ हुआ। सादड़ के नागी नाम की पुत्री थी, जिसका विवाह साधारण से हुआ।

भण्डारकर द्वारा प्रोग्रेसिव रिपोर्ट ऑफ सर्वे ऑफ इण्डिया सन् 1906-07 पृष्ठ 31 पर निर्देशित, रामकरण आसोपा द्वारा एपीग्राफिया इंडिका खण्ड-12, पृष्ठ 23 पर फलक सहित सम्पादित।

शिलालेख की तिथि—संवत् 1373 वर्षे भाद्र वदी 3, शुक्र दिने।

6. संवत् 1489 : गंजशहीदां शिलालेख--वि. संवत् 1489 आसोज दशमी श्री राव भोजराज जी गंज शहीदां री दरगाह एक बणाई अगूण आथूण धरती एक (1) बीघा में कोई दखल ना करने पावे श्री हजूर रो हुकम छै। संवत् 1489 आसोज 10 दशहरा।

7. संवत् 1544 : चारण जसुदान सामौर को राव जयसिंह मोहिल द्वारा दिए गए भूमिदान सम्बन्धी ताम्र पत्र का लेख इस प्रकार है—श्री क्रसन जी (तलवार का सनद चिह्न) श्री परमेसरजी (किनारे पर बसने बाड़ी बीघा बारा लिखा है) रावजी श्री जै सींघ जी वचनायत सामौर जसुदान ने इनायत धरती बीघा 1050 (1500) पन रा सौ कसबे लाडणु रे कांकड़ सरहद आथू...णी में दीवी सो इणरी आलऔलाद.....पायां जावसी सदा रावजी ने दवा (दुआ) देसी संवत् 1544 रा मिती बैसाख सुदी 11, मुकाम लोहागर जी॥ आपदत परदंत ने मेटे वसुंधरा ते लोकं नरग जायेते जब लग चंद दवाकरा। आप......दंत परदतं जो पालं त वसुंधरा सो सदे सरग जायते तव लग चंद दवाकरा (चन्द्र दिवाकरौ).....

8. संवत् 1760 : महावीर हीरोज भवन में बनी छतरी किसी भट्टारक जी के स्मारक रूप में है। इसकी चरणपादुका पट्ट पर लेख इस प्रकार है—संवत् 1760 बैसाख बदी 2, सोमवार भट्टारक श्री सदश्रकीर्ति जी की पादुका।

9. संवत् 1781 : पुरा नाम से पहचाने जाने वाले स्थापत्य अवशेष पर संवत् 1781 चेत सुदी 10 का एक लेख अंकित है। लेख का पूरा विवरण पुस्तक में पृष्ठ संख्या 167 पर चित्र सहित प्रकाशित है।

10. संवत् 1835 : सन्त गोविन्ददास की छत्री पर बनी चरण पादुकाओं के साथ अंकित लेख में माघ बदी 5 संवत् 1835 का अंकन है, जो उनके देहावसान का दिन है।

11. संवत् 1839 : लाडनू के जोधा शासकों के स्मारक स्वरूप बनी ठाकुर शिवदानसिंह की बीस स्तम्भ वाली छत्री का लेख इस प्रकार है–

"वि. संवत् 1839 का माह वद 2 ठाकुरां राजश्री शिवदान सिंह भारतसिंहोत खांप जोधा केसरीसिंहोत महाराजा धिराज श्री 108 श्री विजयसिंह जी री सलामती में उमरकोट तालपुरा घेरो दिया तणां रसद पहुंचावण नै विदा किया तणा तालपुरा सूं झघड़ो हुवो श्रीदरबार री फतेह हुई रसदकोट में बाड़ी तालपुरा ने हटाय ने श्री दरबर री फतै करने काका रामसिंह ने बेटा मालमसिंह वगैरे आसामी रूप सूं काम आया। तिण ऊपर राजश्री मंगलसिंह जी पद्मसिंहोत लाडनू तिणरी चार परताप में माजी श्री ठाकुर श्री शिवदानसिंहजी री लोढ़ी बहूजी श्री सेखावत जी छत्री कराई। तिणरी प्रतिष्ठा बैसाख सुदी 3 वार भोमवासरे हस्ते वेदिया रिखराम। कमठा में रुपया 925 लागा। कारीगर सीलावट कुचेरा रा भाइसा इस्माल खाँ। दसकत बिरामण दौलत राम रा छै। मुंडा आगे सेखावत जी सिरी आपरी बैठाई।

12. संवत् 1914 : यह देवळी सहित शिलालेख लोहड़ियाँ श्मसान स्थल पर एक चबूतरे पर लगा हुआ है। लेख इस प्रकार है–संवत् 1914 पो सुदी 15 कालूसिंह तंवर पनेसिंह जी का काला री फौज में काम आया राज श्री बादरसिंह जी।

लाडनू के अरबी फारसी शिलालेख :

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नागपुर के तत्त्वावधान में लाडनू के अरबी फारसी शिलालेखों का कई बार सर्वेक्षण हो चुका है। इस सर्वेक्षण का शुभारम्भ 1949-50 में हुआ था। उसके उपरान्त यह क्रम 1968-69, 69-70 से 1976 तक चलता रहा। अन्तिम सर्वेक्षण में विभाग के तत्कालीन निर्देशक डॉ. जेड.ए. देसाई (जियाउद्दीन देसाई) स्वयं लाडनू आए। डॉ. देसाई ने उपरोक्त सभी सर्वेक्षणों के आधार पर अपना एक लेख IN-SCRIPTION OF FIRUZ SHAH TUGHLUQ नाम से लिखा था, जो एपीग्राफिया इण्डिका अरबी फारसी सप्लीमेण्ट 1972 के अंक में प्रकाशित हुआ था। यह सारा लेख लाडनू से प्राप्त फिरोजशाह तुगलक के शिलालेखों से ही सम्बन्धित था।

उनकी नजरों में लाडनू मुसलमान शासन के सल्तनत काल (ई. सन् 1209) से ही एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इस स्थान पर करीब एक दर्जन अरबी फारसी शिलालेख

उपलब्ध हुए हैं, जिनमें छः तो तेरहवीं सदी, तीन चौदहवीं (तुगलक काल के) तथा एक पन्द्रहवीं सदी का खानजादा वंश के शासन काल का है। उपरोक्त विभाग द्वारा कुल ग्यारह शिलालेख पंजीकृत किए गए, जिनकी विभागीय क्रम संख्या 310 से 320 है। उनका विवरण इस प्रकार है—

1. विभागीय क्र.सं. 310
स्थान : उमरशाह गाजी की दरगाह के पीछे के कब्रीस्तान में एक कब्र
समय : हिजरी 638, रमजान, सोमवार, तद्नुसार, ई. सन् मार्च 8, 1241
इकबाल सुल्तानशाही के पुत्र मुहम्मद की मृत्यु का लेख—
(किसी राजवंश का कोई संकेत नहीं)

2. क्र.सं. 311
स्थान : ऊपर वर्णित कब्रीस्तान
समय : हिजरी 638=1241 ई. सन्
इकबाल सुल्तानशाही के पुत्र मुहम्मद का नामोल्लेख

3. क्रम संख्या-312 व 313
स्थान : ऊपर वर्णित कब्रीस्तान
समय : हिजरी 684 ढुल हिज्जा-1=28 जनवरी, 1286
दोनों ही शिलालेख क्षतिग्रस्त हालत में हैं। सिर्फ इकबाल सुल्तानशाही का नाम पढ़ा जा सकता है।

4. क्रम संख्या-314
स्थान : ऊपर वर्णित कब्रीस्तान
तेरहवीं शताब्दी की तर्ज पर
लेख : अल-मुल्कु लिल्लाह=समस्त साम्राज्य अल्ला का है

5. क्रम संख्या-315; ऊपर वर्णित कब्रगाह, अलग रखे हुए पत्थर के एक शिलापट पर; सुल्तान का नाम तुगलक शाह; शिलालेख क्षतिग्रस्त हालत में हैं। विवरण में सिर्फ सुल्तान का नाम और उसके कुछ खिताबों का उल्लेख है।

6. क्रम संख्या-316; उपरोक्त कब्रगाह; समय—क्रम संख्या 10 में वर्णित तर्ज पर; लेख क्षतिग्रस्त हालत में हैं; किसी निर्माण कार्य के बाबत प्रतीत होता है।

7. क्रम संख्या-317; उमरशाह गाजी की दरगाह के पास की एक दीवार पर—
समय : हिजरी 772 ढुलकाजा 27=12 जून, 1371
राजवंश : तुगलक; सुलतान : फिरोज शाह
विवरण—महान् सेनापति फिरोज धनसुरि के पुत्र मुहम्मद के संकेत पर—मलिकी-मुलकि, शर्क—सक्काबेकी खास—दबलन सुल्तानी की राजकीय देखरेख में—दबलन के पुत्र मलिकु-शर्क शमसुद्दीन इलियास की नायबत में—क्षतिग्रस्त जामी मस्जिद का पुनरूद्धार करवाया गया—विभागीय स्रोत : ई.आई.एम.-1949-50, पृ. 19, Pl] xa; ए.आर.आई.ई.; नया सर्वेक्षण 1968-69, D-415

8. क्रम संख्या-318; स्थान : हदीरा वाली मस्जिद की बीच की मेहराब पर; समय : हिजरी 780, शब्बान-10=2 दिसम्बर 1378; राजवंश : तुगलक; सुल्तान : फिरोजशाह शिलालेख का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तरण—
उथमान के पुत्र मलिकु शर्क इख्तियारुदौलतवादीन चुपन की देखरेख में मुबारक के पुत्र अल्लाउद्दीन उर्फ भोजा मोहिल के पुत्र जिख (जैसिंह) द्वारा मस्जिद का निर्माण करवाया गया। स्रोत : ए.आर.आई.ई. 1969-70, D-161

9. क्रम संख्या-319; स्थान गढ़ के मुख्य द्वार के बाईं तरफ दीवार पर; समय : हिजरी 887; सफर-6=27 मार्च, 1482; शासन : नागौर के खानजादा' शासक : फिरोज खाँ; शिलालेख क्षतिग्रस्त था। शिलालेख का हिन्दी रूपान्तरण : कस्बे के फौजदार व राज्यपाल मलिकी मुलुकी शर्क इब्राहिम J (Ch ?) इमाम खाँ किशलूखानी के कार्यकाल में-रुक्न टाक कंजा (किंजा) के पुत्र आसद की देखरेख में कस्बे के किले तथा दरवाजे की मरम्मत तथा नए महल के निर्माण का कार्य सम्पन्न हुआ। स्रोत—ई.आई.एम. 1949-50 (जहाँ इसे भूल से डीडवाना से प्राप्त दर्शा दिया गया था)। नया सर्वेक्षण—ए. आर.आई.ई. 1969-70, D-160

10. क्रम संख्या-320; हदीरा स्थित मकबरा; बीच की कब्र के सिर और पैर दोनों तरफ लेख है।
समय : ढुल हिजा 8 (15वीं शताब्दी की तर्ज पर), शिलालेख अपठनीय, विवरण स्पष्ट नहीं।

सतियों की देवलियों के शिलालेख :

लोहड़िया श्मशान पर करीब चार सतियों की देवलियाँ स्थापित हैं। सिर्फ एक का लेख ही अंश रूप से पठनीय है। संवत् 1725 जेठ सुदी 3 खातण ना...पी......सती....

जोगीदड़ा श्मशान भूमि पर करीब पांच सतियों के गुमटी नुमा देवरे स्थित हैं। प्रयत्न करने पर उनके लेख पढ़े जा सकते हैं।

ब्राह्मण स्वर्णकारों के सार्वजनिक भवन गोविन्द भवन में तीन सतियों की देवलियाँ स्थापित हैं। लेख अपठनीय हैं।

परिशिष्ट—4

कालचक्र के सशक्त पहिए सतत चलते रहते हैं। उनकी पुरानी लीकें मिटती रहती हैं और नई उभरती जाती हैं। फिर भी किनारों पर यत्र-तत्र पुरानी लीकों के निशान बच ही जाते हैं जो संकेत भर देते हैं कि इस रास्ते से कुछ और लोग भी चले थे। कभी-कभी इधर-उधर दबे हुए उनके चन्द अवशेष समय की गर्द को झाड़कर झांकने लगते हैं और धुंधला-सा आभास जताते रहते हैं अतीत की उन यात्राओं का।

यदाकदा शहर के नए निर्माणों के सम्बन्ध में होने वाली खुदाइयों में कुछ ऐसी वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं जो शहर के प्राचीन इतिहास की एक झलक भर दे पाती हैं। कई ऐसे सजीव प्रमाण जाने-अनजाने नष्ट भी किए जा चुके हैं। इस शहर के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली कुछ सामग्री, यथा—शिलालेख, अभिलेख, मूर्तियाँ, तिथियाँ तथा भग्नावशेष, जिनको मूल लेखन में समाहित करना सम्भव नहीं हो सका और जो इस शहर के इतिहास के महत्त्वपूर्ण दस्तावेज हैं—प्रसंगवश उन्हें यहाँ सूचीबद्ध किया जा रहा है।

सूर्य मूर्ति :

सात घोड़ों पर सवार लाल पत्थर में उत्कीर्ण सूर्यदेव की एक भव्य प्रतिमा गढ़ के पिछवाड़े स्थित ठाकुरजी के मन्दिर में रखी हुई थी। घरेलू खुदाइयों में अनायास प्राप्त होने वाली इन मूर्तियों को मन्दिरों में रख देने की प्रथा थी। विदित रहे राठौड़ सूर्यवंशी थे और सूर्य पूजा उनका कुल विधान था। इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं उस मूर्ति को देखा था। उस मूर्ति के साथ करीब बीस पच्चीस की संख्या में अन्य मूर्तियाँ भी थीं। गत शताब्दी के सातवें दशक की यह बात है। अब वह मूर्ति संग्रह वहाँ नहीं है।

चतुर्भुजी दुर्गा मूर्ति :

स्थानीय पत्थर में उत्कीर्ण यह अति सुन्दर मूर्ति 'समाध' नाम से जानी जाने वाली भूमि में बनी एक त्रिदरी की पीछे की दीवार में एक भैरव मूर्ति के साथ चुनी हुई थी। किसी जमाने में यह समाध स्थानीय सीतारामजी के मन्दिर के पुजारियों का श्मशान स्थल था। यह सिंहवाहिनी महिषासुर मर्दिनी दुर्गा की चतुर्भुजी मूर्ति है। मूर्ति गांधार शैली की है तथा कला का बेजोड़ नमूना है। इसी के साथ लगी हुई भैरव की मूर्ति भी कलात्मक है। भैरव घोड़े पर सवार है तथा घोड़े का मुख खण्डित है।

प्राचीन गणेश मूर्तियाँ :

गणेश की अनेक कलात्मक मूर्तियाँ इस कस्बे में उपलब्ध हैं। गढ़ के पिछवाड़े स्थित ठाकुरजी के मन्दिर में नृत्यरत गणेश की एक सुन्दर मूर्ति है।

चारभुजा नाथ मन्दिर के शिवालय में मोदक भक्षण करते हुए गणेश की मूर्ति भी अति प्राचीन है। यह भी लाल पत्थर में उत्कीर्ण है तथा इसकी नाप 18''×16'' है।

दाहिमा ब्राह्मणों के पुराने मोहल्ले में भी पूर्वमुखी एक घर के मुख द्वार पर एक पुरानी गणेश प्रतिमा लगी हुई है।

जो'ड़ नामक स्थान पर स्थित लाडनू ठाकुर साहब के बंगले में भी एक प्राचीन गणेश की मूर्ति रखी हुई है। यह मूर्ति पुराने गढ़ से वहाँ ले जाई गई थी। यह मूर्ति भी कलात्मक है तथा ईर्द-गिर्द ऋद्धि-सिद्धि भी उकेरित हैं।

श्री मोतीसिंह जोधा के पास भी गणेश की एक सुन्दर प्रतिमा है। यह प्रतिमा उन्हें अपना निजी भवन बनाते समय जमीन में मिले अन्य तराशे हुए पत्थरों के साथ प्राप्त हुई थी।

स्थापत्य अवशेष :

बाहरी हमलावरों द्वारा समय-समय पर मन्दिर तथा मूर्तियाँ तोड़ने का क्रम जारी रहा। करीब-करीब सभी हिन्दू मन्दिर ध्वस्त कर दिए गए, जिनके अवशेष यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। स्थानीय गढ़ के पुनर्निर्मित भाग तथा चारों ओर की खाई में हिन्दू मन्दिरों के अवशेष यत्र-तत्र आडे-तिरछे चुने हुए दृष्टिगोचर होते थे। चारभुजानाथ मन्दिर के सामने भी इस तरह के कुछ स्तम्भ अवशेष रखे पड़े थे। विदित रहे लाडनू का यह एातहासक गढ़ अब भूमसात कर ादया गया ह।

अभी हाल ही में गढ़ अहाते में कुछ खण्डित मूर्तियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिसमें एक पशुपतिनाथ शिव का है। अन्य खण्डित प्रस्तर खण्डों पर हाथी तथा लक्ष्मी की मूर्ति अंकित है। उपरोक्त पशुपति नाथ की प्रतिमा काले पत्थर की है तथा शेष टुकड़े भूरे बलुआ रंग के पत्थर में हैं। विदित रहे इस कस्बे के पुराने शासक डाहलिया शैव थे। एक भगवान शंकर और पार्वती की नन्दी पर सवार प्रतिमा जोड़ स्थित बंगले की दीवार पर स्थापित की हुई है, जो किसी समय पुराने गढ़ में मुख्य भवन के सामने की दीवार पर लगी हुई थी। इसी क्रम में एक अन्य नारी प्रतिमा भी है।

पुराना जैन मन्दिर :

इस कस्बे की प्राचीनता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है झण्डाचौक के पास शहर के करीब-करीब मध्य भाग में स्थित बड़े जैन मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध 'जैन मन्दिर'। मन्दिर की प्राचीनता इस बात से भी प्रमाणित हो जाती है कि मन्दिर के चारों ओर का सारा भू-भाग मन्दिर की मुख्य वेदी की तुलना में करीब आठ-नौ फीट ऊपर आ गया है। एक लम्बी काल-यात्रा में मिट्टी की परत पर परत जमते रहने से ऐसा घटित हुआ। चारों तरफ के आवास बनते रहे, बिखरते रहे, फिर उभरते रहे। लेकिन मन्दिर यथावत रहा।

यह भी सम्भव है कि बाहरी हमलावरों द्वारा मन्दिर ध्वस्त कर दिए जाने की आशंका से इसे रेत में दबा दिया गया हो। किसी सुरक्षित काल में फिर निकाल लिया गया हो।

मुख्य वेदी पर जैन परम्परा के सोलवें तीर्थंकर भगवान शांतिनाथ की मनोहारी प्रतिमा विराजित है। इस प्रतिमा के ठीक सामने संगमर्मर पत्थर में निर्मित एक तोरणद्वार है। यह तोरणद्वार भी शिल्पकला का अनुपम नमूना है। तोरण के दक्षिणी पीठिका पर संवत् 1136 आषाढ़ शुक्ला 8 का लेख अंकित है। इसी वेदिका कक्ष में द्वितीय तीर्थंकर भगवान् अजितनाथ की ज्योतिर्मयी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा संवत् 1209 बैशाख शुक्ला 13 को हुई थी। हस्ति चिह्न के सामने भी संगमर्मर का बना हुआ कलापूर्ण तोरणद्वार लगा हुआ है। सुदरासन नामक गाँव में एक खुदाई में दो तोरणद्वार प्राप्त हुए थे। एक का उपयोग इस मन्दिर में कर लिया गया तथा दूसरा कुचामण भेज दिया गया था।

मुख्य वेदी के उत्तर में छोटी वेदी पर तीन देवी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं, जिनमें मध्य प्रतिमा सरस्वती की है। यह एक दुर्लभ मूर्ति है। इसके दक्षिण में एक पाषाण फलक पर 16 विद्या देवियों की मूर्तियाँ हैं। सरस्वती के उत्तर में एक खड्गासन प्रतिमा आराधिका की है। इन मूर्तियों का सम्पूर्ण परिवेश बड़ा मनोहारी है। यह मन्दिर जैन मूर्तियों का अद्भुत संग्रहालय है। संगमर्मर की मूर्तियाँ तेरहवीं शताब्दीके प्रारम्भिक दशकों की है। बलुहे और काले पत्थर की मूर्तियाँ अधिक प्राचीन हैं।

एक मूर्ति फलक संवत् 2003 में राव दरवाजे के बाहर श्री गणेशमल पाटनी के मकान की नींव खोदते समय मिला था। इस पाषाण फलक पर पाँच मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जिन्हें पाँच बाल यतियों की मूर्तियाँ माना गया है। मुख्य बड़े मन्दिर के पड़ोस में सेठ रिद्धकरण पाण्ड्या आयुर्वेदिक औषधालय के निर्माण सम्बन्ध में खुदाई करते समय जमीन की सतह से करीब बीस फीट नीचे एक मिट्टी के घड़े में कुछ मूर्तियाँ व पूजा पात्र निकले थे। उनमें एक मूर्ति स्फटिक की है। शेष धातु की। तीन मूर्तियों पर वि. संवत् 1258, 1305 व 1380 के लेख भी अंकित हैं। वे सभी मूर्तियाँ व सामान मन्दिर में यथास्थान विराजित व प्रदर्शित हैं।

पड़ोस के एक गॉव कसूम्बी से प्राप्त तीन जिन मूर्तियाँ भी इसी मन्दिर में रखी हुई हैं। इन सबके अतिरिक्त मन्दिर के मूर्ति संग्रह में भगवान पार्श्वनाथ, नेमीनाथ आदि अनेक दुर्लभ मूर्तियाँ संग्रहित हैं। मन्दिर का मुख्य वेदिका कक्ष कलात्मक प्रस्तर स्तम्भों पर मनोहारी मण्डप से मण्डित है। इस मन्दिर का शिखर भी कला का अद्भुत नमूना है। प्राचीन मन्दिर के साथ किया गया नया निर्माण भी एक आदर्श तालमेल प्रदर्शित करता है। कुल मिलाकर यह मन्दिर इस शहर की बहुमूल्य निधि है।



एक मनोहारी जिन प्रतिमा बड़ा जैन मन्दिर, लाडनूं

निर्माण काल—9वीं शताब्दी (लगभग)

चारभुजा चौक स्थित श्वेताम्बर जैन मन्दिर :

वि. संवत् 1352, जेठ बदी 6, सोमवार को इस चैत्य में भगवान पार्श्वनाथ का बिम्ब, देवेन्द्र सूरि के शिष्य धर्मदेव की देखरेख में किसी गोठ गोती श्रावक की भार्या सलूणा दे ने प्रतिष्ठित करवाया। इन्हीं धर्मदेव सूरि की अध्यक्षता में वि. संवत् 1363 की फाल्गुन सुदी में उपरोक्त सलूणादे के पुत्र सागर और पौत्र श्रेयांस ने आदिनाथ के बिम्ब की प्रतिष्ठा करवाई।

उसके बाद ई. सन् 1365 तद्नुसार वि. संवत् 1422 लगभग इस कस्बे पर फीरोज तुगलक का हमला हुआ। कस्बे के तत्कालीन शासक जैमल (या जयसिंह प्रथम) हार गए तथा मुसलमान बन गए। वर्तमान हदीरे के स्थान पर स्थित हिन्दू मन्दिर तथा उपरोक्त जैन मन्दिर ध्वस्त कर दिए गए। कई वर्षों तक इनके प्रस्तर अवशेष इधर-उधर बिखरे पड़े रहे। वि. संवत् 1445 में फीरोज की मृत्यु हो गई। उसके बाद लाडनूं पर गरदेजी पठान काबिज हो गए। वि. संवत् 1489 में द्रोणपुर के मोहिल शासक अरड़कमल ने गरदेजियों को अपदस्त कर लाडनूं पर अधिकार कर लिया।

उसके बाद लाडनूं के मन्दिरों के पुनर्निर्माण का काम फिर शुरु हुआ। राव अरड़कमल मोहिल ने रघुनाथजी (वर्तमान में सीतारामजी) का मन्दिर बनवाया। चार भुजानाथ मन्दिर नए सिरे से बना। संवत् 1495 में आचार्य जिनसागर सूरि की अध्यक्षता में वर्तमान मूल नायक शान्तिनाथ भगवान के बिम्ब की प्रतिष्ठा हुई। वि. संवत् 1506 फाल्गुन सुदी 9 शुक्रवार के दिन सुराणा नापासाह के पुत्र साह खीमा ने आचार्य परमानन्द सूरि की देखरेख में सुव्रत स्वामी का बिम्ब स्थापित करवाया। वि. संवत् 1510 माघ सुदी 5 को चण्डालिया कालुसाह की पुत्रवधु हरवमिदे ने मल्लधारी गच्छीय गणुसुन्दर गणी के सान्निध्य में कुंथुनाथ का बिम्ब प्रतिष्ठित करवाया।

भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा यथावत आज दिन तक प्रतिष्ठित है। इसके साथ ही संवत् 1929 की भगवान् पार्श्वनाथ की एक कृष्ण वर्णी प्रतिमा है। मन्दिर का जीर्णोद्धार संवत् 1905 में हुआ — उसके बारे में जानकारी इस प्रकार है —

लाडनूं के बैंगाणी घासीराम मुर्शिदाबाद (बंगाल) में मुनीम थे। उस वक्त मुर्शिदाबाद में दूगड़ प्रतापसिंह का परिवार प्रशस्त रूप से प्रभावी था। बंगाल-बिहार में उनकी बड़ी जमीदारी थी। यह दूगड़ परिवार उन ओसवाल परिवारों में से था, जो पहले पहल बंगाल पहुँचे थे। वे देशवाली कहलाए। इस परिवार ने अतुल सम्पदा अर्जित की। प्रतापसिंह के पुत्र लक्ष्मीपत सिंह भी बड़े धर्मानुरागी थे। उनका देहावसान संवत् 1886 में हुआ। उनके पुत्र छत्रपतसिंह ने भी अपने यशस्वी परिवार की परम्परा को आगे

बढ़ाया। मुनीम घासीराम के सद्प्रयत्नों से छत्रपतसिंह ने इस जैन मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। साथ-साथ मन्दिर में दादाबाड़ी की भी स्थापना करवाई। यक्ष मणिभद्र की प्रतिमा भी संगमर्मर देराश्रय में स्थापित करवाई। मन्दिर में काँच की जड़ाई का कलात्मक काम पिछले दशक में सम्पन्न हुआ।

प्राचीन वापी :

लाडनू की वापी (बावड़ी) कस्बे के प्राचीनतम स्थापत्य अवशेषों में से एक है। इसके निर्माण का शिलालेख सम्वत् 1373 तद्नुसार ईस्वी सन् 1316 का है। इस शिलालेख में लाडनू नाम स्पष्ट अंकित है तथा लाडनू की नागपत्तम (वर्तमान नागौर) से दूरी चार योजन बताई गयी है। इसका निर्माण साधरण नाम के एक व्यक्ति ने करवाया था। साधरण ने उपरोक्त शिलालेख में अपने आपको कश्यप गोत्रिय क्षत्रिय बताया है जबकि खरतरगच्छ पटावली में साधरण को एक जैनी श्रावक दर्शाया गया है।

असलियत यह है कि साधरण एक सार्थवाह था। उसके व्यापार का मार्ग उच्चनगर (तक्षशिला) से आगरा या दिल्ली था। लाडनू उस मार्ग का एक महत्त्वपूर्ण स्थान था। सार्थ में पशुओ की संख्या बहुत रहती थी। उनके लिए पीने के पानी की जरूरत को पूरा करने के लिए उसने लाडनू में इस वापी का निर्माण करवाया।

प्राचीनकाल में बजारों ने इस तरह के निर्माण अन्यत्र भी करवाए। मूण्डवे का प्रसिद्ध लखी तालाब लखी बंजारे द्वारा बनवाया गया था। मूण्डवे से ही कुछ मील पूर्व में चौरासी की कांकड़ में स्थित भंवरिया डावोली गांव में एक छतरी आज दिन तक अवस्थित है। यह छतरी किसी बंजारे ने अपने एक वफादार कुत्ते की याद में बनवाई थी। बावड़ी परिसर में एक ऐसा पत्थर भी रखा हुआ है, जिस पर कुरान की कोई आयत अंकित है। लेकिन उसका बावड़ी के निर्माण से संबंध जोड़ना उचित नहीं।

एक कहानी राजगीर की जबानी :

एक जाने-माने राजगीर ने यह घटना बताई थी। जब वे सरावगी मोहल्ले में स्थित स्व. दीपचन्दजी पहाड़िया के घर में एक हौज के लिए खुदाई कर रहे थे तो जमीन की सतह के करीब सोलह सत्रह फीट नीचे एक फर्श होने का आभास हुआ। कौतुहलवश उस फर्श को तोड़ा गया तो नीचे अंधकार से भरा एक गड्ढा नजर आया। टोर्च की रोशनी मे टोह ली गई तो एक कमरेनुमा बनावट दिखाई दी। एक मजदूर को नीचे उतारा गया। उसे लगा कि वह कमरे में खड़ा है। दीवार पर खूँटी के सहारे उसे एक पगड़ी टंगी हुई दिखाई दी। उसने पगड़ी को हाथ में लेने की कोशीश की तो वह बिखर गई। कोई नहीं जानता कि पगड़ी के सूत को रेत बनने में कितनी शताब्दियाँ लगी होंगी।



प्राचीन दुर्गा प्रतिमा



घोड़े पर सवार पुरानी भैरव प्रतिमा

एक प्राचीन स्थापत्य अवशेष

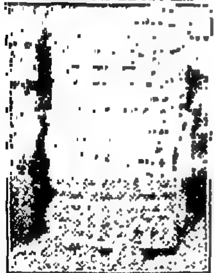


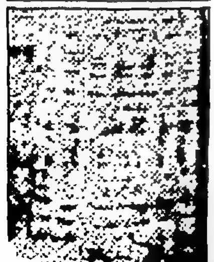
एक प्राचीन शिल्प अवशेष



एक पुरानी शिल्प कृति







प्राचीन स्तम्भ अवशेष

स्थान : चारभुजानाथ मन्दिर परिसर

न हमदम रहे न हमराही :

बड़े जैन मन्दिर के ठीक सामने एक जैन चैत्यालय बना हुआ है। उसकी नींव की खुदाई में एक कांसे का बना हुआ बड़ा घंटा निकला। कांसा एक निश्चित तापक्रम पर घात वर्ध्य होता है जबकि भंगुर वह किसी भी अवस्था में नहीं होता। इस अवशेष की यह स्थिति है कि यह भंगुर बन गया है। उस पर दरारें भी आ गई हैं। वह हाथ से ही आसानी से खुरचा जा सकता है। कहना चाहिए घंटे की मिश्र धातु तत्वास्म में बदल गई है। यह अवशेष चैत्यालय में आज भी सुरक्षित है। शायद किसी तोड़-फोड़ के समय यह जमीन में दबा रह गया और शताब्दियों का कालचक्र इसके असली स्वरूप को लील गया।

कभी हम भी बुलन्द थे :

श्री मोतीसिंहजी जोधा की हेवली बनते समय खुदाई में अनेक प्रकार के बड़े-बड़े तराशे हुए तथा तरतीब वार रखे हुए सैकड़ों प्रस्तर अवशेष प्राप्त हुए। उनमें कुछ मूर्तियाँ भी थी। सम्भवतः किसी बड़े मन्दिर को तोड़ दिया गया था। उसके पत्थरों को उनके अनुयायियों ने बाद में सम्भालकर रख दिया। उन पर मिट्टी की परतें जमती गई। नींवों की खुदाई करते समय वही पत्थर बाहर आ गया। स्थानीय दिगम्बर जैन समुदाय ने उन पत्थरों को खरीदने में रुचि जताई थी लेकिन यह जानकर कि वे पत्थर तो किसी हिन्दू मन्दिर के थे, उन्होंने उनको नहीं लिया।

जल बिन सूने जलागार :

अभी हाल ही में गढ़ की भूमि पर हो रहे एक निर्माण कार्य के दौरान एक तहखाने की खुदाई में जमीन की सतह से करीब बीस फीट नीचे तराशे हुए सुघड़ पत्थरों का एक बड़ा जखीरा निकला। उनके साथ-साथ पत्थर में खुदे हुए जल भरने के बड़े-बड़े पात्र भी निकले। विशाल खम्भों के नीचे रखे जाने वाले गोलाई में खुदे हुए कुछ भारी पत्थर निकले। ये सारे पत्थर सम्भवतः किसी बड़े किले के अवशेष थे। कुछ सामान तस्करों के हाथों बेच दिया गया। शेष वहीं चुनाई के काम में ले लिया गया। इसी मलबे में कुछ खण्डित मूर्तियों के अवशेष भी प्राप्त हुए।

व्यवस्था के अनचिह्ने अंग :

पत्थरों से बना हुआ एक बड़ा नाला तीसरी, दूसरी और पहली पट्टियों के नीचे दबा पड़ा है। यह पश्चिम से पूर्व बहता था तथा सैकड़ों वर्ष पहले की कस्बे की गन्दे पानी की निकासी का साधन था। तब पट्टियों के रूप में कस्बे का फैलाव नहीं हुआ था। इस नाले की उपस्थिति के बारे में जानकारी जलदाय विभाग के कर्मचारियों द्वारा मिली।

वर्तमान पानी की पाइप लाइन को दुरुस्त करने के सम्बन्ध में उनके द्वारा की जाने वाली खुदाइयों में इस नाले के अवशेष प्राप्त होते रहते हैं। यह भी सम्भव है कि गढ़ की खाई का पानी बदलने के लिए इस नाले का उपयोग किया जाता होगा।

किसी ने बनाया, किसी ने बिगाड़ा :

एक राजगीर ने बताया कि गढ़ में किसी निर्माण कार्य के सम्बन्ध में जब एक दीवार को तोड़ा गया तो वह पूरी दीवार मूर्तियों के पत्थरों से बनी हुई थी। मूर्तियों के मुख दीवार में भीतर की तरफ करके उन्हें मात्र चुनाई के पत्थर के रूप में चुन दिया गया था। उनको फिर तोड़कर चुनाई के काम में ले लिया गया। बाजार स्थित पुरोहित जी के नोहरे के पास किसी कुचेरिया परिवार की हवेली के नव-निर्माण में खुदाई के समय कुछ रसोई व चूल्हे चौकी सम्बन्धी उपकरण प्राप्त हुए। मिट्टी के बर्तनों में रखी हुई मूंग व मोठ की दालें प्राप्त हुईं। एक पत्थर का मूसल भी मिला।

मुलाकात एक मिरासी से :

युवक परिषद की प्रथम स्मारिका (सन् 1971) प्रकाशन के सम्बन्ध में मैंने अनेक महानुभावों का सहयोग लिया था। उनमें से एक श्री इब्राहिम जी सोलंकी (भटबोड़ा सीलावट) भी थे। उनसे मैंने अनेक बहुमूल्य जानकारियाँ हासिल की थी। वे मुझे बिसातियों के मुहल्ले में रह रहे एक मुसलमान भाट के घर ले गए। उसके पास एक पुरानी बही थी। उसने बताया कि वह बही उस समय की थी जब वे हिन्दू थे। उनके परिवार में वह बहुत समय से सुरक्षित थी।

मैंने उस बही को देखा, लेकिन उसकी भाषा मेरे पल्ले नहीं पड़ी। मिरासी का कहना था कि वह बही दो हजार वर्ष पुरानी है और लाडनूँ के पुराने राजाओं का उसमें हाल है। किसी उपयुक्त समय पर उस बही को पुनः देखने की इच्छा से मैं वहाँ से लौट आया। उस बही की ऐतिहासिक उपयोगिता मेरे मन में पैठ गई थी। करीब एक साल बाद मैं फिर उस भाट के पास गया लेकिन तब तक विलम्ब हो चुका था। वह व्यक्ति स्थान छोड़कर आजीविका की तलाश में कहीं अन्यत्र चला गया था। उसका कहीं पता नहीं चला।

यह कहानी है इस कस्बे की ऐतिहासिक विरासत की। बहुत कुछ जाने-अनजाने नष्ट किया जा चुका है। बहुत सारे प्रमाण अभी भी जमीन की सतह के नीचे दबे पड़े हैं। आकस्मिक रूप में जो कुछ निकला है, वह बहुत न्यून है। जो कुछ नष्ट हो चुका है, उसके बारे में चिन्ता करने से कोई फायदा नहीं। जो दबा पड़ा है उसके बारे में किसी तरह की अपेक्षा रखना बेकार है। अलबत्ता संयोगवश जो मिल जाता है, उसको बचाकर संजोए रखना इस कस्बे के प्रत्येक नागरिक का एक पवित्र दायित्व है। इतिहास विरासत हम सबके साझे की सम्पत्ति है।

परिशिष्ट—5

खरतरगच्छ पट्टावलि में लाडनूं का प्रसंग :

खरतरगच्छ वृहद् गुर्वावली में उल्लेख है कि स्वाळख देश में नागौर से उत्तर-पूर्व दिशा में लाडनूं शहर है। वहाँ श्रेष्ठ जल के अतिरिक्त सब कुछ सुलभ है। वहाँ गुणवान श्रावक साधरण ने एक पुण्यकारी बावड़ी का निर्माण करवाया। यद्यपि बावड़ी के संस्कृत शिलालेख से साधरण का क्षत्री होना लक्षित है लेकिन इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह जैन धर्म का अनुयायी रहा हो।

आचार्य जिनप्रभसूरि :

ओसवाल ताम्बी शासन में लाडनूं के श्रावक रतनपाल का पुत्र आचार्य जिनप्रभसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। संवत् 1385 में उन्होंने दिल्ली सुल्तान मुहम्मद तुगलक को प्रभावित किया और उससे जैन तीर्थों की रक्षार्थ फरमान जारी करवाए। सुल्तान ने उन्हें 'सुरतान सराई' के विरुद से सम्मानित किया। वि. संवत् 1389 में आचार्य द्वारा रचित 'विविध तीर्थकल्प' एक प्रसिद्ध संस्कृत रचना है। आचार्य जिनप्रभसूरि अपने स्तोत्र साहित्य के लिए भी प्रसिद्ध हैं। आपके गुरु जिनसिद्ध सूरि से खरतरगच्छ की लघुशाखा का विकास हुआ।

पन्यास सत्य विजय :

जैन रासमाला भाग-1 (1912) के अनुसार स्वाळख अंचल के नगर लाडनूं में अनेक श्रेष्ठि पुरुष रहते थे। उनमें वीरचन्द दूगड़ नाम के एक प्रसिद्ध श्रेष्ठि हुए। उनकी पत्नी वीरमदे भी सती और गुणवती थी। संवत् 1682 में उनके एक पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम शिवराज रखा गया। चौदह वर्ष की वय में शिवराज ने श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में दीक्षा ली। उनका नया नामकरण सत्यविजय हुआ। सत्यविजय एक यशस्वी सन्त हुए। उन्होंने अपने आचार्य विजयप्रभसूरि की आज्ञा से क्रियोद्धार किया तथा तपस्या में लीन हुए। उनका विहार क्षेत्र गुजरात और राजस्थान रहा। आचार्य ने उन्हें पन्यास पद से विभूषित किया। आचार्य उन्हें सूरि पद देने को भी तत्पर हुए। परन्तु पन्यासजी ने शिथिलाचार के विरुद्ध क्रियोद्धार अपनाकर सूरि पद स्वीकार नहीं किया। संवत् 1756 में आप माण्डवी में स्वर्गस्थ हुए।

परिशिष्ट–6

लाडनू सम्बन्धी भौगोलिक जानकारी :

स्थिति	:	राजस्थान प्रदेश के नागौर जिले के उत्तर-पूर्व में करीब 27° 37' उत्तरी अक्षांश तथा 74° 26' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है।
समुद्र तल से ऊँचाई	:	329 मीटर या 1079 फीट।
जलवायु	:	विषम। सर्दियों में तापमान कभी-कभी 0° सेण्टीग्रेड तक गिर जाता है। गर्मियों में 48° सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाता है। औसत वार्षिक वर्षा 25 से.मी. लगभग। शुष्क प्रदेश है, फिर भी हर ऋतु में कभी-कभी मौसम बहुत सुहावना रहता है। ज्यादातर हवाएँ पछुआ चलती हैं।
भौगोलिक बनावट	:	मरुस्थली प्रदेश है। कहीं-कहीं दुम्मट मिट्टी है। उत्तर दिशा में करीब 12 कि.मी. पर एक छोटी पहाड़ी श्रृंखला है।
भू-गर्भीय जल-स्रोत	:	शहर के दक्षिण-पश्चिमी भाग में पीने तथा सिंचाई योग्य मीठे पानी के पर्याप्त भण्डार हैं। जल स्तर प्रतिवर्ष नीचे जा रहा है। पानी में फ्लोरीन लवणों की मात्रा का प्रतिशत बढ़ रहा है।
खनिज	:	लाल पत्थर, चूने का पत्थर तथा एक विशेष प्रकार का संगमर्मर खनन से प्राप्त होता है। लाल पत्थर की खानें गहरी हो गई हैं। वे आबादी के बहुत निकट हैं अतः उनके खनन पर प्रतिबन्ध है।
पड़ौसी जिले	:	चूरू तथा सीकर
जनसंख्या	:	साठ हजार करीब
कृषि	:	अधिकतर खेती मानसूनी वर्षा पर निर्भर है। करीब 150 कृषि फार्मों पर नलकूप से सिंचाई होती है। खरीफ की मुख्य फसलें—बाजरा, मूँग, मोठ, गवार, जवार तथा तिल है। जिन खेतों में सिंचाई की सुविधा है, उनमें कपास तथा मूँगफली की फसलें भी बोई जाती हैं। गेहूँ, सरसों, चना, मेथी, जीरा रबि की प्रमुख फसलें हैं। सब्जियाँ सभी तरह की होती हैं।



ऋषि ... मुझे असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से [illegible]

[illegible]

रूसी विज्ञान ... के शब्द हैं — ... मृत्यु ... अनुसंधान ... मृत्यु पर विजय पाई जा सके।

उपरोक्त दोनों वचनों ... [illegible]

[illegible]

स्वामी सत्यानंद